अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

(१६१६ से मई १६५७ तक)

लेखक

डा० आर० एन० चौधरी

एम ए, एम एस एस. (हेग),

डी एस. सी. (एम्सटरडम्)

प्राध्यापक तथा प्रधान, इतिहास विभाग,

एस एम के. कालेज, जोधपुर

द्वितीय संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण

प्रकाशक

फ्रैंक ब्रादर्स एण्ड कम्पनी

चाँदनी चौक, दिल्ली—६

प्रकाशक
[illegible] आदर्श एण्ड कम्पनी,
चांदनी चौक, दिल्ली—६

१९५७

मूल्य ९॥)
अथवा
नौ रुपये पचास नये पैसे

मुद्रक
नया हिन्दुस्तान प्रेस,
चांदनी चौक, दिल्ली।

प्रस्तावना

इस पुस्तक में मौलिकता अथवा विद्वता का प्रदर्शन नहीं; बल्कि सीधे-सादे शब्दो में राजनीति तथा इतिहास के विद्यार्थियो के हितार्थ १६१६ से अब तक की महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओ तथा परिवर्तनो का सक्षिप्त इतिहास है। मैंने इस पुस्तक की रचना में राजनीति से सम्बन्धित तमाम उच्च स्तर की पुस्तको से सहायता ली है तथा समाचार पत्रो और पत्रिकाओ से महत्वपूर्ण अश उद्धृत किये है।

मैंने अावश्यक बातो को छोड कर केवल उन्ही महत्वपूर्ण घटनाओ पर प्रकाश डाला है जो पाठको के लिए बोझ न बनकर ज्ञान वर्धक सिद्ध हो।

इस पुस्तक की रचना करते समय मैंने नेपोलियन के इन शब्दो की ओर विशेष ध्यान दिया है जिनमें कहा गया है "समुचित तैयारी में लडाई की आधी सफलता निहित है।"

यद्यपि यह पुस्तक राजनैतिक उथल-पुथल का सीधा बयान है किन्तु जहा तक हो सका है इसे दिलचस्प बनाने की कोशिश की गई है।

मेरी यह मेहनत कहाँ तक सफल हुई है इसका निर्णय पाठक स्वय करेंगे।

अन्त में मैं निम्नलिखित महानुभावो का हृदय से कृतज्ञ हूँ जिन्होने इस पुस्तक को तैयार करने में मेरी सहायता की है। महाराजा कालिज जयपुर के इतिहास विभाग के अध्यक्ष प्रो० जे० एम० घोष, एम० ए० जिन्होने मुझे पुस्तक की रचना के लिए प्रोत्साहित किया। महाराजा कालिज जयपुर के राजनीतिक विभाग के प्रो० एस० एल० आदित्य, एम० ए० तथा ए० बी० माथुर, एम० ए०, जिन्होने हस्तलिपि के पढने और टिप्पणी करने मे तथा ताजी सूचनाएँ सग्रह करने में मेरी सहायता की।

व्याख्यान १

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का अध्ययन

प्राक्कथन—अणु तथा उजदन बमो और शीतयुद्ध के वर्तमान युग में युद्ध और शान्ति की समस्या लोगो की दृष्टि मे सर्वत्र एक नूतन महत्व ग्रहण कर चुकी है। विश्व की बडी-बडी शक्तियो के बीच बढते हुए तनाव ने अन्तर्राष्ट्रीय सकटों की कडी कायम कर दी है। एक आधुनिक प्रसिद्ध लेखक कालिजार्वी लिखते है "आज का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध ऐसा रूप ग्रहण कर रहा है जिसमे पुरानी एक राष्ट्रीय-राज्य व्यवस्था नये राजनैतिक सांचे मे ढलती जा रही है। साम्राज्यो के ध्वस होने के कारण उपनिवेश स्वतन्त्र होते जा रहे हैं। एक राष्ट्रीय राज्यो का बडे-बडे संघो में समावेश हो रहा है। राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था एक नये ढाचे में ढाली जा रही है और राजनैतिक नियत्रण एक नया स्वरूप धारण कर रहा है। राज्य स्वेच्छा अथवा दबाव से क्षेत्रीय गुटो में शामिल हो रहे हैं। इन गुटबदियो से विश्व मे ऐसी परिस्थितियां पैदा हो गई है जिनमे शाति अथवा भयकर युद्ध दोनो की सभावना है। यदि युद्ध हुआ तो शायद यह अतीत से कही अधिक भयकर हो। विश्व मे होने वाले इन महान परिवर्तनो का अध्ययन न केवल इसलिये आवश्यक है कि उनका हमारी सुरक्षा और कल्याण से काफी गहरा सम्बन्ध है बल्कि इसलिये भी कि कही हमारा अस्तित्व ही खतरे मे न पड जाय।

परिभाषा—अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की परिभाषा क्या है इस विषय पर विभिन्न योग्य लेखको तथा विचारको ने अपने अलग-अलग विचार प्रकट किये है। प्रो० स्प्रोट का कहना है "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का व्यापक अर्थ—एक राजनीतिक सीमा में रहने वाली जनता के वर्तमान व्यवहार जिसका प्रभाव दूसरे राज्यो की सीमा मे रहने वाले मानव पर पडता है।" प्रो० स्वार्जनबर्जर लिखते है, "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का मतलब—वे सम्बन्ध जो समूहो के बीच, समूहो और व्यक्तियो तथा एक दूसरे व्यक्तियो के बीच पैदा होते हैं अथवा कायम है जिसका प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय समाज पर पडना स्वभाविक है।" प्रो० मैनिग ने अपनी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की परिभाषा मे कहा है, "इस विश्व मे वर्तमान परिस्थितियों मे हम एक सामाजिक जीवन की जिस दशा अथवा पहलू का अनुभव करते है वही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध है।" यदि इस परिभाषा को ध्यान में रखते हुए हम इस विषय का अध्ययन करे तो हम इन पहलुओ से अध्ययन कर सकते है. (क) आधुनिक मानववाद के रूप में (ख) राष्ट्रो के परस्पर सम्बन्ध का विवरण, (ग) उन सिद्धान्तो का अध्ययन जिनसे राष्ट्रो के सम्बन्धो का

[illegible] होता है। प्रो० श्वेनेनियर का कहना है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो का सम्बन्ध [illegible] समाज अथवा राष्ट्र परिवार के विभिन्न देशो के विभिन्न क्षेत्रो में पैदा [illegible] अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो की गुत्थियो से है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो की इन [illegible] पैदा होने वाली परिस्थितियो मे अथवा घटनाओ का जो "वर्तमान घटनायें" [illegible] विभिन्न प्रकार की प्राप्त-पर्याप्त जानकारियो के प्रकाश में [illegible] आवश्यक है।

[illegible] अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो को विदेशी मामलो का प्रतिरूप मान लिया [illegible] "वास्तव मे विदेशी मामले एक प्रकार से [illegible] मामलो से अधिक घरेलू है। कारण यह कि प्रत्येक [illegible] आर्थिक हालत पर उसका सीधा प्रभाव पडता है।" इस [illegible] व्यापक और सीमित दोनो प्रकार से होता है। यदि एक [illegible] जहा कही भी कोई घटना घटे 'अन्तर्राष्ट्रीय [illegible] के अध्ययन के लिये वह घटना एक आव- [illegible] करे तो न्यायोचित नही क्योकि यदि [illegible] शामिल कर लगे तो इससे न केवल [illegible] उन घटनाओ अथवा सम्बन्धो को [illegible] समाज के विकास के लिये उनका महत्व [illegible] शामिल करना पड जायगा। उदाहरण के लिये [illegible] प्रतियोगितायें आदि। दूसरा पक्ष [illegible] आधीन बना दिया जाय। [illegible] अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध कायम [illegible] नही है बराबर रह [illegible] अन्तर्राष्ट्रीय समाज के विकास [illegible] यह देखना है कि समस्त [illegible] और वे कहाँ [illegible]।

विभिन्न विशेष विषयो का एक समन्वय है। डा० अप्पाडोराय ने कहा है कि इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आज कई सामाजिक अध्ययन एक दूसरे पर निर्भर है और प्रत्येक को किसी न किसी रूप मे विशेषज्ञो के अध्ययन से कुछ न कुछ ग्रहण करना पडता है तब कही जाकर वे पूर्ण हो पाते है, जैसा कि राजनीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र के परस्पर निकट सम्बन्ध से प्रकट है। यह ठीक है कि 'अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध' विषय के विद्यार्थी को कई विशेषज्ञो से प्राप्त आकडो पर निर्भर करना पडता है। लेकिन साथ ही वह एक ऐसा समन्वय करने में सलग्न है कि उसका समन्वय अन्य विशेषज्ञो के समन्वय से भिन्न है और अलग अध्ययन के लिये बौद्धिक और सामाजिक दृष्टि से पर्याप्त महत्व रखता है।

विषय की कठिनाइयां

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध विषय के विद्यार्थियो को कई ऐसी घटनाओ का सामना करना पडता है जिनका इस विषय के साथ विशेष सम्बन्ध है। यह विषय स्वरूप और सार की दृष्टि से अत्यन्त स्वार्थ मूलक है और सभव है कि या तो यह राष्ट्रीय प्रचार का साधन बन जाय अथवा अपने वास्तविक उद्देश्य से दूर हट जाय। इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के निष्पक्ष, तटस्थ तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन के बजाय बहुत सभव है एक अटोपियन (आदर्शवादी) अथवा राजनीतिमूलक शक्ति का दृष्टिकोण अपनाया जाय। जैसा कि कार ने कहा है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो की प्रारम्भिक अवस्था में युद्ध रोकने के लिये स्पष्ट और प्रकट रूप से आदर्शवादी दृष्टिकोण अपनाया जाता था जिसने प्रारम्भिक अध्ययन को नया मोड दिया। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का विश्लेषण करने वालो के लिये ऐसे यत्नो की आवश्यकता है जिनसे वे अपनी सस्कृति की जेल की चार दीवारियो से अलग रह कर विभिन्न सस्कृति के लोगो के व्यवहार को उचित पूर्ण तटस्थता एव उदासीनता की भावना से उनकी परीक्षा तथा अनुमान लगा सकें। दूसरी सबसे बडी कठिनाई इस विषय को पढाने के लिये योग्य शिक्षको की कमी है। जैसा कि प्रो० शेवेलियर ने कहा है कि इस विषय के अध्ययन के लिये वृहद्ज्ञान विशारदो तथा गूढ अध्ययन की आवश्यकता है जो अपने विचार राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रो तक प्रसारित करने मे समर्थ हो। साथ ही उनका एक दूसरे के साथ होने वाले व्यवहार का तरीका भी प्रशसनीय होना चाहिये। ऐसे शिक्षक, जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध विषय पर विस्तृत विचार सम्बन्धी अनेक तत्वो के एकीकरण की क्षमता रखते है, अपेक्षाकृत शिक्षा व्यवसाय मे बहुत कम पाये जाते है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कोई भी शिक्षक या शिक्षाविद् एकाकी रूप से न तो ज्ञान की विभिन्न शाखाओ पर अधिकार प्राप्त कर सकता है और न वह विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ के आवश्यक विश्लेषण मे ही अपनी विश्लेषणात्मक प्रतिभा प्रदर्शित कर सकता है। दूसरी कठिनाई

विगत दो युद्धो मे विश्वभर में लामबन्दी, व्यापक विनाश और आर्थिक सकटो ने अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ के प्रति जनता में जागरूकता पैदा करदी है। अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ के प्रति जनता में इस जागरूकता की प्रगति मुख्य रूप से उस समय के श्रम आन्दोलन मे मिली है जिसमे समय समय पर युद्ध विरोधी कई प्रभावशाली प्रस्ताव स्वीकार किये गये। १६१४ से पूर्व वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के अध्ययन पर केवल व्यावसायिक कुटनीतिज्ञो का ही एकाधिकार था। कार के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का प्रचार उन गुप्त सधियो के विरुद्ध एक आन्दोलन के रूप मे शुरू हुआ। इन आन्दोलन द्वारा इन गुप्त सधियो को युद्ध का कारण बता कर उनकी आलोचना की गई। गुप्त सधियो के लिये जनता मे परस्पर मतभेदो को उत्तरदायी ठहराया गया। इस प्रकार यह आन्दोलन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो का एक लोकप्रिय विषय के रूप में अध्ययन की माग का प्रथम लक्षण था जिसने इस नये विज्ञान को जन्म दिया।

राष्ट्रसघ और सामूहिक सुरक्षा प्रणाली की असफलता ने यह स्पष्ट कर दिया कि युद्ध रोकने के लिये उत्कट भावना से भी अधिक आवश्यक कोई और भी बात है। कार ने कहा है कि १६३१ के बाद की घटनाओ के क्रम से यह स्पष्ट हो गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति विज्ञान के लिये शुद्ध लालसा का आधार अपर्याप्त है। इसलिये इन घटनाओ ने प्रथम बार अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ के बारे में गम्भीर आलोचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक विचार का अवसर दिया।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सामूहिक शान्ति का विश्वसमृद्धि के लिये एक नये प्रकार के आशावाद का जन्म हुआ जिसने राष्ट्रसघ (लीग आफ नेशन्स) के के स्थान पर अधिक शक्तिशाली सयुक्त राष्ट्रसघ (यूनाइटेड नेशन्स) की स्थापना की। इस प्रकार दो विश्व युद्धो के प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न जन भावना ने अन्त-र्राष्ट्रीय समस्याओ के अध्ययन के लिये प्रेरित किया।

एक अन्य कारण जिसने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के अध्ययन को प्रोत्साहित किया वह आधुनिक काल का भयकर यान्त्रिक विकास है जिसने विभिन्न देशो की दूरी को बहुत कम कर दिया है। अत्यधिक तीव्रगामी जेट विमानो (जिनकी गति प्रति घटे ७०० मील से भी अधिक है), बे तार के तार (वायरलैस) सामुद्रिक तार (केबिल), दूर मुद्रक यन्त्र (टेलीप्रिंटर), टेलीफोन तथा टेलीविजन जैसे वैज्ञानिक अनुसधान ने विश्व को अत्यन्त छोटा बना दिया है। परिणाम स्वरूप कोई भी देश अथवा महादेश स्वय को अलग नही रख सकता। अत प्रत्येक देश के हित मे यह आवश्यक है कि युद्ध रोका जाय और शांति की स्थापना हो न केवल आदर्शवादी कारणो से बल्कि अपने अस्तित्व और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये भी।

[illegible] की भावना की तीव्र प्रगति से, जिसके परिणाम स्वरूप विदेश नीति [illegible] कूटनीतिज्ञों के हाथ से हट कर दलबंदी के क्षेत्र में चला गया, [illegible] के अध्ययन में काफी सहयोग मिला। युद्ध पूर्व की अवधि में [illegible] ने अन्तर्राष्ट्रीय विषयों में ऐसे नये कूटनीतिज्ञों तथा विशेषज्ञों की [illegible] आवश्यकता उत्पन्न कर दी है जिन्हें समस्त विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय [illegible] का पूर्ण ज्ञान हो। इस तरह शांति स्थापना की [illegible] तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों के रूप में पर्याप्त औद्योगिक [illegible] का विकास हुआ।

[illegible] और [illegible] अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का अध्ययन विश्वविद्यालीय [illegible] । [illegible] मार्टेग वर्टन (ब्रिटेन) और [illegible] प्रयास द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय [illegible] में योग दिया। उनका विचार [illegible] चल जायेगा और वह [illegible] की व्यवस्था कर लेगी। [illegible] अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना तथा सहयोग द्वारा स्थायी [illegible] महत्वपूर्ण योग दे सकते हैं। इस प्रकार के [illegible] अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के अध्ययन ने [illegible] । [illegible] लिखते हैं कि आमफोर्ड विश्व-[illegible] अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध विषय की शिक्षा प्रारम्भ [illegible] जीवन का एक ऐसा अंग है [illegible] इतिहास और राजनीति के [illegible] को [illegible] ।

[illegible] सम्बन्ध तथा अन्य विषय

[illegible] राजनीति विज्ञान तथा अन्तर्राष्ट्रीय [illegible] आवश्यकता [illegible] दोनों में कोई अन्तर [illegible] । राजनीति विज्ञान प्राय [illegible] मानते हैं। वे व्यक्ति [illegible] विशेष [illegible] प्राप्त करते हैं [illegible] ।

[illegible] समस्याओं का [illegible] अध्ययन [illegible] है यद्यपि

अन्तर्राष्ट्रीय कानून और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का परस्पर काफी निकट सम्बन्ध है तथापि दोनो मे जो अन्तर है वह अस्वीकार नही किया जा सकता।

इतिहासकारो का दावा और भी वजनदार है। उनके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध विषय के प्रत्येक विद्यार्थी को अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास की जानकारी होनी चाहिये। आलोचको का तो यहाँ तक कहना है कि समकालीन इतिहास अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के अतिरिक्त कुछ भी नही। लेकिन फिर भी दोनो मे अन्तर है। वह यह कि इतिहास की घटनाओ के क्रम मे प्राय परिवर्तन होते रहते हैं लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के साथ ऐसा नही।

डा० स्वार्ग वर्गर ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो का अध्ययन समाज शास्त्र की एक शाखा बताई है जिसका सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय समाज मे है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय समाज की प्रकृति, इसके विकास, इसके सहायक तत्वो, इसके ढाचे और इसके विलय, विघटन अथवा परिवर्तन सम्बन्धी गतिविधियो से उत्पन्न रुखो की समुचित जानकारी प्राप्त करना है। प्रो० ग्रेसन कर्क लिखते हैं "विद्यार्थियो को नेतृत्व के मनोवैज्ञानिक गुणो के बारे मे भी जानना आवश्यक है। साथ ही उन्हे राष्ट्रीय नीतियो पर विचारो के प्रभाव, जन मत मे परिवर्तन कर उसे एक पक्षीय बनाने की कारवाइयो तथा इसी प्रकार के अन्य अनेक विषयो के बारे मे जानकारी होनी जरूरी है।" अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के कुछ विशेषज्ञो को विश्वास है कि सम्भवत मनोविज्ञान समस्त सहायक क्षेत्रो का प्रमुख आधार है और छात्रो के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के अध्ययन के निमित सामाजिक मनोविज्ञान का विशेष पाठ्क्रम अपनाना नितात आवश्यक है।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के विद्यार्थियो ने अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास 'राजनीति विज्ञान' अन्तर्राष्ट्रीय कानून, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान आदि विषय की अपनी आवश्यकता के बारे मे कभी इन्कार नही किया है परन्तु उन्होने कभी यह भी नही माना है कि ये विषय अतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के आधीन हैं। उनको विभिन्न विषयो से एकत्रित की गई सामग्री को एक विषय के रूप मे प्रस्तुत करना पडता है।

भारत मे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध एक विषय के रूप मे

भारत में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध को एक स्वतन्त्र विषय के रूप मे पढाने में अब तक कोई प्रगति नही हुई है। इस विषय के अध्ययन का प्रारम्भ १९४७ मे होता है। अधिकाश विश्वविद्यालयो मे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की शिक्षा इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र तथा कानून की उपलब्ध पुस्तको द्वारा दी जाती है। केवल इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे कूटनीति तथा अन्तराष्ट्रीय मामलो की एम. ए तक पढाई की व्यवस्था है। हाल मे (१९५५) नई दिल्ली के सप्रूभवन में इस विषय में अनुसधा- नात्मक अध्ययन के लिये अन्तर्राष्ट्रीय मामलो की भारतीय सस्था नामक एक विशेषित

शिक्षण सस्था चालू की गई है। पटना, अलीगढ, लखनऊ और उत्कल विश्वविद्यालयो में एक वर्ष के डिप्लोमा कोर्स की व्यवस्था है। राज्य सरकारो द्वारा भारतीय विदेश सेवा मे नागरिको को प्रवेश होने की सुविधा दिये जाने के फलस्वरूप एक या दो विश्वविद्यालयो मे विदेशी मामलो में डिप्लोमा कोर्स चालू करने को प्रोत्साहन मिला। कई विश्वविद्यालयो तथा कालिजो मे राजनीति विज्ञान विभाग के प्रधान के व्यक्तिगत प्रयास तथा उत्साह से इस विषय के चालू होने मे पर्याप्त प्रगति हुई। इसके अतिरिक्त इस विषय मे बढती हुई रुचि का कारण यह भी है कि लोग यह अनुभव करने लगे है कि एक स्वतत्र देश के रूप में भारत का विश्व के अन्य स्वतत्र देशो के साथ कायम हुए नये सम्बन्धो को दृष्टि में रखते हुए यह अत्यन्त आवश्यक है कि स्नातक और स्नातकोत्तर विद्यार्थियो को विश्व-समुदाय की वास्तविक प्रकृति का ज्ञान हो। साथ ही उन्हें यह भी जानना चाहिये कि ऐतिहासिक दृष्टि से एक समुदाय कैसे अस्तित्व मे आया और किस ढग से इसका सगठन हुआ तथा नये विश्व समुदाय के विकास तथा उसे सुदृढ बनाने मे भारत क्या योग दे सकता है। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा रहा है कि आज के एक विश्व समुदाय के युग मे सामाजिक स्वरूप से सम्बन्धित शैक्षणिक अध्ययन तब तक अपूर्ण है जब तक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो का नियत्रण रखने वाले आधारात्मक पहलुओ का समुचित ज्ञान न हो जाय।

अध्ययन का क्षेत्र

प्रो० कर्क ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के अध्ययन क्षेत्र को पाच भागो में विभाजित किया है (१) उन विभिन्न तत्वो का विश्लेषण जो विश्व के प्रमुख राज्यो की विदेश नीतियो पर प्रभाव डालते है, (२) उन रीतियो का आलोचनात्मक परीक्षण जिनके द्वारा राज्य एक दूसरे के साथ व्यवहार करते है और वे सस्थायें जिनकी स्थापना इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये की गई है, (३) राज्यो के बीच समकालीन आर्थिक, राजनैतिक तथा कानूनी सम्बन्धो तथा एक दूसरे के प्रति प्रवृत्तियो का विश्लेषण, (४) उन साधनो का अध्ययन जिनके द्वारा राज्यो के परस्पर झगडो का निबटारा होता है और (५) उन कानूनी तथा नैतिक सिद्धान्तो पर विचार जिनके द्वारा राष्ट्रो के परस्पर सम्बन्ध पर नियत्रण होता है। अग्रिम पृष्ठो में अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ, अन्तर्राज्य सम्बन्धो, बडे देशो की विदेश नीतियो, एशिया में जागृति और अन्तर्राष्ट्रीय मामलो मे भारत का स्थान आदि विषयो पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

उपसहार

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध जो एक सग्रथित (कम्पोजिट) विषय है उसकी उत्पत्ति हाल में हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की शिक्षा सामाजिक विज्ञान की शिक्षा

का एक भाग है। यह इस कथन से प्रमाणित होता है कि योग्य व्यक्तियों द्वारा विश्व की अच्छी जानकारी प्राप्त करना इस विश्व के लिये हितकर है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की विषय वस्तु अक्सर कई विषयों की 'खिचडी' मानी जाती है। लेकिन लार्ड रसल ने ठीक ही कहा है कि एक भरी हुई टोकरी की वस्तुये एक अज्ञात व्यक्ति के लिए अत्यन्त खिचड़ी हो लेकिन एक दूकानदार के लिये, जो उन वस्तुओं की विशेषताएं जानता है, वह एक शुभ दिन का लक्षण है। हमे यह याद रखना आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध एक बहुत ही अस्पष्ट विज्ञान है। यह एक जटिल विषय है तथा प्रमुखत यह सम्भावनाओं को लेकर आगे बढ़ता है। इसके साथ ही बडी जटिल समस्याओं के लिए इसके पास निश्चित उत्तर नही होता और शायद कोई अन्तिम हल भी नही। इसलिए इस विषय के विद्यार्थियों के लिए यह आवश्यक है कि वे प्रत्येक समस्या को खुले दिमाग से अध्ययन करे। उसका अध्ययन मनुष्य, मानव समाज तथा भौतिक विश्व से सम्बन्धित ज्ञान के कई क्षेत्रों पर आधारित होना चाहिए। विद्यार्थी को यथार्थवाद तथा आदर्शवाद के समन्वित दृष्टिकोण के साथ इस विषय का अध्ययन करना चाहिए। उसे जटिल समस्याओं के साथ साधारण हलो की भी जानकारी होनी चाहिए। उसे किसी भी वस्तु की भविष्य सम्बन्धी कल्पनाओं मे अथवा युद्ध की अनिवार्यता के सिद्धान्त मे ही सलग्न नही हो जाना चाहिये। उसे विश्व को वर्तमान अवस्था मे ही अध्ययन करना चाहिये। साथ ही उसे आदर्शवाद को वास्तविक समझने की भूल नही करनी चाहिए। उसे याद रखना चाहिए कि पूर्वी सभ्यता पर पश्चिमी सभ्यता का दवाव स्थिति को गम्भीर बना सकता है। टॉयनवी का कहना है कि हम भविष्य मे गैर पश्चिमी समाजो का प्रति प्रभाव पश्चिमी समाजो पर देखेगे। टायनवी की मान्यता है कि कि एशियाई सभ्यताओं, विशेषकर चीनी और भारतीय सभ्यताओं का पश्चिमी देशो तथा आम विश्व पर दीर्घकालीन प्रभाव रूसी साम्यवाद के प्रभाव से कही अधिक प्रभावशाली और महत्वपूर्ण होगा। इसलिए विद्यार्थियो को उक्त बातो का ध्यान रखते हुए सन्तुलन, यथार्थिक तथा दूर दृष्टिकोण के लिये प्रयास करना चाहिए।

———

व्याख्यान २

शांति समझौता

विषय-प्रवेश —प्रसा के प्रिंस विसमार्क ने एक वार कहा था "मेरी मृत्यु के वीस वर्ष वाद में अपने कफन से वाहर आना चाहता हूँ और यह देखना चाहता हूँ कि दुनिया मे जर्मनी की प्रतिष्ठा कायम है या नही।" प्रिंस विसमार्क सन् १८६८ ई० मे चल वसे। अगर वह सन् १९१८ ई० मे पुनरुज्जिवित हो गये होते तो अपने उत्तराधिकारियो की विचारशून्यता और अयोग्यता को देखकर अत्यन्त ही क्रुद्ध होते। सच तो यह है कि मृत्यु से वहुत पूर्व ही उन्हे इस स्थिति का ज्ञान हो गया था। सम्राट विलियम द्वितीय के वारे मे उन्होने कहा था—"वह युवक किसी दिन अपने राज्य को कुप्रवन्ध के कारण विनष्ट कर देगा।" यह भविष्यवाणी सन् १९१८ ई० मे सच्ची निकली। प्रथम विश्व महायुद्ध शुरू होने से कुछ ही महीने पूर्व "विश्व साम्राज्य या विनाश" नामक एक कुप्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशित हुई थी और जर्मनो ने इसका विचित्र उत्साह के साथ स्वागत किया। इसका लेखक वर्न हार्डी सफल हुआ। ३ नवम्वर को जर्मन नाविको ने विद्रोह कर दिया और कई जर्मन शहरो पर लाल झंडा फहराया गया। ९ नवम्वर को वर्लिन तक क्राति की लहर फैल गई और प्रजातंत्र निर्माण किये जाने की घोषणा की गई। उसी दिन सम्राट ने अपना पदत्याग दिया और राजकुमार के साथ वह हालैंड चले गये।

विराम संधि

११ नवम्वर सन् १९१८ ई० को जर्मनी ने विराम संधि पर हस्ताक्षर किये और ११ वजे दिन मे 'युद्ध वन्द' की घोषणा की गई। जर्मनी ने मित्रराष्ट्रो को निम्नलिखित शर्तों पर आत्मसमर्पण किया (१) हस्ताक्षर के ६ घंटे वाद सैनिक कार्यवाही वन्द की जाय (२) अक्रान्त देशो—वेल्जियम, फ्रास, अलसेस-लारेन, लक्सेमवर्ग मे १४ दिनो के भीतर सारी फौजें हटा ली जांय (३) खास-खास युद्ध सामग्री सौंप दी जाय जैसे १७०० विमान, ५,००० इंजिन, ५,००० मोटरें और सभी गोताखोर (४) वडे समुद्री वेडे को समुद्र में डुवा दिया जाय (५) राइन नदी के वाये तट को मित्रराष्ट्रीय फौज के सुपुर्द किया जाय तथा मित्रराष्ट्रीय फौज को वहाँ रखने के लिये खर्च भी दिया जाय (६) युद्ध-वंदियो की स्वदेश वापसी (७) विराम संधि ३६ दिनो तक रहेगी। इसकी अवधि १३ दिसम्वर १९१८ और सन् १९१९ की १६

जनवरी और १६ फरवरी को पुन बढाई जाय और (८) अन्तिम सधि का आधार अमरीका के राष्ट्रपति श्री वुडरो विलसन की १४ शर्ते और उनके बाद के प्रवचन (विशेषकर २७ सितम्बर १९१८ के भाषण) होने चाहिए।

पेरिस का शान्ति सम्मेलन

विराम-सधि युद्ध-बन्द करने मात्र को कहते है। शाति के लिये यह पहला सोपान है। स्थायी शाति के लिये काफी समय तक गभीर विचार करना पडता है। युद्ध बन्द होने और शाति सम्मेलन की प्रथम बैठक होने तक दो महीने बीत गये। विलम्ब का कारण इग्लैंड में १४ दिसम्बर १९१८ मे हुआ नव-निर्वाचन था। इसके अतिरिक्त एक कारण यह भी हुआ कि राष्ट्रपति विलसन दिसम्बर से पूर्व यूरोप नही पहुच सके।

पेरिस ने अपने शाति सम्मेलन का केन्द्र होने का नाम सार्थक किया। सन् १९१९ ई० के प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय प्रतिनिधिमण्डल वहा आने लगे। कई मण्डलो की सख्या सैकडो की थी जिनमें सुशिक्षित कूटनीतिज्ञ, सैनिक, नभसैनिक, नागरिक प्रशासन कर्त्ता, कानून विशेषज्ञ, वित्त और आर्थिक विशेषज्ञ, उद्योगो के नायक, मजदूरो के नेता, राज्यमत्री, ससदीय सदस्य और सभी प्रकार के पत्रकार और प्रचारक थे। ३२ मित्रराष्ट्रो के ७० अधिकारी प्रतिनिधियो का समूह, जिम्मेदार विश्व राजनीतिज्ञो का विशिष्ट जमाव था जिनमे साधारण राजनीतिज्ञो के अलावा अमरीका के स्वय राष्ट्रपति और ११ प्रधान मत्री और १२ विदेश मत्री भी थे।

इस विशिष्ट जनसमूह मे ऐसे लोगो के नाम उल्लेखनीय है जैसे फास के क्लिमेंसो, पिचोन, टारडियू, और कैम्बन, अमरीका के लासिग तथा कर्नल हाऊस, ब्रिटेन के लायड जार्ज, बालफर और बोनरलो; इटली के ओरलैंडो और सोनिनो; बेल्जियम के हर्जमन्स; पोलैंड के डिमोस्की; युगोस्लाविया के पैसिट्च; चेकोस्लोवाकिया के बेनेस (जो वहां के प्रथम राष्ट्रपति हुए), यूनान के वेनिजेलोस, दक्षिणी अफ्रीका के स्मट्स और बोथा। पराजित राष्ट्रो के प्रतिनिधियो को आमन्त्रित नहीं किया गया क्योकि उनका काम था तैयार किये गये सधि-पत्रो पर हस्ताक्षर मात्र करना। यह शाति विजयी राष्ट्रो के दबाव से हुई थी, विजित राष्ट्रो के साथ समझौते से नही।

शान्ति सम्मेलन का सगठन

सन् १९१९ ई० की १८ जनवरी को फ्रांस के विदेश सचिवालय में फ्रांस के राष्ट्रपति श्री प्वाइनकर द्वारा शाति सम्मेलन के प्रारम्भिक अधिवेशन का उद्घाटन किया गया। फ्रान्स के प्रधान मत्री श्री क्लिमेंसो सम्मेलन के अध्यक्ष चुने गये और सम्मेलन की कार्यवाही को व्यावहारिक रूप से चलाने के लिये १० व्यक्तियो

की एक सर्वोच्च परिषद् बनाई गई। ये दस व्यक्ति ५ प्रधान मित्र-राष्ट्रो—अमरीका, ब्रिटेन, फ्रास, इटली और जापान—के प्रधान प्रतिनिधि थे। इन '१० प्रधान प्रतिनिधियो' ने यह अधिकार प्राप्त किया कि साधारण अधिवेशन मे रखे जाने वाले विषयो का चुनाव वही करेगे। लेकिन फिर भी १० व्यक्तियो की परिषद् शीघ्रता से कार्यवाही चलाने के लिये तथा उसे गुप्त रखने के लिए बहुत बडी साबित हुई और सन् १९१९ ई० के मार्च महीने मे वह काम चार व्यक्तियो की परिषद् को दिया गया। ये चार व्यक्ति अमरीका, ब्रिटेन, फ्रास और इटली के मुख्य प्रतिनिधि थे। इनके नाम है—विलसन, लायड जार्ज, क्लिमेसो और ओरलैंडो।

"मुख्य चार" का परिचय

विलसन—आदर्शवादी राष्ट्रपति विलसन अमरीकी ससद के सन् १९१८ ई० के निर्वाचन मे अपने दल के पराजय के बावजूद भी पेरिस सम्मेलन के सर्वोच्च पुजारी थे। इसमे सन्देह नही कि उन्होने सम्मेलन के प्रारम्भ मे बहुत ऊची प्रतिष्ठा प्राप्त की और इसमे भी सन्देह नही कि उनमे नई दुनिया बसाने की लगन थी। उनके परम मित्र कर्नल हाऊस ने लिखा है कि "वह अपने प्रभाव और अपनी सत्ता के उत्कर्ष काल मे सबसे प्रभावशाली व्यक्ति थे क्योकि वह दुनिया के नैतिक और आध्यात्मिक शक्तियो के प्रवक्ता थे।" श्री स्टेन्नार्ड बेकर का कहना है कि "जिस किसी ने भी राष्ट्रपति विलसन को काम करते देखा उसकी कभी हिम्मत नही हुई कि वह विलसन के समक्ष अथवा उनकी पीठ पीछे भी उनकी या उनकी सहनशीलता, शक्ति अथवा साहस की निन्दा या अप्रशसा करने का साहस करे।" स्वय श्री लॉसिग का कहना है कि "प्रतिनिधियो में श्री विलसन के प्रति यह साधारण भावना थी कि वह अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता और न्याय की प्रतिमूर्ति है।" डाक्टरो मे उनकी योग्यता और उनकी कार्यप्रणाली के बारे में मतभेद है। श्री केनीस का कहना है कि "श्री विलसन वीर या धर्मावतार (पथ प्रदर्शक) नही थे। दार्शनिक भी नही थे। उनमे प्राक्-चिंतन नही था और जब कार्य करने का अवसर आता था तो उनके खयालात असम्बद्ध और अपूर्ण होते थे। उनके पास कोई पूर्व-रचित योजना न थी, न कार्यक्रम था और न ऐसे बुनियादी खयालात जो उनके आदेशो के आवरण होते।' श्री विलसन की प्रणाली की गलतियो का कारण उनका चरित्र और व्यक्तित्व था। यूरोपीय समस्याओ और यूरोपीय राष्ट्रीय सम्बन्धो की उनकी जानकारी सीमित थी। सचमुच मे पेरिस शांति सम्मेलन के अन्य प्रतिनिधियो की बराबरी करने लायक श्री विलसन नही थे।

लिए उन्होने १९१८ के दिसम्बर मे आम निर्वाचन किया। लायड जार्ज के दल को जबर्दस्त बहुमत प्राप्त हुआ और उनके सयुक्त दल को २५० सीटे प्राप्त हुई।

पेरिस सम्मेलन मे लायड जार्ज का व्यक्तित्व बडा ही प्रभावशाली था। वह दूसरो की बातें सदैव सुनने के लिए तैयार रहते थे। वह तेज मस्तिष्क वाले दूरदर्शी, सजग और आकर्षक थे। डा० गुवा ने ठीक ही कहा है कि "अभी तक कोई भी कूटनीतिक लायड जार्ज के समान थोडे से ज्ञान से एक वर्बाद दुनिया के पुनर्निर्माण करने के लिए समर्थ नही हुआ है।" केनीस का कहना है कि "लायड जार्ज को ६-७ कुछ ऐसे ज्ञान प्राप्त थे जो एक साधारण व्यक्ति मे नही पाये जाते जिनमें चरित्र निरीक्षण का ज्ञान, स्वभाव जानने तथा मन की गहराइयो तक पहुचने के ज्ञान प्रमुख थे।" श्री लॉसिग ने भी लायड जार्ज के बारे मे वहा है कि "लायड जार्ज चार बडे प्रतिनिधियो में से सबसे कुशल और बुद्धिमान थे लेकिन उनका मन स्थिर नही रहता था। बहस मे वह बहुत तीक्ष्ण विरोधी थे। लेकिन ऐसे विशिष्ट व्यक्ति मे कूटनीतिक चाले कुछ भी नही थी।" पेरिस सम्मेलन मे लायड जार्ज की सफलता का कारण यह था कि उन्हे जो अच्छी सलाह दी जाती थी वह उसे मान लेते थे।

क्लिमेंसो—जार्जेस क्लिमेंसो की प्रतिष्ठा लायड जार्ज मे किसी भी प्रकार कम नही थी। उन्हे 'शेर' का नाम दिया गया था। ६० वर्ष पूर्व अमरीकी गृह-युद्ध के समय वह अमरीका मे पत्र के सवाददाता थे। उनके विभिन्न प्रकार के अनुभव और अत्यधिक लोकप्रियता के कारण ही १९१७ से १९२० तक उन्हे फ्रांस का प्रधान मत्री और युद्ध मत्री का पद मिला।

शायद क्लिमेंसो पेरिस सम्मेलन मे सबसे अच्छे कूटनीतिक थे। विश्व राजनीति और मानव स्वभाव का ज्ञान क्लिमेंसो में अपने साथियो की अपेक्षा बहुत अधिक था। वह अपने साथियो की हसी उडाया करते थे। एक अवसर पर उन्होंने कहा था "ईसा मसीह भी 'दस आदेशो' से सतुष्ट है लेकिन विलसन १४ आदेश पर जोर दे रहे है।" क्लिमेंसो ने कहा कि "लायड जार्ज सोचते है कि वह नेपोलियन हैं और प्रेसिडेन्ट विलसन सोचते हैं कि वह ईसा मसीह हे।"

वह अपने देश को बहुत महत्व देते थे, चाहे कुछ भी हो, किन्तु उनका राजनीतिक सिद्धात बिसमार्क का-सा था। शाति सम्मेलन मे क्लिमेंसो का प्रभाव सबसे अधिक था। लॉसिग ने लिखा है कि "उनमे महान नेतृत्व के सभी गुण थे। वह अच्छी तरह जानते थे कि कब विरोध करना चाहिए और कब समझौता करना चाहिए। वह जो कुछ भी हाथ मे लेते थे उनमे वह सफल होते थे।" कर्नल हाउस का कहना है कि "पेरिस सम्मेलन के अपने साथियो मे वह सबसे अधिक प्रभावशाली थे। क्लिमेंसो के बारे मे कोई छिपी बात नही है। उन्होंने शाति और युद्धकाल मे समान रूप से सघर्ष

दिया गया कि जर्मनी ही महायुद्ध के लिये उत्तरदायी है और प्रस्ताव मे यही कहा गया कि सभी शर्तो को मानना असम्भव है। जर्मनो का कहना था कि यह वह सधि नही जिसका आश्वासन उनसे किया गया था। सधि की शर्तें आत्मसमर्पण की शर्तों की विल्कुल विरोधी है। एक वडे राष्ट्र को कुचलकर तथा उसे गुलाम बनाकर स्थायी शाति कायम नही हो सकती।

१६ जून को मित्रराष्ट्रो ने अपने उत्तर मे शर्तो में सामान्य परिवर्तन किया, विशेपकर पोलैंड की सीमा के सम्बन्ध में। जर्मनी को ५ दिन के भीतर ही सशोधित सधि पर हस्ताक्षर करने को कहा गया और यह भी कहा गया कि हस्ताक्षर न करन का अर्थ आक्रमण होगा। शिडेमान सरकार ने सधि को अस्वीकार कर दिया और त्याग-पत्र दे दिया। इसके वाद गुस्टावबौर प्रधान मत्री हुए। सरकार में परिवर्तन होने के कारण मित्रराष्ट्रो ने अन्तिम तारीख दो दिन के लिये और वढा दी। २३ जून को निर्धारित समय से दो घटे पहिले जर्मनी के नये प्रतिनिधि हेनिमल ने सधि पर हस्ताक्षर करना स्वीकार किया। उसने कहा कि "मेरा देश दवाव के कारण आत्म समर्पण कर रहा है किन्तु जर्मनी यह कभी नही भूलेगा कि यह अन्यायपूर्ण सधि है।" २८ जून को तीन वजे दिन मे "हॉल आफ मिरर्स" में चीन को छोडकर जर्मनी तथा सभी मित्रराष्ट्रो ने सधिपत्र पर हस्ताक्षर किए।

शान्ति की सधिया

शाति की शर्तें पाच सधियो में रखी गई जिनके नाम इस प्रकार है जर्मनी के साथ वर्साय की सधि (२८ जून १९१९), आस्ट्रिया के साथ सा जर्मं की सधि (१० सितम्बर १९१९), वलगारिया के साथ निऊली की सधि (२७ नवम्बर १९१९), हगरी के साथ ट्रायनन की सधि (४ जून १९२०), तुर्की के साथ सेवर्स की सधि (१० अगस्त १९२०)। इसमें कोई सदेह नही कि जर्मनी के साथ सधि ही शाति सम्मेलन की सबसे महत्वपूर्ण सफलता थी।

वर्साय की सधि (Treaty of Versailles)

✓वर्साय का सधिपत्र इतिहास मे सबसे वडा सधिपत्र है। इसके १५ भाग है तथा ४४० धारायें है। इस सधि की शर्तें निम्नलिखित है

१ राष्ट्रसघ—वर्साय सधि के राष्ट्र इस वात पर सहमत हुए कि एक राष्ट्र-सघ का निर्माण किया जाय जिसका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को वढाना तथा अन्तर्राष्ट्रीय शाति और सुरक्षा को कायम करना है। इस राष्ट्रसघ की शर्तो पर जिनमें २६ धारायें है वाद मे विचार किया जायेगा।

२ प्रादेशिक—जर्मनी ने अपने पश्चिमी भाग के अलसेस और लारेन का हिस्सा फ्रांस को दे दिया। प्रशा के मोरेसनेट, यूपेन और मालमेडी नामक क्षेत्र बेल्जियम को दे दिये गये। उत्तर में स्लेजविग डेन्मार्क को दे दिया गया। ऊपरी साइलेशिया का छोटा हिस्सा चेकोस्लोवाकिया को, पोसेन और पश्चिमी प्रशा पोलैंड को, मेमेल नामक बाल्टिक तटवर्ती बन्दरगाह मित्रराष्ट्रों को दे दिया गया (जो १९२३ में लिथुआनिया को दे दिया गया)। राष्ट्रसंघ के संरक्षण में डानजिग एक स्वतन्त्र शहर बनाया गया जिसके अदिवासी पूर्ण रूप से जर्मन होते हुए भी पोलैंड चुंगी संघ के अधिकार में थे। सार की घाटी १५ वर्ष के लिए फ्रांस को समर्पित की गई। लक्जेमबर्ग जर्मन अगम संघ से बाहर हो गया और राइन नदी के बायें किनारे का निशस्त्रीकरण कर दिया गया। सम्पूर्ण जर्मन उपनिवेश साम्राज्य समर्पण कर दिया गया और विजयी राष्ट्रों ने उसे आपस में बांट कर उस पर आदिष्ट प्रणाली (mandate) कायम कर दी। चीन का किआशो (Kiachao) जापान के अधिकार में कर दिया गया। जर्मन दक्षिण पश्चिमी अफ्रीका ब्रिटिश दक्षिणी संघ का अंग हो गया। जर्मन पूर्वी अफ्रीका भी ग्रेट ब्रिटेन के हाथ लगा। फ्रांस ने कामरून और तोगोलैंड पर अधिकार कर लिया। दक्षिणी प्रशान्त द्वीप आस्ट्रेलिया को, सेमोआ न्यूजीलैंड को और नाऊरु (Nauru) का द्वीप ग्रेट ब्रिटेन को दे दिये गये।

३ निशस्त्रीकरण—जर्मनी सेना में सैनिकों की संख्या १२ वर्ष के लिए एक लाख कर दी गई। जर्मन प्रधान सैनिक कार्यालय उठा दिया गया। शस्त्र-अस्त्र, गोलाबारूद तथा अन्य युद्ध सामग्रियों का उत्पादन सीमित कर दिया गया। अनिवार्य सैनिक सेवा बंद कर दी गई। एक साल में सारी फौज के ५ प्रतिशत से अधिक को घटाने पर रोक लगा दी गई। जलसेना की संख्या सीमित करके उनसे ६ युद्धपोत, ६ हल्के गश्ती जहाज, १२ विध्वंसकपोत और १२ टारपीडो जहाज कर दिये गये और स्वयं सेवक सेना घटाकर १५ हजार कर दी गई। राइन के पूर्वी किनारे पर ३० मील तक असैनिकीकरण किया गया। पनडुब्बी जहाज का बनाना बन्द कर दिया गया। बाल्टिक सागर पर किलेबन्दी करना बन्द कर दिया गया और हेलीगोलैंड का किला तोड़ दिया गया। जर्मनी के खर्च से मित्रराष्ट्रों ने अपना एक कमीशन नियुक्त किया जिसे निशस्त्रीकरण धाराओं को कार्यान्वित किये जाने के निरीक्षण के लिए कहा गया।

४ युद्ध अपराध—जर्मनी के सम्राट विलियम द्वितीय को सार्वजनिक तौर पर अन्तर्राष्ट्रीय नीति और सन्धियों के विरुद्ध अपराध करने का दोषी ठहराया गया। मित्रराष्ट्रों अमरीका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली और जापान ने मिलकर एक मित्रराष्ट्रीय अदालत नियुक्त की जिसको विलियम द्वितीय के मुकदमे की जांच का भार दिया गया।

५ क्षति पूर्ति—मित्र राष्ट्रो ने सारी क्षति और नुकसान का उत्तरदायी जर्मनी को ठहराया। जर्मनी मे कहा गया कि वह ५ सैकडे के हिसाब से बेल्जियम को सारा रुपया लौटा दे जितना कि बेल्जियम ने युद्धकाल मे मित्रराष्ट्रो मे ऋण लिया था। सधि में एक क्षतिपूर्ति आयोग नियुक्त करने का आदेश दिया गया था। इस आयोग का कार्य निश्चय करना था कि जर्मनी १ मई १९२९ से ३० वर्षो तक कितना रुपया क्षतिपूर्ति के लिए देना रहे। इसी बीच में जर्मनी को सोना, जहाज और सिक्युरिटी कुल मिलाकर २५ अरब रुपये देने को कहा गया। जर्मनी से कहा गया कि उसके पास ४४ हजार ८ सौ मन मे अधिक वजन के जितने व्यापारी जहाज है वे सभी मित्रराष्ट्रो को सौप दे और ५ वर्षो तक मित्रराष्ट्रो के लिए प्रतिवर्ष ५६ लाख मन वजन का जहाज बनाता रहे।

६ आर्थिक—जिन क्षेत्रो पर आक्रमण हुआ था उन क्षेत्रो के पुनर्निर्माण के लिए जर्मनी को आर्थिक साधन लगाने को कहा गया। जर्मनी ने १० वर्षो तक प्रतिवर्ष निम्नलिखित हिसाब से कोयला देना मजूर किया १९ करोड ६० लाख मन फ्रांस को, २२ करोड ४० लाख मन बेल्जियम को, १९ करोड ६० लाख मन इटली को। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष फ्रास को ९ लाख ८० हजार मन बेंगोल, १४ लाख मन कोलतार, ८ लाख ४० हजार मन अमोनियम सल्फेट आदि देना स्वीकृत किया गया।

७ विशेष शर्ते—सन् १८७० के युद्ध मे जर्मनी ने फ्रास से जो ट्राफी, झडा कलात्मक वस्तुए प्राप्त की थी उन्हे लौटाने के लिए कहा गया। लोमेन विश्व विद्यालय के कागजात और हस्तलेख जो युद्ध में नष्ट कर दिये गये थे उसकी प्रति लौटाने को कहा गया। हैजाज के बादशाह को खलीफा ओथमन के मूलकुरान क लौटा देने को कहा गया और जर्मन पूर्वी अफ्रीका के सुल्तान मकावा की खोपड ब्रिटेन को लौटा देने को कहा गया।

८ टेक्निकल बातें—सधि की बहुत सी धाराओ मे टेक्निकल बातो सम्बन्ध मे आदेश दिया गया था। जैसे युद्ध बन्दी और कब्रगाह, हवाई यातायात कर्ज, सम्पत्ति अधिकार, ठेका इत्यादि। अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन निम्नलिखित नदिय पर नियत्रण के लिए नियुक्त किये गये। ये नदिया है—राइन, ओडर, एल्व, निमे और डेन्यूब ताकि जमीन मे घिरे यूरोपियन देशो को समुद्री मार्ग मिले। हेम्वर्ग औ स्टेटिन के बन्दरगाहो मे जर्मनी ने चेकोस्लोवाकिया को ९९ साल के लिए स्वतन्त्र क्षेत्र दिये। काल नहर सबके लिए मुक्त घोषित किया गया।

९ सधि पालन की विशेष व्यवस्था—सधि मे ही सधि को कार्यान्वित कर के लिये कुछ व्यवस्थाए की गई थी। राइन नदी से पश्चिम की ओर जर्मन देश का

हिस्सा और उसके साथ सैनिक चौकिया मित्रराष्ट्र के सैनिकों को सधि के कार्यान्वित होने की तारीख से १५ वर्ष के लिये दे दिया गया। अगर जर्मनी की कारंवाई सधि के खिलाफ सिद्ध हो तो अधिकारी फौजो का जर्मनी पर फौजी अधिकार अनिश्चित काल के लिये वढा दिया जाये। (यग योजना के प्रयोग किये जाने के बाद सन् १९३० मे मित्रराष्ट्रो की सारी फौजे हटा ली गई।)

सा जर्मं की सधि (Treaty of Saint Germain)

१० सितम्बर १९१९ मे पेरिस के निकट सा जर्म नामक स्थान मे इस सधि पर हस्ताक्षर हुए। आस्ट्रिया-हगरी की सम्राट-शाही के बदले मे आस्ट्रिया को प्रजातन्त्र बनाया गया। सधि मे जर्मनी के साथ आस्ट्रिया को मिलाने पर रोक लगा दी गई। इटली को आस्ट्रिया ने दक्षिणी टाईराल दे दिया (यद्यपि उनमे ढाई लाख जर्मन थे), ट्रन्टिनो, ट्रिस्ट, इस्ट्रिया और डालमेटियन तट से दूर दो द्वीप भी इटली को दे दिये गये। चेकोस्लोवाकिया का आस्ट्रिया ने अपने देश का निचला भाग दे दिया। इसके अतिरिक्त उसे मोराविया और बोहेमिया और साइलेशिया भी चेकोस्लोवाकिया को देने पडे। पोलैंड के गलेशिया, रूमानिया को बोकोविना, युगोस्लाविया को बासनिया, हर्ज़ेगोभिना और डालमीटियन तट और द्वीप देने पडे। क्षेत्रफल और जनसख्या के विचार मे आस्ट्रिया के तीन चौथाई हिस्से की हानि हुई। डेन्यूब नदी का अन्तर्राष्ट्रीयकरण करने का आदेश दिया गया। परन्तु आस्ट्रिया को एड्रियाटिक सागर तक स्वतत्र मार्ग मिला। फौज की सख्या घटाकर ३० हजार करदी गई। जलसेना और हवाईसेना समाप्त कर दी गई। आस्ट्रिया को युद्ध-अपराधियो के समर्पण के लिये तथा ३० वर्ष तक मुआवजा देने को कहा गया। राष्ट्रीय कला की निधिया २० वर्ष के लिये जब्त कर ली गई।

निऊली की सधि (Treaty of Neuilly)

२७ नवम्बर १९१९ को निऊली की सधि के अनुसार बलगारिया को उन जमीनो का बहुत सा हिस्सा लौटा देना पडा जो उसने १९१२-१३ के युद्ध में जीता था। उसे उन विजित क्षेत्रो को भी लौटाना पडा जो उसने विश्वयुद्ध में जीता था। दोब्रुजा रूमानिया को दिया गया, मकदूनिया का अधिकाश हिस्सा युगोस्लाविया को, और थ्रेस का किनारा यूनान को दिया गया। युद्ध की क्षतिपूर्ति के लिये बल्गारिया ने २ अरब ५० करोड रुपया देने का वायदा किया और फौज की सख्या घटाकर ३३ हजार कर देने का भी वायदा किया। मित्रराष्ट्रो ने बल्गारिया को वायदा किया कि वे एजियन सागर तक उसके आर्थिक यातायात को सुरक्षित रखेंगे।

ट्रायनन की सधि (Treaty of Trianon)

ट्रायनन की सधि ४ जून १९२० को हुई। इसके अनुसार हगरी ने स्लोवाकिया चेकोस्लोवाकिया को, ट्रासलवानिया रूमानिया को, क्रोशिया युगोस्लाविया को दिया। वनात को युगोस्लाविया और रूमानिया ने आपस मे बॉट लिया। आस्ट्रिया को हगरी का पश्चिमी हिस्सा वीर्जनलैंड मिला। हगरी को समुद्री मार्ग फ्यूम का निर्णय, इटली और युगोस्लाविया के समझौते पर छोड दिया गया लेकिन मगयार्स को इसमे हाथ धोना पडा। उसकी सेना घटाकर ३५ हजार कर दी गई।

सेवर्स की सधि (Treaty of Sevres)

१० अगस्त १९२० को सेवर्स की सधि हुई जिसको तुर्की के सुलतान ने कभी मजूर नही किया फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के पाठको के लिये इसका महत्व है। इस सधि के अनुसार सुलतान को मिस्र, अरब, सूडान, साइप्रस, ट्रिपोलिटानिया, मोरक्को, ट्यूनिसिया, फिलिस्तीन, मेसोपोटामिया, आर्मीनिया और थ्रेस मे अपने सारे अधिकार त्यागने को कहा गया।

इस सधि को तुर्की की राष्ट्रवादी पार्टी ने अस्वीकार कर दिया। राष्ट्रवादी पार्टी ने १९१९ की जुलाई मे अपने नेता मुस्तफा कमाल पाशा के नेतृत्व मे एक समानान्तर सरकार की अकारा मे स्थापना कर ली थी जब कि सुलतान की सरकार कुस्तुनतुनिया मे थी। राष्ट्रवादी तुर्कियो ने यूनानियो को दो वर्ष के लगातार युद्ध के बाद अपने देश से मार भगाया और मित्रराष्ट्रो को सेवर्स की सधि को वदलने के लिये मजबूर किया।

लौजान की सधि (Treaty of Lausanne)

२४ जुलाई १९२३ को ब्रिटिश विदेशमत्री लार्ड कर्जन के प्रयत्न से लौजान की सधि पर हस्ताक्षर हुआ। इस सधि के अनुसार यूनान ने तुर्की को पूर्वी थ्रेस, एड्रियनेपोल तथा इम्ब्रोज और टेनेडोस के द्वीप दे दिये। अडालिया, सिमिर्ना, सीलीसिया, थ्रेस, कुस्तुनतुनिया और अनोटोलिया का तुर्की के अधिकार मे छोड दिया गया जिस पर उसका सर्वाधिकार स्वीकार किया गया। सेवर्स सधि की धारायें जिनका सम्बन्ध जुर्माना, हर्जाना और निशस्त्रीकरण से था हटा दी गई। तुर्की ने इटली को रोड्स, डूडार्कीन्ज और कास्टेलोरीजो दे दिया और मेसोपोटामिया, अरब, सिरिया, फिलिस्तीन, मिस्र सूडान और साइप्रस पर से उसे अपना सारा अधिकार त्यागना पडा। राष्ट्रसघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय मुहाना आयोग नियुक्त किया गया। इसका काम उन मुहानो पर नियत्रण करना था जो सभी राष्ट्रो के उपयोग के लिये छोड दिये गये थे और जिनका निशस्त्रीकरण कर दिया गया था। सधि में यह भी एक शर्त थी कि यूनानी मुसलमान और कट्टर तुर्को की अदला बदली अनिवार्य रूप से की जाय।

कमाल पाशा की तुर्की के लिये लौजान की सधि एक बड़ी विजय थी। तुर्कों ने वे सारी चीज प्राप्त की जिनके लिये वे लड़े थे। वे थी सास्कृतिक सीमाबन्दी, अन्त-र्राष्ट्रीय गुलामी से मुक्ति तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता। अक्तूबर १९२३ ई० मे तुर्की की राष्ट्रीय महासभा ने तुर्की को प्रजातत्र घोषित किया और कमालपाशा को अपना पहला राष्ट्रपति और अकारा को राजधानी बनाया। सन् १९२४ मे खलीफाशाही का अन्त कर दिया गया और धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र की घोषणा की गई।

समीक्षा—सन्धि की धाराओ के प्रत्येक शब्द से यह ध्वनित होता था कि तत्कालीन दो प्रतिद्वदी राजनैतिक कूटनीतिज्ञो का एक पारस्परिक सघर्ष तब चल रहा था। उनमे से एक तो "क्रिया शील" कहे जाते थे जो कि "मैकवेली" के पद चिन्हो रूढ़िवादी का अनुसरण कर रहे थे और दूसरे "अग्रगामी", जो कि समय की नवीन विचारधारा के पोषक समझे जाते थे। दोनो ही तरह के विचार छा जाने को सचेष्ट थे। एक ओर तो यह प्रयत्न जारी था कि न्याय के वर्तन मे पूर्ण निष्पक्षता तथा अखड सत्य का आश्रय लिया जाय। दूसरी ओर कान्फ्रेंस की पुरानी प्रथा के अनुसार "शक्ति सतुलन" को स्थिर रहने देने की पूरी कोशिश की जा रही थी। इसके लिये आर्थिक तथा भौगोलिक क्षति-पूर्ति हासिल करने पर भी विजेता को विजित से सदा के लिए निर्भय कर देने की कुचेष्टा मे भी कान्फ्रेंस लीन थी। अन्त मे कहना न होगा कि पहली विचार धारा पर दूसरी विचार धारा ने ही विजय पाई।

पेरिस सन्धि के जहाँ समर्थक व्यक्ति थे वहाँ आलोचक भी थे। तत्कालीन शान्ति-स्थापको के समक्ष शान्ति स्थापित करने का कार्य अत्यत जटिल था, क्योंकि एक ओर तो यह मामला ही पेचीदा था तथा दूसरी ओर पारस्परिक स्वार्थों का उसमें भीषण टकराव पडता था। सिद्धान्त की दृष्टि मे पूर्ण तथा सम्भावित निष्पक्ष, किसी समझौते को सर्वसम्मत मोहर लगनी असम्भव थी। अत क्रियात्मक हल सोचने के लिये तथ्यता को विकृत अवस्था में पेश करना अनिवार्य-सा ही हो गया था। शत्रुओ द्वारा अधिकृत प्रदेशो मे जिस घृणा के बीज का वपन हो चुका था साथ ही उसे ओभल भी नहीं किया जा सकता था। जिनको किसी भी दुर्भाग्य से सामना नही करना पडा भले ही वे निष्पक्ष तथा अपने को दयालु प्रकट करे, पर युद्ध मे जिन्होने धन, जन, तथा सम्बन्धी खोये हैं उनसे वैसी आशा रखना व्यर्थ ही था। वास्तव मे सधि उस समय सम्पन्न हुई जबकि मित्र राष्ट्रो की क्षति चरम सीमा तक पहुच चुकी थी, तथा जर्मन अत्याचारो के घाव बिल्कुल ताजे ही थे। मित्र राष्ट्रो द्वारा मृदु व्यवहार के समय यह नही भूलना चाहिये कि 'ब्रेस्ट लिटोविस्क' सधि के समय जो दुर्दशा पूर्ण व्यवहार विजेता जर्मनी ने रूसियो से किया था उसके परिणामस्वरूप ही जर्मनी को किसी प्रकार की सुविधा की चर्चा का नैतिक अधिकार, विजेता मित्र राष्ट्रो को

सोचने मात्र तक के लिये भी नही रहता था। जर्मनी द्वारा की गई सधि की दो मुख्य धाराओ को स्वय जर्मन इस सधि से पूर्व तोड चुके थे। प्रथम तो १८७० मे पकडे फ्रेंच बेडे को 'स्कैमा पलो' मे डुबोना दूसरा बर्लिन मे फ्रेडरिक महान् की मूर्ति के समक्ष राष्ट्रीय मान के साथ फ्रासीसी राष्ट्र ध्वज का जलाना। इसमे कोई आश्चर्य नही कि सधि के समय मित्र राष्ट्रो ने पुराने अनुभव से शिक्षा के आधार पर अपने निहित स्वार्थो की रक्षा के उद्देश्य से सधि उल्लघन की रोकथाम पर कडी निगरानी की हो।

ब्रिटिश पार्लियामेंट मे सधि की शर्तो को उपस्थित करते हुए इस देश के प्रधान मत्री लायड जार्ज ने इस सधि के विषय मे निम्न उद्गार प्रकट किये थे "प्रस्तावित सधि को जर्मनी के साथ किसी प्रकार का अन्याय नही कहा जा सकता। इस सधि पर केवल वही अन्याय का आरोप लगा सकता है जो कि जर्मनी के युद्धकार्यो को भी न्याय सगत ही समझता हो। कुछ विषयो मे शर्ते अवश्य भयानक जचती है, पर भीषण कुकृत्य स्वय ही इस भयानकता का समाधान भी करते है। यदि जर्मनी कही जीत जाता तो इस से भी अधिक भयावह परिणामो का हमे सामाना करना पडता।" "आज ससार शत्रु के असफल प्रहारो से डावाडोल है यदि ये प्रहार सफल हो जाते तो यूरोप की स्वतन्त्रता समाप्त थी।" सधि की भौगोलिक धाराओ की चर्चा करते हुए लायड जार्ज ने घोषणा की कि अल्सेस, लारेन, श्लेसविग और पोलैण्ड को लेना अधिकारी को सौंपना मात्र ही है, इससे अधिक कुछ नही। सधि की अतिरिक्त धाराओ की चर्चा करते हुए उन्होने कहा कि "जर्मन उपनिवेशो के आदि निवासियो की शासन सम्बन्धी सही शिकायतो को सुनने के बाद भी फिर वे उपनिवेश जर्मनी के ही हवाले कर देना एक आधारभूत कृतघ्नता ही कही जाती।" अब युद्ध के लिए जिम्मेदार व्यक्तियो के मुकद्दमे की बात लीजिए। यह एक असाधारण कदम था। यह एक दयनीय स्थिति थी। यदि यह पहले ही हो गया होता तो ससार मे इतने युद्ध न होते।

प्रधान मत्री ने अन्य युक्तिया उपस्थित करते हुए कहा कि यह सधि बदला लेने के लिए नही की गई। "जर्मनो ने युद्ध का समर्थन किया, अत यह आवश्यक हो जाता है कि जो राष्ट्र अकारण ही आक्राता बन जाते है उन्हे यही शिक्षा मिलनी चाहिये, और पडोसियो पर हमला करने वालो के भाग्य पर ऐसी ही मोहर लगनी चाहिये।" गैथोर्न हार्डी ने भी इन्ही विचारो का प्रबल समर्थन किया "वास्तव मे पहले कभी भी ऐसे उच्च आदर्शो पर आधारित कोई सधि पत्र बना ही नही।" "विलसन के सिद्धान्तो का इसमे निचोड पाया जाता है, किसी भी अश मे उन सिद्धातो से हम भटके नहीं। इस सधि मे किसी अन्तर्राष्ट्रीय अशान्ति तथा असुरक्षा के कण भी नही

मिलते ।" विजेताओ के पेरिस मे मिलने से पहले ही आस्ट्रिया का विघटन एक तथ्य वस्तु बन चुका था । पोल्स, रूमेन्स, स्लाव और जक को विदेशी प्रभुत्व से स्वतन्त्र करना मित्र-राष्ट्रो द्वारा उद्घोषित युद्धनीति का सर्वदा एक अग रहा है ।

इससे इन्कार नही किया जा सकता कि वास्तव मे पेरिस सम्मेलन, प्रधान मन्त्रियो के एक विशेष गुट की स्वेच्छाचारिता का नमूना था । अन्त मे ये भी सन् १८१५ के वियना सम्मेलन के विचारो के प्रवाह के शिकार हो गए । युद्ध की लूट को बाँटने का पहला काम था, इसके लिए कुछ विजेताओ ने उपनिवेश सम्भाले तथा कुछ ने यूरोपीय भूमि पर आधिपत्य जमाया और क्षति-पूर्ति को क्रिया में परिणत किया । विजेताओ ने राष्ट्रीयता की आड मे पराजितो को खूब रौंदा । प्रधान मन्त्रियो का यह गुट सफल राजनैतिक खिलाडी रहा जो अपने-अपने देशो को सही-सलामत लडाई मे मे सुरक्षित ही निकाल ले गए । परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय मामलो की जानकारी इन लोगो की अधूरी थी । इसी कारण समझौते के काम को वे अपने से अधिक योग्य व्यक्तियो के हवाले न कर सके । सम्मेलन की कार्यवाई मे खरेपन का साफ अभाव था । मि० वेलम के शब्दो मे सम्मेलन "पुराने ढर्रे का एक कूटनीतिक षड्यन्त्र" मात्र था । राष्ट्रपति विलसन का कहना था कि "ससार को जनतन्त्र पद्धति के लिए सुरक्षित रखना ही होगा ।" क्लिमेंसो ने विलसन के इस प्रकार विचार प्रकट करने के लिए कहा कि जैसे वे ईसा मसीह की तरह बोल रहे हो । यही, फ्रास के प्रधान मन्त्री, कहा जाता है कि प्रात उठते ही रट लगाते थे कि "मै राष्ट्र सघ मे विश्वास रखता हूँ ।" ओरलेंडो ने राष्ट्रसघ के बारे मे सावधानता से टिप्पणी करते हुए कहा कि "मै राष्ट्र सघ मे तो विश्वास रखता हूँ पर फ्यूम के मसले को पहले तय किया जाना आवश्यक है" । सम्मेलन की दुर्भाग्यपूर्ण एक घटना का जिक्र भी करना यहाँ आवश्यक है । वह यह कि अमेरिका ने जापान के जाति-समता के निर्दोष सिद्धान्त को मानने मे इन्कार कर दिया । मित्रराष्ट्रो द्वारा सहयोग का उदाहरण उपस्थित न कर सकने के कारण पेरिस सम्मेलन मे भाग लेने वाले अन्य राष्ट्रो मे भी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वास की सम्भावना समाप्त हो गई ।

वास्तव मे सधि की धाराएँ अत्यन्त कठोर थी । लौजान की सधि के अतिरिक्त शेष सब सधिया विजेताओ ने पराजितो पर मढी थी न कि कुछ आदान-प्रदान की भावना मे सधि की धारायें तैयार की थी । मित्र-राष्ट्रो का दृष्टिकोण संधि के विजय में ब्रिटिश प्रधान मन्त्री लायड जार्ज के निम्न वाक्य से साफ झलकता है "इस सधि की धाराएँ युद्ध मे मृत शहीदो के खून से लिखी गई है, परमात्मा का आदेश पालन करना हम सब का इस समय का कर्तव्य है । जो लोग इस लडाई मे प्रवृत्त हो गए है हमे उन्हे दुबारा ऐसा न करने की शिक्षा अवश्य देनी है । आज जर्मन इस सधि पर हस्ताक्षर करने से इन्कार करते है, हमारा उनसे यही कहना है, 'महानुभाव ! आपको वह

करना ही होगा। आज जो वर्साय मे नही होगा कल वही बर्लिन मे मानना पड जायगा"। मामूली शिष्टाचार के अभाव तथा सार्वजनिक अप्रतिष्ठा से परेशान होकर एक जर्मन प्रतिनिधि को भी कहना ही पडा "हमारे प्रति फैलाई गई उग्र घृणा की भावना से हम आज सुपरिचित है।" चौदह शर्ते जब वर्साय सधि मे प्रयोग की जाय तो सधि सैद्धान्तिक और क्रियात्मक दृष्टि से बहुत त्रुटिपूर्ण मिलेगी। जर्मनी के डानज़िग नगर को छीन कर पोलैंड को दिलवा देना, आस्ट्रिया को जर्मनी से खण्डित रहने के लिए विवश रखना, मित्र राष्ट्रो द्वारा सीमा सम्बन्धी झगडो को आत्म निर्णय द्वारा निपटाने के उद्घोषित सिद्धान्त का खुला उपहास था। इसके अतिरिक्त सब जर्मन उपनिवेशो को हथियाने के बाद मित्र राष्ट्रो द्वारा औपनिवेशिक मामलो को तय करने में पूर्ण निष्पक्षता तथा खुले दिल व्यवहार का दावा अब कहा रहा।

✓ वर्साय की सधि के फलस्वरूप जर्मनी को यूरोप में अपने भू-भाग के १३ प्रतिशत क्षेत्र (२५ हजार वर्गमील) से वचित हो जाना पडा। इसके साथ उसे निम्न क्षतिया और उठानी पडी—आबादी का १२ प्रतिशत (६० लाख) आदमी कम हो गए। कच्चे लोहे के भंडार का ६५ प्रतिशत, कोयले का ४५ प्रतिशत, कच्चे जस्त का ७२ प्रतिशत भाग, सीसे का ५७ प्रतिशत, कृषि-उत्पादन का १२ से १५ प्रतिशत और तैयार किए माल के लगभग १० प्रतिशत भाग से हाथ धोना पडा। जर्मनी की नौ सेना समाप्त कर दी गई तथा फौज की सख्या बेल्जियम की सेना के बराबर कर दी गई। जर्मनी के खर्चे पर ही विदेशी सेनाओ को उसी के देश मे रखा गया। विदेशी व्यवस्थापको को जर्मनी के आर्थिक तथा सैनिक जीवन में हस्तक्षेप का अधिकार दे दिया गया। जर्मनी को क्षति-पूर्ति के लिए एक कोरे चैक पर हस्ताक्षर करने पडे, यही इस सधि का सार था।

आस्ट्रिया को समुद्री सीमा से वचित कर दिया गया और जर्मनी से सहयोग करने की मनाही कर दी गई। बोहेमिया से कोयला खरीदना मना कर दिया, हगरी से अनाज और मास लेना आस्ट्रिया के सामर्थ्य से दूर हो गया। इस प्रकार गणतन्त्र आस्ट्रिया २० लाख आबादी के बोझ को लिए एक कटे सिर के समान शरीर की भाति हो गया। १ लाख २५ हजार वर्गमील क्षेत्र वाले हगरी की २ करोड बीस लाख आबादी को सिकोड कर ३७ हजार वर्गमील के क्षेत्र मे सिर्फ ८० लाख की आबादी कर दी गई। बलगारिया को एजियन समुद्र तट से दूर करके उसे बाल्कन देशो में क्षेत्रफल, आबादी, साधन सम्पन्नता और सामरिक दृष्टि से सबसे छोटा राज्य बना दिया गया।

लॉसिंग के इस कथन पर आश्चर्य नही करना चाहिए कि "मै इस सन्धि को अत्यन्त कठोर तथा अपमानजनक मानता हू और इसकी कुछ धाराओ को तो बिल्कुल ही अव्यवहार्य समझता हू।" मि० केनीस ने तो क्षति-पूर्ति की कठोर शर्तो के विरोध

में अपना पद-त्याग कर दिया था तथा इस सन्धि को 'कारथेजियन' सन्धि कह कर लताडा था। इसकी चर्चा ससार में बहुत दिनो तक रही। फ्रांसीसियो ने इस सन्धि को विशेष उत्साह से नही माना क्योकि उन्हे सार की घाटी पर आधिपत्य इसके द्वारा नहीं मिलता था। जर्मनी में तो इस सन्धि-पत्र पर अत्यन्त कठोर आलोचनाएँ हुई। जर्मनी के एक भूतपूर्व चासलर वैथमहालवेग ने इसके बारे में एक स्मृति-पत्र मे लिखा कि "पराजित को गुलाम बनाने का इससे बढ कर विश्व ने कभी भी भयानक उपाय नही देखा।" फ्राक-फर्टर जेटग नामक एक समाचार पत्र ने कहा कि "हम जर्मन आज अधिकार की कब्र के किनारे खडे है। हमें सन्देह है कि यह कब्र कही सारे जर्मन राष्ट्र के लिये तो नही ?" शुमैन के अनुसार जर्मनी को बुरी तरह कुचल दिया गया और उसे राष्ट्र सघ में भी शामिल न होने दिया।

परिणाम--विलसन के अनुसार शान्ति-समझौते ने 'भावी युद्धो का अन्त करने वाले' प्रथम विश्व-युद्ध का अन्त कर दिया। यह युद्ध १५६५ दिनो तक चला और इसमे २० प्रतिशत व्यक्ति मारे गए तथा ३३ प्रतिशत सैनिक घायल हुए। निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सन्धियो की धाराये न केवल एक पक्षीय थी बल्कि अस्थाई समझौते कि वू लिए हुए थी। उसमे आदर्शवाद के स्थान पर भौतिकवाद की छाया थी और भविष्य मे झगडे के बीज छिपे हुए थे। जनरल स्मट्स ने ठीक ही कहा था कि मैंने सन्धि पर हस्ताक्षर इसलिए नही किये कि वह एक सन्तोषजनक समझौता है, बल्कि केवल इसलिए कि इससे युद्ध बन्द होता है। हमने केवल अपने शत्रुओ के हृदयो को ही नही बदलना है अपितु हमे अपने हृदयो मे भी परिवर्तन करना है। क्षत-विक्षत ईसाई समाज को सात्वना देने के लिए तथा उसके शोक और दुख को भुलाने के लिए इस युग के प्रत्येक निवासी को अपने हृदय मे एक नवीन उदारता तथा मानवीयता की उमग को स्थापित करना होगा।

व्याख्यान ३

राष्ट्रसंघ (लीग आफ नेशन्स)

विषय प्रवेश—बहुत प्राचीन काल से राष्ट्रसघ के उद्देश्यो की आवश्यकता अनुभव हो रही थी। प्रथम महायुद्ध से पहले भी २२२ वार शातिप्रिय व्यक्ति या सस्थाये इस दिशा मे प्रयास कर चुकी थी। चौदहवी सदी मे पीरी डू-वायस ने फ्रेच राजा की आधीनता मे समस्त ईसाई जगत को एक सूत्र मे पिरोने का सुझाव रखा था। सिली ने अपनी 'ग्रांड डिजाइन' पुस्तक मे सारे यूरोप को इस प्रकार १५ रियासतो मे बाँटने का प्रस्ताव पेश किया था कि वे सब मिलकर अवसर आने पर एक साधारण सभा (जनरल कौसिल) के सरक्षण मे किसी भी सामूहिक कार्यवाही को कर सके। सन् १७९५ मे प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक केट ने 'परपेचुअल पीस' पुस्तक मे युद्धो के रोक-थाम की एक योजना प्रस्तुत की थी।

१९ वी शताब्दि के प्रथम चरण मे जार अलेक्जेंडर प्रथम ने 'पवित्र मैत्री' (होली अलाएस) की स्थापना की, मैटरनिक ने यूरोपीय गोष्ठी स्थापित की। सन् १८५६ मे पेरिस काग्रेस मे अतर्राष्ट्रीय विवादो को निबटाने के लिये नियम बनाए गये। सन् १८६७ मे तत्कालीन प्रभावशाली व्यक्तियो मे से जॉन ब्राइट, जोन स्टुअर्ट मिल, विक्टर ह्यूगो, गेरीवाल्डी और माइकेल वाकुनिन ने सम्मिलित प्रयत्न से एक 'शान्ति सघ' (लीग ऑफ पीस) की स्थापना इस उद्देश्य से की कि जिसके द्वारा यूरोप की तमाम रियासतो का एकीकरण हो तथा ससार मे स्वतन्त्रता न्याय और शान्ति कायम रह सके। सन् १८९९ में रूस के जार निकोलस द्वितीय ने एक अतर्राष्ट्रीय शान्ति सम्मेलन हेग मे बुलाया। जार ने इस अवसर पर कहा कि "शान्ति कायम रखना ही अतर्राष्ट्रीय नीति का आज ध्येय बन चुका है"। इस सम्मेलन मे २६ राष्ट्रो ने भाग लिया। यद्यपि शस्त्रीकरण के खास सीमानिर्धारण पर कोई समझौता न हो सका किन्तु युद्ध के समय कुछ शस्त्रो के प्रयोग पर पाबन्दी और अतर्राष्ट्रीय कानून स्थापित करने तथा पच न्यायालय की स्थापना के लिये इस सम्मेलन मे आवश्यक कदम उठाया गया। १९०७ के द्वितीय हेग शान्ति सम्मेलन मे ४४ राष्ट्रो ने सक्रिय भाग लिया। इसमे शस्त्रीकरण पर प्रतिबन्ध लगाने मे यद्यपि असफल रहे परन्तु फिर भी युद्धावरोध के लिये समय-समय पर शान्ति सम्मेलनो को बुलाने की सिफारिश की गई। इसके अतिरिक्त दो लडने वालो के बीच मे तीसरे की मध्यस्थता द्वारा युद्ध-समाप्ति की पद्धति को उचित

ठहराया गया। तीसरा हेग सम्मेलन १९१५ मे होने को था कि विश्वयुद्ध के छिड जाने से सम्मेलन स्थगित करना पडा।

राष्ट्र-संघ का जन्म

युद्ध छिडते ही तटस्थ संयुक्त राष्ट्र अमरीका मे एक राष्ट्रसंघ की स्थापना के विषय में आम चर्चा चल पडी। जून १९१५ ई० मे अमरीका के राष्ट्रपति टॅफ्ट ने शांति की स्थापना के लिये एक लीग (संघ) के संगठन के हेतु फिलाडेलफिया मे एक सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन मे एक चार सूत्री कार्यक्रम निश्चित हुआ (१)अन्तर्राष्ट्रीय सब विवादो को मध्यस्थ के सुपुर्द कर दिया जाय, (२) दूसरी प्रकार के झगडे समझौते के लिये एक कौंसिल के सामने रखे जायँ, (३) शांतिपूर्ण हल को स्वीकार न करने वाली पार्टी के विरुद्ध आर्थिक और सैनिक कार्यवाई प्रारम्भ की जाय। (४) समय-समय पर ऐसे सम्मेलनो का आयोजन किया जाय जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के कानून निर्माण करे। मई १९१६ मे वाशिगटन मे एक सम्मेलन उपर्युक्त निर्णयो को क्रियान्वित करने के लिए बुलाया गया। २२ जनवरी १९१७ मे राष्ट्रपति विलसन ने अमेरिकन सीनेट के समक्ष "शांति के लिये विश्व संघ" के विषय में निम्न उद्गार प्रगट किए "आज के बाद संसार मे शांति स्थापना तभी सम्भव है जबकि हम एक नई तथा ठोस कूटनीति को अपनाए, संसार के बडे राष्ट्र किसी भी आपसी समझौते को मान ले, शान्ति स्थापित करने के मूलभूत आधारो के विरुद्ध जब कोई गुट युद्ध द्वारा कार्यवाई करने लगे उस पर तुरन्त सामूहिक कार्यवाई की जा सके तभी सभ्यता कायम रह सकेगी।" "हमारी मान्यता है कि (१) विश्व के प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है कि वह अपनी सरकार का स्वयं निर्णय करे (२) विश्व के राज्यो का भी अपनी सर्वभौमिकता और प्रादेशिक स्वातन्त्र्य को कायम रखने का उतना ही अधिकार है जितना कि बडे राष्ट्रो को और (३) यह कि किसी भी मूल्य पर विश्व-शान्ति बनाये रखना जरूरी है।"

प्रेसिडेन्ट विलसन के भाषण के एक सप्ताह के बाद ही जर्मनी के पनडुब्बी बेडे ने लडाई की घोषणा कर दी। उसके प्रत्युत्तर मे ६ अप्रैल १९१७ को प्रेसिडेंट विलसन ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अपने युद्ध संदेश मे प्रेसिडेंट विलसन ने कहा कि जनतन्त्रीय देशो मे पारस्परिक विश्वव्यापी सहयोग के बिना संसार मे शान्ति व्यवस्था कायम रखना नितांत असम्भव है। जगह-जगह अपने भाषणो मे विल्सन ने 'युद्धान्तक-युद्ध' की आवश्यकता सम्बन्धी अपना विचार स्पष्ट किया। आपने कहा कि जर्मनी के विरुद्ध हमने युद्ध की घोषणा विश्व युद्ध की समाप्ति और जनतंत्र की सुरक्षा के लिये की है। ८ जनवरी १९१८ को प्रेसिडेन्ट विलसन ने अपनी १४ सूत्री योजना प्रस्तुत की *। सितम्बर १९१८ में प्रेसिडेन्ट विलसन ने कहा कि राष्ट्रसंघ का

---

* पृष्ठ १८ देखिए।

विधान शान्ति समझौता का ही एक अग होना चाहिए। ११ नवम्बर १९१८ को युद्ध विराम हुआ और जनवरी १९१९ मे पेरिस मे शान्ति-सम्मेलन बुलाया गया।

इस समय राष्ट्रसघ के लिये कितनी ही सरकारी तथा गैर सरकारी योजनाए सामने आने लगी। २० जनवरी १९१९ को ब्रिटेन की तरफ से लार्ड सिसिल, जरनल स्मट्स और लार्ड फिलीमोर ने एक रूपरेखा तैयार की। इसी समय विलसन ने अपने विश्वस्त सहयोगी कर्नल हाऊस द्वारा एक और योजना तैयार की। ये योजनाएँ पेरिस शान्ति सम्मेलन की १९ व्यक्तियो की समिति के सामने रखी गई। इसके सभापति विलसन थे जिन्हे फरवरी १९१९ मे पेरिस शान्ति सम्मेलन में प्रतिनिधियो ने निर्वाचित किया था। २८ अप्रेल को पेरिस शान्ति सम्मेलन ने प्रतिश्रव (केवनेन्ट) की दुहराई हुई योजना को सर्वसम्मति से स्वीकृत किया। राष्ट्रसघ की प्रतिश्रव योजना वर्साय, सॉं जर्मे, निऊली, ट्रायनन और सेवर्स की सन्धियो के अन्तर्गत लागू की गई। १० जनवरी १९२० को वर्साय की सधि के अभिपोषण के साथ-साथ राष्ट्रसघ का जीवन नियमानुकूल प्रारम्भ हो गया।

प्रतिश्रव (Covenant)

राष्ट्रसघ का रूप या भार ही प्रतिश्रव है जिसके २६ आलेख पेरिस में हुई विभिन्न सधियो के अ श है। इस सघ के उद्देश्य जैसे कि प्रतिश्रव में उल्लिखित है, ये चार है (१) युद्ध निराकरण (२) शान्ति की स्थापना (३) सधियो के नियम तथा उपनियमो को लागू करना (४) मानव समाज की भौतिक तथा नैतिक उन्नति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित करना।

(१)युद्ध निराकरण—दसवी धारा सदस्यो को वाह्य आक्रमण में एक दूसरे की प्रादेशिक सीमा और विद्यमान राजनैतिक स्वतन्त्रता की सुरक्षा और सम्मान करने को बाध्य करती है। ११ वी धारा के अन्तर्गत राष्ट्रसघ को यह अधिकार दिया गया है कि शान्ति की सुरक्षा के लिए कोई भी उचित कदम उठा सकता है। १२ वी धारा मे यह वैध है कि सदस्य देशो की परिषद (कौंसिल) द्वारा जाच की जा सकेगी, जांच के निर्णय के तीन मास तक किसी भी हालत मे युद्ध नही छेडा जा सकेगा। १३ वी धारा मे इस बात के विश्वास पर बल दिया गया कि पच या जाँच में विश्वास रखना और सदस्य देश ने युद्ध करने की सम्भावना न होने देना। १६ वी धारा के अनुसार यदि कोई सदस्य-देश प्रतिश्रव की धाराओ की अवहेलना करके युद्ध घोषणा करे तो अन्य समस्त सदस्य देशो के विरुद्ध युद्ध के लिए अपराधी माना जायेगा। १७ वी धारा में इस बात की घोषणा है कि यदि वह देश जो राष्ट्रसघ का सदस्य नही है राष्ट्रसघ के किसी सदस्य देश के विरुद्ध युद्ध छेडे तो उसके साथ भी १६ वी धारा के अनुसार व्यवहार किया जायेगा।

प्रतिश्रव के द्वारा युद्ध पूर्ण रूप मे वर्जित न थे। अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध भी उसी समय वैध माना जा सकता था जबकि उन देशों का विवाद पहले राष्ट्रसघ मे मध्यस्थता के लिए रखा गया हो और वह उसे निर्विरोध सुलझाने मे असमर्थ रही हो। प्रतिश्रव की अवहेलना कर यदि कोई राष्ट्र युद्ध छेड दे तो धारा १९ राष्ट्रसघ के अन्य सदस्य राष्ट्रो को आक्रान्ता देश के साथ आर्थिक, व्यापारिक और वैयक्तिक सम्बन्ध तोडने के लिए बाध्य करती थी। ऐसी स्थिति पहुचने पर कौंसिल राष्ट्रसघ के सदस्य राष्ट्रो को यह सिफारिश करेगी कि वे प्रतिश्रव की व्यवस्था कायम रखने के लिए प्रभावात्मक सैनिक, नौसैनिक तथा वायु सेना शक्ति का प्रयोग करे।

(२) शांति की स्थापना—युद्ध बन्द करने के निषेधात्मक प्रयत्नो के साथ-साथ राष्ट्रसघ युद्धोत्पादक कारणो को भी दूर करने के लिए सक्रिय तौर पर सचेष्ट था। इसके लिए प्रतिश्रव ने गुप्त सधि प्रथा रद्द कर दी। ऐसी व्यवस्था की कि कोई भी सधि तब तक व्यवहार मे नही आ सकती जब तक कि उसे राष्ट्र सघ के सचिवालय की स्वीकृति न मिल जाय। इसके अतिरिक्त सदस्य देशो ने एक प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर भी किये, जिसके अन्तर्गत उन्होने उन सब पुरानी सधियो को रद्द कर दिया जो कि प्रतिश्रव की मूल नीति से टक्कर खाती थी तथा भविष्य में प्रतिश्रव के सिद्धान्तो के अनुकूल ही नई सधिया करने का वचन दिया। प्रतिश्रव ने 'यथा स्थिति' (status quo) पर बहुत अधिक बल देने के भय को समझ कर उन सधियों पर पुन विचार करने की व्यवस्था की जोकि अव्यवहार्य हो चुकी थी और जिनके चालू रहने से ससार की शान्ति को खतरा था। प्रतिश्रव शस्त्रो की होड को घटाने के लिए सक्रिय और सचेष्ट था। इस कार्य-सिद्धी के लिए उसने सदस्य देशो को प्रेरित किया कि "वे केवल राष्ट्रीय सुरक्षा के निमित्त ही शस्त्र-सज्जा रखें, व्यक्तिगत उद्योगो के द्वारा शस्त्रास्त्रो का तैयार करना भयकर प्रतिवाद का सामना करना है।" प्रतिश्रव ने कौंसिल को अस्त्र-शस्त्र घटाने के स्पष्ट निर्देश दिये।

(३) पेरिस सन्धि को अमल मे लाना—श्लेसविग, पूर्वी प्रशिया और अपर सिलिशिया में जनमत का निरीक्षण राष्ट्र सघ का दायित्व था। १५ वर्ष के लिए डानजिग नगर की व्यवस्था तथा सार के शासन का भार भी उसे उठाना था। अल्पमतो की सुरक्षा के लिए विशेष सधियो का प्रबन्ध करना था।

(४) मानवीय सहयोग को प्रोत्साहन—मनुष्य मात्र से सम्बन्ध रखने वाले मामलो मे मनुष्यता के आधार पर सहयोग स्थापित करना भी राष्ट्रसघ का एक ध्येय रहा। इसके अन्तर्गत पुरुष, स्त्री और बच्चो के उपयुक्त हो श्रम-व्यवस्था कायम करना था। उपनिवेशो के आदि निवासियो के प्रति न्यायपूर्ण बर्ताव करना

था। राष्ट्र सघ के सदस्य देशो मे परस्पर युक्तिसगत समान व्यापार, व्यवसाय और सचार स्थापित करना था। अफीम जैसे मादक तथा हानिकारक द्रव्यो तथा अस्त्र-शस्त्रो का सदस्य देशो के साथ व्यापार नियमित करना था। बीमारियो की रोक थाम और निराकरण का उत्तरदायित्व भी सघ ने लिया था। ससार के कष्टो का उन्मूलन करने के लिए राष्ट्रीय आधार पर रेड क्रास को सगठित करना भी इसके उद्देश्यो के अन्तर्गत था। सक्षेप मे प्रतिश्रव का ध्येय उस नवीन जगत् का निर्माण करना था, जिसमे शान्तिपूर्ण सहयोग की शिला पर सार्वजनिक सुरक्षा की सुदृढ नीव पडी हो।

सदस्यता—राष्ट्रसघ के प्रारम्भिक सदस्य ३१ हस्ताक्षर कर्त्ता थे, जिनके नाम प्रतिश्रव के परिशिष्ट में उल्लिखित है। चीन, सॉ जर्मे की सधि पर हस्ताक्षर करके, ३२ वा सदस्य बन गया। इन ३२ हस्ताक्षर कर्त्ताओ में से ३ हस्ताक्षर कर्त्ता—ईक्वेडोर, हेजाज और अमेरिका—सधियो को अभिपुष्ट करने में असफल रहे। अप्रैल १६२० तक ४२ देश राष्ट्रसघ के सदस्य बन गये। इसके पश्चात् २१ देश और इसमें शामिल हो गये।* ससार के जिन ६ राष्ट्रो ने कभी भी सदस्यता के लिए प्रार्थना पत्र नही भेजा वे ये है सउदी अरेबिया, यमन, ओमन, नैपाल, माचूको और सयुक्तराष्ट्र अमेरिका। कोई भी सार्वभौम-सत्ता सपन्न देश, उपनिवेश अथवा राज्य इस सघ का सदस्य हो सकता था यदि उसे साधारण सभा के दो तिहाई मतो की सहमति प्राप्त हो तथा वह अन्तर्राष्ट्रीय नियमो के पालन करने का विश्वास दिला सके।

दो वर्ष पूर्व सूचना देकर कोई भी सदस्य देश राष्ट्र सघ से पृथक् हो सकता था। १६३२ मे कोस्टारिका और ब्राजील ने क्रमश 'आर्थिक' और 'सम्मान' के आधारो पर सघ की सदस्यता से त्याग-पत्र दे दिया। जापान ने २७ मार्च १६३३ तथा जर्मनी ने ४ अक्तूबर १६३३ मे राजनैतिक कारणो से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। १ सितम्बर १६३६ को द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होने पर राष्ट्र-सघ के केवल ४६ सदस्य रह गये। इथोपिया, आस्ट्रिया, अल्बेनिया और चैकोस्लोवाकिया आदि चार सदस्य राष्ट्र नष्ट किये जा चुके थे। १६४० के ग्रीष्म तक सारा राष्ट्र-

*१६२० मे अल्बानिया, फिनलैंड, बल्गारिया, आस्ट्रिया, कोस्टारिका और लक्समबर्ग सदस्य बने। १६२१ मे इस्थोनिया, लेटिविया और लिथुआनिया तथा १६२८ में हगरी, इथोपिया और स्वतन्त्र आइरिश राज्य, १६२४ मे औपनिवेशिक गणराज्य, १६२६ मे जर्मनी, १६३१ में मैक्सिको, १६३२ में टर्की और इराक, १६३४ में अफगानिस्तान, ईक्वेडोर और रूस तथा १६३७ मे मिस्र भी राष्ट्रसघ का सदस्य बन गया।

सघ एक स्मृति मात्र बन गया क्योंकि अब बडी शक्तियो मे ब्रिटेन और छोटी ३१ रियासते ही उसकी सदस्य रह गई। १६ मई को सरकारी तौर पर राष्ट्रसघ की समाप्ति की घोषणा कर दी गई।

इस राष्ट्रसघ ने अपने काल में एक साधारण सभा, एक परिषद (कौंसिल) और एक स्थायी सचिवालय के द्वारा कार्य किया।

साधारण सभा (असेम्बली)—इसमे समस्त सदस्य देशो के प्रतिनिधि थे। एक सदस्य राष्ट्र के अधिक से अधिक तीन प्रतिनिधि हो सकते थे, पर परम्परावश मत सख्या एक ही सीमित थी। साधारण सभा का अधिवेशन वार्षिक रूप मे सितम्बर के मास मे जेनेवा मे हुआ करता था किन्तु कई आवश्यक कारणो से विशेष अधिवेशन भी हुए। इस साधारण सभा (असेम्बली) की प्रथम बैठक १५ नवम्बर १९२० को प्रेसिडेन्ट विलसन की अध्यक्षता मे हुई और अन्तिम तथा २० वा अधिवेशन १४ दिसम्बर १९३९ को हुआ। सभा अपने अध्यक्षो का निर्वाचन स्वत करती थी। इसका कार्यक्रम महामन्त्री द्वारा तैयार किया जाता था या आवश्यकतानुसार अधिवेशन मे सशोधन हो सकता था। साधारण सभा की ६ स्थायी समितियाँ निम्न कार्यो के लिए थी (१) वैधानिक और कानूनी प्रश्न (२) टेक्निकल सस्थाए (३) शस्त्रास्त्र का विघटन (४) बजट और आन्तरिक व्यवस्था (५) सामाजिक समस्याए (६) राजनैतिक प्रश्न। इस साधारण सभा को विशेष प्रश्न के लिए विशेष समिति नियुक्त करने का भी अधिकार था।

धारा ३ के अन्तर्गत सभा का कार्यक्षेत्र व्यापक था। परन्तु प्राय सभा की रुचि निम्न तीन विषयो को सुलझाने मे ही लगती थी (अ) चुनाव सम्बन्धी (ब) अगीभूत विषय (Constituent) (स) परामर्शदान। चुनाव सम्बन्धी कार्यप्रणाली के अन्तर्गत सभा के निम्न कर्तव्य थे दो तिहाई वोटो से नये सदस्यो का चुनाव, साधारण बहुमत द्वारा परिषद् (कौंसिल) के अस्थायी सदस्यो मे से ३ को सभा के लिए चुनना : प्रति ९ वर्ष के लिए स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के लिए १५ निर्णायको (जजो) को चुनना, परिषद् मे महामन्त्री की नियुक्ति की स्वीकृती देना अगीभूत कार्यों मे से प्रतिश्रव के नियमो मे ऐसा सशोधन करे जो परिषद् को तो सर्वसम्मति से स्वीकृत हो तथा प्रभावित सदस्य देशो की रुचि के अनुकूल हो सके। परामर्श के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय हित से सम्बन्ध रखने वाले आर्थिक, राजनैतिक तथा टैक्निकल विषयो का साधारण दिग्दर्शन, अव्यवहार्य सन्धियो मे सशोधन और उनकी पुनरावृत्ति के लिए सुझाव पेश करना, परिषद् के कार्यक्रम की पडताल तथा सालाना बजट तैयार करना था।

१०,०००,००० डालर का वार्षिक बजट जिन तीन मुख्य मदो मे व्यय किया जाता था, वे है एक सचिवालय, दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय और

तीसरा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय। व्यय की ९२३ इकाइयो मे से ग्रेट ब्रिटेन को १०८, रूस को ९४, भारत को ४९ और अल्बानिया को सिर्फ १ अदा करनी होती थी।

परिषद् (कौंसिल)—प्रारम्भ मे सयुक्त राष्ट्र अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और जापान इसके स्थायी सदस्य थे। इसके साथ ४ अस्थाई भी होने थे। सयुक्तराष्ट्र अमेरिका के इन्कार करने पर स्थायी और अस्थायी सदस्यो की सख्या सन्तुलित हो गई। १९२२ मे अस्थायी सदस्यो की सख्या २ और वढा दी गई। जर्मनी और रूस जब तक परिषद् के सदस्य रहे वे स्थायी ही बने रहे। १९३९ तक परिषद् (कौंसिल) मे ब्रिटेन, फ्रास और रूस स्थायी सदस्य और इनके साथ केवल ११ अस्थायी सदस्य थे।

परिषद् का कार्यक्षेत्र भी साधारण सभा की तरह असीमित था। १९२९ के बाद इसका अधिवेशन वर्ष मे जनवरी, मई और सितम्बर मे तीन वार होने लगा। प्रतिश्रव की धारा ४ के अन्तर्गत इसका कार्यक्षेत्र निर्धारित था। फ्रासीसी वर्णमाला के आधार पर इसके कार्यवाहक प्रधान बारी-बारी से चुने जाते थे। परिषद् के सब निश्चय सर्वसम्मत होते थे केवल कार्यवाई सम्बन्धी निर्णयो का अपवाद रखा गया। परिषद् के लिए मुख्य विचारणीय विषय निम्न होते थे अन्तर्राष्ट्रीय झगडो का निपटाना, शस्त्रास्त्र निराकरण के सुझावो की समीक्षा, आज्ञप्ति-प्राप्त (मैन्डेटरीज) प्रदेशो की वार्षिक रिपोर्ट पर विचार और सदस्य देशो का वाह्य आक्रमण से बचाव करना। सचिवालय के पदाधिकारियो के अतिरिक्त परिषद् के महामत्री की नियुक्ति भी परिषद् ही करती थी।

सचिवालय—यह लीग का स्थाई प्रशासन अग था। इसमे अन्तर्राष्ट्रीय सिविल सर्विस के ६०० योग्य अधिकारी काम करते थे। सचिवालय का प्रधान सेक्रेटरी जनरल (महामन्त्री) होता था, जिसे परिषद महासभा की अनुमति से नियुक्त करती थी। इस पद पर १९२० से १९३३ तक ब्रिटेन के सर एरिक ड्रमड रहे और इसके बाद फ्रांस के जोसेफ एवेनल द्वारा १९४० मे त्यागपत्र देने के कारण उनके स्थान पर आयरलैंड के सीन लेस्टर स्थानापन्न महामन्त्री नियुक्त किये गये। सचिवालय के अधिकारी, जो योग्यता के आधार पर महामत्री द्वारा नियुक्त किए जाते थे वास्तव में वे अपने देशो के हित का प्रतिनिधित्व नही करते थे। महामन्त्री की सहायता के लिए दो सहकारी सचिव और दो उप-सहकारी सचिव होते थे। इन चारो पदो पर राष्ट्रसघ के सदस्य बडे राष्ट्रो के ही नागरिक नियुक्त होते थे।

सचिवालय ११ विभागो मे विभाजित था, जिसका सचालन अध्यक्षो के आधीन होता था। महामन्त्री राष्ट्रसघ के सदस्यो द्वारा की हुई समस्त सधियो के रजिस्ट्रेशन

तथा प्रकाशन के लिये उत्तरदायी होता था । १६४१ तक ४७३३ प्रमाणपत्र रजिस्टर किये गये। राष्ट्रसघ के विचारार्थ जटिल समस्याओ सम्बन्धी आवश्यक सूचना प्राप्त करना तथा उसे प्रकाशित करना, बैठक का कार्य-क्रम तैयार करना, भाषणो को फ्रासीसी और अग्रेजी भाषा मे अनुवाद करना, राष्ट्रसघ की सरकारी पत्रिका मे महासभा तथा परिषद् की कार्यवाइयो को प्रकाशित करना सचिवालय के अधिकारियो का काम था।

राष्ट्रसघ की सहायता के लिए टेक्निकल सस्था तथा सलाहकार समिति के नाम से कई सहायक सस्थाएँ स्थापित की गई थी। राष्ट्रसघ की ५ विशेष टेक्निकल संस्थाओ के नाम इस प्रकार थे अन्तर्राष्ट्रीय स्थाई न्यायालय, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सघ, आर्थिक तथा वित्तीय संघ, सवाहन तथा यातायात सस्था और स्वास्थ्य सघ। सलाहकार समितियो मे अफीम समिति, आदिष्ट प्रणाली और आध्यात्मिक सहयोग मुख्य थे।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय

प्रतिश्रव की धारा १४ के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय न्याय के लिए एक स्थाई न्यायालय की स्थापना की गई, जिसको साधारण रूप से 'विश्व न्यायालय' कहते है। इसका काम किसी भी राष्ट्र द्वारा प्रस्तुत विवाद को सुनना व सुलझाना और राष्ट्र-सघ की असेम्बली अथवा परिषद् द्वारा रखे गये किसी भी प्रश्न पर सलाह देना होता था। न्यायालय के सविधान को प्रस्तुत करने के लिए १६२० में अमरीकी इलीहुरुट की अध्यक्षता में कानून विशेषज्ञो का एक आयोग नियुक्त किया गया। यह सविधान सितम्बर १६२१ में लागू किया गया, जबकि २८ सदस्य राष्ट्रो द्वारा इसकी स्वीकृति की गई और न्यायाधीशो के पहले पेनेल का चुनाव हुआ।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में पहले ११ न्यायाधीश और ४ उपन्यायाधीश थे। ये ६ वर्ष के लिए परिषद् और महासभा की बहुमत से चुने जाते थे। न्यायालय अपना एक अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुनता था, जिनका कार्यकाल ३ वर्ष होता था। इसकी बैठक प्रतिवर्ष हेग में होती थी और वह हर वर्ष जून में आरम्भ होती थी। प्रति वर्ष राष्ट्रसघ इसके लिए ५ लाख डालर खर्च करता था। १६३० में न्यायाधीशो की सख्या बढा कर १५ कर दी गई और फरवरी १६३६ में उपाध्यक्ष का पद समाप्त कर दिया गया।

न्यायालय का कार्यक्षेत्र २ प्रकार का था. एक तो 'स्वेच्छा से' और दूसरा 'अनिवार्य'। 'ऐच्छिक धारा' के अन्तर्गत हस्ताक्षर करने वालो को निम्न कानूनी झगडो में न्यायालय का न्याय मानना पडता था (१) किसी सधि का स्पष्टीकरण, (२) अन्तर्राष्ट्रीय कानून सम्बन्धी कोई भी प्रश्न, (३) किसी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते का उल्लघन तथा (४) इस प्रकार के उल्लघन के सम्बन्ध में हर्जाने के रूप या सीमा को

निर्दिष्ट करना। सितम्बर १९३९ में ३९ राष्ट्रो ने न्यायालय की शर्तो पर हस्ताक्षर किए। अनिवार्य धारा के अन्तर्गत एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को सामने पेशी के लिए बुला सकता था और यदि दूसरा राष्ट्र न्यायालय में न आये तो न्यायालय अपने आप न्याय कर सकता था। जब दो राष्ट्र पारस्परिक सम्मति से आपस के झगडे न्यायालय में पेश करते थे, तो इसका कार्यक्षेत्र उस समय ऐच्छिक धारा के अनुसार होता था।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय 'हेग पच न्यायालय' से सम्पूर्ण भिन्न था। हेग न्यायालय की स्थापना १८९९ में की गई थी। यह कोई स्थायी अदालत नही थी। इसमें केवल १३२ प्रमुख कानून विशेषज्ञो की सूची थी जिसमें से विवादास्पद राज्य पच चुन सकते थे। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय पच न्यायालय की तरह कानूनी नही था परन्तु स्थायी कानूनी न्यायालय था। यह अन्तर्राष्ट्रीय कानून का स्पष्टीकरण करता था और सधि उल्लघनो पर निर्णय देता था। सक्षेप में, इस अदालत द्वारा राष्ट्रो के बीच विवादो को सुलझाने के उद्देश्य से कुछ अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना के लिये महत्वपूर्ण तथा सफल प्रयास किये गये। इसके विषय में शूमैन ने लिखा है "अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के १७ वर्ष के रिकार्ड में यह सस्था बडी मूल्यवान सिद्ध हुई"। १९४० से अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के रद्द होने तक उसने ३१ निर्णय दिये तथा ३७ सलाहकार मत और २०० आदेश जारी किये।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ (आई एल ओ) जिसका कार्यालय जनेवा में था, राष्ट्रसघ से सम्वन्धित था। इनके तीन विभाग थे—साधारण सम्मेलन, प्रशासन विभाग और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय। साधारण (आम) सम्मेलन में प्रत्येक सदस्य राष्ट्र के ४-४ प्रतिनिधि थे। इन चार प्रतिनिधियो में से २ प्रतिनिधि सम्बन्धित राष्ट्र की सरकार द्वारा मनोनीत होते थे, एक को मजदूर चुनते थे और एक को मालिक वर्ग। इसकी बैठक वर्ष में एक बार होती थी। प्रतिनिधि वैयक्तिक रूप मे मत देते थे। ये प्रतिनिधि श्रम कानूनो पर सिफारिशें या मसविदे को दो तिहाई बहुमत से पास करते थे जो कि एक वर्ष के भीतर सदस्य राष्ट्रो की राष्ट्रीय सरकार के सामने स्वीकृति के लिये रक्खे जा सकते थे।

शासन सस्था में ३२ सदस्य होते थे, जिन्हे ३ वर्ष के लिये चुना जाता था। इसकी बैठकें हर तीन मास बाद होती थी। इन सदस्यो में से १६ सदस्य, सदस्य राष्ट्रो द्वारा नियुक्त किये जाते थे (८ राष्ट्र अधिक औद्योगिक महत्व के होते थे)। ८ सदस्य सम्मेलन में मालिक वर्ग के प्रतिनिधियो द्वारा निर्वाचित किये जाते थे और शेष ८ मजदूर वर्ग द्वारा चुने जाते थे। शासन सस्था सम्मेलनो का कार्यक्रम बनाती थी, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ के अध्यक्ष नियुक्त करती थी और सघ के कार्यो की देख भाल करती थी।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय में अध्यक्ष द्वारा नियुक्त ३५० विशेषज्ञ होते थे। यह सघ का सचिवालय था। इसका काम सूचनाओ का सकलन तथा वितरण करना, सम्मेलनो के निर्णयों के आधार पर सरकार द्वारा कानूनो का मसविदा तैयार करने की प्रार्थना पर उनको सहयोग देना, विशेष जाच करना तथा सम्मेलनो की सफलता के लिये साधन उपलब्ध करना होता था। यह एक सरकारी पत्रिका, अतर्राष्ट्रीय श्रम विज्ञप्ति तथा अनेको रिपोर्ट तथा महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्रकाशित करती थी। अल्बर्ट थामस अपने मृत्युकाल (अप्रैल १९३२) तक उसके अध्यक्ष रहे। इसके बाद इस पद पर हैरोल्ड बटलर, जान विनोट व एडवर्ड फेलान रहे। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ का व्यय राष्ट्रसघ के बजट में से होता था। अब यह सयुक्त राष्ट्र श्रम सघ से सम्बद्ध है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ के निम्नलिखित उद्देश्य थे : १. सामाजिक न्याय की उन्नति से स्थायी शाति स्थापना में योग देना, २ अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाई द्वारा श्रमिको की स्थिति व जीवन स्तर में सुधार करना तथा आर्थिक व सामाजिक स्थिरता को प्रोत्साहित करना। सक्षेप में श्रम कानून में समानता लाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ सरकार, मजदूरो व मालिको में सम्पर्क स्थापित करने के लिए एक बहुत बड़ा साधन रहा। यह मजदूरो के वेतनो, काम करने का समय, क्षति-पूर्ति, सामाजिक बीमा, वेतन सहित छुट्टी, औद्योगिक सुरक्षा, श्रम जांच मिलने जुलने की स्वतन्त्रता व सफाई आदि जैसे विषयो सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनो का मसविदा तैयार करता था।

अमरीका का असहयोग

जर्मनी के हारने के बाद अमरीका राजनैतिक उथल-पुथल का केन्द्र बन गया। डेमोक्रेटिक पार्टी के नेता प्रेसिडेन्ट विलसन विरोधी रिपब्लिकन पार्टी के शिकार बने हुए थे। नवम्बर १९१८ में कांग्रेस के चुनावो में रिपब्लिकन दल की जीत हुई और सीनेट में बहुमत प्राप्त हुआ जिसकी बहुमत सधियो के लिए आवश्यक थी। विलसन ने पेरिस में होने वाले शाति सम्मेलन में कांग्रेस की डेमोक्रेट पार्टी की सहायता ली और रिपब्लिकन नेताओ की उपेक्षा की, जिसका फल यह हुआ कि सीनेट-बहुमत इनके खिलाफ चली गई। रिपब्लिकन पार्टी ने उनको नीचा दिखाने के लिए उन पर अन्यायी तानाशाही तथा अमरीका के हित का बलिदान करने के आरोप लगाये। जब प्रेसिडेन्ट विलसन जुलाई १९१९ में अमरीका लौटे और राष्ट्रसघ-प्रतिश्रव तथा वर्साय सधि पर आवश्यक स्वीकृति की माग की तो उन्हे सीनेट बहुमत की तरफ से बड़ा विरोध का सामना करना पड़ा। लगभग २ वर्ष तक प्रेसिडेन्ट विलसन और सीनेट-बहुमत में गतिरोध रहा। विलसन की मृत्यु के पश्चात् झगड़ा समाप्त हो

गया। नवम्बर १९२० के चुनावो में विलसन के एक डेमोक्रेट समर्थक की हार हुई और सीनेट के एक रिपब्लिकन सदस्य वारन हार्डिंग प्रेसिडेन्ट निर्वाचित हुए। मार्च १९२१ मे नए प्रेसिडेन्ट ने घोपणा की कि वर्तमान राष्ट्रसघ मे रिपब्लिकन सरकार कोई भाग नही लेगी। अमरीका ने जर्मनी, आस्ट्रिया और हगरी से पृथक्-पृथक् शाति सधिया की। इस प्रकार अमरीका ने राष्ट्रसघ के विशेष बुलावे पर निशस्त्रीकरण सम्मेलनो में भाग लिया। १९३४ में उसने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ की सदस्यता स्वीकार की। वास्तव में आरम्भ से ही अमरीका द्वारा राष्ट्रसघ में भाग न लेने से सघ को बडी क्षति पहुँची क्योकि इससे राष्ट्रसघ को एक बडे राष्ट्र का नैतिक समर्थन व सहयोग प्राप्त नही हो सका।

साधारण मामलो मे राष्ट्रसघ की मध्यस्थता

राष्ट्रो के बीच राजनीतिक झगडे के शातिपूर्वक निवटारे व युद्ध को रोकने में राष्ट्रसघ को सम्पूर्ण सहायता नही मिली। निस्सदेह सघ ने अपनी सस्थाओं द्वारा इस सम्बन्ध में सहयोग अदा किया। २० वर्ष में सघ ने ४० छोटे-बडे राजनीतिक झगडो की जाच की। छोटे राज्यो के मामलो को सुलझाने में राष्ट्रसघ अधिक दृढ और सफल सिद्ध हुआ।

आलैंड द्वीप विवाद

राष्ट्रसघ को सुलझाने के लिए सबसे पहले आलैंड द्वीपो का विवाद मिला। यह विवाद फिनलैंड और स्वीडन के बीच था। आलैंड द्वीप जिसकी जनसख्या १९२० में २७००० थी, स्वीडन फिनलैंड के बीच बसा है। इस पर वर्षो तक स्वीडन का कब्जा रहा लेकिन नेपोलियन के युद्धो में यह द्वीप फिनलैंड के साथ रूस के हाथो में गया। १९०९ से १९१७ तक रूस ने फिनलैंड के आलैंड द्वीपो पर एक शासनीय इकाई के रूप में राज्य किया। रूसी क्रातियो के बाद फिनलैंड स्वतन्त्र हो गया और स्वीडन ने उसकी मान्यता स्वीकार कर ली। आलैंड द्वीप को कुछ भी नही मिला यद्यपि वहा के लोग स्वीडिश थे और स्वीडिश भाषा बोलते थे। इसके बाद ही आलैंड द्वीप के रहने वालो ने स्वायत्त-शासन की माग करते हुए, स्वीडन के साथ सघ बनाने का आन्दोलन किया। जब अन्त में खुले विद्रोह की आशका पक्की हो गई तो फिनलैंड की फौजें आलैंड द्वीप मे उतारी गई और दो पृथक्वादी नेता तत्काल गिरफ्तार कर लिए गये। स्वीडन में जनता की आवाजें बुलन्द हुई और वहा युद्ध-कालीन सी स्थिति पैदा हो गई। जुलाई १९२० में जब फिनलैंड राष्ट्रसघ का सदस्य नही था तो इगलैंड ने इस ओर महामन्त्री ड्रमेण्ड का ध्यान आकर्पित किया। प्रत्येक दल के प्रतिनिधि परिपद् के सामने उपस्थित हुए और अपने अपने विचार प्रकट किये। फिनलैंड के प्रतिनिधि ने कहा कि यह मामला बिलकुल घरेलू है और

युद्ध का खतरा निर्मूल है। साथ ही जब स्वीडन ने फिनलैंड की स्वतन्त्रता को मान्यता दी थी तो आलैंड द्वीप के सम्बन्ध में कुछ तय नही किया गया था। स्वीडन के प्रतिनिधि ने सकेत किया कि आलैंडवासी स्वीडन के साथ मिलना चाहते है और स्वीडन ने आन्दोलन का समर्थन नही किया था, उसने केवल जनमत सग्रह का प्रस्ताव रखा था।

परिषद् ने इस मामले को कानून विशेषज्ञो की एक समिति के सुपुर्द कर दिया और स्वीडन, फिनलैंड व आलैंड के भ्रमण के लिए एक और समिति नियुक्त की जिससे वह धन इकट्ठा कर सके। इन समितियो की रिपोर्टो पर परिषद् ने २४ जून १९२१ को निम्नलिखित निर्णय दिए: (१) फिनलैंड व आलैंड द्वीप पर साम्राज्य स्थापित रहेगा, (२) आलैंड वासियो को एकाधिकार शासन तथा उनके राजनीतिक अधिकारो की सुरक्षा की गारटी दी जाय, (३) मिली सम्पत्ति का अधिकार व स्कूलो में स्वीडिश भाषा का प्रयोग जारी रखा जाय और, (४) द्वीप को अतटस्थ घोषित किया जाय और उस पर से मोर्चाबन्दी हटा ली जाय। ६ अप्रैल १९२२ को द्वीपो को अतटस्थ घोषित करते हुए एक नई अन्तर्राष्ट्रीय सधि की गई।

विलना विवाद

ज़ार के गद्दी से उतरने तथा जर्मनी के हारने के पश्चात् पोल्स व लिथुआनिया ने क्रमशः वारसा व विलना में अपनी अपनी सरकारे बना ली। वर्साय सधि के अतर्गत 'कर्जन रेखा' एक स्थाई सीमा बनाई गई थी जिसके अनुसार विलना लिथुआनिया को सौप दिया गया था। १९२० में बोल्शेविको ने विलना पर कब्जा कर लिया लेकिन रूस व लिथुआनिया की मास्को-सधि (१२ जुलाई १९२०) के अनुसार विलना फिर लिथुआनिया में मिला दिया गया। जब रूसियो को एक बार फिर हटा दिया गया तो पोल्स व लिथुआनियनो में विलना पर सीधी लडाई छिड गई। पोलैंड ने राष्ट्रसघ में अपील की। राष्ट्रसघ परिषद् ने तुरन्त ही वहा एक सैनिक कमीशन भेजा। ७ अक्तूबर १९२० को पोलैंड व लिथुआनिया की सरकारो ने एक युद्ध विराम समझौते पर हस्ताक्षर किए जिनके अनुसार विलना लिथुआनिया में ही रहा। यह समझौता १० अक्तूबर से लागू होने वाला था लेकिन ९ अक्तूबर को एक स्वतन्त्र पोलिश कमाडर जनरल जेलीगोस्की ने पोलैंड की फौजो की सहायता से लिथुआनियो को विलना से बाहर निकाल दिया। पोलैंड सरकार ने जनरल जेलीगोस्की की इस कार्यवाई पर कोई भी उत्तरदायित्व लेना स्वीकार नहीं किया और यह भी कहा कि बिना जनमत सग्रह हुए विलना से उनको निकाला गया तो इसका विरोध किया जायेगा। परिषद् दो वर्ष (१९२०-२१) तक इस झगडे को सुलझाने मे असफल रही। अन्त में १३ जनवरी १९२२ को परिषद् ने विलना से कमीशन को वापस बुला

लिया और इस प्रकार की समस्या को सुलझाने में अपनी असमर्थता प्रकट की। पोलैंड द्वारा विलना में निर्वाचित एक विधानसभा (असेम्वली) ने विलना को पोलैंड में मिलाने के पक्ष में वोट दिया। ३ फरवरी १९२३ को परिषद् ने दोनो देशो के बीच पुन सीमा निर्धारण किया जिसके अनुसार विलना पोलैंड में मिला दिया गया। लिथुआनिया ने इसका विरोध किया और नई सीमा को स्वीकार नही किया। उसका इस प्रश्न पर वार्ता पुन शुरू करने का प्रयास विफल रहा। सक्षेप में पोलैंड ने अपनी शक्ति से विलना पर कब्जा कर लिया और इस प्रकार पोलैंड और लिथुआनिया का लम्वा विवाद समाप्त हो गया।

मेमेल-मामला

इसी समय लिथुआनिया द्वारा मेमेल पर अधिकार करने के कारण विलना-विवाद की हार की कटुता कुछ शात पड गई। वर्साय सधि के अनुसार मेमेल पोलैंड का एक भाग था जिसे जर्मनी ने मित्रराष्ट्रो को समर्पण कर दिया था। मेमेल पर मित्र-राष्ट्रो का एक हाई कमिश्नर राज्य करता था और उसकी सहायता फ्रासीसी फौजें करती थी। यह वात सुनने में आई थी कि डानजिग के हाथ से चले जाने पर पोलैंड ने मेमेल को अपना हिस्सा बनाना चाहा था। मित्रराष्ट्रो ने भी अनुभव किया कि मेमेल का दर्जा भी डानजिग की तरह बना दिया जाय। इस पर लिथुआनिया वाले चिढ गये। जनवरी १९२३ के शुरू में लिथुआनिया की फौजो ने मेमेल में प्रवेश करके फ्रासीसी फौजो को हटा दिया और वहाँ एक अस्थाई सरकार की स्थापना की। सितम्बर में इस सम्पूर्ण विवाद को राष्ट्रसघ के सामने रखा गया। परिषद् ने नार्मन एच डेविस के नेतृत्व में एक विशेष कमीशन नियुक्त किया। परिषद् ने कमीशन की रिपोर्ट स्वीकार कर ली जिसको बाद में १५ मार्च १९२४ को लिथुआनिया तथा मित्रराष्ट्रो ने भी मान लिया। लिथुआनिया को मेमेल पर सार्वभौमिक सत्ता का अधिकार सौपा गया। इस मामले में केवल पोलैंड ने विरोध किया लेकिन उसका प्रयत्न असफल सिद्ध हुआ।

ऊपरी साइलेशिया की समस्या

ऊपरी साइलेशिया के मामले में वर्साय सधि की धाराओ को कार्यान्वित करना कठिन था। सधि में कहा गया था कि जर्मनी और पोलैंड की सीमा एक अन्तर्मित्र राष्ट्रीय आयोग (कमीशन) के सरक्षण में किये गये जनमत सग्रह के आधार पर निर्धारित की जाय। इसके अनुसार २० मार्च १९२१ को जनमत सग्रह हुआ। सरकारी आंकडो के अनुसार जर्मनी को ७०७,६०५ मत तथा पोलैंड को ४७९,३५९ मत पडे। पोलैंड वासियो ने उन जिलो पर दावा किया जहाँ उनकी सख्या अधिक थी। जर्मनी ने कहा कि ऊपरी साइलेशिया प्रात का आर्थिक दृष्टि

से विभाजन करना असम्भव है इसलिए उसके भविष्य का निर्णय वहा के बहुसख्यको द्वारा ही किया जाना चाहिये। जब यह झगडा चल ही रहा था कोरफैन्टी नाम के एक पोलैंड वासी ने कुछ अनियमित फौजो को लेकर साइलेशिया के एक बडे भाग पर हमला बोल दिया। फ्रासीसी फौजो ने खुले तौर पर पोलैंड वासियो का साथ दिया। स्थिति को काबू में करने के लिए उस स्थान को ६ ब्रिटिश बटालियनें भेजनी पडी। अन्तर्मित्र राष्ट्रीय आयोग (कमीशन) में फूट पड गई और अन्त में उसने १२ अगस्त १६२१ को इस मामले को शीघ्र निबटाने के लिये राष्ट्रसघ की परिषद् के सामने रखा। परिषद् ने ऊपरी साइलेशिया का अध्ययन करने के लिए बेल्जियम, ब्राजिल, चीन व स्पेन के ४ सदस्यो की एक समिति बनाई। इस समिति की रिपोर्ट के आधार पर परिषद् ने २० अक्तूबर १६२१ को निर्णय दिया कि ऊपरी साइलेशिया का विभाजन किया जाय। परिषद् ने निर्णय किया कि अधिक सख्या का क्षेत्र जर्मनी को दिया जाय और पोलैंड को खनिज पदार्थो का क्षेत्र सौंपा जाय। १५ मई १६२२ को जर्मनी व पोलैंड ने इस निर्णय को स्वीकार कर लिया और ६ जुलाई को अन्तर्मित्र राष्ट्रीय फौजो ने ऊपरी साइलेशिया खाली कर दिया।

अलबानिया की समस्या

पेरिस के शांति-सम्मेलन ने अलबानिया की समस्याओं का निर्धारण नही किया था। यूगोस्लाविया और यूनान ने अपनी सीमा के उस क्षेत्र पर काबू कर लिया था जिसका निर्धारण १६१३-१४ में किया गया था। अलबानिया का सीमा निर्धारण का प्रश्न उलझ गया। दिसम्बर १६२० को अलबानिया को राष्ट्र-सघ का सदस्य बना लिया गया। राज्य होने के आधार पर अलबानिया की स्वतन्त्रता को मान्यता दी गई। १६२१ में यूगोस्लाविया के १२०० सशस्त्र सैनिको ने अलबानिया पर आक्रमण किया। इससे एक और बाल्कन-युद्ध का खतरा पैदा हो गया। राष्ट्र-सघ की परिषद् ने राजदूतों की एक परिषद् बनाई और उसने १६१३-१४ के सीमा निर्धारण के अनुसार अलबानिया की सीमा निर्धारित की। परिषद् ने अलबानिया से यूगोस्लाविया की सब फौजों के हटाने का आदेश दिया।

मोसुल विवाद

लोजान-सधि के अन्तर्गत समझौता हुआ था कि तुर्की व ईराक की सीमा ६ मास के अन्दर तुर्की व ब्रिटेन के एक मैत्रीपूर्ण समझौते के अनुसार निर्धारित की जाय। ऐसा न होने पर इस मामले को राष्ट्रसघ की परिषद् के समक्ष रखा जाय। दोनो देशों के प्रतिनिधि कुस्तुनतुनियां में मिले लेकिन वे किसी समझौते पर नही पहुँच सके क्योंकि दोनो देशो ने मोसुल के तेल कूपो पर अपना अधिकार का दावा

किया। मुदरोज़ युद्ध-विराम के समय (३० अक्तूबर १९१८) ब्रिटिश फौजो का जिले के एक चौथाई भाग पर कब्जा था लेकिन इसके बाद ८ नवम्बर को ब्रिटिश फौजो ने आगे बढकर मोसुल शहर पर अपना झण्डा फहरा दिया।

६ अगस्त १९१४ को तुर्की ने इस विवाद को परिषद् के सामने रखा। तुर्की ने कहा कि पहले मोसुल पर उसका अधिकार था, युद्ध के समय उस पर कभी अधिकार नही किया गया और वहाँ के लोग तुर्की शासन को चाहते है। ब्रिटेन ने कहा कि प्राकृतिक सीमा व नियमित अन्न इकट्ठा करने के लिये तुर्की विवादास्पद प्रदेश पर अपना अधिकार कायम करना चाहता है। लेकिन तुर्की व ब्रिटेन ने विवादास्पद प्रदेश की स्थिति यथापूर्व बनाये रखने का निश्चय किया। अभाग्यवश दोनो देश उक्त स्थिति को कायम रखने में असफल रहे और दोनो की सीमा पर लडाई छिड गई। यह मामला अक्तूबर १९२४ में फिर परिषद् के सामने रखा गया। अन्तिम निर्णय होने तक एक अस्थायी सीमा निर्धारित की गई जिसका नाम 'ब्रुसेल्स रेखा' रखा गया। १९२५ के शुरु में स्वीडन, हँगरी व बेल्जियम के एक तटस्थ आयोग (कमीशन) ने इस मामले पर विचार आरम्भ किया। सितम्बर में इस आयोग की रिपोर्ट परिषद् के सामने रखी गई। परिषद् ने मोसुल पर तुर्की की सार्वभौम सत्ता का समर्थन किया और सुझाव दिया कि वहाँ की जनता के आर्थिक हित की सुरक्षा उसी समय सम्भव है जब वह ईराक के साथ मिला दिया जाय। इसी दौरान में विश्व न्यायालय ने अपना विचार प्रगट किया कि परिषद् का निर्णय दोनो दलो को मानना चाहिए। लेकिन मोसुल में फिर झगडा होने के कारण परिषद ने इस्कोनिया के जनरल लेडोनर को उक्त विषय में जाच करने के लिए नियुक्त किया। अपनी रिपोर्ट में लेडोनर ने कहा कि तुर्की वासी अस्थायी तुर्की क्षेत्र से ईसाइयो को निकाल रहे है। १६ दिसम्बर १९२५ को परिषद् ने निर्णय किया कि तुर्की-ईराक सीमा 'ब्रुसेल्स रेखा' पर बनाई जाय और ब्रिटेन ईराक पर शासनादेश के रूप में २५ वर्ष तक अपना नियन्त्रण रखे और मोसुल में कुर्दिश अल्पसख्यको के हितो की सुरक्षा के लिये वहाँ के स्कूलो में कुर्दिश भाषा चालू रखी जाय और सरकार में कुर्दिशो को भी नियुक्त किया जाय। इन निर्णयो को ब्रिटेन और ईराक दोनो ने स्वीकार कर लिया। जून १९२६ में एक आंग्ल-तुर्की सधिपत्र पर हस्ताक्षर हुए जिसके अनुसार कुछ तेलकूप तुर्की को मिले।

कोर्फू घटना

१९२३ में राष्ट्रसघ की परिषद् को एक अन्तर्राष्ट्रीय सकटकालीन स्थिति का सामना करना पडा। २७ अगस्त को यूनान व अलबानिया की सीमा निर्धारित करने वाले कमीशन के इटलीवासी अध्यक्ष, अन्य इटालियन अधिकारियो तथा एक दुभाषिये

का यूनान मे मृत्यु का शिकार होना पड़ा। इटली सरकार ने तुरन्त यूनान को एक चुनौती दी जिसमें उससे सरकारी तौर पर क्षमा-याचना को कहा गया। इटली ने ५ करोड़ डालर की क्षतिपूर्ति ५ दिन के भीतर चुका देने की मांग की।

इस चुनौती को स्वीकार करने के लिये २४ घंटे का समय दिया गया। यूनान ने इसे अस्वीकार कर दिया और राष्ट्रसंघ मे अपील की कि ३१ अगस्त को इटली सरकार ने यूनान के द्वीप कोर्फू पर बम वर्षा की। परिषद् में इटली के प्रतिनिधि सालान्ड्रा ने इस मामले को सुलझाने के लिए राष्ट्रसंघ को अयोग्य बताया और कहा कि इटली ने कभी भी युद्ध का इरादा नहीं किया। मुसोलिनी ने कहा कि यह घरेलू मामला है और इसमें बाहरी हस्तक्षेप सहन नहीं किया जायगा। राष्ट्रसंघ ने इस मामले को पेरिस में राजदूतों की परिषद् के सुपुर्द कर दिया। राजदूतों ने कहा कि यूनान में की गई हत्यायें गैर कानूनी थी, इसके अतिरिक्त इटली की चुनौती भी बड़ी कठोर और अन्यायपूर्ण थी। राजदूतों ने सिफारिश की कि यूनान को माफी मांगनी चाहिए, हत्या करने वालों को दण्ड दिया जाना चाहिए और ५ करोड़ डालर की क्षति पूर्ति देनी चाहिए। ये शर्तें मंजूर कर ली गई और २७ सितम्बर को इटली द्वारा कोर्फू छोड़ने पर यूनान और इटली में फिर मैत्री हो गई। निस्सन्देह इसमें राष्ट्रसंघ की विजय हुई लेकिन इससे यह जाहिर हो गया कि वह बड़े देश के खिलाफ विश्वास और दृढ़ता के साथ कार्यवाही नहीं कर सकता।

यूनान-बल्गेरिया मामला

अक्तूबर १९२५ को यूनान व बल्गेरिया के रक्षकों के बीच डेमिरटापू में दो दिन तक गोली चली। परन्तु एथेन्स में इस आशय के समाचार पहुँचने पर कि आक्रमण करने का इरादा पहले बल्गेरिया ने किया यूनान के युद्ध मंत्री ने अपनी सेना को बल्गेरिया के नगर पैट्रिच में घुसने का आदेश दे दिया। २२ अक्तूबर को यूनानी फौजें बल्गेरिया के भीतर ५ मील तक घुस गई और ७० वर्गमील क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया। बल्गेरिया ने राष्ट्रसंघ की परिषद् में यूनान के विरुद्ध अपील की। परिषद् ने दोनों देशों को आदेश दिया कि वे अपनी फौजें अपने-अपने देश में वापस हटा लें। इस आज्ञा का पालन किया गया। एक जांच कमीशन ने निर्णय दिया कि बल्गेरिया पर यूनान का आक्रमण अन्यायपूर्ण था और यूनान को २१०००० डालर क्षतिपूर्ति देनी चाहिए। १ मार्च १९२६ तक यूनान ने यह राशि चुका दी। राष्ट्रसंघ की इस सफलता ने बालकनों में सुरक्षा की भावना उत्पन्न हो गई।

दक्षिण-अमरीकी विवाद

सितम्बर १९३२ में पिरुवियन सेना ने जब अमेजन नदी पर कोलम्बिया के लेटाशिया बन्दरगाह पर कब्जा कर लिया तो परिषद् ने अमरीका से कूटनीतिक समर्थन

प्राप्त कर पिरूवियन सेना पर जोर डाला कि वह उक्त क्षेत्र में हिंसात्मक कार्यवाई न करे और यहाँ से हट जाय। ८ दिसम्बर १६२८ को विवादास्पद क्षेत्र चाको जिले में बोलीविया और परागवे के बीच सशस्त्र सघर्ष छिड गया। इस पर राष्ट्रसघ की परिपद् ने उक्त मामले में हस्तक्षेप करते हुए दोनो दलो से कहा कि वे विवादास्पद क्षेत्र के प्रश्न को शान्तिपूर्ण ढग से सुलझाने का प्रयत्न करे। दोनो देशो ने अन्तर्अमरीकी सम्मेलन के निर्णय को मानना स्वीकार कर लिया। यह सम्मेलन उस समय वाशिंगटन में हो रहा था। सम्मेलन के आदेशानुसार बोलीविया और परागवे के बीच परस्पर आक्रमण न करने सम्बन्धी एक समझौता हुआ। इस समझौने का उद्देश्य केवल उक्त क्षेत्र मे उपद्रव रोकने का था। किन्तु १६३२ में विवादास्पद क्षेत्र पर दोनो देशो में पुन. सग्राम छिड गया। १६३४ मे राष्ट्रसघ के एक जाच कमीशन ने अमानुषिक तथा अन्यायपूर्ण कार्यवाइयो को रोकने के लिए आक्रमणकारी देशो को शस्त्र पहुँचाने पर पावन्दी लगा दी। उसी बीच परागवे ने, जो विवदास्पद क्षेत्र पर अपना दखल जमाए हुए था, राष्ट्रसघ असेम्बली (महासभा) के एक शातिप्रस्ताव को ही अस्वीकार कर दिया। फरवरी १६३५ में परागवे ने राष्ट्रसघ के समक्ष अपना त्यागपत्र प्रस्तुत किया जो दो वर्ष बाद स्वीकार किया गया। इस तरह परागवे और बोलीविया के मामले से राष्ट्रसघ को हाथ धोना पडा। आखिर १६२६ में दक्षिणी अमरीकी राज्यो द्वारा मध्यस्थता करने पर दोनो देशो मे समझौता हो गया।

आर्थिक सहायता

इसमें सदेह नही कि राष्ट्रसघ विकट राजनैतिक मामलो को सफलता से सुलझाने में निहायत विफल रहा लेकिन जिस खूबी के साथ उसने उस समय की डावाडोल आर्थिक स्थिति को सम्भाला वह अत्यन्त सराहनीय है। आस्ट्रिया की गणतत्री सरकार युद्ध विराम के बाद उत्पन्न आर्थिक समस्याओ को सुलझाने में नितात असमर्थ रही। सॉ जर्मे की सधि पर हस्ताक्षर होने के बाद कई सहायता कार्यक्रम हाथ में लिए गए। आस्ट्रिया को उधार अन्न सहायता भेजी गई। इसके अतिरिक्त उसकी आर्थिक हालत को मजबूत बनाने के लिए १६१६ में ब्रिटेन, फ्रास और इटली ने मिलकर उसे ४ करोड ८० लाख डालर पेशगी दिये। अमरीका ने भी आस्ट्रिया को दो करोड ४० लाख डालर दिया। इसके अलावा १६१६ से १६२१ तक अन्तर्राष्ट्रीय कोष से उसे १० करोड डालर ऋण प्राप्त हुआ। इस तरह आस्ट्रिया को पतन के गर्त में गिरने से बचाया जा सका।

इधर आस्ट्रिया भी अपने खर्च में जहा तक कटौती हो सके करने को तैयार हो गया। वहा १४८०० कागजी क्राउन की कीमत एक सोने के क्राउन के बराबर कर दी गई। बचत की दृष्टि से ८०००० अधिकारी नौकरी से बरखास्त कर दिये

गये। इन सब कार्यवाइयों से आस्ट्रिया की आर्थिक स्थिति में इतना परिवर्तन हुआ कि १ जून १९२६ में राष्ट्रसंघ को उस पर से अपना आर्थिक नियन्त्रण उठा लेना पड़ा।

दिसम्बर १९२३ में राष्ट्रसंघ की परिषद् ने हंगरी के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए एक योजना स्वीकार की। इसके अनुसार वहां १—मुद्रा स्फीति को रोकना तथा क्राउन की डगमगाती हालत को स्थिर करना, २—एक स्वतन्त्र बैंक की स्थापना, ३—३० जून १९२६ तक बजट को संतुलित अवस्था में लाना, ४—२५ करोड़ स्वर्ण क्राउन की ऋण सहायता तथा ५—राष्ट्रसंघ द्वारा कमिश्नर जनरल के द्वारा नियन्त्रण रखना था। यह योजना मई १९२४ में लागू की गई। बोस्टन के जेरमिया स्मिथ हंगरी में राष्ट्रसंघ के कमिश्नर जनरल नियुक्त हुए। बजट निर्धारित तिथि से डेढ़ वर्ष पहले ही संतुलित कर लिया गया। १० जून १९२६ को राष्ट्रसंघ की परिषद् ने हंगरी पर से आर्थिक नियन्त्रण हटा लिया।

राष्ट्रसंघ ने १९२४ में यूनान को लगभग ५ करोड़ डालर की विदेशी ऋण सहायता दी जिससे यूनान १९२२ में तुर्की से हुए युद्ध के अपने १५ लाख शरणार्थी बसा सके। शरणार्थियों के बसाने के लिए राष्ट्रसंघ ने एक कमीशन भी नियुक्त किया। इस कमीशन ने ४ वर्षों के भीतर १४३,००० शरणार्थियों को देहातों में और २८००० को नागरिक क्षेत्रों में बसाया। उसने उनके लिए ७६००० मकान बनवाये और उत्पादन क्षेत्र बढ़ाकर दूना कर दिया। इसी तरह बल्गेरिया सरकार को उसके २२०००० शरणार्थियों को बसाने के लिए, अबिसीनिया को अपनी मुद्रा सोने के आधार पर निर्धारित करने और स्वतन्त्र डानजिग नगर को अपना बन्दरगाह सुधारने के लिए विदेशी ऋण दिये गए। इस तरह राष्ट्रीय आर्थिक पुनर्निर्माण द्वारा राष्ट्रसंघ ने अपनी योग्यता का परिचय दिया।

सार का प्रशासन

वर्साय सन्धि के अनुसार राष्ट्रसंघ को सार बेसिन पर १५ वर्ष तक शासन करने का अधिकार मिला। शर्तों के अनुसार परिषद् द्वारा नियुक्त ५ सदस्यों के कमीशन को उक्त क्षेत्र पर शासन करने का अधिकार था। इस कमीशन में एक सदस्य फ्रांस का, एक सार का और तीन सदस्य फ्रांस अथवा जर्मनी को छोड़ कर किसी अन्य देश के होने चाहिए थे। परिषद् ने फरवरी १९२० में अपने दूसरे अधिवेशन में एक फ्रांसीसी देशभक्त एम. रान्ट की अध्यक्षता में एक शासक कमीशन की नियुक्ति की। कमीशन में फ्रांस का प्रभाव अधिक होने के कारण फ्रांस ने सार में ५००० सैनिकों की स्थायी एक सैनिक टुकड़ी कायम रखी और वहां फ्रांसीसी मुद्रा लागू की। यही नहीं बल्कि जर्मन विद्यार्थियों पर फ्रांसीसी स्कूलों में भर्ती होने के

लिए दवाव डाला गया। १९२३ में जब सार के खनिको ने वेतन वृद्धि की माग करते हुए हडताल कर दी तो कमीशन ने उनके विरुद्ध सख्त कार्यवाई की। इस कार्यवाई के विरुद्ध भारी आन्दोलन पैदा हो गया। किन्तु राष्ट्रसघ ने कमीशन की अत्याचारपूर्ण कार्यवाइयो की निन्दा नही की और केवल सुझाव रखा कि विदेशी सेना को हटाकर वहाँ स्थानीय सेना को नियुक्त किया जाना चाहिए। १९२६ में राल्ट ने इस्तीफा दे दिया। उनके स्थान पर कमीशन के अध्यक्ष कनाडा के जार्ज स्टेफेन्स, सर अर्नेस्ट विल्टन (१९२७) और ज्योफरे जी नोक्स (१९३२) नियुक्त किये गये। इन परिवर्तनो से सार की घाटी में शत्रुता की भावना कम हो गई और धीरे-धीरे वहा से सेना हटाली गई। १९३५ में अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षण में वहा जनमत-सग्रह किया गया। मतदान में लगभग ९० प्रतिशत जनता ने सार जर्मनी को वापस करने के पक्ष मे मत दिया। १ मार्च १९३५ को सार जर्मनी को लौटा दिया गया।

डानजिग पर शासन

वर्साय-सधि के अनुसार डानजिग एक स्वतन्त्र नगर घोषित कर दिया गया जिसकी देख-रेख का भार राष्ट्रसघ के हाथ में रहा। राष्ट्रसघ की ओर से डानजिग की देख-रेख उसके एक हाई कमिश्नर को करनी थी। राष्ट्रसघ परिषद् ने डानजिग में अपना एक अस्थायी हाई कमिश्नर नियुक्त किया और मई १९२० में डानजिग की विधान परिषद् निर्वाचित की गई। परिषद् का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर किया गया। १५ नवम्बर को डानजिग नगर सरकारी तौर पर स्वतन्त्र घोषित कर दिया गया और मई १९२२ में उसका सविधान स्वीकार कर लिया गया। सविधान के अनुसार १२० सदस्यो की एक लोकप्रिय विधान सभा तथा २२ सदस्यो की एक सीनेट का निर्माण किया गया। दोनो भवनो में किसी मामले पर मतभेद होने पर उक्त मामले पर जनता की राय लेनी होती थी। सीनेट के ८ सदस्य सरकार के प्रमुख होते थे। नगर के वाहरी सम्बन्ध तथा उसकी सुरक्षा का भार पोलैंड को सौंपा गया। डानजिग वन्दरगाह पर शासन का भार एक कमीशन को सौपा गया जिसमें पोलैंडवासियों और दैंजियरो के वरावर-वरावर सख्या में सदस्य थे। पोलैंड को स्वतन्त्रता दे दी गई कि वह मनमाने ढग से डानजिग वन्दरगाह का उपयोग कर सकता है। राष्ट्रसघ के हाई कमिश्नर का काम पोलैंड और डानजिग के वीच झगडों को निपटाना था। पोलैंड और डानजिग आर्थिक तथा राजनैतिक दृष्टि से अत्यन्त गुथे होने के कारण उनमें कई वार झगडे उठे, जिनमें कुछ परस्पर समझौतो से और कुछ हाई कमिश्नर के हस्तक्षेप से शान्त किये गये। फिर भी स्वतन्त्र डानजिग नगर कई प्रकार के झगडो मे घिरा होने के वावजूद आर्थिक दृष्टि से काफी उन्नति कर गया और उसका व्यापार पहले से चौगुना अधिक वढ गया। १९३९ में डानजिग को जिन बुरे दिनों का सामना करना पडा उनका उल्लेख वाद में किया जायगा।

आदिष्ट प्रणाली

पेरिस शांति सम्मेलन द्वारा निर्मित आदिष्ट प्रणाली निरीक्षणार्थ राष्ट्रसंघ के आधीन कर दी गयी। शान्ति संधियों के अन्तर्गत जर्मनी को उपनिवेशों से अपना सारा अधिकार उठा कर मित्र राष्ट्रों के सुपुर्द कर देना पड़ा। इधर तुर्की को भी अरब देशों पर से अपना कब्जा हटा लेना पड़ा। जर्मनी और तुर्की के अधिकार से मुक्त क्षेत्रों को राष्ट्रसंघ के सदस्य राष्ट्रों के आधीन कर दिया गया, इस शर्त पर कि वे वहां के निवासियों के हितों का ध्यान रखते हुए शासन करेंगे।

उक्त व्यवस्था के अनुसार निम्नलिखित निर्णय किये गये (१) शासनादेश प्रदेशों पर शासन करने वाले आदिष्ट राज्य उस देश की प्रगति की वार्षिक रिपोर्ट राष्ट्रसंघ की परिषद् को प्रस्तुत करेंगे। (२) प्रत्येक आदिष्ट प्रदेश पर नियन्त्रण अथवा शासन संरक्षण व्यवस्था राष्ट्रसंघ के परिषद् के आदेशानुसार होगी और (३) आदिष्ट राज्यों की वार्षिक रिपोर्ट का निरीक्षण करने के लिए एक स्थायी कमीशन (आयोग) की नियुक्ति की जायेगी।

शासन सुविधा के लिए आदिष्ट प्रदेशों को "अ," "ब," और "स" तीन वर्गों में विभाजित किया गया। वर्ग "अ" में तुर्की के भूतपूर्व प्रदेश ईराक, सीरिया, लेबनान, फिलस्तीन तथा ट्रांसजोर्डनिया रखे गये। ये प्रदेश इतने विकसित थे कि एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में स्थित रह सकते थे, किन्तु उनमें प्रशासकीय योग्यता का कुछ अभाव था इसलिए उन्हें आदिष्ट राज्यों के आधीन तब तक के लिए रखा गया जब तक कि वे अपने पर स्वयं शासन करने के योग्य न बन जायें। "ब" वर्ग में केन्द्रीय अफ्रीका स्थित ६ शासनादेश क्षेत्रों को रखा गया। ये क्षेत्र स्वायत्त शासन के योग्य नहीं थे, किन्तु आदिष्ट राज्यों को आदेश था कि वे इन क्षेत्रों में दास प्रथा व अस्त्र-शस्त्र व्यापार को बन्द करें और केवल पुलिस अथवा सुरक्षा के अतिरिक्त और किसी काम में आदिवासियों का प्रयोग न करें। "स" वर्ग वाले शासनादेश क्षेत्रों के जो दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका तथा प्रशान्त-द्वीप आदि थे और जो कि कम जनसंख्या अथवा छोटे या सांस्कृतिक केन्द्रों से दूर स्थित थे उनका शासन प्रणाली के अनुसार ही शासित होना सर्वोत्तम समझा गया। आदिष्ट प्रदेशों के वितरण का कार्य मित्र राष्ट्रों को सौंपा गया। १९१९ में शान्ति सम्मेलन के चार बड़ों ने "ब" और "स" वर्ग वाले क्षेत्रों को उनके निकटवर्ती सरकारों के हाथ सौंपा। अप्रैल १९२० में सानरीमो सम्मेलन में वर्ग "अ" के क्षेत्रों का इस प्रकार वितरण किया गया कि फिलस्तीन, ट्रान्सजोर्डनिया तथा ईराक ग्रेट ब्रिटेन को मिले और सीरिया तथा लेबनान फ्रांस को। वर्ग 'ब' में केमरून (एक छठा), जर्मन पूर्वी अफ्रीका (टैंगानियाका) तथा टुगोलैंड का एक तिहाई भाग ग्रेट ब्रिटेन को, केमरून (पांचवा छठा हिस्सा) तथा

तुगोलैन्ड (दो तिहाई) फ्रास को और राउण्डा-उरन्डी बेल्जियम के आधीन कर दिए गए। "स" में जर्मन दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका दक्षिण अफ्रीकी सघ को, जर्मन समोआ न्यूजीलैंड को, नौरू के द्वीप ब्रिटिश सरकार को, भूमध्य रेखा के दक्षिण स्थित भूतपूर्व जर्मन द्वीप आस्ट्रेलिया को और भूमध्य रेखा के उत्तर में स्थित भूतपूर्व जर्मन द्वीप जापान को दे दिये गये।

सन् १९२० के अन्त में एक स्थायी आदिष्ट कमीशन की स्थापना की गयी। इस कमीशन में ९ सदस्य थे जिनमें अधिकाश सदस्य गैर आदिष्ट प्रदेशो के नागरिक थे। १९२७ में सदस्यो की सख्या बढाकर ११ कर दी गई। शामिल किए गए दो सदस्यो में एक जर्मनी का और एक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ का प्रतिनिधि था। उक्त कमीशन का काम केवल सलाह देना था किन्तु व्यावहारिक तौर पर वह आदिष्ट क्षेत्रो के निवासियो की वार्षिक रिपोर्टों का निरीक्षण भी करता था।

इस प्रणाली के अनुसार आदिष्ट देशो को अपना शासक चुनने का अधिकार था। किन्तु ईराक, फिलस्तीन और सीरिया में जनता की इच्छा की उपेक्षा की गई और उनकी राय नही ली गई। मेसोपोटामिया में अरबो ने ब्रिटिश शासनादेश के विरुद्ध विद्रोह कर दिया जिससे ब्रिटेन को ईराक सरकार को मान्यता देनी पडी। हेजाज के बादशाह हुसेन के शाहजादे फैजल को ईराक का शासक नियुक्त किया गया। ३ अक्तूबर १९३२ को ईराक राष्ट्रसघ का ५७ वाँ सदस्य बन गया। इधर फिलस्तीन मे अरबो और यहूदियो के बीच दगा बढता गया और ब्रिटेन उनमें समझौता कराने में निहायत असफल रहा। सीरियाई जनता को उनकी इच्छा के प्रतिकूल फासीसी नियत्रण में कर देने से सीरिया में फासीसी शासन के विरुद्ध १९२७ तक विद्रोह चलता रहा। तुगोलैंड और कैमरून की बाहरी आक्रमण से रक्षा के लिये फ्रास को वहाँ की सेनाओं का प्रयोग करने की आज्ञा दी गई। पश्चिमी समोआ क्षेत्र में विद्रोह करने वालो के खिलाफ सख्त कार्यवाई की गई। किन्तु बाद में आदिष्ट प्रणाली की घोर आलोचना करते हुए उससे सहयोग हटाने का निश्चय किया गया।

स्थाई आदिष्ट कमीशन की रिपोर्ट में बताया गया कि शासनादेश प्रदेशो की जनता को अपनी शिकायतें पेश करने का मौका नही दिया गया जिससे उनमें असन्तोष उठा और बाद में यही विद्रोह का कारण बन गया।

अल्प-सख्यको की रक्षा

१९१९ में यूरोप के पुनर्निर्माण के समय राष्ट्रसघ को करीब ३ करोड अल्पसख्यको की समस्या का सामना करना पडा। इनमें से अधिकाश को अल्प-सख्यको के लिये हुई सन्धियो के अतर्गत सरक्षण प्राप्त था। ये सधिया केन्द्रीय तथा

दक्षिण पूर्वी यूरोप के १५ राज्यो और मित्र राष्ट्रो के बीच हुई थी। इन संधियो के उद्देश्य इस प्रकार थे १ सरक्षित लोगो के जीवन और स्वतत्रता की रक्षा करना, २. सरक्षित लोग जो भी धर्म अथवा विचार चाहे अपना सके यदि वह सार्वजनिक शान्ति व व्यवस्था के लिये घातक न हो, ३. सरक्षित देशो के सभी व्यक्तियो को नागरिकता का अधिकार हो, ४ अदालत के सामने सबके साथ समान व्यवहार हो और उन्हे समान सुविधा तथा नौकरी के सुयोग प्राप्त हो, ५ व्यापारिक तथा धार्मिक मामलो और प्रेस तथा अदालत में किसी भी भाषा का प्रयोग करने की स्वतत्रता हो और ६. अल्पसख्यको को उनकी ही भाषा में शिक्षा की व्यवस्था हो। अल्पसख्यको को राष्ट्रसघ के सरक्षण में कर दिया गया।

राष्ट्रसघ को अल्पसख्यको सम्बन्धी अपनी नीति पर कभी-कभी काफी आलोचना का सामना करना पडता था। चूँकि उक्त व्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय नही थी इसलिये वे देश जो अल्पसख्यक सधि से सम्बन्धित नही थे अल्पसख्यको के साथ निर्दयता से व्यवहार करते थे। यहाँ तक कि उन देशो को भी जिनका सधियो में हाथ था अल्पसख्यको का पूर्ण सरक्षण प्राप्त नही हुआ। इनमें से रूमानिया और पोलैंड के नाम विशेष उल्लेखनीय है। राष्ट्रसघ की परिषद् ने कभी भी किसी राज्य को आपत्तिजनक कार्यवाइयो के लिए शक्तिशाली तरीके से नही रोका। जर्मनी के राष्ट्रसघ का सदस्य बन जाने पर राष्ट्रसघ के कार्यक्रम में अल्पसख्यको के प्रश्न ने काफी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। दिसम्बर १९२८ मे जर्मन प्रतिनिधि डा० स्ट्रैसमैन ने अल्पसख्यक सम्बन्धी राष्ट्रसघ के रवैये और उसके कदम की आलोचना की। इसके फलस्वरूप अल्पसख्यको सम्बन्धी राष्ट्रसघ की वर्तमान नीति में परिवर्तन करने का निश्चय किया गया। १९२९ में राष्ट्रसघ परिषद् के अध्यक्ष और दो प्रतिनिधियो को लेकर "अल्पसख्यक समिति" की स्थापना की गई। समिति ने निर्णय किया कि अल्पसख्यको के मामलो को परिषद् के समक्ष प्रस्तुत किया जाया करे अथवा नहीं।

समिति के निर्णयानुसार परिषद् ने अल्पसख्यकों के विवाद से सम्बन्धित सरकारो पर अपना निर्णय लादने के बजाय दोनो दलो में समझौता कराने का रास्ता अख्तियार किया। किन्तु इस हालत मे भी वह स्थायी शान्ति कायम रखने में नितान्त असफल रही और इसने सारी व्यवस्था भग हो गई।

१९३४ में पोलैंड ने अल्पसख्यकों की रक्षा करने मे सहयोग देने से इन्कार कर दिया। उसने कहा कि जब तक इस सम्बन्ध में कोई सुदृढ व्यवस्था अपना नही ली जाती अल्पसख्यको की रक्षा में वह सहयोग नही दे सकता। पोलैंड की नीति और राज्यों ने भी अपनानी आरम्भ कर दी और राष्ट्रसघ को सहयोग देना बन्द कर दिया।

जर्मनी यहूदी अल्पसख्यको की रक्षा के लिये किसी तरह से सधि से बधित नही था। सितम्बर १९३५ के नूरेम्बर्ग के कानूनो के अन्तर्गत यहूदी अल्पसख्यक जर्मनी की नागरिकता से वचित कर दिए गये। उनके बच्चो को सार्वजनिक स्कूलो में भर्ती होने से रोक दिया गया। इसके अतिरिक्त और कई अत्याचारपूर्ण कार्यवाइयाँ यहूदियो के विरुद्ध अपनाई गई। किन्तु उक्त अत्याचार को बन्द करने के लिये राष्ट्र-सघ कोई भी कदम उठा न सका।

वडे विवादो मे मध्यस्थता करने मे राष्ट्रसघ की असफलता

ऐसा प्राय देखा गया कि जिन वडे विवादो में वडे देशो का हाथ होता था उन विवादो में मध्यस्थता करने में राष्ट्रसघ प्रायः असफल होता था। इस तरह वह केवल साधारण विवादो को ही शात करने में सफल रहा।

मचूरिया की समस्या

राष्ट्रसघ को प्रथम सवसे वडी असफलता उस समय मिली जव वह मचूरिया में जापानी आक्रमण को रोकने में नितात असमर्थ सिद्ध हुआ। १८ सितम्बर १९३१ की रात को मुकदेन के समीप दक्षिणी मचूरिया रेलवे लाइन पर एक बम फटा। जापानी सैनिक अधिकारियो ने इस आधार पर कि यह आतकवादी कार्यवाई है दक्षिणी मचूरिया पर कब्जा कर लिया। तीन दिन वाद चीन ने राष्ट्रसघ में अपील की। राष्ट्रसघ ने एक प्रस्ताव स्वीकार कर जापान से अपनी फौजें मचूरिया से हटा लेने को कहा। जापान ने राष्ट्रसघ के आदेश की उपेक्षा की और उसने उत्तरी मचूरिया मे सैनिक कार्यवाई जारी रखी। इस पर राष्ट्रसघ की परिषद् ने अमरीका से अनुरोध किया कि वह इस सम्बन्ध में आवश्यक जाँच पड़ताल करे। किन्तु पृथक्‌वादी अमरीकी प्रेसिडेन्ट हूवर तथा विदेश मन्त्री स्टिमसन ने राष्ट्रसघ के इस निमत्रण को अस्वीकार कर दिया।

२४ अक्तूबर को परिषद् ने दूसरी वार जापान को आदेश दिया कि वह अपनी फौजें तीन सप्ताह के भीतर मचूरिया से हटा ले। किन्तु जापान ने इस आदेश की जरा भी परवाह न की और वह मचूरिया में जमा रहा। दिसम्बर १० को परिषद् ने लार्ड लिटन की अध्यक्षता में ५ सदस्यो का एक आयोग (कमीशन) की नियुक्ति की जिसे मचूरिया की स्थिति का अध्ययन करने का काम सौंपा गया। ४ मार्च १९३२ को जापानी फौजो ने आगे वढ कर चीनी वन्दरगाह शघाई पर अपना कब्जा जमा लिया। इस पर चीन ने राष्ट्रसघ की महासभा मे मध्यस्थता के लिये माँग की। महासभा ने इस पर दो प्रस्ताव स्वीकार किये जिसमें से एक में शघाई से जापानी फौजो के अविलम्ब निष्क्रमण की माग और दूसरे में स्टिमसन के उस प्रस्ताव को स्वीकार करना जिसमें मचूरिया में जापानी शासन को मान्यता न देने का

उल्लेख था। ब्रिटेन के विदेश मन्त्री सर जान साइमन के अनुसार जापान के आक्रमण का उद्देश्य एशिया को साम्यवाद से बचाना था और यही कारण था कि राष्ट्रसंघ उसके विरुद्ध जल्दी कठोर कदम नहीं उठा पाता था। इसी बीच जापान ने समस्त मंचूरिया पर कब्जा कर लिया। इसने सितम्बर में राष्ट्रसंघ के आदेश का उल्लंघन कर मंचूरिया को अपना उपनिवेश घोषित कर दिया। यही नहीं उसने चीन के भूतपूर्व शासक हेनरी पियूई को मंचूरिया में अपना संरक्षक नियुक्त कर दिया। मंचूरिया में जापान के अधीन मंचुको सरकार की स्थापना कर दी गई। इसी बीच चीन के साथ युद्ध विराम संधि हो जाने से जापान ने शंघाई बन्दरगाह को खाली कर दिया। इधर लिटन कमीशन ने जापानी आक्रमण से प्रभावित क्षेत्रों का दौरा कर एक लाख शब्दों की रिपोर्ट राष्ट्रसंघ में प्रस्तुत की। रिपोर्ट में जापान के साथ उचित आधार पर समझौता करने की सिफारिश भी की गई थी। राष्ट्रसंघ ने जापानी कार्यवाइयों की निन्दा करते हुए कमीशन की सिफारिशें स्वीकार कर ली। किन्तु जापान ने समझौता सम्बन्धी सिफारिश को अस्वीकार करते हुए २७ मार्च १९३३ को राष्ट्रसंघ से इस्तीफा दे दिया। राष्ट्रसंघ के अन्य सदस्यों राष्ट्रों ने मंचुको सरकार को केवल मान्यता देने से अस्वीकार कर दिया।

इथोपिया पर इटली का आक्रमण

इटली में तानाशाही शासन के अधीन जनसंख्या में वृद्धि और युद्ध के कारण जनता की आर्थिक स्थिति खराब होने लगी थी। मुसोलिनी ने जनता में उठता विद्रोह तथा असंतोष को शान्त करने के लिये शिकारी मनोवृत्ति अपनाई। उसकी आंखें अफ्रीका की ओर उठीं। २० जुलाई १८३४ में आंग्ल-इटालियन मिस्त्री समझौता से इटालियन लीबिया की सीमा और बढ़ा दी गई। ५ दिसम्बर १९३४ को इथोपिया सीमा में ओगडन रेगिस्तान स्थित उआल्उआल में इथोपियाई तथा इटालियन फौजों के बीच गोली चल गई। ३ जनवरी १९३५ को इथोपिया के बादशाह हेली सलेसी ने राष्ट्रसंघ में अपील की। इस अपील के चार दिन बाद ही फ्रांसीसी विदेश मन्त्री पेरी लेवेल ने मुसोलिनी के साथ मैत्री समझौता पत्र पर हस्ताक्षर किया। स्मरण रहे कि फ्रांस इस बात के लिये प्रयत्नशील था कि इटली के साथ किसी तरह मित्रता करके जर्मन शस्त्रीकरण नीति का विरोध किया जाय। समझौते के अनुसार इटली ने वायदा किया कि वह आस्ट्रिया की सुरक्षा तथा जर्मनी सम्बन्धी मामलों पर फ्रांस की राय से ही काम करेगा। फ्रांस ने इटली को जीबोटी अदिस अबाबा रेलवे के २५०० शेयर, फ्रांसीसी सोमालीलैण्ड रेगिस्तान का ३०९ वर्ग मील और लीबिया के दक्षिण स्थित रेगिस्तान का ४४ हजार वर्गमील भाग दे दिया। फ्रांस के विदेश मन्त्री लेवेल ने जर्मनी के विरुद्ध इटली का समर्थन

करने के लिये तानाशाही साम्राज्यवाद का समर्थन किया। १६३५ की वसन्त ऋतु मे इटली इथोपिया पर आक्रमण की तैयारी के लिये सैनिको, विमानो तथा टैंको के साथ स्वेज नहर से होकर आगे बढा। १ अक्टूबर १६३५ को मुसोलिनी ने इथोपिया पर आक्रमण करने के लिये अपनी सेना को आज्ञा दी। दूसरी ओर इटली ने राष्ट्रसघ को सूचित किया कि इथोपिया ने इटली के विरुद्ध युद्ध का एलान कर दिया है। इटली के आक्रमण के चार दिन बाद परिषद् ने इटली के आरोप का खडन करते हुए उस पर मन्तव्य किया कि वह राष्ट्रसघ के प्रतिश्रव का उल्लघन कर युद्ध करने के लिये आगे बढ रहा है। १० अक्टूबर को राष्ट्रसघ महासभा में उक्त मन्तव्य का समर्थन किया गया। विरोध करने वालो में इटली, आस्ट्रिया और हगरी थे। इटली के विरुद्ध आरोप लगाते हुए परिषद् ने निम्न पाच प्रस्ताव स्वीकार किये —

(१) इथोपिया को शस्त्र निर्यात पर लगे प्रतिबन्ध को हटा कर वही प्रतिबन्ध इटली के विरुद्ध लागू कर दिया जाय। (२) इटली को ऋण तथा बैंको से उधार देना बन्द कर दिया जाय। (३) इटली से समस्त आयात रोक दिया जाय। (४) इटली को कच्चे माल का निर्यात बन्द कर दिया जाय। (५) राष्ट्रसघ के सदस्यो मे पारस्परिक सहयोग कायम करके प्रतिबन्धो से हुई क्षति को कम करना। परन्तु तेल पर कोई प्रतिबन्ध नही लगाया गया। कमजोर मोर्चाबन्दी और कूटनीतिक दृष्टि से अयोग्य होने के कारण इथोपिया को इटली के सामने झुकना पडा। २ मई १६३६ को इथोपिया के बादशाह हेली सेलेसी जरूसलम को भाग खडे हुए और राष्ट्रसघ के महामन्त्री को तार दिया कि मै इथोपियाई जनता को नष्ट होने से बचाने के लिए अपनी राजधानी से भाग रहा हू और जब तक इथोपिया स्वतन्त्र नही हो जाता, मैं वहा नही लौटूंगा। आपने राष्ट्र-सघ से अपील की कि वह इथोपिया पर इटली के आधिपत्य को मान्यता न दे और उसके विरुद्ध अपनी कार्यवाई जारी रखे।

४ जुलाई १६३६ को राष्ट्र-सघ साधारण सभा के अध्यक्ष वानजीलैंड (बेल्जियम के प्रधानमत्री) ने रोम से आया एक पत्र पढकर सुनाया, जिसमें लिखा था "स्वतन्त्रता, न्याय, सभ्यता तथा शाति के प्रतीक इटली की सेना का इथोपियन जनता ने आदर मे स्वागत किया। इटली की सरकार भी इथोपिया मे ऐसा ही कार्य करेगी, जो राष्ट्र-सघ के प्रतिश्रव के अनुसार होगा और जिससे जनता को लाभ होगा।"

इधर इथोपिया के बादशाह हेली सेलेसी अपने देश के लिए सदस्य राष्ट्रो का समर्थन प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे। उन्होने राष्ट्रसघ की साधारण सभा म

कांपते हुए शब्दों में कहा—"यदि कोई शक्तिशाली सरकार कमजोर जनता को कुचल रही हो, उस हालत में उस जनता को हक है कि वह राष्ट्र-संघ से न्याय के लिए अपील करे जो निष्पक्ष होकर मानवता के नाम पर उसकी सुनवाई करे।" किन्तु उक्त अपील का राष्ट्र-संघ पर कोई असर नहीं हुआ और इथोपिया सदा के लिए नष्ट हो गया।

स्पेन का गृह युद्ध

१९२३ में राजा अल्फेंजो १३वें ने जनरल प्रिमोडी रिवेरा को सेना विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया और शासन का सारा भार सेना के आधीन आ गया। इससे पार्लियामेंट भंग हो गई और नागरिक शासन समाप्त होकर वहां सैनिक तानाशाही शासन कायम हो गया। सैनिक शासन स्पेन में ७ वर्ष तक रहा। १९३१ में राजा अल्फेंजो गद्दी से अलग हो गये और स्पेन में जनतंत्री गणतन्त्र की स्थापना हुई। इसमें भूतपूर्व सैनिक सरकार का एक भी अधिकारी नहीं रखा गया।

१९३१ से १९३६ तक स्पेन की नई जनतंत्री सरकार को प्रतिक्रियावादी और साम्यवादी विचारों में संघर्ष चलते रहने से काफी डावाडोल स्थिति का सामना करना पड़ा। जुलाई १९३६ में स्पेनिश मोराक्को के सेनापति जनरल फ्रैंको ने वहां सैनिक विद्रोह की घोषणा कर दी। वह भारी फौज के साथ स्पेन में घुस आया और दक्षिण तथा पश्चिमी प्रांतों पर कब्जा कर लिया। नवम्बर में विद्रोही जब मैड्रिड पहुंचे तो मोरक्को की सरकार भाग कर वैलेंसिया चली गई। विद्रोहियों को इटली और जर्मनी का सहयोग प्राप्त था। ये दोनों देश विद्रोहियों को सेना, गोलाबारूद, विमान तथा टैक्निकल विशेषज्ञों की सहायता कर रहे थे। १८ नवम्बर १९३६ को रोम और बर्लिन की सरकारों ने फ्रैंको को स्पेन का शासक स्वीकार कर लिया। स्पेन सरकार के वफादार लोगों को रूस का समर्थन प्राप्त था। इस तरह स्पेन जनतंत्री व तानाशाही और साम्यवादी तथा फासिस्टवादी विचारधाराओं के संघर्ष का एक बड़ा मैदान बन गया। अन्त में यूरोप के २७ राज्यों के बीच एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार समझौते में सम्मिलित राज्यों ने स्पेन के किसी भी पक्ष की सहायता न करने का प्रण किया। लार्ड प्लाईमाउथ की अध्यक्षता में लन्दन में एक अन्तर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप न करने वाली समिति की स्थापना की गई। इस समिति का काम शस्त्रों के आयात-निर्यात का निरीक्षण तथा जांच करना था किन्तु इटली, जर्मनी तथा पुर्तगाल आरम्भ से ही समझौता-विरोधी कार्यवाई करते रहे और उन्होंने समझौते को तनिक भी महत्व न दिया जिसके कारण समझौता नितान्त असफल रहा। समझौता के विफल हो जाने से फ्रैंको को इटली और जर्मनी से शस्त्र तथा गोला-बारूद खरीदने का मौका मिल गया। २ अक्तूबर १९३७ को राष्ट्र-संघ की महासभा ने आदेश दिया कि स्पेन को

भूमि पर जो विदेशी फौजें पडी हुई है, वे अविलम्ब हटा ली जाय। इटली और जर्मनी ने अपनी फौजे हटाने से साफ इन्कार कर दिया, किन्तु इस पर राष्ट्र-सघ कुछ भी नही कर सका। नतीजा यह हुआ कि स्पेन मे गृह-युद्ध जारी रहा। मार्च १९३९ मे मैड्रिड और वारसिलौना पर विद्रोहियो का कब्जा हो जाने के साथ ही स्पेन का तीन वर्षीय युद्ध समाप्त हो गया। इस तरह स्पेन मे फ्रैंको सरकार की स्थापना हो गई। ब्रिटेन, फ्रास और अमरीका ने फ्रैंको सरकार को जनता की वास्तविक सरकार कह कर मान्यता दी। इस तरह राष्ट्रसघ की उपेक्षा और अप्रभावशाली ताकत के कारण स्पेन के जनतन्त्री शासन का अन्त हो गया।

चीन जापान युद्ध

मार्च १९३३ में जापान राष्ट्र सघ से अलग हो गया और मचूरिया पर उसने अपना अधिकार सुदृढ बनाये रखा। अप्रैल १९३४ में उसने 'जापानी मुनरो सिद्धात' की घोषणा करते हुए दावा किया कि प्रशात क्षेत्र में शाति स्थापना जापान ही कर सकता है। घोषणा मे कहा गया कि पूर्वी एशिया मे शाति स्थापना के काम में केवल चीन को छोड कर और कोई देश भाग नही ले सकता। जापान ने यह भी चेतावनी दी कि विदेशी शक्तियो ने यदि चीन को किसी भी तरह का सहयोग दिया—चाहे वह टैक्निकल हो अथवा आर्थिक—उसका परिणाम वडा भयकर होगा। १९३५ मे जापान ने पैंगिग, तेनसिन तथा चाहर पर कब्जा कर वहाँ पूर्वी होपे स्वायत्त सरकार के नाम से एक कठपुतली सरकार की स्थापना कर दी। १९३६ मे उसने भीतरी मगोलिया के एक क्षेत्र पर कब्जा कर लिया और वहा एक दूसरी स्वायत्त सरकार की स्थापना कर दी। जापानी सैनिक अधिकारियो ने चीनी रीति रिवाजो की उपेक्षा कर उत्तरी चीन में जापानी माल की खपत वढानी शुरू कर दी और चीनी व्यापार पर कब्जा कर लिया। ७ जुलाई १९३७ को लुकावो चिआवो में जापानी और चीनी सैनिको के बीच मुठभेड हो गई और जापान ने युद्ध का एलान किये बिना चीन पर हमला कर दिया। जापानी विदेश मत्री हिरोता ने घोषणा की कि विशाल चीनी दीवार के दक्षिण में एक नये कठपुतली-राज्य की स्थापना की जायगी। उन्होने अपनी घोषणा में कहा पूर्वी एशिया में जापान की नीति जापान, मचूकूवो तथा चीन की बुनियाद को परस्पर समझौता तथा सहयोग से मजबूत तथा स्थायी वनाना है। जापान की नीति अपने को चीन तथा मचूकूवो के कम्युनिस्ट आक्रमण से रक्षा करना है। इस घोषणा के तत्काल वाद ही जापानी सेना ने शघाई के एक क्षेत्र पर कब्जा कर लिया और चीन को अपनी राजधानी नानकिग मे हटाकर हाकवो और वाद में चुगकिग ले जाने के लिये आग्रह किया।

सितम्बर १९३७ मे चीन ने राष्ट्रसघ मे अपील की और उसका मामला एक सुदूरपूर्वी परामर्शदातृ समिति को सौंप दिया गया। चीन ने शिकायत की कि जापान

ने चीन पर आक्रमण कर १९२२ में हुई ९ देशों की संधि का उल्लंघन किया है। चीन की शिकायतें राष्ट्रसंघ की साधारण सभा ने स्वीकार करली और निश्चय किया कि राष्ट्रसंघ के सदस्य राष्ट्र ऐसी कोई भी कार्यवाई न करें जिससे कि चीन को धक्का पहुँचे अथवा उसे कमजोर बनाये। इसके अतिरिक्त सदस्य राष्ट्रों से कहा गया कि वे जहां तक संभव हो सके चीन की मदद करें। नवम्बर में ९ राष्ट्रों की संधि से सम्बन्धित राष्ट्रों (जापान के अतिरिक्त) का एक सम्मेलन ब्रुसेल्स में हुआ किन्तु बिना किसी निर्णय के वह स्थगित हो गया। १९ सितम्बर १९३८ में हुए राष्ट्रसंघ की महासभा के १९ वें अधिवेशन में चीन ने जापान के विरुद्ध कार्यवाई की अपील की किन्तु इस बार यह साफ कह दिया गया कि कार्यवाई का कदम उठाना सदस्य राष्ट्रों की इच्छा पर है यह उन पर जबर्दस्ती लादा नहीं जा सकता।

चीन को राष्ट्रसंघ से कोई सहायता न मिलते देख साम्राज्यवादी जापान ने राष्ट्रवादी नेता को बुरी तरह परास्त कर अमोय, कैंटन तथा हैनान के द्वीप पर अधिकार जमा लिया। मार्च १९४० में जापान ने राष्ट्रवादी चीन के गद्दार वांग चिंग-वाई के अधीन नानकिंग में एक नई कठपुतली सरकार की स्थापना कर दी। वांग चिंग-वाई ने जापानी संरक्षण में रहना स्वीकार कर लिया। सन् १९४१ के अन्त में चीनी युद्ध द्वितीय विश्व युद्ध में परिवर्तित हो गया। इस तरह राष्ट्रसंघ चीन को जापानी हमले से रक्षा करने में निहायत असफल सिद्ध हुआ।

१९३८ में जर्मनी ने आस्ट्रिया पर कब्जा कर लिया और चेकोस्लोवाकिया को अपनी सीमा में मिला लिया। उसने १९३९ में अल्बानिया पर भी कब्जा कर लिया। ३ सितम्बर १९३९ को जर्मनी ने डानजिग और पोलैंड के गलियारे पर हमला कर दिया और वहीं से द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ। इन दिनों में राष्ट्रसंघ ने कई बार विश्व शान्ति प्रस्ताव स्वीकार किये किन्तु युद्ध को रोकने के लिए उसने कोई ठोस कार्यवाई नहीं की। न तो उसमें सैनिक ताकत थी और न प्रभावशाली आवाज जिससे युद्ध को रोका जा सके। फल यह हुआ कि १९३९ के अन्त तक यह संस्था सदा के लिये समाप्त हो गई। एरियाना पार्क स्थित श्वेत-प्रासाद जिसमें राष्ट्रसंघ का निवास था वहीं उसकी कब्र बनी।

अन्त्येष्टि-क्रिया

३ दिसम्बर १९३९ को रूस ने फिनलैंड पर आक्रमण किया। फिनलैंड ने राष्ट्रसंघ से अपील की कि साम्यवादी आक्रमण से उसकी रक्षा की जाय और आक्रमणकारी के खिलाफ अविलम्ब सख्त कार्यवाई की जाय। अर्जेंटाइना ने प्रस्ताव रखा कि रूस को राष्ट्रसंघ से निकाल दिया जाय किन्तु रूस ने उक्त प्रस्ताव सम्बन्धी बहस में भाग लेने से इनकार कर दिया। इस पर राष्ट्रसंघ ने

रूस के विरुद्ध अर्जेण्टाइना का प्रस्ताव निर्विरोध स्वीकार कर घोषणा की कि चूंकि सोवियत संघ ने राष्ट्रसंघ-प्रतिश्रव का उल्लघन किया है इसलिए वह राष्ट्रसंघ का सदस्य नही है। किन्तु रूस के राष्ट्रसंघ से हटाये जाने से फिनलैंड का उससे कोई लाभ नही हुआ क्योंकि इससे फिनलैंड पर रूस का आक्रमण बन्द नही हुआ। हा इतना जरूर हुआ कि राष्ट्रसंघ के कुछ सदस्यो ने फिनलैंड की दशा खराब देख उसे नैतिक तथा वस्तुओ से सहायता दी। किन्तु जो कुछ सहायता मिली वह अपर्याप्त थी और वह भी काफी देर में पहुँची। इसका परिणाम यह हुआ कि फिनलैंड बुरी तरह परास्त हुआ और १२ मार्च १९४० को उसने रूस के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। लगभग ७ वर्ष तक (१९३९-४६) राष्ट्रसंघ एक मृत प्राय संस्था के रूप में रहा।

द्वितीय विश्व-युद्ध विराम वार्ता के बाद ८ अप्रैल १९४६ को राष्ट्रसंघ की महासभा की अन्तिम बैठक जनेवा मे हुई। इसमे ३४ देशो के प्रतिनिधियो ने भाग लिया। महासभा के अध्यक्ष ने अपने अन्तिम भाषण मे कहा "हम जानते है कि हम में नैतिक उत्साह का अभाव है और यह भी कि कई जगह जहाँ हमें सख्ती से काम लेना चाहिये था वहाँ हमने ढिलाई की तथा अपने निर्णय एव नियमो को लागू करवाने में निहायत असफल रहे।" अध्यक्ष के भाषण के बाद उपाध्यक्षो का चुनाव हुआ। उपाध्यक्ष के ८ स्थानो मे से जब अर्जेण्टाइना को एक भी प्राप्त नही हुआ तो वह भवन त्याग कर बाहर चला गया। इस पर सर हार्टले शा क्रास ने कहा, "लेकिन यह तो राष्ट्रसंघ की अन्त्येष्टि क्रिया का समय है। इस समय इस प्रकार का दगा करने से क्या लाभ है।" इस तरह राष्ट्रसंघ को १९ अप्रैल १९४६ को एरियाना पार्क में दफना दिया गया। राष्ट्रसंघ का दफन करते हुए कहा गया "आज से राष्ट्रसंघ की कोई बैठक नही होगी और वह सदा के लिये समाप्त हो गया।"

राष्ट्रसंघ के पतन का कारण

इसमे संदेह नही कि युद्ध को समाप्त कर शांति स्थापना के लिये राष्ट्रसंघ का निर्माण मानवता के इतिहास मे एक अपूर्व प्रयास था। यद्यपि अपने उद्देश्यो तक पहुँचने मे यह पूर्ण रूप मे विफल रहा किन्तु सभ्यता के इतिहास में शाति स्थापना का यह प्रयोग काफी महत्वपूर्ण और अपूर्व था। अब हमें देखना है कि वे कौन से ऐसे कारण थे जिनके कारण यह प्रयोग असफल रहा क्योंकि इससे हमें आगे बढने में काफी सुविधा हो जायेगी। हम पिछली कमजोरियो से पाठ लेकर आगे सावधानी से बढ सकेंगे। हमें मालूम हो जायेगा कि थोडे से लोगो की आतंकवादी, अत्याचार-पूर्ण तथा स्वार्थपूर्ण कार्यवाइयो से किस तरह से सारी मानवता को हानि पहुँच सकती है।

राष्ट्रसंघ की सीमायें

जिस समय राष्ट्रसंघ काफी प्रभावशाली रूप में था उस समय भी उसका प्रभाव तमाम विश्व पर नहीं था बल्कि कुछ राष्ट्रों तक ही सीमित था और यही कारण था कि उसका प्रभाव सीमित था। आरम्भ में ही अमरीका के राष्ट्रसंघ से अलग हो जाने से शांति की रक्षा की ओर राष्ट्रसंघ के प्रयास और प्रभाव को भारी धक्का लगा। इसके अतिरिक्त जापान, जर्मनी तथा इटली जैसे बड़े राष्ट्रों के त्यागपत्र दे देने से राष्ट्रसंघ और भी अधिक कमजोर हो गया और उसकी सीमा और संकुचित हो गई। उसके साथ ही राष्ट्रसंघ ने जान बूझकर अपने कार्यों की सीमा कम कर ली। १९२६ में मेक्सिको जब गुप्त रूप से निकारगुआ सरकार के राजनैतिक दुश्मनों को सहायता दे रहा था, निकारगुआ सरकार ने मेक्सिको के खिलाफ राष्ट्रसंघ में अपील की। किन्तु बजाय इसके कि झगड़ा मैत्रीपूर्ण ढंग से सुलझा लिया जाता अमरीकी सरकार ने अमरीकी तथा विदेशियों की जान व माल की रक्षा के लिये निकारगुआ को रक्षक जहाज भेज दिये। इस पर राष्ट्रसंघ में एक प्रस्ताव स्वीकार कर घोषणा की गई कि केन्द्रीय अमरीका में शांति की स्थापना करना उसके अधिकार से बाहर की बात है। इधर मिस्र, यद्यपि वह १९२२ में एक स्वतंत्र राज्य माना जा चुका था, राष्ट्रसंघ की सदस्यता से पृथक कर दिया गया और इस तरह आंग्ल-मिस्री झगड़ों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय विवाद की तरह व्यवहार नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त चीन और बड़े राष्ट्रों के बीच विवाद भी राष्ट्रसंघ के हस्तक्षेप से वंचित रखा गया। इन सीमित अधिकारों तथा कार्यवाइयों के कारण राष्ट्रसंघ एक नपुंसक संस्था बन गई। एक दूसरी सबसे बड़ी कमजोरी राष्ट्रसंघ में यह भी थी कि वह भाषणों और बहस में अधिक व्यस्त रहता था और रचनात्मक कार्यों में कम। उसकी जो कुछ व्यावहारिक कार्यवाइयां हुई भी वह इतनी सुस्त और कमजोर थीं कि वह किसी राष्ट्र पर प्रभाव न जमा सकीं।

प्रतिश्रव के प्रति अविश्वास

राष्ट्रसंघ के जीवन में कुछ ही उसके ऐसे सदस्य थे जो अपने वायदों और शपथ के पक्के थे। प्रतिश्रव का उल्लंघन करने वालों के विरुद्ध आर्थिक बहिष्कार नीति नितांत अप्रभावशाली सिद्ध हुई। इटली-अबीसीनियन विवाद में इटली के विरुद्ध आर्थिक बहिष्कार नीति का कोई भी परिणाम नहीं निकला। इटली ने अकेले होते हुए भी राष्ट्रसंघ के आदेश का उल्लंघन किया। जापान ने न केवल राष्ट्रसंघ के हस्तक्षेप का तिरस्कार किया बल्कि उसने खुले आम प्रतिश्रव का उल्लंघन किया। अगस्त १९३९ में ही जब रूस ने जर्मनी के साथ परस्पर आक्रमण न करने की सन्धि की उसी समय प्रतिश्रव के प्रति उसका अविश्वास प्रकट हो गया।

यही नही वल्कि फिनलैंड पर आक्रमण और पोलैंड को राष्ट्रसघ की सदस्यता से वचित करने के लिये वाधित करने की उसकी कार्यवाइयो से यह और भी साफ प्रगट हो गया कि वह राष्ट्रसघ के सिद्धान्तो पर चलने को तैयार नही। इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता का गिर जाना ही राष्ट्रसघ की असफलता का कारण बना। होव्स ने ठीक ही कहा था कि विना विश्वास के प्रतिश्रव वेकार है।

सार्वलौकिक हित की भावना का अभाव

एक सबसे वडी कमजोरी राष्ट्रसघ के चालको मे यह थी कि उनमे सार्वलौकिक हित का ख्याल नही था। इसके अतिरिक्त छोटे राज्यो की आक्रमण तथा अत्याचार से रक्षा करने की शक्ति भी उसमे नही थी। राष्ट्रसघ सत्ताधारी राष्ट्रो के बीच सहयोग स्थापित करने का एक यन्त्र वन गया। इसके अतिरिक्त सदस्य राष्ट्रो मे भी परस्पर सुसम्वन्ध नही था और उनकी जनता मे सकुचित राष्ट्रीयता की भावना काफी तेज थी। इसी वजह से सार्वलौकिक हित की भावना जागृत नही हो सकी। शूमैन के अनुसार "राष्ट्रसघ और उसकी एजेंसिया मानव कल्याण तथा विश्व मैत्री की ओर कभी भी सफल सिद्ध नही हुई।"

एकमत का सिद्धान्त

राष्ट्रसघ के सविधान मे कई वडी वडी कमजोरिया तथा त्रुटिया थी। प्रतिश्रव के अनुसार किसी भी वैठक का निर्णय राष्ट्रसघ की वैठक मे उपस्थित तमाम सदस्य राष्ट्रो की राय से होता था। इस निर्णय मे केवल उन्ही राज्यो की राय नही ली जाती थी जिनका विवाद से सम्वन्ध होता था। प्रतिश्रव के सशोधन पर परिषद् की स्वीकृति आवश्यक होती थी किन्तु उस पर सदस्य राष्ट्रो की पुष्टि भी लेनी जरूरी होती थी। जहाँ तक राष्ट्रसघ की महासभा का सम्वन्ध था धारा १५ मे सिफारिशों तथा निर्णयो मे अन्तर स्पष्ट कर दिया गया है। सिफारिशो के मामले मे साधारण वहुमत तथा निर्णयो के लिये निर्विरोध मत लेना पडता था। इस तरह राष्ट्रसघ की तमाम कार्यवाइया व्यावहारिक दृष्टि से सिफारिशो के रूप मे होती थी। फल यह होता था कि राष्ट्रसघ किसी भी राज्य को वैधानिक तौर पर दवा नही सकता था। इस तरह एकमत शासन अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के लिये वहुत वडा वाधक सिद्ध हुआ। राष्ट्रसघ प्रतिश्रव मे दूसरी खरावी यह थी कि वह शातिपूर्ण तरीके से सधियो के सशोधन के लिये उचित कदम नही उठाती थी।

राष्ट्रीय शस्त्रीकरण को निरुत्साहित करने मे असफलता

राष्ट्रसघ को शस्त्रीकरण की सीमा निर्धारित करने का अधिकार नही था। यद्यपि लायड जार्ज ने सुझाव दिया था कि शस्त्रीकरण का सीमाकरण सम्वन्धी समझौता सदस्य राष्ट्रो मे होना चाहिए। उन्होने कहा था कि राष्ट्रसघ तभी सफल हो

सकता है जब सेना के निर्माण तथा संगठन में अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस तथा इटली के बीच प्रतियोगिता न हो कर एकरूपता कायम हो। प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर होने से पूर्व जब तक उक्त समझौता नहीं हो जाता तब तक राष्ट्रसंघ का कोई महत्व नहीं और वह केवल छद्‌मात्र ही है। यद्यपि धारा ८ के अनुसार राष्ट्रीय शस्त्रीकरण में इतनी कमी कर देनी चाहिये थी कि वह केवल आत्मसुरक्षा ही कर सके, किन्तु फिर भी राष्ट्रसंघ सामूहिक सुरक्षा सम्बन्धी विश्वास सदस्य राष्ट्रों में पैदा नहीं कर सका। जहां एक राष्ट्रों में शस्त्रीकरण में वृद्धि शुरू हुई कि दूसरे राष्ट्रों में भय, असन्तोष तथा खलबली मचने लगी और उनकी सुरक्षा कार्यवाई दूसरों के लिये आक्रमणकारी कार्यवाई मालूम हुई। इस तरह विश्व में ऐसी स्थिति पैदा हो गई कि राष्ट्रों में परस्पर तनाव और झगड़ा बढ़ने लगा। आखिर शस्त्रीकरण में विघटन की धारा निहायत असफल रही।

प्रतिरोधी संस्था का अभाव

सर सेमुएल होर ने १९३५ में जनेवा में अपने वक्तव्य में कहा था कि राष्ट्रसंघ कोई ऐसी संस्था नहीं जिसका तमाम राज्यों के ऊपर प्रभाव हो अथवा यह कोई ऐसी स्वतन्त्र संस्था नहीं जिसमें सभी देशों के प्रतिनिधि हों और जो स्वतंत्र हो, जिसके निर्णय पर सभी अमल कर सकें। इसमें तो वही राष्ट्र हैं जो विवाद पैदा करते हैं और अपने वायदों और शपथ का उल्लंघन करते हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रसंघ के पास कोई अन्तर्राष्ट्रीय हवाई, जल तथा थल सेना नहीं थी जिससे कि वह अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के भंग करने वालों के खिलाफ जोरदार कार्यवाई कर सके। यही कारण था कि राष्ट्रसंघ उन राजनैतिक विवादों को सुलझाने में असफल रहा जिसमें बड़े राष्ट्रों का हाथ था। राष्ट्रसंघ के पास जो कुछ सैनिक ताकत अथवा प्रतिरोधी संस्था थी वह इतनी कमजोर तथा अप्रभावशाली थी कि शांति स्थापना का काम उसके बस का नहीं था। राष्ट्रसंघ में एक दूसरी बड़ी कमी यह थी कि जब तक कोई विवाद खतरनाक तथा गम्भीर स्थिति पर न पहुँच जाता वह उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं करती थी जिसका फल यह होता था कि उसे विवाद सम्भालने में कठिनाई हो जाती और अन्त में वह असफल हो जाती थी।

तानाशाही राज्यों की आक्रमणकारी मनोवृत्ति

राष्ट्रसंघ को गिराने और असफल बनाने में सबसे बड़ा हाथ तानाशाही राज्य जर्मनी, इटली और जापान का था जो विनाश और आक्रमण से विश्व पर अपना शासन कायम करना चाहते थे। इन्हें राज्यों में समानता लाने की नीति में विश्वास नहीं था और सामूहिक सुरक्षा के वे सख्त विरोधी थे। मुसोलिनी ने एक बार कहा था—"वह अधिकार जो बिना शक्ति अथवा संघर्ष के प्राप्त हुआ हो बेकार और

अस्थायी है।" इस तरह जर्मनी के पुन शस्त्रीकरण, इथोपिया पर इटली के आक्रमण, चीन पर जापानी हमले तथा बर्लिन-रोम-टोकियो समझौता से राष्ट्रसघ की शाति स्थापना तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का आन्दोलन भग हो गया और वह सदा के लिए समाप्त हो गया।

आग्ल-फ्रान्सीसी सन्तुष्टिकरण नीति

ब्रिटेन और फ्रांस ने अपनी परम्परागत राष्ट्रीय नीति को कायम रखने के लिए राष्ट्रसघ को एक हथियार की तरह प्रयोग किया। फ्रास के लिये राष्ट्रसघ केवल मित्रराष्ट्रो की एक व्यवस्था थी जिससे जर्मनी के आतक से उसकी रक्षा की जा सकती थी। इधर ब्रिटेन ने अपनी परम्परागत राष्ट्रीय नीति पर अमल करते हुए आक्रमणकारियो के विरुद्ध सैनिक कार्यवाई में भाग लेने से अपने को अलग रखा। इस तरह आंग्ल-फ्रासीसी सतुष्टिकरण नीति से कमजोर राष्ट्रो पर शक्तिशाली राष्ट्रो के आक्रमण को रोका नही जा सका और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के भग करने वाले सजा पाने से वचित रहे, यद्यपि राष्ट्रसघ को आक्रमणकारियो के विरुद्ध सामूहिक सैनिक कार्यवाई करने का अधिकार था। किन्तु चूकि उसमें आक्रमणकारियो को खुश करने वाले तत्वो का अधिक प्रभाव था इसलिए वह कमजोर राष्ट्रो के लिए बेकार सिद्ध हुई।

राष्ट्रसघ की सफलताए

यद्यपि राष्ट्रसघ युद्ध को रोकने और शाति स्थापना में निहायत असफल रहा किन्तु विश्व मे अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा सम्बन्ध के प्रचार मे उसे अपूर्व सफलता मिली। जनेवा के एरियाना पार्क में समय-समय पर अन्तर्राष्ट्रीय बैठको द्वारा राष्ट्रसघ ने अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ तथा विवादो पर प्रकाश डाला और शातिपूर्ण तरीके से उन्हे निबटाने का प्रयत्न किया। उसने विश्व के राष्ट्रो में शान्तपूर्ण विचारधारा का प्रचार किया। उसने विशेषज्ञो की सलाह से अन्तर्राष्ट्रीय समझौतो द्वारा आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओ को हल किया। राष्ट्रसघ की स्वास्थ्य समिति ने हैजा, मलेरिया, चेचक, तपेदिक, मोतिजरा आदि भयानक रोगो के कारण की जांच की और आरोग्य का साधन निकाला। यातायात सम्मेलन तथा बौद्धिक विकास के लिए समिति ने मूल्यवान सिफारिशे की। राष्ट्रसघ ने दास प्रथा तथा गांजा, भांग आदि के सेवन को रोकने के लिए कई अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो में प्रमुख राष्ट्रो से समझौता किया। हमारी सभ्यता को राष्ट्रसघ की सबसे बडी देन अन्तर्राष्ट्रीय कानून को समुचित ढग से नियमबद्ध करना था। राष्ट्रीयता, समुद्री अधिकार तथा राज्य का उत्तरदायित्व, इस सम्बन्ध मे उसने बडे अच्छे नियम बनाये। राष्ट्रसघ की अन्तर्राष्ट्रीय न्याय की स्थाई अदालत ने कई अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी विवादो को बडी ही कुशलता से सुलझाया।

राष्ट्रसघ के पतन के कई वर्ष पहले ही हेली सेलेसी ने कहा था कि राष्ट्रसघ आगे चलकर भग हो जायेगा। आपने यह भी कहा था कि पश्चिमी राष्ट्र नष्ट हो जायेंगे। इस कथन की सत्यता सन् १९३९ मे राष्ट्रसघ के दो सदस्य, आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया के विनाश से स्पष्ट प्रतीत होता है। सक्षेप मे पाशविक शक्ति ने न्याय पर विजय प्राप्त की। अमेरिका के विदेश मन्त्री कार्डेल हल ने सत्य ही कहा था कि विश्व के प्रमुख राष्ट्रो के पारस्परिक समझौता और सहयोग बिना कोई भी सगठन शाति स्थापित नही कर सकता। आपस की फूट और सघर्ष ही शाति के परम् शत्रु है।

राष्ट्रसघ के इतिहास पर प्रकाश डालने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि वैज्ञानिक तथा यान्त्रिक उन्नति की तुलना मे नैतिक उत्थान बहुत पीछे चला गया है।

व्याख्यान ४

क्षतिपूर्ति तथा आर्थिक संकट

विषय प्रवेश—शान्ति समझौतो के बाद यूरोप के कूटनीतिज्ञो के सामने वर्साय सधि के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति की व्यवस्था एक जटिल तथा विवादास्पद समस्या थी। क्षतिपूर्ति का विषय सारे राष्ट्रो का ध्यान आकृष्ट किये हुए था और सर्वत्र चर्चा रहती थी। वास्तव में क्षतिपूर्ति-समस्या इतनी अधिक जटिल तथा टैक्निकल थी कि इससे न केवल करोडो व्यक्तियो के जीवन पर असर पडा वल्कि युद्धोपरान्त विजयी राष्ट्रो मे भी मतभेद पैदा हो गया। यद्यपि मित्रराष्ट्रो को जर्मनी से युद्ध का सारा खर्च वसूल करने का नैतिक दावा था किन्तु धारा २३२ में यह स्पष्ट था कि सम्पूर्ण क्षतिपूर्ति देना जर्मनी की शक्ति से बाहर की बात है और किसी विशेष प्रकार की क्षति के सबन्ध में जिसमे मित्रराष्ट्रीय सेनाओ को पेन्शने तथा भत्ते भी शामिल थे, जर्मनी नामजूर कर सकता था। सधि-पत्र में जर्मनी द्वारा दी जाने वाली क्षतिपूर्ति की मात्रा निर्धारित नहीं की गई थी। इससे मित्रराष्ट्रो ने हर एक विषय मे क्षतिपूर्ति की मात्रा बढा दी। जर्मन क्षतिपूर्ति को समझने के लिए दो बाते ध्यान में रखनी चाहियें। पहली यह कि युद्ध के कारण जर्मनी के साधन शिथिल पड गये और उसके उपनिवेश तथा औद्योगिक केन्द्र भी उसके हाथ से छिन गये। दूसरी यह कि मित्र-राष्ट्रो में दो प्रमुख देश ब्रिटेन और फ्रास मे परस्पर तनाव पैदा हो गया। एक ओर फ्रास जर्मनी का सम्पूर्ण ह्रास चाहता था तथा दूसरी ओर ब्रिटेन की नीति परास्त राष्ट्र जर्मनी के आर्थिक पुनरुत्थान की थी। इस प्रकार के मतभेद से जर्मन क्षतिपूर्ति की समस्या का सन्तोषजनक समाधान अनिश्चितकाल के लिए स्थगित पडा।

सम्पूर्ण राशि निर्धारित करने की समस्या

स्मरण रहे कि शाति-सम्मेलन का अन्तिम निर्णय यह था कि युद्ध के समय मे जर्मनी को मित्र राष्ट्रो की नागरिक जनता तथा उनकी सम्पत्ति को हुई क्षति के बदले मे सोना या अन्य सामान देना होगा। क्षतिपूर्ति निर्धारित करने का काम एक क्षतिपूरक आयोग (कमीशन) को सौपा गया। इस आयोग मे ब्रिटेन, इटली, फ्रास और बेल्जियम के प्रतिनिधि थे। आयोग को अपनी रिपोर्ट मई १९२१ तक जर्मनी को सूचित कर देनी थी। इधर जर्मनी को अन्तरिम काल मे विजयी मित्र राष्ट्रो को नकद या माल के रूप मे एक अरब पौंड अदा करना था। इस राशि से जर्मनी में पडी मित्रराष्ट्रो की सेनाओ का खर्च चलाना था और इसमे बाकी बची राशि को क्षति-

पूर्ति राशि के रूप में स्वीकार कर लेना था। १० जनवरी १९२० को वर्साय सन्धि के लागू होने के बाद क्षतिपूर्ति समस्या किस तरह हल की जाय यह प्रश्न उठा। पहली समस्या यह थी जर्मनी क्षतिपूर्ति कितनी दे और किस तरीके से दे ? जर्मनी से कहा गया कि वह क्षतिपूर्ति की अदायगी के निमित्त कुल कितनी रकम देगा इसकी सूचना वह मित्रराष्ट्रों को शीघ्र दे। जुलाई १९२० में जर्मनी ने अपने प्रस्ताव 'स्पा सम्मेलन' में रखे। यद्यपि ये प्रस्ताव बेहूदे और बेकार कह कर अस्वीकार कर दिये गये किन्तु अगले ६ मास तक जर्मनी कितना कोयला देगा इस सम्बन्ध में एक समझौता पत्र पर हस्ताक्षर हो गये। सम्मेलन का सबसे महत्वपूर्ण निर्णय मित्रराष्ट्रों को दी जाने वाली क्षतिपूर्ति का वितरण था। इसके अनुसार फ्रांस को ५२ प्रतिशत, ब्रिटेन को २२ प्रतिशत, इटली को १० प्रतिशत, बेल्जियम को ८ प्रतिशत तथा बाकी ८ प्रतिशत क्षतिपूर्ति की राशि छोटे राष्ट्रों में वितरण करना था।

जनवरी १९२१ में मित्रराष्ट्रीय तथा जर्मन विशेषज्ञ पेरिस में मिले। इस सम्मेलन में जर्मनी से ११ अरब पौंड की माँग की गई जो कि ४२ वार्षिक किश्तों में अदा करनी थी। इसके अतिरिक्त जर्मनी से माग की गई कि वह अपने निर्यात व्यापार आय का १२ प्रतिशत भी दे। इस प्रस्ताव से जर्मनी में विरोध की भावना भड़क उठी। जर्मन लोगों ने कहा कि यह योजना योग्य तथा विश्वसनीय विशेषज्ञों के सम्मेलन में नहीं बनाई गई, बल्कि इसे पागलखाने में रहने वाले व्यक्तियों ने बनाया है। मित्र राष्ट्रों ने उस योजना स्वीकार किये जाने के लिये जर्मनी पर दबाव नहीं डाला। लेकिन उन्होंने मार्च १९२१ में लन्दन के सम्मेलन में अपना उत्तर देने के लिए जर्मनी को बुलावा भेजा। जर्मनी ने इस बुलावे के उत्तर में अपना जो प्रस्ताव रखा, उसमें डेढ़ अरब पौंड क्षतिपूर्ति नकद देने तथा ऊपरी साइलेशिया पर अधिकार रखने और सारे व्यापारिक प्रतिबन्धों को उठा लेने का उल्लेख था। क्षति-पूर्ति की अदायगी के लिए जर्मनी ने शर्त यह रखी कि विजयी राष्ट्र अपनी तमाम सेनाएं जर्मनी से हटा लें। मित्रराष्ट्रों ने जर्मनी के इस प्रस्ताव को बिल्कुल बेहूदा बताया। इस प्रकार क्षतिपूर्ति वार्ता बिना किसी समझौते के समाप्त हो गई। मित्र-राष्ट्रों ने जर्मनी द्वारा अन्तरिम क्षतिपूर्ति न देने पर राइन नदी के तट स्थित डुजेल डोर्फ, ड्यूसबर्ग तथा रूहर्ट के औद्योगिक केन्द्रों पर कब्जा कर लिया। जर्मनी ने राष्ट्र-संघ में अपील की। उसने कहा, उसने आरम्भ की क्षतिपूर्ति अदा कर दी है। लेकिन जर्मनी की अपील बेकार सिद्ध हुई। इस विवाद को पुनः क्षतिपूर्ति-कमीशन के सामने रखा गया। कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में जर्मनी के दावे को झूठा बताया। कमीशन ने कहा कि जर्मनी ने अपना इतना दावा अब तक दिये गये माल की कीमत अत्यधिक निर्धारित करके किया है। कमीशन ने बताया कि जर्मनी को अन्तरिम क्षतिपूर्ति का ६० प्रतिशत अभी और देना बाकी है।

जब प्रत्यक्ष वार्ता असफल हो गई तो क्षतिपूर्ति निर्धारित करने का मामला क्षतिपूर्ति कमीशन ने अपने हाथ में लिया। उसने २८ अप्रैल १९२१ को जर्मनी द्वारा अदा की जाने वाली क्षतिपूर्ति की राशि ६,६००,०००,००० पौण्ड निर्धारित कर दी। अदायगी का व्यौरा अ, ब, स तीन प्रकार के बौन्डो में विभक्त किया गया। 'अ' और 'ब' बौन्ड में सपूर्ण क्षतिपूर्ति का एक तिहाई भाग अर्थात् २,६००,०००,००० पौण्ड था, जो कि जर्मनी को एक अरब पौन्ड वार्षिक के हिसाब से अदा करना था। इसके अतिरिक्त उसे प्रति निर्यात मूल्य का २५ प्रतिशत भी देना था। 'स' बौण्ड की अदायगी, जो कि कुल राशि का दो तिहाई अर्थात् ४ अरब पौण्ड थी, अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गई। कमीशन ने आगे घोषणा की कि १ मई १९२१ तक जर्मनी ने जो राशि अदा की, वह जर्मनी में पडी विजयी राष्ट्रो की सेनाओ के व्यय के लिए अपर्याप्त थी।

इस प्रकार जर्मनी द्वारा अब तक अदा की गई राशि को बिल्कुल महत्व नही दिया और वह नही के बराबर मान ली गई। इस राशि को क्षतिपूर्ति में कोई स्थान नही दिया गया। ५ मई को जर्मनी को चुनौती दी गई कि यदि वह उक्त योजना स्वीकार न करेगा तो मित्रराष्ट्र रूर पर कब्जा कर लेंगे। चुनौती की अवधि समाप्त होने के एक दिन पूर्व वर्थ के सरक्षण में नये जर्मन मन्त्रिमडल ने इन शर्तो को मजूर कर लिया और इस प्रकार क्षतिपूर्ति समस्या का पहला चरण समाप्त हो गया।

जर्मन की शोचनीय स्थिति (१९१९–१९२३)

यद्यपि जर्मनी ने लन्दन सम्मेलन को स्वीकार कर लिया, किन्तु उसकी आर्थिक स्थिति ऐसी नही थी कि वह क्षतिपूर्ति अदा कर सके। जर्मनी का अन्तर्राष्ट्रीय उधार न होने से वह विदेशी ऋण पाने में असमर्थ था। दूसरी ओर युद्ध मे हुई क्षति के कारण उसके आयात बढ गये थे और निर्यात की मात्रा कम हो गई थी। इस तरह जर्मनी आर्थिक सतुलन बिल्कुल खो बैठा था। इसका नतीजा यह हुआ कि सोने का भण्डार निरतर खाली होता गया, मुद्रास्फीति बढ गई और जर्मन करेंसी की कीमत गिर गई। इधर जर्मनी के बडे औद्योगिको ने भी सरकार को सहयोग देने मे इन्कार कर दिया। इन सब कारणो से जर्मनी अदायगी नकद अथवा माल किसी भी रूप में न कर सका। अगस्त १९२१ तक जर्मनी ने समझौता के अनुसार ५ करोड पौण्ड की प्रथम किश्त अदा कर दी, किन्तु करेंसी की कीमत में गिरावट आ जाने से उसे अदायगी अगले वर्ष तक के लिए स्थगित करने के लिए अपील करनी पडी। जर्मनी की इस प्रार्थना पर जनवरी १९२२ में कैनिस सम्मेलन मे विचार किया गया। निर्णय हुआ कि जर्मनी अदायगी का थोडा-सा हिस्सा आगे के

लिए स्थगित कर सकता है। इधर जर्मनी की मुद्रा की कीमत निरन्तर गिरती गई। जर्मन सरकार ने आर्थिक संकट के आधार पर क्षतिपूर्ति नकद देने में असमर्थता प्रकट की और माग की कि नकद अदायगी १९२५ तक के लिए स्थगित कर दी जाय। इस माग से ब्रिटेन और फ्रांस के कूटनीतिक सम्बन्ध में तनाव पैदा हो गया। ब्रिटेन के लायड जार्ज, बालफर तथा बोनर ला का, जो जर्मनी के पुनर्निर्माण के पक्ष मे थे, विचार था कि क्षतिपूर्ति की अदायगी से पहले जर्मनी का आर्थिक दृष्टि से पुनरुत्थान जरूरी है। किन्तु दूसरी ओर फ्रांसीसी नेताओ की राय थी क्षतिपूर्ति की अदायगी शीघ्र होनी चाहिए। फ्रांसीसी नेताओ की राय क्षतिपूर्ति की शीघ्र अदायगी के पक्ष मे इसलिए थी कि उसे युद्ध मे बर्बाद अपने लगभग १३ हजार वर्गमील क्षेत्र को आर्थिक दृष्टि से स्वस्थ बनाना था। फ्रांसीसी नेता प्वायकर का कहना था कि जर्मनी को क्षतिपूर्ति की अदायगी के लिए और मुहलत न दी जाय। इधर जर्मनी निर्धारित मात्रा मे फ्रांस को लकडी सप्लाई न कर सका। इसका फल यह हुआ कि (जनवरी १९२३) पेरिस सम्मेलन मे क्षतिपूर्ति आयोग ने बहुमत से जर्मनी को अपराधी ऐलान कर दिया। १० जनवरी १९२३ मे जब क्षतिपूर्ति समस्या की दूसरी अवधि समाप्त हो गई फ्रांस ने घोषणा की कि नियन्त्रकों का एक शिष्टमडल शीघ्र रूर भेजा जायगा।

रूर पर अधिकार १९२३

क्षतिपूर्ति समस्या का तीसरा चरण उस समय प्रारम्भ हुआ जब फ्रांसीसी व बेल्जियम सेनाओ ने रूर पर कब्जा कर लिया। प्वायकर ने घोषणा की कि रूर पर कब्जा करने का फ्रांस का कोई इरादा नही किन्तु क्षतिपूर्ति न मिलने तक हम उस पर अधिकार रखना चाहते है। उस क्षेत्र की लम्बाई ९० मील और चौड़ाई २८ मील थी और वह जर्मनी का एक विशाल औद्योगिक केन्द्र था। अनुमान लगा कर बताया गया था कि जर्मनी के कोयला, लोहा व इस्पात उत्पादन का ८० प्रतिशत तथा ७० प्रतिशत माल व रेलो का खनिज यातायात रूर पर निर्भर करता है। इसके ६ नगर थे और जर्मन आबादी की १० प्रतिशत जनता वहा निवास करती थी।

जब फ्रांसीसी व बेल्जियम की सेनाओ ने रूर पर कब्जा कर लिया तो जर्मन सरकार ने विरोधी नीति अपनाई और फ्रांस व बेल्जियम को दी जाने वाली सारी क्षतिपूर्ति बद कर दी। इसके विरोध स्वरूप फ्रांस व बेल्जियम सरकारो ने रूर से तैयार माल बाहर भेजना बद कर दिया। जर्मनी पर भारी जुर्माने किए गये, सजाये दी गई, समाचार पत्रो पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, निजी सम्पत्ति जब्त कर ली गई और सैकड़ो जर्मन अधिकारियो व नागरिको को रूर से निकाल दिया गया। जर्मनी के विरुद्ध फ्रांस व बेल्जियम की कार्यवाही में ७६ जर्मन मारे गये व ८२ घायल

हुए। इससे जर्मनी भुखमरी, गरीबी, और राष्ट्रीय ह्रास के गढे में जा गिरा। जर्मन मुद्रा 'मार्क' की कीमत दिन पर दिन गिरती गई। दिसम्बर १९२२ में ३५००० मार्क १ पौंड के बराबर था किंतु १९२३ के अन्त तक इसका मूल्य १ पौंड के मुकाबले में ५० हजार अरब तक बढ गया। वास्तव मे जर्मनी बर्बाद हो गया। इसने फ्रास मे वार्ता शुरू की और रेलो को गिरवी रखकर अदायगी की गारटी का वायदा किया। लेकिन प्वायकर ने घोषणा की कि जर्मनी को पहले अपना विरोधी आदोलन समाप्त कर देना होगा। फ्रास ने कहा कि रूर को उसी समय छोडा जायगा जब जर्मनी अदायगी करने को तैयार हो जायगा। १२ अगस्त १९२३ को चासलर कुनो को त्याग पत्र देना पडा और स्ट्रैममैन के नेतृत्व नें एक नया मत्रिमडल बनाया गया। उसने २६ सितम्बर को विरोधी आन्दोलन समाप्त किये जाने की घोषण की। प्वायकर की जीत हुई। अत में क्षतिपूर्ति कमीशन ने जर्मन की अदायगी स्थिति का पता लगाने के लिए आर्थिक विशेषज्ञो की एक निष्पक्ष अतर्राष्ट्रीय कमेटी नियुक्त की।

(डावस योजना १९२८)

३० नवम्बर १९२३ को क्षतिपूर्ति कमीशन द्वारा विशेषज्ञो की दो समितियाँ नियुक्त किये जाने पर क्षतिपूर्ति समस्या का चौथा चरण प्रारम्भ हुआ। पहली समिति के अध्यक्ष अमरीका के चार्ल्स जी डावस थे और इस कमेटी का नाम डावस कमेटी रखा गया। इस कमेटी में अमरीका, ब्रिटेन, फ्रास, इटली व बेल्जियम के दो दो प्रतिनिधि थे और इसका काम जर्मन बजट का सतुलन तथा जर्मन सिक्के का स्थिरीकरण करना था। दूसरी समिति मे उक्त प्रदेशो के एक एक प्रतिनिधि थे और इसके अध्यक्ष ब्रिटेन के रेजिनाल्ड मैक कन्ना थे। इसका काम जर्मनी द्वारा आयात किये गये सामान की कीमत आकना तथा उसको वापस मागने के साधनो पर विचार करना था। इन समितियो ने १४ जनवरी १९२४ को अपना काम शुरू किया और १ अप्रैल को १२४ पृष्ठो की अपनी रिपोर्ट क्षतिपूर्ति कमीशन को पेश की।

डावस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि जर्मनी को प्रोत्साहित किया जाय कि जहा तक हो सके वह करो को अदा करे। रिपोर्ट मे कहा गया कि जर्मनी के लोग बडे उद्योगी और टैक्निकल दृष्टि मे भारी कारीगर है। उसके पास औद्योगिक विकास के पर्याप्त साधन है। इससे वह विश्व प्रतियोगिता में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकेगा। जर्मनी को क्षतिपूर्ति अदा कर सकने योग्य बनाने के लिये डावस रिपोर्ट में निम्न सिफारिशें की गई, (१) रूर मे विजयी राष्ट्रो की सेनाए हटा ली जाय जिससे कि जर्मनी की आर्थिक स्थिति सुधर जाये (२) जर्मनी क्षतिपूर्ति की अदायगी की सिक्योरिटी के रूप में चूगी, शराब, तम्बाकू तथा चीनी पर कर से प्राप्त होने

वाली आय वार्षिक दिया करे (३) वार्षिक क्षतिपूर्ति की अदायगी ५ करोड पौण्ड से शुरू होनी चाहिए और धीरे धीरे ४ वर्ष की अवधि में बढ़ कर १ अरब पौंड की सामान्य राशि तक पहुच जानी चाहिये (४) भविष्य की अदायगी उन्नति के आकडो के साथ साथ घटती या बढती रहे (५) जर्मनी को ४ करोड पौंड का विदेशी ऋण दिया जाय जिससे कि वह करेन्सी कोष कायम कर सके और क्षतिपूर्ति की प्रथम किश्त अदा कर सके (६) ५० वर्ष के लिये अधिकृत एक केन्द्रीय बैंक (कोष-बैंक) की स्थापना की जाय, जो कि करेंसी जारी करे। इसका काम ७ जर्मनो और ७ विदेशियो के नियन्त्रण मे रहे (७) नये नोट जारी किये जाय।

डावस रिपोर्ट के अन्त में इस बात की ओर सकेत किया गया था कि योजना कार्यान्वित करने मे कोई देरी न हो। यह तभी लागू हो सकती है जब कि जर्मनी की आर्थिक स्थिति पहले जैसी हो जाय। इस योजना का लागू होना तब तक के लिये स्थगित किया जा सकता है जब तक आर्थिक स्थिति न सुधर जाय। रिपोर्ट मिलने के दो दिन बाद क्षतिपूर्ति कमीशन ने क्षतिपूर्ति समस्या के समाधान के लिये इन सिफारिशो को व्यावहारिक आधार पर स्वीकार कर लिया। जर्मनी, ब्रिटेन, बेल्जियम व इटली ने अपनी स्वीकृति दे दी लेकिन फ्रास ने जर्मनी द्वारा क्षतिपूर्ति न देने पर स्वतन्त्र स्वीकृतियो के लिये अपने अधिकारो को छोडना अस्वीकार कर दिया। अन्त मे जुलाई-अगस्त में लन्दन सम्मेलन में डावस योजना को कार्यान्वित करने के लिये एक समझौता का मसविदा तैयार किया गया। फ्रास ने यह स्वीकार किया कि जर्मनी ने क्षतिपूर्ति अदा करने मे कोई आनाकानी अथवा विरोधी कार्यवाई अपनाई तो उसकी गलती क्षतिपूर्ति आयोग की सर्वसम्मति से ठहरानी होगी, जिसमे अमरीका भी शामिल रहे। सितम्बर १९२४ को योजना लागू की गई और ३१ जुलाई १९२५ को अन्तिम फ्रासीसी व बेल्जियम सैनिकदस्तो ने रूर छोड दिया। राइन नदी के दोनो ओर अन्त मे आर्थिक स्थिरता ने राजनैतिक गतिरोध पर विजय पाई।

डावस योजना को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। सितम्बर १९२४ से सितम्बर १९२८ के सघर्षमय वर्षो मे क्षतिपूर्ति रीजेंट गिल्बर्ट के प्रयास से जर्मनी ने अपने साधन पर किसी प्रकार का दबाव न पडने देकर क्षतिपूर्ति की अदायगी पूरी की। इसलिये यह बात माननी पडेगी कि इसकी सफलता केवल इसी पर आधारित थी कि यह क्षतिपूर्ति कमीशन के क्षेत्र से हटाकर आर्थिक विशेषज्ञो की एक समिति को सौंप दी गई जिसने इसका हल केवल एक व्यावहारिक दृष्टिकोण से किया। लेकिन डावस योजना में कुछ कमियां भी थी। इसमें न तो वार्षिक अदायगी की अवधि ही निर्धारित थी और न क्षतिपूर्ति की कुल राशि का उल्लेख ही था। इस प्रकार जर्मनी

को अपने लोगो की उन्नति मे कम दिलचस्पी रह गई क्योंकि उसकी आर्थिक स्थिति मे सुधार होने से मित्रराष्ट्रो की अदायगी और भी बढ जाती। इसके अतिरिक्त डावस योजना में जर्मनी को विदेशों से बहुत सा कर्जा लेने के लिये प्रोत्साहित किया जिसने उसकी आर्थिक दिवालियापन के बीज बो दिये।

यग योजना (१६२६)

सितम्बर १६२८ मे जब कि राष्ट्रसघ का नवी असेम्बली का अधिवेशन हो रहा था फ्रास, ब्रिटेन, बेल्जियम, इटली, जापान व जर्मनी के प्रतिनिधियो ने क्षतिपूर्ति समस्या के अन्तिम निर्णय तथा राइन क्षेत्र के शीघ्र खाली किये जाने के लिये वार्ता की। तय किया गया कि ६ सरकारो द्वारा आर्थिक विशेषज्ञो की एक समिति नियुक्त की जाय जिसमे अमरीका भी शामिल किया जाय जोकि इस समस्या को हल करे। इस निर्णय के अनुसार नई समिति ने ११ फरवरी १६२८ को पेरिस मे अपना काम शुरू किया। इसके अध्यक्ष एक अमरीकी प्रतिनिधि ओवन डी० यग थे जिन्होने डावस योजना के निर्माण मे एक महत्वपूर्ण भाग लिया था। उनके ही नाम पर इस समिति का नाम 'यग समिति' पडा। लगभग ४ मास के कठिन परिश्रम के पश्चात समिति ने अपनी ४० पृष्ठो की रिपोर्ट ७ जून १६२६ को क्षतिपूर्ति कमीशन के सामने रख दी। सक्षेप मे 'यग समिति' ने निम्न सिफारिशे की—(१) जर्मनी को क्षतिपूर्ति ५८ वर्ष मे अदा करनी चाहिये। प्रथम ३६ वर्षो मे वार्षिक अदायगी औसतन १० करोड पौण्ड होनी चाहिये। डावस योजना मे अधिकतम राशि १२॥ करोड पौण्ड थी। शेष २२ वर्षो मे हर वर्ष उक्त राशि का लगभग तीन चौथाई अदा किया जाय। (२) प्रत्येक वार्षिक अदायगी का एक तिहाई हिस्सा अर्थात ३ करोड ३० लाख पौड बिना किसी शर्त के चुका देना चाहिये। इसमे किसी प्रकार की टालमटोल नही होनी चाहिये। इस राशि मे से २॥ करोड पौण्ड फ्रास को दिया गया और शेष ३७ वर्ष के लिए कर्जा देने वाली १० सरकारो को बाटा गया। (३) रेलवे और औद्योगिक बॉडो को रद्द किया जाय और क्षतिपूर्ति कमीशन द्वारा विदेशी नियत्रण समाप्त किया जाय। (४) प्रथम ३७ वर्षो मे वार्षिक अदायगी दो सूत्रो से की जाय। प्रथम जर्मन रेलवे कम्पनी तथा दूसरे रिपब्लिक के बजट मे। रेलवे का ३३०००००० पौड हैक्स जर्मन सरकार को देना चाहिये। ३७ वर्ष बाद पूरी अदायगी जर्मन बजट मे होनी चाहिये। (५) १ सितम्बर १६२६ के बाद राइन नदी क्षेत्र के अधिकार के खर्चे मे जर्मनी को छुटकारा दिया जाय। (६) क्षतिपूर्ति अदायगी की लेन-देन, बिना शर्त सालाना अदायगी पर प्राप्त किये अन्तर्राष्ट्रीय कर्जे को देने तथा सालाना अदायगी के कुछ भागो का व्यापारिक करार करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय समझौतो के एक बैक की स्थापना की जाय। (७) बैक का नियत्रण व प्रबन्ध यग

समिति के प्रतिनिधित्व करने वाले ७ राष्ट्रों के केन्द्रीय बैंकों के बोर्ड आफ डायरेक्टर्स को सौंपा जाय। डावस योजना के मुकाबले में यंग योजना में अन्तिम समझौते के लिये वार्षिक अदायगियों की राशि व संख्या अवश्य निश्चित की गई।

इसके अतिरिक्त डावस योजना से बाह्य-नियन्त्रण की प्रणाली हट गई जर्मनी को सम्पूर्ण आर्थिक अधिकार प्राप्त हो गये और क्षतिपूर्ति की अदायगी के लिए उसकी कमर मजबूत हो गई। अन्त में पूरी योजना एक आर्थिक संस्था को सौंप दी गई जिसके प्रबन्ध कार्य में जर्मनी का भी भाग तय किया गया।

अगस्त १९२९ में यंग योजना पर हेग में विचार किया गया, जबकि ब्रिटिश प्रतिनिधि ने स्पा सम्मेलन द्वारा नियत किया गया सब का हिस्सा मांगा। लगातार गतिरोध के पश्चात् ब्रिटेन को राजी करने के लिए यंग योजना में कुछ परिवर्तन करके उसको ३० जनवरी १९३० को स्वीकार कर लिया गया। सम्मेलन नियत समय से ५ वर्ष पूर्व ३० जून १९३० तक राइन क्षेत्र को खाली करने पर भी राजी हो गया। १७ मई को यंग योजना लागू की गई। यद्यपि इस समय के रीश बैंक के गवर्नर डा० हायर शास्त ने इस मत पर अपने पद से त्यागपत्र दे दिया कि वार्षिक अदायगी जर्मनी की शक्ति से बाहर है। इस प्रकार पांचवां परिच्छेद क्षतिपूर्ति समस्या के पूरे व अन्तिम निबटारे के बाद समाप्त हुआ।

हूवर मुहलत

अभी यंग योजना को लागू हुये थोड़ा ही समय हुआ होगा, जबकि सम्पूर्ण विश्व में एक अनिश्चित आर्थिक संकट पैदा हो गया। यह आर्थिक संकट जो कि ४ वर्ष (१९२९-३३) रहा, १९२९ के शरद ऋतु में अमरीका द्वारा यूरोप के सब कर्जे बन्द कर देने पर शुरू हुआ। इसके बाद कीमतों में भारी गिरावटें हुईं। इस विश्वव्यापी संकट के कई कारण थे। अमरीका में सोना रिजर्व हो जाने के कारण उसका गलत-सलत प्रसार हो गया। सुरक्षा करों व कोटों के ऊंचे हो जाने के कारण माल का आवागमन रुक गया, आवास पर प्रतिबन्ध होने के कारण अधिकांश आबादी का निष्कासन रुक गया। विदेशी कर्जों में कमी के कारण पूंजी के चलन में बाधा पड़ गई। सिक्कों पर प्रतिबन्ध के कारण व्यापारिक लेनदेन रुक गया, सोना स्टैंडर्ड के भंग हो जाने से आर्थिक विनिमय की स्थिरता रुक गई क्षतिपूर्ति व अन्तर्राष्ट्रीय कर्जों व अनिश्चित अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के साथ साथ आर्थिक विश्वास के सामान्य होने में बाधा पड़ी। १९२९-३३ में जर्मनी के अन्दर आर्थिक संकट इतना भीषण था कि अवधि के समाप्त होने पर बजट में छपट्टी हुई कमी विदेशी कर्जों के अतिरिक्त १८ अरब रीश मार्क हो गई। विश्व में गिरावट के कारण विदेशों में उसके माल की खपत भी बन्द हो गई। नतीजा यह हुआ कि १९३२ में उसके निर्यात ५९ प्रतिशत

गिर गये और वेकारो की सख्या ६० लाख तक पहुच गई। मार्च १६३० में चासलर ब्रूनिग द्वारा वचत व छटनी करके सकट को रोकने का प्रयास विफल रहा। मई १६३१ में ग्रास्ट्रियन बैंक 'क्रैडिट-ग्रास्टाल्ट' को वैंक ग्राफ इग्लैंड द्वारा ६० लाख पौ अग्रिम ऋण दिये जाने के कारण दिवालियापन से बचा लिया गया। लेकिन जर्मनी के लोगो में इतना डर समा गया कि तीन सप्ताह के अन्दर रीश वैंक से १ अरब रीश मार्क निकाले जाने के कारण उसने अपने सोने के रिजर्व का ४१ प्रतिशत भाग खो दिया। ऐसी मकटकालीन स्थिति को देखते हुए अमरीका के राष्ट्रपति हूवर ने विश्व की आर्थिक स्थिति में सुधार होने के लिए १ वर्ष की मुहलत का प्रस्ताव रखा। इस मुहलत की मुख्य बाते थी :—(१) १ जुलाई १६३१ से ३० जून १६३२ तक सब अन्तर्सरकारी कर्जो, क्षतिपूर्तियो को स्थगित किया जाय। (२) जर्मनी द्वारा बिना शर्त की क्षतिपूर्ति की अदायगी जारी रखी जाय। (३) १ जुलाई १६३३ से १० बराबर किश्तो में बचे हुए रुपयो की अदायगी। (४) ऐसे छोटे राज्यो को कर्जे दिये जाय जिनकी आर्थिक स्थिति पर क्षतिपूर्ति अदायगी के होने से प्रभाव पडा है। (५) इस बात की गारटी दी जाय कि मुहलत के कारण जर्मनी द्वारा बचाया गया धन केवल आर्थिक मामलो में ही प्रयोग किया जाय। यह योजना १ जुलाई १६३१ को लागू की गई जब कि रीश वैंक समाप्त होने ही वाला था। एक सप्ताह वाद प्रसिद्ध "डार्मस्टेड अण्ड "नशनल वैंक" ने भुगतान वन्द कर दिया। अगले दिन सरकार ने स्थाई रूप से सब जर्मन वैंको को वन्द कर दिया। लदन सम्मेलन में जर्मनी में आर्थिक सकट समाप्त करने के सतत प्रयत्न के वाद अन्तर्राष्ट्रीय वैंक से समिति की रिपोर्ट पर एक स्थायी समझौता पत्र पर हस्ताक्षर हुए जिसने ६ मास के लिये सब लाभ प्रदान किये।

लौजान सम्मेलन

नवम्बर १६३१ मे चासलर ब्रूनिग ने घोषणा की कि गम्भीर आर्थिक स्थिति के कारण जर्मनी क्षतिपूर्ति की अदायगी नही कर सकता। इसी वीच ब्रिटेन भी आर्थिक सकटो से होकर गुजर रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि लौजान मे एक दूसरा क्षतिपूर्ति सम्मेलन करने का निश्चय किया गया। विश्व को आर्थिक सकटो से मुक्त करने के प्रयास में सम्मेलन १६ जून १६३२ को लौजान मे आरम्भ हुआ। काफी दिनो की वहस के वाद जर्मनी, वेल्जियम, फ्रास, ब्रिटेन, इटली और जापान जर्मनी से कुल १५ करोड पौंड लेकर सारी क्षतिपूर्ति को छोड देने के लिये राजी हो गये। यह राशि ५ प्रतिशत बौंड के रूप मे अदा करने को कहा गया। शर्त के अनुसार तीन साल के वाद वौंडो को खुले वाजार मे वेचा जा सकता था। ऐसा न होने पर १५ वर्ष के बाद वे रद्द हो जायेंगे। दूसरे शब्दो में क्षतिपूर्ति को पूर्ण रूप से समाप्त कर देना था। लौजान सम्मेलन असफल हो गया, क्योकि इसे कई वडे राष्ट्रो का समर्थन

प्राप्त नहीं था। परिणाम यह हुआ कि जर्मनी ने उसके बाद मित्रराष्ट्रों को क्षतिपूर्ति देना अस्वीकार कर दिया। जर्मनी की नाजी पार्टी के नेता हिटलर ने स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा कर दी कि जर्मनी ने सारी क्षतिपूर्ति अदा कर दी है और वह आगे किसी प्रकार की रकम अदा करने को तैयार नहीं है। इस तरह से क्षतिपूर्ति समस्या हल हुई।

मित्रराष्ट्रीय युद्ध—ऋण

प्रथम विश्व युद्ध में अमरीका ने मित्रराष्ट्र गुट के २० राष्ट्रों को दो प्रतिशत की दर पर १०३४ अरब डालर ऋण दिया था। १९२२ में अमरीका ने सूद के अदा करने वाले कर्जदारों से ऋण वसूल करने के लिए एक विश्व-युद्ध विदेशी कर्ज कमीशन की नियुक्ति की। कमीशन के हस्तक्षेप करने पर निर्णय हुआ कि कर्जदार ६२ किस्तों में ऋण वापस कर देंगे। १९२३ से १९३० तक कर्जदार राष्ट्र नियमानुसार किस्त से ऋण अदा करते रहे। यह राशि उन्होंने उसी रकम से दी जो उन्हें क्षतिपूर्ति के रूप में जर्मनी से प्राप्त हुई थी। हूवर प्रस्ताव से १९३१--३२ में मित्रराष्ट्रों को क्षतिपूर्ति मिलनी रुक गई। राष्ट्रपति रूजवेल्ट के चुनाव के बाद १९३२ में फ्रांस और ब्रिटेन ने उनसे अनुरोध किया कि वह मित्रराष्ट्रों को अमरीका से युद्ध-काल में मिले ऋण के मामलों में हस्तक्षेप करें किन्तु रूजवेल्ट ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। इस तरह कर्ज का प्रश्न अनिर्णीत ही रहा। १९३३ में ब्रिटेन ने अमरीका को एक करोड़ डालर चांदी में सांकेतिक अदायगी के रूप अदा किये किन्तु अन्य कर्जदारों ने अदायगी नहीं की। केवल फिनलैंड ही ऐसा था जिसने सारा कर्ज अदा किया। १९३४ में अमरीका ने सांकेतिक अदायगी को रद्द कर दिया। इस पर कर्जदारों ने किस्तों का अदा करना बन्द कर दिया।

विश्व आर्थिक सम्मेलन

लौसान सम्मेलन ने आगामी वर्ष एक विश्व आर्थिक सम्मेलन बुलाने का निर्णय किया। अमरीका ने निमंत्रण का जवाब दिया कि वह सम्मेलन में उसी हालत में शामिल हो सकता है यदि उसमें अन्तर्मित्र-राष्ट्रीय कर्ज के मामले पर विचार न किया जाय। ६ जून १९३३ में भयंकर आर्थिक संकट की समस्या पर विचार करने के लिये लन्दन में ६९ राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की बैठक हुई। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति इतनी भयंकर हो गई कि परस्पर मिल कर उसे सम्भालना जरूरी हो गया। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ६० प्रतिशत कम हो गया, बेकारों की संख्या तीन करोड़ तक पहुंच गई और इसके साथ ही कई देशों में राष्ट्रीय आय ४० प्रतिशत घट गई। लन्दन के सम्मेलन में यूरोपियन देशों (फ्रांस, इटली, बेल्जियम, स्विटजरलैंड और नीदरलैंड) ने मिल कर स्वर्ण गुट बनाया और इस बात पर जोर दिया कि मुद्रा की हालत सुदृढ़ बनाने

के लिए तटकर में कमी की जाय और व्यापारिक रुकावटें समाप्त की जाय। लेकिन अमरीका ने स्वर्ण की उपेक्षा करते हुए पुर्ननिर्माण योजना नीति अपनाली। इस नीति से उसका उद्देश्य डालर के मूल्य को घटा कर वस्तुओ के दाम बढा देने का था। मुद्रा प्रश्न पर कोई समझौता न हो सकने के कारण सम्मेलन आर्थिक खीचा तानी को समाप्त करने में असफल रहा। २७ जुलाई १९३३ को यह अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया। इस तरह आर्थिक और राजनैतिक दोनो दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग कायम करने का प्रयास असफल रहा।

नवीन आर्थिक नीति

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सकट, व्यापार तथा मालो के सरलता से आदान-प्रदान में बाधा के कई कारण थे। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बाधा उत्पन्न करने वाले सबसे बडे कारण तटकर रुकावटें थी जो नये गणतन्त्रो के बनने से और भी मजबूत बन गई। दूसरा—कोटा व्यवस्था का जारी होना था। इससे निर्यात पर नियन्त्रण कायम हो गया। तीसरा—परस्पर लेन-देन की व्यवस्था। इससे जो देश जितना माल निर्यात करता था उतना ही माल उसे उस देश से आयात भी करना पडता था, जिससे आयात और निर्यात का सतुलन कायम रह सके। इससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के स्वच्छन्द रूप मे चलने में बाधा उपस्थित हो गई। चौथा—यह कि माल के बदले माल लेने से व्यापार विकसित नही हो पाया। पाचवा कारण जो व्यापार में बाधा बना यह था कि रकम के निर्यात पर कई राज्यो द्वारा लागू किये गये नियन्त्रण थे। इससे माल की माग और सप्लाई व्यवस्था बिलकुल बेकार हो गई और व्यापारिक स्वतन्त्रता समाप्त हो गई। छठा—मुद्रा के अदला-बदली मूल्य में गिरावट आ जाना। सातवाँ—अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहायता लेन-देन बन्द हो जाना। आठवाँ—राष्ट्रो में असुरक्षा की भावना पैदा हो जाना जिससे व्यापार की प्रगति मे बाधा उपस्थित हो गयी।

इन सब कारणों का प्रभाव यह हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग कायम न हो सका और देशो को अपने-अपने साधनों पर निर्भर रहना पडा। १९३६ मे जब ४ वर्षीय योजना लागू की गई तो तीसरी जर्मन सरकार की रीश ने एक नई आर्थिक नीति अपनाई। इसका नाम 'मक्खन की जगह बन्दूक' था। आर्थिक रूप मे आत्म-निर्भर बनाने के उद्देश्य के पीछे मतलब था घरेलू प्रयोग के लिये कच्चे माल के उत्पादन को बढाना। बाहर से आयात होने वाली वस्तुओ की जगह बनावटी माल तैयार किये गये जिससे कि विदेशी माल की जरूरतो को पूरा किया जा सके। इस सम्बन्ध मे नये आविष्कार किये गये। विदेशो से आयात को रोकने के लिए नये किस्म के ऊन और रबड तैयार किये गये। कोयले से तरल पदार्थ निकाला गया

जिसे ईंधन के रूप में प्रयोग किया जा सकता था। अन्न के आयात को बन्द करने के लिए बेकार जमीनों को खेती योग्य बनाया गया तथा आलू और चीनी का उत्पादन बढ़ा दिया गया। इसका फल यह हुआ कि बेकारी समाप्त हो गई। सैनिकीकरण का पुनरुत्थान होने लगा। जर्मनी को घमंड था कि आर्थिक आत्मनिर्भरता से जर्मनी न केवल आर्थिक दृष्टि से सबल हो जायगा बल्कि युद्ध के समय कम से कम ३० वर्षों तक आर्थिक तालेबन्दी का मुकाबला कर सकेगा। इटली में फासिस्टवाद के जागने से जर्मनी की तरह स्थिति पैदा हो गई। १९३६ में जब अबिसीनिया का युद्ध चल रहा था मुसोलिनी ने घोषणा की कि "आर्थिक स्वतन्त्रता के बिना राजनैतिक आजादी नहीं मानी जा सकती।" इटली के पास पेट्रोल, रबड़ तथा अच्छे किस्म के कोयले जैसे कच्चे माल का अभाव था। दूसरी तरफ उसके पास ऊन का उत्पादन इतना नहीं था कि वह अपनी जरूरतों को पूरा कर सके। अपनी माग को पूरा करने के लिये उसने बनावटी किस्म का माल बनाना आरम्भ किया। अन्न की दृष्टि से आत्म-निर्भर बनने के लिये उसने गेहूँ उत्पादन मात्रा काफी बढ़ा दी। इसका नतीजा यह हुआ कि अन्न के अन्तर्राष्ट्रीय विभाजन पर आधारित विश्व आर्थिक व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिक्रियाएँ शुरू हो गई। इसके अतिरिक्त कच्चे माल के समान वितरण तथा अतिरिक्त आबादी के लिए बस्तियों तथा उपनिवेशों की व्यवस्था करने सम्बन्धी समस्यायें उठ खड़ी हुई जिससे यूरोपीय देशों के भावी सम्बन्ध और भी अधिक खराब हो गये।

सिंहावलोकन---वास्तव में उस काल में राजनैतिक और आर्थिक तत्वों का परस्पर कसमकस इतना उलझा हुआ था कि कारण और प्रभाव का पता लगाना बड़ा कठिन था। यह कहना मुश्किल था कि राजनैतिक सुरक्षा ही जिससे राष्ट्रों में परस्पर सहयोग तथा निरस्त्रीकरण कायम होने में रुकावट पैदा हुई आर्थिक संकट का कारण था अथवा आर्थिक असुरक्षा के कारण वे एक दूसरे के समीप न आ सके। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् आर्थिक राष्ट्रीयता ने यूरोप के प्रमुख राज्यों में राजनैतिक राष्ट्रीयता के साथ-साथ उग्र रूप धारण किया और द्वितीय महायुद्ध (१९३९) में परिणत हुआ। प्रसिद्ध लेखक टासनी के शब्दों में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि प्रत्येक राष्ट्र ने शक्ति प्रयोग से आर्थिक और व्यापारिक रुकावटों को दूर करना समयानुकूल समझा। अन्त में विश्व के विभिन्न राष्ट्र आर्थिक जीवन की जटिल समस्याओं को हल करने के लिए प्राचीन अस्त्र तलवार का प्रयोग करने के लिए बाध्य हुए।

व्याख्यान ५

सुरक्षा की खोज में

विषय प्रवेश—राष्ट्रसघ के समक्ष शस्त्रीकरण का विघटन करना सबसे गम्भीर और उलझी हुई समस्या थी। राष्ट्रसघ के सदस्यो का कहना था कि शाति स्थापना के लिए शस्त्रीकरण को कम करके इस स्तर पर ला दिया जाय कि उसमे केवल राज्य की रक्षा की जा सके। इसके अतिरिक्त गैर सरकारी तौर पर शस्त्रो का निर्माण बिल्कुल रोक दिया जाय। किन्तु शस्त्रीकरण समस्या ऐसी थी कि इसमें सारे राजनैतिक सम्बन्ध निहित थे। राष्ट्रो मे शाति स्थापना के प्रति विश्वास का न केवल अभाव था बल्कि विश्व के राजनैतिक सम्बन्ध इतने बिगड गये थे कि सारे राष्ट्र अपने को असुरक्षित समझने लगे थे और इससे वे शस्त्रीकरण कम करने को तैयार नही थे। १९१९ से १९३९ के बीच सुरक्षा सम्बन्धी राष्ट्रो में जो आधारभूत मतभेद पैदा हुए, उससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था भग हुई, हालाकि वे दूसरा विश्व युद्ध बिल्कुल नही चाहते थे। किन्तु उनके सामने प्रश्न था कि युद्ध कैसे रोका जाय तथा अपने को किस तरह सुरक्षित बनाया जाय। इसका नतीजा यह हुआ कि जहा एक देश ने अपनी सुरक्षा का कदम उठाया तो वह दूसरे देश के लिए असुरक्षा का विषय बन गया। इस तरह से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो का इतिहास एक ऐसा काल था जब परस्पर मैत्री और गारटी का निरतर प्रयास होता रहा।

सुरक्षा मैत्री व्यवस्था (१९२०–१९२७)

यूरोपीय मामलो मे सबसे महत्वपूर्ण और सिर दर्द का विषय फ्रास की माँग बनी हुई थी जिसमे वह बार-बार सुरक्षा की माग करता रहा। फ्रास का अन्तर्राष्ट्रीय मामलो मे भाग लेने का केवल एक ही उद्देश्य था कि फ्रांस को जर्मनी के पुन आक्रमण से बचाने की व्यवस्था की जाय। यहा तक कि युद्ध समाप्त हो जाने के बाद भी फ्रासीसी राजनीतिज्ञो का कहना था कि जर्मनी अभी भी सैनिक दृष्टि से फ्रास से अधिक शक्तिशाली है। उनका यह भी कहना था कि जर्मनी की आबादी अभी भी यूरोप के किसी भी राज्य से अधिक ही है। फ्रास को भय था कि उसकी आबादी में यदि तनिक भी गिरावट हुई तो वह जर्मनी के मुँह का ग्रास बन जायगा।

जर्मनी की ताकत तोड कर भावी आक्रमण से फ्रास को मुक्त कराने के लिये पेरिस शान्ति कांग्रेस में फ्रासीसी प्रतिनिधि ने माग की कि राइन नदी का पश्चिमी

फ्रांस के अधिकार में दे दिया जाय। किन्तु अमरीकी प्रेसीडेन्ट विलसन और ब्रिटिश न मंत्री लायड जार्ज ने फ्रांसीसी सीमा राइन नदी तक बढ़ाने देने से इन्कार कर । उनका कहना था कि इससे जर्मनी अपनी ५० लाख जनता से वंचित रह गा। काफी गरम बहस के बाद फ्रांस अपनी सुरक्षा सम्बन्धी निम्न बातों पर राजी गया (१) भावी जर्मन आक्रमण से फ्रांस की सुरक्षा तथा राइन नदी के पश्चिमी पर मित्रराष्ट्रीय सेना का १५ वर्ष तक अधिकार रहेगा। (२) राइन क्षेत्र में पूर्ण- से विसैनिकीकरण और (३) तीन दलों की सन्धि की जाय कि फ्रांस पर जर्मनी के मण होने की हालत में ब्रिटेन और अमरीका फ्रांस की सहायता करेंगे। किन्तु रीका द्वारा पेरिस में हुई सन्धियों पर हस्ताक्षर करने से अस्वीकार कर देने से तीन दलों की सन्धि अप्रभावशाली और बेकार सिद्ध हुई क्योंकि उसमें ब्रिटेन भाग लेना अमरीका के भाने पर ही निर्भर था।

अन्त में फ्रांस को अपनी मनोकामना पूरी करने के लिये छोटे राष्ट्रों की ओर ना पड़ा। इस ओर पहला कदम जो फ्रांस ने उठाया वह बेल्जियम के साथ सम- ता करना था। यह समझौता ७ सितम्बर १९२० में हुआ। यद्यपि यह समझौता इसंघ में दर्ज करा दिया गया था किन्तु इसकी महत्वपूर्ण शर्तें गुप्त रखी गईं। तु फिर भी यह साफ प्रकट किया कि फ्रांस और बेल्जियम जर्मनी के आक्रमण से नी रक्षा के लिये सैनिक दृष्टि से एक हो गये हैं। इसी बीच फ्रांस ने पोलैंड में शेविकों से रक्षा के लिये वहां एक सैनिक शिष्टमंडल भेजा। इसके बाद १९ वरी १९२१ को फ्रांस और पोलैंड में सन्धि हुई। दोनों देशों में समझौता हुआ कि सरी आक्रमण से अपनी रक्षा में वे एक दूसरे का साथ देंगे। १९२७ में इस सन्धि की ट हुई और वह १९३२ में १० वर्ष के लिये और बढ़ा दी गई। उक्त दो सन्धियों फ्रांस को यह लाभ हुआ कि यदि जर्मनी ने उस पर हमला किया तो पश्चिम में जयम और पूर्व में पोलैंड से उसे सहायता मिलेगी।

किन्तु इतने पर भी फ्रांसीसी नेताओं को सन्तोष नहीं हुआ और ब्रिटेन के र सन्धि करने का इरादा किया। दिसम्बर १९२१ में फ्रांस ने ग्रेट ब्रिटेन के साथ निश्चित राजनैतिक समझौता करने का प्रस्ताव रखा। बातचीत में पहले तो न ने झगड़े में पड़ने से इन्कार कर दिया किन्तु बाद में फ्रांसीसी प्रधानमन्त्री ां ने ब्रिटेन को एक सन्धि करने के लिये राजी कर ही लिया जिसकी अवधि वर्ष रखी गई। इसके अनुसार निर्णय हुआ कि बिना किसी विवाद के जर्मनी ने फ्रांसीसी जमीन पर हमला किया तो ब्रिटेन फ्रांस को सैनिक सहायता देगा। समझौता १२ जनवरी १९२२ को केनिस में सम्पन्न हुआ। दूसरे दिन ब्रियां को नमन्त्री पद से मजबूर होकर त्यागपत्र देना पड़ा। उनके स्थान पर प्वाइन्कर

प्रधानमंत्री नियुक्त हुए। यह ब्रियाँ से अधिक गरम मिजाज के थे। इन्होंने माग की कि ब्रिटेन के साथ जो समझौता हुआ है वह पारस्परिक सुरक्षा के आधार पर होना चाहिये। समझौता मे फ्रांसीसी जमीन' हटाकर 'फ्रास' रखा जाय और यह समझौता ठोस बनाया जाय तथा इसकी मियाद १० वर्ष से बढाकर ३० वर्ष कर दी जाय। इस पर ब्रिटेन ने यह कहकर कि शायद दूसरे राष्ट्रो मे ब्रिटेन के प्रति विरोधी भावना पैदा हो जाय सैनिक समझौता करने से इन्कार कर दिया। आखिर जून १९२२ मे जब क्षतिपूर्ति मामलो पर दोनो देशो मे मतभेद उठ खडा हुआ तो उक्त समझौता बिल्कुल भग हो गया।

वास्तव मे रूर पर अधिकार प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्वायकर योजना का फल था। योजना का उद्देश्य प्रथम जर्मनी को क्षतिपूर्ति की अदायगी करने के लिये मजबूर करना था। दूसरे जर्मनी के औद्योगिक विकास में ऐसी अडचन और बाधा खडी करनी थी जिसमे कि आर्थिक दृष्टि से वह बिल्कुल कमजोर हो जाय। तीसरे यह कि राइन क्षेत्र में पृथकवादी आदोलन को प्रोत्साहित कर फ्रास और जर्मनी के बीच एक कडी-राज्य कायम कर दिया जाय।

१९२०-२१ मे चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया तथा रूमानिया के बीच एक समझौता हुआ (त्रिगुट) जिसके अनुसार बिना किसी विवाद के आक्रमण होने पर सब मिलकर आक्रमण से प्रभावित देश की सैनिक सहायता करेंगे और यथापूर्व स्थिति बनाये रखने में एक दूसरे की मदद करेंगे। १९२२ मे उक्त समझौता मे पोलैंड भी आ गया। १९२३ मे फ्रास ने पोलैंड, यूगोस्लाविया तथा रूमानिया को कर्ज दिया जिससे कि वे उससे सैनिक सामान खरीद सकें। २५ जनवरी १९२४ को फ्रास और चेकोस्लोवाकिया में एक सधि पर हस्ताक्षर हुए। सधि की शर्तो के अनुसार विदेशी नीति से सम्बन्धित मामलो पर दोनो देश एक दूसरे से परामर्श लेंगे और एक दूसरे की सहायता करेंगे। इसी प्रकार की सधि १९२६ मे फ्रास और रूमानिया तथा १९२७ मे फ्रास और यूगोस्लाविया के बीच हुई। इस तरह फ्रास ने सुरक्षा के नाम पर यूरोप मे एक नया आधिपत्य कायम किया। फ्रास ने जर्मनी के सम्भावित भय का सामना करने के लिए यूरोप मे अपनी स्थिति मजबूत करली। फ्रास ने लिथुआनिया के विरुद्ध पोलैंड का, हगरी और यूगोस्लाविया के विरुद्ध रूमानिया का साथ देना आरम्भ किया। इसमे सदेह नही कि फ्रास ने अपनी सुरक्षा के लिये यूरोप के ६ देशो के साथ विभिन्न प्रकार के समझौते कर लिये किन्तु ये समझौते फ्रास को बडे महगे पडे क्योंकि जिन देशो के साथ उसने समझौता किया उन्हे उसे सदैव ऋण देना पड गया। इनके अतिरिक्त उनकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय और अनिश्चित थी क्योंकि एक तो व काफी छोटे थे और दूसरे उनके पास सैनिक साधन पर्याप्त नही थे। इधर उक्त सुरक्षा समझौता के कारण फ्रास के प्रति पूर्वी और पश्चिमी

यूरोप में सन्देह पैदा हो गया। इटली और जर्मनी को तो फ्रांस के प्रति काफी सन्देह पैदा हो गया।

बेनिटो मुसोलिनी के नेतृत्व में इटली में फासिस्टवाद के उत्थान के साथ ही पड़ोसी देशों के साथ मैत्री समझौते भी होने लगे। यह फ्रांसीसी सुरक्षा व्यवस्था के लिये बड़ा घातक सिद्ध हुआ। २७ जनवरी १९२४ को इटली ने पेरिस शान्ति सन्धियों को कायम रखने के लिये यूगोस्लाविया के साथ मैत्री व सहयोग का एक पंचवर्षीय समझौता किया। इसके बाद इटली ने पूर्वी देशों को अपने साथ मिलाने के लिए चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया, हंगरी, तुर्की और यूनान के साथ मैत्री समझौते किये। इटली और अल्बानिया के बीच २७ नवम्बर १९२६ को हुई तिराना सन्धि के अनुसार इटली ने अल्बानिया को आर्थिक सुविधायें प्रदान करने के हेतु उसे यथापूर्व राजनैतिक, कानूनी तथा प्रादेशिक अधिकार देने के लिये गारंटी दी। १९२८ में इटली ने अल्बानिया के साथ एक २० वर्ष का सुरक्षा समझौता किया। १९२६ में इटली और स्पेन के बीच तटस्थता सम्बन्धी समझौते पर हस्ताक्षर हुए। इस तरह इटली ने फ्रांसीसी सुरक्षा मोर्चे के विरुद्ध अपने को हर तरह से मजबूत बना लिया।

इधर यूरोप के राष्ट्र अपनी सुरक्षा के लिये गठबंधन करने और अपनी ताकत बढ़ाने में व्यस्त थे तो उधर बोल्शविक राज्य भी इस मर्ज से वंचित न रह सका। शक्तिशाली यूरोपियन गुटों के निर्माण को देख कर सोवियत संघ अपने हितों की रक्षा के लिये अपनी शक्ति बढ़ाने लगा। १९२५ में रूस और तुर्की के बीच एक दूसरे पर आक्रमण न करने का एक समझौता हुआ। निर्णय हुआ कि यदि किसी देश ने उनमें से किसी पर आक्रमण किया तो दूसरा तटस्थ रहेगा। अर्थ यह कि वे एक दूसरे पर न तो आक्रमण करेंगे और न आक्रमण करने वाले को सहायता देंगे। १९२६ में इसी प्रकार का एक समझौता रूस का जर्मनी के साथ भी हुआ। इसके तत्काल बाद लिथुआनिया, अफगानिस्तान तथा फारस के साथ रूस ने तटस्थता और परस्पर आक्रमण न करने सम्बन्धी समझौते किये।

इस प्रकार यूरोप पुनः तीन शक्तिशाली गुटों में विभाजित हो गया। विभाजित गुटों का नेतृत्व फ्रांस, इटली और सोवियत संघ के हाथ पड़ा।

अस्थाई संयुक्त कमीशन

राष्ट्रसंघ के प्रतिश्रव में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया था कि परिषद् प्रत्येक राज्य की भौगोलिक स्थिति तथा उसकी परिस्थितियों को मद्दे नजर रखते हुए ही शस्त्रीकरण में विघटन की योजना बनायेगी। योजनाओं के विभिन्न सरकारों द्वारा स्वीकार कर लिये जाने के बाद शस्त्रीकरण की निर्धारित सीमा बिना परिषद् की सम्मति के बढ़ाई नहीं जा सकती। प्रतिश्रव के अनुसार निःशस्त्री-

करण कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के हेतु परिपद को आवश्यक सलाह देने के लिये एक स्थाई कमीशन की स्थापना भी करना था।

अनिवार्य निशस्त्रीकरण का आरम्भ उस समय हुआ जब जर्मनी, आस्ट्रिया, बलगेरिया तथा हंगरी के साथ शाति सधि करके उन्हे अपनी सेना कम कर देने के लिये मजबूर कर दिया गया। विश्वव्यापी निशस्त्रीकरण की ओर यह पहला कदम था। मई १६२० में राष्ट्रसघ असेम्बली बैठक में शस्त्रीकरण की वर्तमान स्थिति की रिपोर्ट तैयार करने के लिये एक स्थाई परामर्शदातृ आयोग की स्थापना की गई। २५ फरवरी १६२१ को परिपद ने एम विवाजी की अध्यक्षता मे एक अस्थाई सयुक्त कमीशन की स्थापना की जिसका उद्देश्य शस्त्रीकरण के विघटन के अधारभूत सिद्धान्त को स्पष्ट करना था। १६२२ मे कमीशन में ब्रिटिश प्रतिनिधि लार्ड इशर ने सुझाव रखा कि विभिन्न देशो मे अनुपात के अनुसार सेना होनी चाहिये। यह सुझाव कुछ टैक्निकल कारणवश बाद मे रद्द कर दिया गया। इसी बीच अस्थायी सयुक्त कमीशन ने विभिन्न देशो के शस्त्रीकरण सम्बन्धी आकडे प्राप्त किये तथा सैनिक बजट और राष्ट्रीय सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यक सूचनाएँ इकट्ठी की। कमीशन की उक्त रिपोर्ट पर राष्ट्रसघ महासभा ने शस्त्रीकरण सम्बन्धी व्यय पर नियत्रण लगाने की सिफारिश की।

पारस्परिक सहायता सधि का मसविदा

१६२२ मे कमीशन के एक सदस्य लार्ड राबर्ट सिसिल ने शस्त्रीकरण मे विघटन के लिये ४ प्रस्ताव प्रस्तुत किये जिन्हे कमीशन ने निम्न रूप से स्वीकार किया शस्त्रीकरण के विघटन की कोई भी योजना तब तक सफल नही हो सकती जब तक कि उसे आम रूप न दे दिया जाय। विश्व की वर्तमान स्थिति में अधिकाश सरकारे शस्त्रीकरण मे कमी नही कर सकती जब तक कि उनके राज्यो की रक्षा के लिये सन्तोषजनक गारटी न हो। इस प्रकार की जो गारटी हो वह आम अथवा सबकी ओर से हो। यह गारटी तभी सत्य मानी जायेगी जब तमाम सदस्य राष्ट्र अपने यहाँ शस्त्रीकरण में कमी करने के लिये निश्चित वायदे करें। राष्ट्रसघ की तीसरी महासभा ने कमीशन से अनुरोध किया कि पारस्परिक सुरक्षा सम्बन्धी एक सधि का मसविदा तैयार करे। नतीजा यह हुआ कि पारस्परिक सुरक्षा सहायता सम्बन्धी दो मसविदे प्रस्तुत किये गये जिनमें से एक लार्ड सिसिल और दूसरा कर्नल रेडिवन का था। सधि के मसविदे मे कहा गया था कि (१) सधि पर हस्ताक्षर करने वालो को आश्वासन देना पडेगा कि उनमें से किसी पर आक्रमण होने पर बाकी हस्ताक्षरकर्ता देश उनकी सहायता करेगे। (२) हस्ताक्षरकर्त्ता देश अपनी सुरक्षा के लिये परस्पर समझौता कर सकते है लेकिन इसकी शर्ते राष्ट्रसघ के सचिवालय मे पहले दर्ज करवा देनी होगी। (३) आक्रमण की हालत मे,

आक्रमणकारी कौन है इसका निर्णय राष्ट्रसंघ परिषद् ही कर सकेगी। निर्णय के ४ दिन के भीतर ही राष्ट्रसंघ यह भी निश्चय करेगा कि संधि के अन्तर्गत आक्रमण से पीड़ित राष्ट्र को सहायता दी जानी चाहिये कि नहीं। (४) ऐसे राज्यों को जो परिषद् द्वारा निर्धारित शस्त्रीकरण के अनुसार दो वर्ष के भीतर अपना शस्त्रीकरण सीमित नहीं कर पाये वे पारस्परिक सहायता पाने के अधिकारी नहीं होंगे। (५) संधि के अनुसार आक्रमणकारी के विरुद्ध की गई कार्यवाइयों का सारा व्यय आक्रमणकारी राज्य को सहन करना होगा।

सितम्बर १९२३ में राष्ट्रसंघ की चौथी असेम्बली में उक्त मसविदा संधि निर्विरोध स्वीकार कर ली गई और उसकी प्रतियां समस्त राष्ट्रों को प्रेषित कर दी गई। संधि पर प्राप्त उत्तरों से पता चला कि १८ राष्ट्रों ने जिनमें फ्रांस, इटली और जापान भी हैं, सैद्धान्तिक तौर पर संधि को स्वीकार कर लिया है और १२ राज्यों ने जिनमें ब्रिटेन, जर्मनी, अमरीका तथा रूस हैं, संधि को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया है। सन्धि को अस्वीकार करने वाले राज्यों की शिकायत थी कि संधि के मसविदे में आक्रमण की परिभाषा स्पष्ट नहीं की गई है तथा आक्रमणकारी राज्य के साथ कठोर व्यवहार करने के लिये राष्ट्रसंघ परिषद् को पर्याप्त अधिकार नहीं प्राप्त हुआ है। विरोधी राज्यों का यह भी कहना था कि संधि स्थिर तथा विश्वसनीय नहीं जो कि शस्त्रीकरण में विघटन का आवश्यक आधार है।

जनेवा प्रोटोकोल (समझौता)

सितम्बर १९२४ में ब्रिटेन और फ्रांस के दोनों समाजवादी प्रधान मंत्री—रामजे मेकडोनाल्ड तथा हेरियो—ने निःशस्त्रीकरण, सुरक्षा तथा न्याय पर आधारित शस्त्रीकरण में विघटन सम्बन्धी एक संयुक्त प्रस्ताव राष्ट्रसंघ की पांचवीं महासभा में प्रस्तुत किया। इस प्रस्ताव के फलस्वरूप पोलिटीस तथा बेन्स ने प्रशान्त क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के निपटारे के लिये एक संधि का मसविदा तैयार किया। यह मसविदा २ अक्तूबर १९२४ को राष्ट्रसंघ की असेम्बली में निर्विरोध स्वीकार कर लिया गया। तथाकथित जनेवा संधि की प्रमुख बातें निम्न प्रकार थीं (१) आक्रमण अथवा युद्ध एक अन्तर्राष्ट्रीय अपराध है और प्रतिज्ञापत्र का पालन करने वाले देशों पर आक्रमण करना भारी अपराध होगा। (२) वैधानिक विवादों को अन्तर्राष्ट्रीय न्याय की स्थायी अदालत सुलझावेगी और राजनैतिक झगड़ों को राष्ट्रसंघ परिषद् निपटावेगी। (३) झगड़ों पर जिस समय न्यायालय अथवा परिषद् में विचार हो रहा हो उस काल में सैनिक संगठन नहीं किया जा सकता। (४) जो राष्ट्र विवादास्पद मामले को न्यायालय में नहीं रखेगा अथवा जो न्यायालय के निर्णय को स्वीकार

पर दृढ रहेगे। तय हुआ कि इस समझौते से वर्साय सधि के अन्तर्गत हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रो के अधिकारो पर कोई प्रभाव नही पडेगा। जर्मनी के राष्ट्रसघ का सदस्य होते ही यह समझौता लागू होगा और यह उस समय तक लागू रहेगा जब तक परिषद् दो-तिहाई बहुमत से यह निश्चय न करले कि राष्ट्रसघ उच्च समझौता वाले राष्ट्रो को पर्याप्त रक्षा का आश्वासन देता है।

(२) ४ पच सधियो द्वारा राष्ट्रो ने सामूहिक रूप से सब प्रकार के विवादो पर विश्व अदालत या किसी अन्य अदालत का फैसला शातिपूर्वक मानना स्वीकार किया जो कि कूटनीति के सामान्य साधनो से नही सुलझ सकते थे। यह धारा उन विवादो पर लागू नही होती थी जो इन सधियो पर हस्ताक्षर होने से पूर्व उठे थे जैसे कि पोलैंड सीमा विवाद। (३) गारटी की सधियो के द्वारा यह तय किया गया कि यदि हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्र लोकार्नो में की गई प्रतिज्ञाओ का पालन करने मे असमर्थ हो तो उनको एक दूसरे की सहायता शीघ्र करनी चाहिए, यदि इस असमर्थता के बाद भी शस्त्रो का प्रयोग होता हो। इन सधियो पर १ दिसम्बर १९२५ को हस्ताक्षर हुए।

लोकार्नो सधि की फ्रास व जर्मनी मे बडी प्रशसा की गई और इसको विश्व-शाति के लिये एक बडा कदम बताया गया। इस समझौते की मुख्य कुंजी जर्मनी को राष्ट्रीय परिषद् में स्थायी सीट मिलना था। इसके अतिरिक्त इससे राइन सीमा पर किसी भी जर्मन हमले के लिये फ्रास को खतरा नही रहा लेकिन जर्मनी की पूर्वी सीमा की समस्या का समाधान नही हुआ। यद्यपि जर्मनी ने अपनी पूर्वी सीमा के विषय मे किसी प्रकार की आक्रात्मक कार्यवाई करना अस्वीकार किया परन्तु उसने साथ-साथ उसका शातिपूर्ण ढग से हल भी ढूढना चाहा। कार ने कहा था कि अधिक काल के लिये लोकार्नो सधि वर्साय सधि व प्रतिश्रव दोनो के लिये घातक थी। उससे इन दोनो विचारधाराओ को प्रोत्साहन मिला कि वर्साय सधि मे दबाव की कमी है। जब तक कि उसकी पुष्टि अन्य बातो मे न की जाय और सरकारो से आशा नही की जा सकती कि वे उन सीमाओ की रक्षा करेगी जिनमें वे स्वय दिलचस्पी नही रखती। किन्तु फिर भी लोकार्नो सधि ने यूरोप में शाति स्थापना में महत्वपूर्ण योग दिया।

ब्रियां–कैलोग समझौता (पेरिस की सन्धि)

६ अप्रैल १९२७ को फ्रांसीसी विदेश मत्री ब्रियां ने सुझाव दिया कि फ्रास और अमरीका के बीच युद्ध न होने देने के लिए वह अमरीका के साथ पारस्परिक समझौता कर सकता है। दो मास के बाद ब्रियां के उक्त सुझाव को मसविदा सधि का रूप दिया गया जो अमरीका को भेट किया गया। सधि के अनुसार दोनो राष्ट्रो

को वायदा करना होगा तथा सरकारी तौर पर ऐलान करना होगा कि वे परस्पर युद्ध के लिये कभी कदम नहीं उठायेंगे और जो भी झगड़ा होगा उसे शांति पूर्ण तरीके से सुलझा लेंगे। ६ मास बाद अमरीकी विदेशी मंत्री फ्रेंक बी॰ कैलोग ने सुझाव रखा कि द्विराष्ट्री की संधि के बदले एक ऐसी संधि होनी चाहिए जिसमें विश्व के समस्त राष्ट्र शामिल हो सकें। आपने कहा कि समस्त राष्ट्रों को एक दूसरे के समीप आ जाने से युद्ध का भय भी समाप्त हो जायगा। काफी बहस के बाद कैलोग का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। इसके अनुसार सभी राष्ट्रों ने युद्ध से पृथक् रहने का वायदा किया। वे शस्त्र केवल इसी हालत में उठा सकते थे (१) जब उनकी अपनी सुरक्षा का सवाल हो (२) वे संधि का उल्लंघन करने वाले राज्य के विरुद्ध शस्त्र उठा सकते थे (३) संधि को लागू करने के रास्ते में उत्पन्न रुकावटों के विरुद्ध हथियार उठा सकते थे (४) ब्रिटिश साम्राज्य के विश्व में फैले विभिन्न क्षेत्रों की आक्रमण से रक्षा के लिए युद्ध किया जा सकता था क्योंकि उनकी रक्षा करना शांति के लिए काफी महत्व की बात थी। राष्ट्रसंघ की सदस्यता के अन्तर्गत सौंपी गई जिम्मेवारी को कायम रखने तक सुचारु ढंग से चलाने के लिए विरोधी अथवा अड़चन डालने वालों के विरुद्ध शस्त्र उठाना।

२७ अगस्त १९२८ को कर्ट दे ओर्से में १५ राज्यों के प्रतिनिधि एकत्रित हुए और निम्नलिखित संधि पर हस्ताक्षर किये। यही समझौता पेरिस की संधि के नाम से भी मशहूर हुआ। संधि की धाराएं निम्न प्रकार थी (१) हम अपने देश की जनता की भलाई के लिए शांतिपूर्ण ढंग से निबटारे तथा परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने के लिए शपथ लेते हैं कि हम युद्ध से पृथक् रहेंगे और अनावश्यक तथा संधि की शर्तों के विरुद्ध कदम नहीं उठायेंगे। (२) परस्पर झगड़े के निबटारे के लिए हम शांतिपूर्ण तरीकों का सहारा लेंगे। (३) वे राष्ट्र जो अपने राष्ट्रीय हितों के लिये आक्रमण करेंगे, उन्हें संधि के अन्तर्गत प्राप्त होने वाली सुविधाएं प्राप्त नहीं होंगी।

पेरिस के समझौते पर हस्ताक्षर होने के कुछ सप्ताहों के भीतर ही ३० राज्य भी इसे स्वीकार करने को तैयार हो गये जिनमें रूस भी एक था। २४ जुलाई १९२९ को प्रेसिडेंट हूवर ने उक्त समझौते को लागू किया और दो वर्ष के भीतर ६० देशों की स्वीकृति प्राप्त हो गई।

पेरिस की संधि अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। प्रो० कार के शब्दों में "इतिहास में यह प्रथम राजनीतिक समझौता है, जो कि अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल कर सकता है।' प्रो० हार्ले का कहना था कि नैतिक दृष्टि से भी इस संधि ने एक नवीन युग की सृष्टि की है। पेरिस संधि केवल युद्ध का बहिष्कार

करने का सकल्प मात्र ही नही था, अपितु यह एक ऐसा निर्णय था, जिसके अनुसार राष्ट्रसघ के वाहर के राज्य--सयुक्त राष्ट्र और रूस---प्रत्यक्ष रूप से शाति के सामूहिक सगठन में भाग ले सकते थे ।" परन्तु विचारशील व्यक्ति ब्रिया-कैलोग सधि की दो महान कमी को अधिक प्रधानता देते है । प्रथम---केवल आक्रमणात्मक युद्ध का वहिष्कार किया गया था परन्तु कोई भी राज्य आत्म-रक्षा के नाम से युद्ध कर सकता था । इसलिए जिन राष्ट्रो ने इस सधि पर हस्ताक्षर किये थे, वे भी विना युद्ध घोपणा किये लडने लगे--जैसा १९३१ मे जापान ने चीन मे किया । दूसरा---इस सधि को प्रयोग करने की कोई व्यवस्था नही थी । चिरशान्ति का युग केवल एक महान सकल्प मात्र था । शूमॅन के शब्दो मे "यदि कोई हस्ताक्षरकारी राज्य ने इस सधि को भग किया तो दूसरे सव उसमे मुक्त हो जाते थे ।" आश्चर्य का विपय तो यह था कि यद्यपि सयुक्त राष्ट्र अमरीका ने इस समझौते का अनुमोदन किया था फिर भी उसने एक विशेप विल पास करके अमरीकी नौ शक्ति को दुगना कर दिया ।

निशस्त्रीकरण की समस्या

कैलोग समझौता विल्कुल झूठा और धोखा सिद्ध हुआ और सुरक्षा समस्या को हल करने का दूसरा उपाय केवल राष्ट्रीय शस्त्रीकरण का सतुलन था । हम यह देख चुके है कि—प्रथम विश्व युद्ध के वाद भी निशस्त्रीकरण का प्रभाव विश्वव्यापी नही था । फ्रास ने निशस्त्रीकरण आदोलन के अन्तर्गत अपनी सेना ५० प्रतिशत कम कर दी यही नही वल्कि उसने सैनिको की सर्विस अवधि तीन वर्ष से घटा कर डेढ वर्ष करदी । उस के साथ ही इटली ने भी अपनी सेना में कटौती कर दी और जर्मनी, आस्ट्रिया, हगरी तथा वल्गेरिया की सैनिक ताकत तो प्राय विल्कुल ही खत्म कर दी गई । निशस्त्रीकरण के वाद रूस, अमरीका, ब्रिटेन और जापान ने धीरे धीरे अपनी सैनिक शक्ति वढानी आरम्भ कर दी । इससे उनमें परस्पर शत्रुता और भय पैदा होने लगा । शस्त्रीकरण की इस अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता को रोकने के लिए १९१९–२० की शाति-सधियो का आश्रय लिया गया जिससे विजयी राष्ट्रो मे शस्त्रीकरण पर प्रतिवन्ध लगाया गया । किन्तु निशस्त्रीकरण को मानने में सभी राष्ट्र अपने लिए भय समझते थे । उनकी वहम थी कि राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए शस्त्रीकरण वहुत जरूरी है । इस हालत मे यही तय हुआ कि जिस राष्ट्र के पास जितनी सेना है उसमे अव वृद्धि न की जाय ।

वाशिगटन नौ-सम्मेलन

नौ शस्त्रीकरण की सीमा निर्धारित करने के लिए १९२१–२२ की शरद् ऋतु मे वाशिगटन मे एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन वुलाया गया । फरवरी १९२२ में

अमरीका, ब्रिटेन, जापान, फ्रांस तथा इटली में एक पाँच राष्ट्रों की सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। सन्धि के अनुसार (१) अमरीका को १८ लड़ाकू जहाज, ब्रिटेन को २०, फ्रांस, जापान और इटली प्रत्येक को १० जहाज रखने का अधिकार मिला। (२) विमान के ढोने वाले जहाजों पर नियन्त्रण लगा दिया गया। (३) १० वर्षों तक लड़ाकू जहाजों का निर्माण बन्द कर दिया गया तथा पुराने जहाजों की जगह नये जहाज तभी तैयार किए जा सकते थे जब पुराने जहाजों की उम्र ७० वर्ष पूरी हो चुकी हो। (४) युद्ध पोतों का अनुपात निम्न प्रकार से निर्धारित कर दिया गया ब्रिटेन ५, अमरीका ५, जापान ३, फ्रांस १.६७ टन का युद्धपोत रख सकते हैं। यद्यपि फ्रांस ने ब्रिटेन के उस प्रस्ताव को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया जिसमें कहा गया था कि युद्ध काल में पनडुब्बियों के प्रयोग पर नियन्त्रण लगा दिया जाय। इधर ब्रिटेन ने शिकायत की कि फ्रांस सैनिक जहाज तैयार करने की ओर कदम उठा रहा है।

जनेवा सम्मेलन

पाँच साल के बाद अमरीकी प्रेसीडेन्ट काल्विन कूलिज ने लड़ाकू विध्वंसक जहाज तथा पनडुब्बियों का निर्माण सीमित करने के लिये उक्त पाँचों राष्ट्रों का एक सम्मेलन बुलाया। ब्रिटेन और जापान ने अमरीकी प्रस्ताव को स्वीकार किया किन्तु फ्रांस और इटली ने अस्वीकार कर दिया। २० जून १९२७ को जनेवा में तीन राष्ट्रों का सम्मेलन हुआ। अमरीका ने सुझाव दिया कि ब्रिटेन और अमरीका ४–४ लाख टन के युद्धपोत रख सकते हैं जिसमें से २५ बड़े जहाज और २० छोटे जहाज होंगे। ब्रिटेन ने कहा कि ८० युद्धपोत से कम से उसका काम नहीं चल सकता क्योंकि उसे समस्त विश्व में रक्षा करनी पड़ती है। किन्तु अमरीका और ब्रिटेन में परस्पर इतना मतभेद पैदा हुआ कि सम्मेलन बिलकुल भंग हो गया। १९२९ में अमरीकी कांग्रेस ने नये विमान उठाने वाले जहाजों के निर्माण सम्बन्धी एक बिल को पास कर दिया।

लंदन नौसैनिक सन्धि

जनवरी १९३० में पाँच बड़ी नौसैनिक शक्तियों, ब्रिटेन, फ्रांस, अमरीका, इटली और जापान का लंदन में एक सम्मेलन हुआ। तीन मास तक लगातार बहस के बाद एक सन्धि की गई जिस पर २२ अप्रैल को उक्त पाँचों राष्ट्रों के हस्ताक्षर हुए। संधि के दो भाग थे। प्रथम भाग जो उक्त पाँचों राष्ट्रों द्वारा स्वीकार किया जा चुका था उसमें केपिटल जहाजों [illegible] था। १९२२ की वाशिंगटन सन्धि द्वारा निर्धारित विमान वाहक जहाजों की [illegible] वृद्धि सम्बन्धी समझौतों का उल्लेख था। दूसरा भाग जिस पर केवल ब्रिटेन अमरीका और जापान ने हस्ताक्षर

किये थे उसमें उक्त देशो के युद्धपोतो की सख्या में क्रमश ५, ३ और २ जहाज कम कर देने का उल्लेख था। सधि के अनुसार युद्धपोतो की सख्या में उक्त कमी १९३६ की जगह १९३३ से पहले कर देनी थी। स्मरण रहे कि १९२२ के वाशिंगटन सम्मेलन मे तय हुआ था कि उक्त कमी १९३६ तक कर देनी चाहिये। दस हजार टन के युद्धपोतो के बारे में निर्णय हुआ कि हस्ताक्षरकर्त्ता तीन देश अमरीका, ब्रिटेन और जापान क्रमश १८, १५ और १२ युद्धपोत अपने पास रख सकते है। सधि की एक सुरक्षा धारा मे कहा गया था कि राष्ट्रीय सुरक्षा के खतरे में पडने की स्थिति मे उक्त राष्ट्र आवश्यक सूचना देकर अपने युद्धपोतो की सख्या में वृद्धि कर सकेगे। सधि १ जनवरी १९३१ को लागू कर दी गई। १९३४ में जापान ने अमरीका को नोटिस दिया, कि उसे अमरीका और ब्रिटेन की तुलना मे समान नौसैनिक सुविधा दी जाय अन्यथा वह उक्त सधियो को आगे स्वीकार नही करेगा। १८ जून १९३५ को ब्रिटेन ने जर्मनी के साथ एक नौसैनिक सधि पर हस्ताक्षर किये। इस सधि के अनुसार जर्मनी को ब्रिटिश नौसैनिक शक्ति के ३५ प्रतिशत के बराबर नौसैना रखने का अधिकार दिया गया। इस तरह वर्साय सधि द्वारा जर्मनी पर जारी किया गया नौसैनिक शक्ति सम्बन्धी प्रतिबन्ध उठा दिया गया। २५ मार्च १९३६ को फ्रास, अमरीका और ब्रिटेन के बीच एक नई नौसैनिक सधि पर हस्ताक्षर हुए। सधि के अनुसार उक्त तीनो राष्ट्रो के पास केपिटल जहाज ३५ हजार टन, विमान वाहक जहाज २३ हजार टन, हल्के युद्धपोत ८ हजार टन और पनडुब्बी जहाज २ हजार टन तक सीमित कर दिये गये।

१९३७ के प्रारम्भ मे जापान नौसैनिक शक्ति सग्रह करने के सम्बन्ध में बिल्कुल स्वतत्र हो गया। उसने अपनी नौसैनिक ताकत बढानी आरम्भ कर दी। यह देख कर ब्रिटेन और अमरीका ने भी अपनी शक्ति बढानी शुरू कर दी। इस तरह द्वितीय विश्व युद्ध के लिए भयकर दौर आरम्भ हो गया।

सेनाओ के लिए राष्ट्रसघ का कमीशन

१९२५ में राष्ट्रसघ की परिषद् ने निशस्त्रीकरण समस्या का अध्ययन करने तथा इसके लिए एक सम्मेलन बुलाने पर विचार करने के लिये एक प्रारम्भिक आयोग की स्थापना की। कमीशन ने आवश्यक अध्ययन के बाद बताया कि उक्त समस्या राजनैतिक और टैक्निकल दोनो दृष्टि से जटिल है। पांच वर्षो तक कठिन परिश्रम के बाद कमीशन ने सधि का एक मसविदा तैयार किया। सधि के अनुसार थल, जल और नभ सेनाओ मे सैनिको की सख्या, सैनिक सेवा की अवधि, सेना पर व्यय मे कमी करना तथा जहरीले गैसो के प्रयोग पर पाबन्दी का उल्लेख था। इसके

अतिरिक्त निशस्त्रीकरण सम्बन्धी आवश्यक सूचनाएं प्राप्त करने के लिए एक स्थायी कमीशन की नियुक्ति करना भी था।

आम निशस्त्रीकरण सम्मेलन

फरवरी १९३२ में निशस्त्रीकरण सम्मेलन आर्थर हेन्डरसन की अध्यक्षता में जनेवा में हुआ। इसमें ५७ राज्यों के २३२ प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन का उद्देश्य न केवल मसविदा सन्धि पर विचार करना था बल्कि प्रत्येक राष्ट्र की सेना की शक्ति और उसके खर्च को निशस्त्रीकरण के अन्तर्गत सीमित करना था। इसमें सन्देह नहीं कि यह काम बड़ा जटिल था क्योंकि फ्रांस और जर्मनी में इस विषय पर काफी मतभेद था। फ्रांसीसी प्रतिनिधि अड्रे टाडियू ने सुझाव दिया कि एक अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस सेना कायम की जाय जो निशस्त्रीकरण कानून को तोड़ने वाले के विरुद्ध कार्यवाही करे और आवश्यक दण्ड दे। सदस्य राष्ट्रों के वे हथियार अथवा साधन जिनसे आक्रमण का खतरा हो जैसे युद्धपोत, पनडुब्बी तथा बम-वर्षक विमान राष्ट्रसंघ के नियन्त्रण में कर दिए जाय। जर्मन, अमरीकी तथा ब्रिटिश प्रतिनिधियों ने इस फ्रांसीसी प्रस्ताव का विरोध किया। इससे गतिरोध पैदा हो गया। अक्तूबर १९३३ में जर्मनी हिटलर के नेतृत्व में सम्मेलन से अलग हो गया और इसी के साथ ही उसने राष्ट्रसंघ से अपना सम्बन्ध विच्छेद करने सम्बन्धी नोटिस भी राष्ट्रसंघ को भेज दिया। जर्मनी ने कारण में लिखा चूंकि राष्ट्रसंघ के सदस्य जर्मनी को समानता का अधिकार सौंपने के पक्ष में नहीं इसलिए ऐसी संस्था में रहना व्यर्थ है। अन्त में मई १९३४ में सम्मेलन बिना किसी सफलता के भंग हो गया। इसके भंग होते ही फ्रांस, ब्रिटेन और जर्मनी ने अपनी सुरक्षा सेना पर व्यय के लिए बजट में सुरक्षा कोष बढ़ा दिया।

निष्कर्ष

शस्त्रीकरण की दौड़ को रोकने के लिये जनेवा में किए गए प्रयास के विफल होने के साथ ही वाशिंगटन और लदन के नौ-समझौते भी भंग हो गए। शस्त्रीकरण के साथ सीमीकरण का जहाँ मामला था वहाँ जर्मनी तमाम सैनिक नियंत्रणों से मुक्त होकर सैनिक संगठन करने लगा। उसने ऐसा ही कदम अन्य साथियों से भी उठाने को कहा। जर्मनी की इस प्रकार की हरकत को देखकर अन्य राष्ट्रों में भावी आक्रमण का भय पैदा हो गया और उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए अपने को शक्तिशाली बनाने तथा पड़ोसी राज्यों से समझौता और सन्धि करना शुरू कर दिया। इस हालत में निशस्त्रीकरण की आशा ओझल हो गई और आक्रमणों का भय बढ़ता गया जिसका नतीजा दूसरा विश्व युद्ध हुआ।

व्याख्यान ६

द्वितीय विश्व युद्ध

विषय प्रवेश---अरिसटोटल का कहना है कि राजनैतिक आन्दोलन छोटी घटनाओ से ही पनपते है किन्तु उनके पीछे वडे गहरे कारण होते है । अ तर्राष्ट्रीय दृष्टि से यद्यपि डानजिग पर जर्मनी का आक्रमण साधारण घटना थी और यूरोप के राष्ट्र उसे विना युद्ध किये शात कर सकते थे किंतु वे शातिपूर्ण समझौता कराने मे असफल रहे । इससे प्रतीत होता है कि इस घटना के पीछे कुछ ऐसे शक्तिशाली कारण थे जिन्हें यूरोपीय राष्ट्र सुलझाने मे असमर्थ रहे ।

वास्तव में १६३६ की लडाई का उत्तरदायित्व जर्मनी पर ही है । कुछ जर्मन लेखको ने भी इस वात को स्वीकार किया है । सच वात तो यह है कि जर्मन फ्यूरर काफी दिनो से यूरोप मे जर्मन आधिपत्य कायम करने की योजना वनाता चला आ रहा था । १६३६ मे उसे अपनी योजना को क्रियान्वित करने का अच्छा मौका मिला और उसने आक्रमण आरम्भ कर दिया ।

जर्मनी का उत्थान

१६३३ के वाद एडोल्फ हिटलर के नेतृत्व मे जर्मन शक्ति के पुनरुत्थान से अतर्राष्ट्रीय राजनीति मे वडी खलवली मची हुई थी । शूमैन का कहना था कि 'जर्मनी का इतिहास एक अक्षर 'ह' (एच) हिटलर से आरम्भ हुआ और चार 'ह' (एच) हर्मन ,होहेनस्टोफेन, हैप्सवर्ज, होहेनजालर्न और हिटलर ने जर्मन शासन को चलाया और वाद मे एक 'ह' हिटलर मे ही वह समाप्त हो गया ।"

जर्मन पुनरुत्थान के अतिम नेता का वर्णन गथोर्न हार्डी ने इस प्रकार किया है' "वह अत्यन्त साधारण अथवा हास्यास्पद शक्ल का था । अपनी प्रारम्भिक अवस्था में वह लगातार असफल रहा । वह अत्यन्त भावुक तथा अस्थिर चित्त वाला व्यक्ति था । उसकी शिक्षा बहुत कम थी तथा उसके विचार मौलिक अथवा नये नही थे किंतु उसकी सफलता को देखते हुए यह स्पष्ट है कि उसमें राजनीतिज्ञ अथवा नेता के गुण असाधारण मात्रा मे थे । यदि हम उसकी इमानदारी व मानवता आदि गुणो के अभाव की ओर ध्यान न दे तथा उसकी भयकर भूलो की अवहेलना करे क्योकि बुद्धिमान से बुद्धिमान मनुष्य भी भूलो से वचित नही तो हम इस वात से इन्कार नही कर सकते कि उसमे वास्तविक प्रज्ञता के गुण थे चाहे उसकी प्रज्ञा

आसुरी ही क्यों न हो। बिना वास्तविक महानता के यह सम्भव नहीं था कि वह राजनीतिज्ञों तथा सैनिकों की आज्ञाकारिता एवं स्वामीभक्तित्व प्राप्त कर लेता। जर्मन जनता पर उसका प्रभाव तो और भी अधिक था।"

एडोल्फ हिटलर व्यवसाय से राजगीर था। सन् १९१९ के युद्ध के पश्चात् उसने राष्ट्रीय समाजवादी पार्टी के प्रचारक के रूप में अपना राजनीतिक जीवन आरम्भ किया। सन् १९२३ में म्युनिक की सराय की भट्टी में आन्दोलन करने के फलस्वरूप उसे बवेरिया जेल में भेज दिया गया। जेल में हिटलर ने 'मीनकैम्फ' अथवा 'मेरा संघर्ष' नामक पुस्तक लिखी जिसमें उसने बहुमत पर आधारित पालियामेन्ट पद्धति का विरोध किया। उसने कहा जर्मनी वास्तव में ऐसा प्रजातन्त्र होगा जो स्वतन्त्र रूप से अपना नेता चुनेगा। उसके अनुसार प्रत्येक प्रश्न पर बहुमत की स्वीकृति न लेकर केवल एक व्यक्ति (नेता) की स्वीकृति से कार्य होगा। हिटलर ने अपनी पुस्तक में कई जगह जर्मनी की प्रादेशिक आकांक्षाओं की ओर भी संकेत किया था और आत्मनिर्भरता के सिद्धान्त का सहारा लेकर उसने लिखा था "जर्मन रीख अथवा जर्मन राज्य में सभी जर्मन निवासी सम्मिलित हैं। जर्मनी की राजनैतिक सीमाएँ (लिबेन स्राम) जर्मन जनसंख्या के सिद्धान्त पर निर्धारित की जायेंगी जिससे जर्मन जनता के लिए पर्याप्त भूमि प्राप्त हो। इसे जर्मन जनता के रहने के लिए अधिक भूमि प्राप्त करनी है तथा जनसंख्या व भू-माया के बीच असंतुलन को दूर करना है तथा अपनी भूमि को जीविका के आधार के साथ ही अपनी शक्ति को बढ़ाने का साधन भी बनाना है। राष्ट्रों की सीमायें मनुष्य द्वारा रची गई हैं और मनुष्य उन्हें बदल भी सकते हैं। जिन राष्ट्रों का विस्तार जरूरी है उन्हें बढ़ाना नैतिक कर्तव्य है। यदि एक बड़ा राष्ट्र भूमि के अभाव के कारण बर्बाद हो रहा है तो उस हालत में आक्रमण करके उसका अपने लिए भूमि प्राप्त करना कर्तव्य हो जाता है।'

हिटलर ने लिखा कि 'जर्मनी के सीमा विस्तार का स्वप्न पूर्व में बढ़ने से ही हो सकता है। यदि हमें यूरोप में नई भूमि की जरूरत है तो हमें रूस तथा सीमान्त राष्ट्रों की ओर ही कदम बढ़ाना होगा।' हिटलर ने यह स्पष्ट कहा था कि फ्रांस जर्मनी का सदा का कट्टर शत्रु है।

हिटलर की राष्ट्रीय समाजवादी योजना में २५ बातें थी। पहली बात आत्मनिर्णय के सिद्धान्त पर समस्त जर्मन जनता को एक जर्मन राज्य में संगठित एक सूत्र में बांधना। दूसरी बात वर्साय सन्धि को भंग करना तथा अन्य सन्धियों को अस्वीकार करना व इनमें आमूल परिवर्तन करना। तीसरी बात थी जर्मनों की बढ़ती आबादी के लिये नये उपनिवेश योजना। इसमें परिमित

अन्य माँगे निम्न प्रकार थी पेशेवर सेना के स्थान पर राष्ट्रीय सेना कायम करना, राज्य मे शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना, बिना मेहनत से होने वाली आयो को समाप्त करना, यहूदियो को जर्मन नागरिकता से वचित करना, जर्मन जनता के लिए जीवन-यापन का जरिया निकालना, बेकारी दूर करना तथा अन्य बडे राष्ट्रो के समान शस्त्रीकरण करना।

नाजी क्रान्ति

जर्मनी मे राष्ट्रीय समाजवादी दल का विकास १९३० से ही आरम्भ हो गया। १९३० के आम चुनाव में उक्त दल को ५७६ मे से १०७ सीटें प्राप्त हुई। पहले इस दल को केवल ११ सीटें प्राप्त थी। इसके बाद १९३२ मे दो बार आम चुनाव हुआ। दोनो बार राष्ट्रीय समाजवादी दल को ५८४ सीटो में से १९६ सीटे प्राप्त हुई जिसकी सख्या कुल सीटो की एक तिहाई से थोडी ही कम थी। इस तरह विधान सभा मे राष्ट्रीय समाजवादी दल का बहुमत रहा और वह अन्य सभी दलो से शक्तिशाली सिद्ध हुआ। हिटलर सयुक्त मन्त्रिमण्डल का चासलर नियुक्त किया गया। सयुक्त मन्त्रिमण्डल मे तीन नाजी और २ राष्ट्रवादी थे। ३० जनवरी १९३३ को हिटलर ने विधान सभा (रीशस्टाग) को भग करके ५ मार्च १९३३ को नया चुनाव करने का आदेश दिया। आम चुनाव के केवल ६ दिन पूर्व विधान सभा (रीशस्टाग) का भवन रहस्यजनक स्थिति में जलता पाया गया। यह नाजियो के लिये अच्छा अवसर था। हिटलर ने राष्ट्रपति हिन्डेनवर्ग से कहा कि जर्मनी की स्वतन्त्रता तथा सुविधाओ सम्बन्धी वैधानिक गारन्टियो पर नियन्त्रण लगा दिया जाय। इसका परिणाम यह हुआ कि व्यक्तिगत सम्पत्ति पर कब्जा करने, किसी की सम्पत्ति को जब्त करने, समाचार पत्रो, सभा और पार्टियो को भग और विनाश करने का अधिकार सरकार को मिल गया। हिटलर ने स्थिति का फायदा उठाते हुए कम्युनिस्ट पार्टी को गैर कानूनी करार देकर उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया और सोशल डेमोक्रेट दल को आदेश दिया कि वह अपने समाचार पत्रो का प्रकाशन और चुनाव प्रचार शीघ्र बन्द कर दे। इसके बाद जो आम चुनाव हुआ उसके कुल मतो का ४४ प्रतिशत मत नाजी पार्टी के पक्ष मे पडा। १ अप्रैल को हिटलर और नाजी दल को ४ वर्ष तक शासन सम्भालने का अवसर दिया गया। इसके बाद तीन मास के भीतर ही समस्त नाजी विरोधी दल सदा के लिए भग कर दिए गए और जर्मनी की राजनीति पर एक ही दल नाजी पार्टी की तानाशाही कायम हो गई। काला, लाल और सुनहले रग का गणतन्त्र झण्डा हटा कर उसके स्थान पर दो प्रकार के

का जो काला, श्वेत और लाल था और इसपर नये राष्ट्रीयवाद का जिस पर स्वास्तिक चिन्ह था, फहराये गये। २ अगस्त १९३४ को जब राष्ट्रपति हिण्डेनबर्ग का देहान्त हो गया तब राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्री (प्रेसीडेन्ट और चान्सलर) के पद मिलाकर एक कर दिये गये। हिटलर जर्मनी का नेता और चान्सलर दोनों नियुक्त हुआ। इस तरह प्रजातान्त्रिक जर्मन-गणतन्त्र की समाप्ति के साथ हिटलर के नेतृत्व में नाजी तानाशाही की स्थापना होकर नाजी क्रान्ति सफलता के साथ समाप्त हो गई।

नाजीवाद के उत्थान के कारण

जर्मनी में नाजीवाद के उत्थान के कई कारण थे और वे इतने गहरे थे कि उनके खिलाफ जर्मनी को एक दिन जरूर उठना पड़ता। प्रथम कारण वर्साय सन्धि की शर्तें थी जो इतनी सख्त और कड़ी थी कि उनसे जर्मन राष्ट्र के बिल्कुल नष्ट हो जाने का खतरा था। विजयी राष्ट्रों का उनके साथ व्यवहार बड़ा अन्यायपूर्ण था। इससे जनता में क्रांति पैदा हुई और वे बदला लेने को तैयार हो गये। (२) जर्मनी में साम्यवाद के विकास होने पर धनी औद्योगिकों को खतरा पैदा होने लगा। इस अवसर का लाभ उठा कर नाजी पार्टी ने प्रचार करना आरम्भ किया कि यदि नाजी पार्टी का पतन हो गया तो जर्मनी में कम्युनिस्टों की सत्ता [illegible] हो जावेगी। इसका असर पूंजीपतियों और औद्योगिकों पर पड़ा और उन्होंने नाजी पार्टी को हर तरह से सहयोग देना आरम्भ किया। इस तरह साम्यवाद के आगे नाजीवाद बहुत बड़ी चट्टान बन गया। (३) नाजी पार्टी ने बेकार और आर्थिक दृष्टि से पीड़ित जनता को सहायता पहुँचाना शुरू किया जिससे वे नाजी पार्टी के साथ हो गये। (४) नाजियों ने जर्मन युवकों को सैनिक शिक्षा देने के लिये सरकारी फौज से अलग अपनी सेना तैयार करनी आरम्भ कर दी। (५) नाजी पार्टी द्वारा यहूदियों के विरुद्ध नीति अपनाने से वे लोग, जो यहूदियों को जर्मन जनता की कठिनाइयों का उत्तरदायी समझते थे नाजी पार्टी के साथ हो गये। (६) रीशस्टाग (विधान सभा) में पार्टियों की भरमार हो जाने से पार्लमेंटी शासकों में गतिरोध उत्पन्न होने लगा इससे जनतान्त्रिक व्यवस्था भंग होने लगी और तानाशाही के लिये रास्ता साफ हो गया। (७) जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिये नाजी पार्टी ने सभा और जनता को प्रभावित करने वाले प्रचारों का साधन लिया। (८) इटली की सफल फासिस्टवादी नीति का उदाहरण रखते हुए जनता में समर्थन की प्रवृत्ति की गई। कहा गया कि जैसे इटली में फासिस्टवाद की विजय हुई है वैसे ही जर्मनी में नाजीवाद की विजय होगी और वही जनता को सफलता के मार्ग पर ले जावेगी।

(६) नाजीवाद के विरोधियो में मतभेद होने से नाजीवाद को आगे बढने में कोई रुकावट नही हुई। कम्युनिस्ट इस भ्रम में थे कि नाजीवाद का पतन जरूर होगा और साम्यवाद शासन में जरूर आयेगा। (१०) नाजी नेता हिटलर में तीक्ष्ण बुद्धि का होना और खतरा होने पर भी बिना घबडाये उसका सामना करना।

हिटलर की विदेश नीति

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि हिटलर का उद्देश्य (१) वर्साय सधि को भग कर देना (२) एक राष्ट्र के अन्तर्गत आत्मनिर्णय के अधिकार द्वारा सारी जर्मन जनता का सगठन करना तथा (३) बढती अर्थात अतिरिक्त जन सख्या को बसाने के लिये अपने छिने हुए प्रदेशो को पुन प्राप्त करना और उपनिवेश कायम करना था। हिटलर ने अपनी विदेश नीति को सक्षेप रूप में निम्न प्रकार से प्रकट किया "राजनैतिक स्वतत्रता तथा मातृभूमि को शक्तिशाली बनाने के लिये अपने खोये हुए प्रदेशो को पुन अपने अधिकार मे करना बहुत जरूरी है। इसकी प्राप्ति के लिये समझौता और यदि यह सम्भव न हो तो युद्ध का आश्रय लेना विदेश नीति की ओर हमारा पहला कदम है। हमारी नीति जर्मनी की रक्षा और उसे शक्ति शाली बनाने के लिये जर्मन सीमा को सैनिक दृष्टि से मजबूत बनाना है। हमारी मान्यता है कि अगर किसी राज्य को दुनिया मे कायम रहना है तो वह सैनिक दृष्टि से अपने को शक्तिशाली बनाये जिसस दुश्मन को आक्रमण करने की जल्दी हिम्मत न हो।"

दूसरे शब्दो मे हिटलर का कहना था कि शाति, बल के आधार पर ही टिकाऊ हो सकती है, समझौता पर नही। हिटलर की यह नीति राष्ट्रसघ की जड के लिये घातक सिद्ध हुई और इसने शांति स्थापना को असम्भव नही तो मुश्किल अवश्य ही बना दिया। हिटलर ने कहा कि पराधीन बस्तियो मे विरोध करवा कर उन्हे अपने साथ नही मिलाया जा सकता बल्कि इसके लिये तलवार उठानी पडेगी। इस तलवार को रगड कर तेज बनाना हमारी जनतन्त्री सरकार की आंतरिक नीति है और इसकी रक्षा और इसमे सहयोग देने वालो को अपने में मिलाना विदेश नीति का काम है।

वर्साय सधि का भग होना

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे हिटलर का सबसे महत्वपूर्ण कदम निशस्त्रीकरण सम्मेलन और राष्ट्रसघ का बहिष्कार करना था। उसका कहना था कि उक्त शक्तियो ने

जर्मनी को उन अधिकारों से वंचित कर दिया है जिन पर उसकी उन्नति निर्भर है और उसे अन्य राष्ट्रों की तरह अधिकार प्राप्त नहीं। हिटलर ने कहा यदि विदेशी राष्ट्रों ने जर्मनी के साथ ऐसा ही व्यवहार रखने का निश्चय किया तो वह अपना रास्ता स्वयं चुनेगा। हिटलर ने अपना यह कार्य जनमत संग्रह द्वारा कर दिखाया। हिटलर का दूसरा कदम पोलैण्ड के साथ परस्पर आक्रमण न करने का समझौता था जिसने यूरोप और फ्रांस में खलबली मचा दी। यह समझौता १० वर्ष के लिये हुआ। तीसरा कदम आस्ट्रिया को मिलाने का असफल प्रयत्न था। सां जर्मं की सन्धि ने जैसा कि पहले कहा जा चुका है आस्ट्रिया और जर्मनी के संगठन को तो भंग कर ही दिया था। इस कार्य को छिपाने के लिये हिटलर ने गुप्त रूप से आस्ट्रिया के नाजी विद्रोह को प्रोत्साहन दिया तथा १९३४ में किये गये हमले की ओर से आंखें मूंद ली जिसमें आस्ट्रियन चांसलर की हत्या की कोशिश की गई थी, यद्यपि यह षड्यन्त्र असफल रहा। इसका एक कारण तो यह था कि उसे आस्ट्रिया में जनता का पर्याप्त समर्थन प्राप्त नहीं था। दूसरे मुसोलिनी ने जर्मनी को धमकी दी कि यदि उसने आस्ट्रिया पर हाथ फैलाने का प्रयत्न किया तो आक्रमण किया जायगा। इधर इटली का साथ चेकोस्लोवाकिया और फ्रांस दोनों दे रहे थे। इस हालत में हिटलर ने आस्ट्रिया पर अधिकार जमाने का ख्याल त्याग दिया। वर्साय सन्धि के अनुसार सार के भविष्य का निर्णय करने के लिए वहां जनवरी १९३५ में जनमत संग्रह हुआ। उसमें ९० प्रतिशत मतदाताओं ने जर्मनी के साथ मिलने के पक्ष में मत दिया। इस तरह एक मार्च १९३५ को सार के जर्मनी में आ जाने से हिटलर की विदेशनीति का चौथा कदम भी सफल रहा। एक पखवाड़े के बाद हिटलर ने वर्साय सन्धि की सैनिक शर्तों के भंग होने की घोषणा की। यह उसका पांचवां कदम था। इसी के साथ उसने यह भी घोषणा की कि जर्मनी की सैनिक ताकत फ्रांस और ब्रिटेन के मुकाबले में तैयार करने के लिये भर्ती आरम्भ की जायेगी। अभी तक जर्मनी ने यही प्रकट किया कि वह अपनी सैन्य शक्ति केवल अपनी रक्षा एवं शान्ति स्थापना के लिये बढ़ा रहा है।

शक्ति सन्तुलन का पुनरुत्थान

यद्यपि स्ट्रेसा सम्मेलन का प्रस्ताव विफल दिखाई दिया था किन्तु वर्साय सन्धि को जर्मनी द्वारा भंग किये जाने से संकट पैदा हो गया। इसका परिणाम शक्ति सन्तुलन का पैदा होना था। १९३४ में बाल्कन राज्यों तुर्की, यूनान, रूमानिया और यूगोस्लाविया ने बाल्कन समझौता पर हस्ताक्षर किए जिसके अनुसार — बाल्कन राज्यों ने प्रादेशिक स्वतन्त्रता की गारन्टी व बाल्कन सीमाओं की सुरक्षा व राजनैतिक मामलों में पूर्ण पारस्परिक विचार-विमर्श रखने का निश्चय हुआ। चेकोस्लोवाकिया

की ताकत नही थी और शायद इसीलिये उन्होने शाति आदोलन का आश्रय लिया। सब ओर से निराश चेम्बरलेन ने अपने को उठाने का एक ही मार्ग देखा और वह था शाति स्थापना। उनका विचार था कि किसी भी मूल्य पर यदि आक्रमणकारी को खुश कर के भी शांति की स्थापना की जा सके तो की जाय। वह इटली की मित्रता खरीदने पर तुले हुए थे और इसीलिये विदेश मत्री ईडन ने जब सतुष्टीकरण नीति त्याग कर सुदृढ नीति अपनाने पर जोर दिया तो चेम्बरलेन ने उन्हे इस्तीफा देने के लिये मजबूर किया। नतीजा हुआ कि यह २० फरवरी १९३८ को ईडन को विदेशमत्री पद से मजबूर होकर हटना पडा। अप्रैल १९३९ में नये विदेशमत्री लार्ड हेलिफेक्स ने रोम मे मुसोलिनी के साथ एक समझौता किया जिसके अनुसार ब्रिटेन ने अबिसीनिया पर इटली का शासन स्वीकार कर लिया। स्वेज नहर क्षेत्र के नियत्रण में इटली को भी भाग देने, भूमध्य तथा लाल सागर मे फौजो के आवागमन सबन्धी सूचनाओ का आदान प्रदान, बिना बताये उक्त क्षेत्र मे नये नौ तथा हवाई अड्डे स्थापित न करने तथा हानिकारक प्रचार रोकने का निश्चय हुआ। चर्चिल का कहना था कि ब्रिटेन स्पेन और अबिसीनिया की जनता के मूल्य पर सुरक्षा सगठन की उपेक्षा करके कुछ वर्षो तक शाति कायम रख सका।

आस्ट्रिया का अपहरण

राइन भूमि के पुन मोर्चाबन्दी के बाद हिटलर ने आस्ट्रिया को जर्मनी मे विलीन (एसलस) तथा पूर्वी सीमान्त का विस्तार (ड्राग नाच आस्ट्रिन) नीति अपनाई। २४ अगस्त १९३६ को जर्मनी मे सेनिक सेवा की अवधि एक वर्ष से बढ़ाकर दो कर वर्ष कर गई। जर्मनी को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने के लिये एक नई पचवर्षीय योजना चालू की गई। जर्मन सेनापति को आदेश दिया गया कि वह आस्ट्रिया पर अधिकार करने के लिए सैनिक योजनाए तैयार करे। जून १९३७ में हिटलर ने अपने सलाहकारो तथा उच्चाधिकारियो के समक्ष अपनी योजनाए प्रकट की। हिटलर ने कहा कि हमे अपने दो बडे शत्रुओ फ्रास और ब्रिटेन के साथ टक्कर लेनी है क्योकि वे मध्य यूरोप मे अपना आधिपत्य जमाना चाहते है।

सयुक्त आग्ल-फ्रासीसी आक्रमण के विरुद्ध पश्चिमी मोर्चा के लिये फ्रांसीसी "मैगनट लाइन" के ठीक सामने सिगफ्रिड लाइन का निर्माण आरम्भ कर दिया गया। जर्मनी ने प्रतिवर्ष शस्त्रीकरण पर १०० करोड पौंड खर्च करना शुरू कर दिया। ४ फरवरी १९३८ को हिटलर ने प्रधान सेनापति फ्रिच को पद त्यागने के लिए बाध्य किया और जर्मन सेना का सर्वोच्च सेनापति स्वय बन गया। न्यूरथ के स्थान पर रिबनट्रोप विदेश मन्त्री बना दिये गये। रिबनट्रोप ब्रिटेन मे जर्मनी के राजदूत रह

चुके थे। सर्वोच्च सेनापति बनने के ८ दिन बाद ही हिटलर ने आस्ट्रिया के प्रधान मन्त्री शुशनिग को बरचेसगाडन बुलाया और सैनिक धमकियों द्वारा उस पर जोर डाला कि वह आस्ट्रियाई मन्त्रिमण्डल में आस्ट्रियाई नाजी सेस-इन्क्वार्ट को गृह-मन्त्री नियुक्त करने तथा आस्ट्रियाई नाजी दल को सरकारी मान्यता देने के लिये तैयार हो जाय। ९ मार्च को शुशनिग ने घोषणा की कि आस्ट्रिया के भविष्य का प्रश्न निश्चित करने के लिये आज से चार दिन बाद आस्ट्रिया में जनमत संग्रह किया जायगा। इधर ११ मार्च को जर्मनी ने आस्ट्रिया को चेतावनी (अल्टिमेटम) भेजी कि जनमत संग्रह स्थगित कर दिया जाय और प्रधानमन्त्री शुशनिग त्याग-पत्र दे दे अन्यथा जर्मनी आस्ट्रिया पर हमला कर देगा। इस पर शुशनिग ने इस्तीफा दे दिया। इसके तीन दिन बाद हिटलर विजयी मुद्रा में वियाना में प्रविष्ट हुआ और आस्ट्रियाई नाजी सेस-इन्क्वार्ट को आस्ट्रिया का प्रधान मन्त्री नियुक्त कर दिया। उसने आस्ट्रियाई नेशनल बैंक पर कब्जा कर लिया और जर्मनी में आस्ट्रिया को विलीन करने के लिए जनमत संग्रह किया। उसमें लगभग ९९.७३ प्रतिशत मतदाताओं ने जर्मनी में मिलने के पक्ष में मत दिया।

आस्ट्रिया के जर्मनी में मिला दिये जाने से जर्मनी की न केवल जनशक्ति ६० लाख बढ़ गई बल्कि दक्षिण-पूर्वी यूरोप में सैनिक और राजनैतिक दृष्टि से उसकी धाक जम गई। इससे इटली, यूगोस्लाविया और हंगरी से निकट सम्पर्क कायम करने का जर्मनी को अच्छा अवसर मिल गया। जर्मनी को आस्ट्रिया से भारी मात्रा में मगनेसाइट (विमानों के निर्माण में प्रयोग होता है) हाथ लगा। इसके अतिरिक्त आस्ट्रियाई बैंक से दो करोड़ पौण्ड नकद प्राप्त हुआ। इसका नतीजा यह हुआ कि जर्मनी आत्मनिर्भर बन गया। चर्चिल ने ब्रिटेन की लोकसभा में ठीक ही कहा था--"वियाना के जर्मनी के अधिकार में चले जाने से नाजी जर्मनी का दक्षिण-पूर्वी यूरोप के तमाम यातायात पर कब्जा हो गया।" अब चेकोस्लोवाकिया को खतरा पैदा हो गया। इस तरह वर्साय सन्धि की वह धारा, जिसके द्वारा जर्मनी और आस्ट्रिया को पृथक किया गया था, सदा के लिये नष्ट हो गई।

चेकोस्लोवाकिया में संकट

आस्ट्रिया के बाद जर्मनी के आक्रमण का शिकार चेकोस्लोवाकिया को होना पड़ा। चेकोस्लोवाकिया के सामने सबसे बड़ी समस्या थी, सुडेटन जर्मन अल्पसंख्यकों के लिये स्वायत्तशासन की व्यवस्था करना। चेकोस्लोवाकिया की कुल डेढ़ करोड़ जनसंख्या में उन अल्पसंख्यकों की आबादी लगभग ३४ लाख थी। इन अल्पसंख्यकों के लिए पृथक शिक्षा व्यवस्था थी और इन्हें सरकारी नौकरी में प्रतिनिधित्व प्राप्त था। जर्मनी ने नाजीवाद के [illegible]

मिला और सुडेटान जर्मन पार्टी ने हेनेलीन के नेतृत्व मे पृथकवादी आन्दोलन आ कर दिया। हिटलर ने अपने भाषणो में हेनेलीन का समर्थन किया और सुडेटान की स्थापना पर जोर दिया। १९३७ में चेक सरकार ने जर्मन अल्पसख्यको सरकारी पदो, सहायता कोषो, और सास्कृतिक सस्थाओ को सरकारी सहायता विशेष सुविधाये प्रदान की। इसके अतिरिक्त सरकारी तौर पर जर्मन भाषा स्वीकार कर लिया। किन्तु इतने पर भी जर्मन अल्पसख्यको को सतुष्टि हुई। अप्रैल १९३८ मे हेनेलीन ने कार्ल्सबैड मे अपने एक वक्तव्य में ८ प्रस्तुत की जिनमे जर्मन क्षेत्रो के लिये स्वायत्तशासन और वहा की जनता राजनैतिक तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्रदान करने की माँग थी। इधर हिटलर ने घोषणा की कि जर्मन जनता का कर्तव्य है कि वह चेकोस्लोवाकिया की परतन्त्रत पडे अपने भाई जर्मनो की स्वतन्त्रता के लिये आवश्यक कदम उठाये। जर्मनी समाचार-पत्रो ने भी जर्मन अल्पसख्यको की स्वतन्त्रता के लिये खूब आन्दो किया। किन्तु चूकि चेकोस्लोवाकिया को फ्रास, रूस, रुमानिया और यूगोस्लावि का सहयोग प्राप्त था इसलिये उसने आत्मसमर्पण न कर मोर्चा लेना उचित सम अगस्त १९३८ में ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री चेम्बरलेन ने लार्ड रुसीमान को उ अल्पसख्यको के विवाद को सुलझाने के लिए चेकोस्लोवाकिया भेजा। लार्ड रूसी की रिपोर्ट चेकोस्लोवाकियाई सरकार के लिये निहायत विरोधी थी। उन्होने अ रिपोर्ट मे कहा था "सुडेटान क्षेत्र में गत २० वर्षो मे चला आ रहा चेको वाकिया का शासन यद्यपि अत्याचारी और आतकवादी नही है किन्तु जिस शासन चल रहा है, वह अत्यन्त अयोग्य और भेदभाव की भावना से पूर्ण है।" य रिपोर्ट में यह स्वीकार किया गया कि आर्थिक और ऐतिहासिक दृष्टि से सुडे लैंड चेकोस्लोवाकिया मे पृथक होने योग्य नही किन्तु अन्त मे उन्होने सिफारिश थी कि जर्मन जिलो को अविलम्ब जर्मनी को लौटा देना चाहिये। १२ सित को हिटलर ने नूरेम्बर्ग मे अपने एक वक्तव्य मे कहा कि अब मेरा सन्तोष सम हो चुका है। दूसरे ही दिन नाजी नेता ने चेक मन्त्रिमण्डल से वार्ता भग कर सै शक्ति से चेक सरकार को पलटने का असफल प्रयत्न किया। वह भाग कर ज चला गया और हिटलर ने अपनी सेनाए चेक सीमा की ओर बढानी शुरू कर इस तरह युद्ध सन्निकट आ गया। १५ सितम्बर को चेम्बरलेन हिटलर से, प्रार्थना करने के लिये कि वह अपनी सेनाए आगे न बढाये, बरचेसगाडन को र हुए। वार्ता मे फ्यूरर हिटलर ने सुडेटान जनता को अविलम्ब आजाद करने की की और कहा कि ऐसा न किया गया तो जर्मनी चेकोस्लोवाकिया पर शीघ्र आक्रमण कर देगा। चेम्बरलेन तत्काल लन्दन के लिये रवाना हो गये और हि

की माँग पर विचार करने के लिये फ्रांसीसी प्रधान मंत्री और ब्रिटेन मंत्री की एक अविलम्ब बैठक बुलाई। काफी समय तक बहस के बाद एक आंग्ल-फ्रांसीसी चुनौती १६ सितम्बर को चेकोस्लोवाकिया को भेजी गयी जिसमें माँग की गई कि सुडेटनलैंड को शीघ्र रीच (जर्मन सरकार) को सौंप दिया जाय। इस सम्बन्ध में तीन दिन के भीतर उत्तर सूचित करने को कहा गया। इसके साथ ही एक धमकी भी दी गई कि यदि उक्त शर्तें न मंजूर कर दी गईं तो चेक सरकार को सैनिक सहायता की सन्धि भंग करके चेकोस्लोवाकिया के विरुद्ध जर्मनी की सहायता की जायगी। इस धमकी पर चेक सरकार को आंग्ल-फ्रांसीसी चुनौती के आगे झुकना पड़ा। चुनौती की शर्तें मंजूर करने के बाद चेक प्रधान मंत्री होड्जा ने त्याग-पत्र दे दिया और उनके स्थान पर जनरल सिरोवी प्रधान मंत्री बने।

२२ सितम्बर को चेम्बरलेन आंग्ल-फ्रांसीसी योजना को कार्यान्वित करने सम्बन्धी विचार विमर्श के लिए हिटलर से मिलने गोडसबर्ग को रवाना हो गये। इस भेंट में हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया के पोलिश तथा हंगेरियन अल्पसंख्यकों के क्षेत्र, १ अक्टूबर तक सैनिक अधिकार में करने की माँग की थी।

चेम्बरलेन २४ सितम्बर को निराश होकर लन्दन लौट आये। इस पर ब्रिटेन मंत्रिमण्डल ने गोडेसबर्ग शर्तों को अस्वीकार कर दिया। ब्रिटेन और फ्रांस ने निश्चय किया कि यदि जर्मनी ने हमला किया तो वे चेकोस्लोवाकिया की सहायता करेंगे। और इसके बाद ब्रिटेन और फ्रांस में सैनिक संगठन आरम्भ हो गया। ब्रिटेन में नगरवासियों के बचने के लिये खाइयाँ खोदी जाने लगीं और लोगों को हवाई आक्रमण से बचाने के लिये गैस-मास्क [illegible] प्रदान किये जाने लगे। ब्रिटेन ने अपने जहाजी बेड़े को तैयारी का आदेश जारी कर दिया। २८ सितम्बर को चेम्बरलेन ने रेडियो पर कहा कि समझौता होने की सम्भावना है और वे तीसरी बार भी जर्मनी जाने को तैयार हैं। इसी दिन चेम्बरलेन ने हिटलर को एक पत्र लिखा जिसमें पुनः समझौता वार्ता के लिये अनुरोध किया गया। हिटलर ने इसे मानते हुए [illegible] और चेम्बरलेन को म्यूनिख आने के लिये निमंत्रित किया।

म्यूनिख समझौता

२९ सितम्बर को म्यूनिख में चार शक्तियों का सम्मेलन हुआ जिसमें म्यूनिख समझौता किया गया। सम्मेलन में भाग लेने वाले चार राष्ट्र थे ब्रिटेन (चेम्बरलेन) फ्रांस (दलादियर) जर्मनी (हिटलर) और इटली (मुसोलिनी)। समझौते में यह तय हुआ कि (१) [illegible] (२) [illegible]

क्षेत्रो का निरीक्षण करे। (३) ब्रिटन और फ्रांस चेकोस्लोवाकिया की नई सीमाओ की वाहरी आक्रमण से रक्षा करने में साथ देंगे (४) पोलिश और हगेरियन अल्पसख्यको का प्रश्न हल हो जाने के वाद जर्मनी और इटली भी चेकोस्लोवाकिया की सीमाओ की रक्षा मे सहयोग की गारन्टी देंगे। (५) आवादी की अदलावदली। चेक राष्ट्रपति बेनेश को मजवूर होकर फासी का फदा अपने हाथो अपने गले मे लगाना पडा। उन्होने उक्त शर्तनामा पर हस्ताक्षर कर दिये। इसके वाद उन्होने इस्तीफा दे दिया और उनके स्थान पर इमिल हचा राष्ट्रपति नियुक्त हुए। ३० सितम्वर को चेम्वरलेन और हिटलर ने एक सयुक्त घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किये जिसमें कहा गया था कि जर्मनी और ब्रिटेन एक दूसरे के खिलाफ कभी युद्ध नही करेंगे। चेम्वरलेन ने उक्त घोपणा पत्र अपनी एक विजय समझी और खुशी से उसे फहराते हुए लन्दन को रवाना हो गये। म्युनिक समझौता अविलम्ब ही लागू कर दिया गया। सुडेटानलैंड पर जर्मनी का अधिकार हो गया। अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन ने चेकोस्लोवाकिया की नई सीमा निर्धारित की। पोलैंड ने चेकोस्लोवाकिया को आक्रमण की धमकी देकर टेस्चेन पर अधिकार कर लिया। इधर हगरी ने भी स्लोवाकिया से लगभग ५ हजार वर्ग मील भूमि छीनकर अपने कब्जे मे कर ली। स्मरण रहे की ६ दिसम्वर को हिटलर ने परस्पर आक्रमण न करने के एक फ्रैंको-जर्मन समझौते पर हस्ताक्षर किये थे।

म्युनिक समझौता सतुष्टीकरण नीति का ही रूप था। चर्चिल ने ब्रिटिश पार्लमेण्ट मे भापण देते हुए कहा 'यह समझौता ब्रिटेन और उससे भी अधिक फ्रांस के लिए वहुत वडी हार है। इगलैंड और फ्रास के दवाव से चेकोस्लोवाकिया का विभाजन नाजी धमकी के आगे पश्चिमी जनतन्त्र के झुकने के वरावर है।" एमरी के शब्दो मे "म्युनिक समझौता दवाव से हुई जीत का प्रतीक है जो इतिहास में सवसे सस्नी समझी जा सकती है।" शूमैन ने म्युनिक समझौता पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि यह हिटलर के लिए भारी विजयी थी। म्युनिक समझौता हिटलर द्वारा रूसी साम्यवाद के विरुद्ध किए गए प्रचार का फल था। हिटलर का कहना था कि रूसी साम्यवाद पश्चिमी पूजीवाद के लिए भारी खतरा है और इसकी रक्षा नाजी जर्मनी ही कर सकता है। इस प्रचार का असर यह हुआ कि पूजीवादी देशो ने जर्मनी का हाथ मजवूत करना तथा उसे सतुष्ट करना शुरु किया। इसी चक्कर में आकर ब्रिटेन और फ्रास ने म्युनिक समझौता मे हिटलर की शर्तो को मजूर कर लिया और उसके सकेतो पर चलने को तैयार हो गए। यद्यपि रूस पारस्परिक सुरक्षा सधियो के अनुसार चेकोस्लोवाकिया की सुरक्षा में मदद कर सकता था और इसीलिए जव हिटलर के

साथ चेक सरकार का तनाव बढ़ा तो रूस ने कहा था कि यदि पारस्परिक सुरक्षा संधियों के अनुसार फ्रांस चेक की सहायता करने को तैयार हो तो रूस भी उसका साथ देगा। किन्तु साम्यवाद के भय ने ब्रिटेन और फ्रांस को रूस से पृथक रहने को मजबूर किया जिसका परिणाम यह हुआ कि म्युनिक समझौता में रूस को नहीं बुलाया गया। इस प्रकार म्युनिक बैठक ने फ्रांसीसी-सोवियत समझौता १९३५ को भंग कर दिया। इससे रूस को अपना नया साथी ढूंढना पड़ा। उधर पोलैंड की सुरक्षा भी बिलकुल समाप्त हो गई। मार्शल स्टेलिन ने न्यूरेम्बर्ग मुकदमों में ठीक ही कहा था "म्युनिक समझौता हिटलर की एक चाल थी जिसके द्वारा वह रूस को यूरोप से निकाल बाहर करना और जर्मन सेना को मजबूत बनाना चाहता था।" म्युनिक समझौता हो जाने पर हिटलर को डेन्यूब और बल्कान क्षेत्रों पर आर्थिक और सैनिक अधिकार जमाने का मौका मिल गया।

चेकोस्लोवाकिया का विनाश

म्युनिक समझौता के बाद हिटलर ने कई बार इस बात को दोहराया कि "जर्मनी का यूरोप में आखिरी प्रादेशिक दावा सुडेटनलैंड है। सुडेटनलैंड को जर्मनी में मिला दिये जाने के बाद चेक सरकार के खिलाफ हमारी किसी प्रकार की शिकायत नहीं रहेगी, इसकी हम गारंटी देते हैं।" १९ नवम्बर १९३८ को चेकोस्लोवाकिया को संघीय गणतन्त्र (फेडरल रिपब्लिक) में परिवर्तित कर दिया गया। स्लोवेकिया और रुथेनिया में गणतन्त्र के राष्ट्रपति द्वारा नामजद दो प्रधान मन्त्रियों के नेतृत्व में दो स्वायत्त लोक सभाओं की स्थापना कर दी गई किन्तु विदेशी नीति और प्रतिरक्षा विभाग केन्द्रीय पार्लमेंट के हाथ में रहने दिये गये। ९ मार्च १९३९ को राष्ट्रपति हाशा ने स्लोवाकिया के प्रधानमन्त्री फादर टिसो को पदच्युत कर दिया। टिसो पर आरोप लगाया गया कि वह पृथकतावादी आन्दोलन को प्रोत्साहित कर रहे हैं जिससे राज्य की एकता को खतरा पैदा होने का भय है। टिसो भाग कर जर्मनी आ गए और हिटलर से मुलाकात की। १५ मार्च को राष्ट्रपति हाशा को बर्लिन बुलाया गया और वहां चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण का भय दिखला कर उन्हें एक घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया गया। घोषणापत्र में राष्ट्रपति हाशा ने स्वीकार किया "मैं अपने विश्वास के साथ चेक जनता और देश का भविष्य जर्मन रीश के फ्यूहरर के हाथ में सौंपता हूं।" इसके बाद जर्मन सेना ने बोहेमिया और मोरेविया पर अपना अधिकार जमा लिया।

ब्रिटेन और फ्रांस ने इन मामलों में बिलकुल हस्तक्षेप नहीं किया। यद्यपि म्युनिक समझौते में यह तय हो चुका था कि भविष्य में आक्रमण से चेकोस्लोवाकिया की ब्रिटेन और फ्रांस दोनों रक्षा करेंगे, किन्तु चेम्बरलेन ने यह कह कर इन्कार

करने से इन्कार कर दिया कि स्लोवाक डायट (ससद) ने स्लोवाकिया की स्वतत्रता की घोषणा कर दी है इसलिए वहा की स्थिति बिलकुल बदल गई है और यह हस्तक्षेप करने का मौका नही। बोहेमिया और मोरेविया पर अधिकार हो जाने से जर्मनी के हाथ में १८ हजार वर्गमील जमीन, लगभग ७० लाख की आबादी, स्कोडा का प्रसिद्ध शस्त्र कारखाना और नेशनल बैंक का सोना आ गया। इसके अतिरिक्त स्लोवाकिया के मिलने से जर्मनी को २० लाख आबादी की लगभग १५ हजार वर्ग मील भूमि हाथ लगी। इस तरह म्युनिक समझौता के ६ मास के भीतर एव आस्ट्रिया पर कब्जा होने के एक वर्ष के भीतर जर्मनी ने चेकोस्लोवाकिया को पूरी तरह से बर्बाद कर दिया।

ब्रिटिश नीति मे परिवर्तन

इसी बीच हिटलर ने २१ मार्च को लिथुआनिया से मेमेल छीन लिया तथा रूमानिया के तेलमगर पर कब्जा कर लिया। इसके अतिरिक्त उसने पोलैंड से माग की कि यदि वह जर्मनी के साथ २५ वर्ष तक परस्पर आक्रमण न करने का समझौता चाहता है तो डानजिग और पूर्वी रूस से जर्मनी को जोडने वाले समुद्र तटीय गलियारे को जर्मनी को लौटा दे। किंतु पोलेंड ने इन शर्तो को अस्वीकार कर दिया। इन घटनाओ से चेम्बरलेन को विश्वास हो गया कि हिटलर के आश्वासनो पर अब विश्वास नही किया जा सकता। इसलिए उन्होने निम्न ऐतिहासिक भाषण के साथ ब्रिटिश विदेश नीति मे महत्वपूर्ण परिवर्तन करने की घोषणा की। आपने कहा "हम हरएक देश का सहयोग चाहे उनका आन्तरिक शासन जैसा भी हो, स्वागत करते है, आक्रमण के लिए नही बल्कि आक्रमण को रोकने के लिए।" ३१ मार्च १९३९ को चेम्बरलेन ने घोषणा की कि पोलिश स्वतन्त्रता पर हमला होने पर ब्रिटेन पोलेंड को हर तरह से अविलम्ब सहायता देना आरम्भ कर देगा। यही घोषणा फ्रास ने भी की।

७ अप्रैल को इटालियन फौजो ने अल्बानिया पर अकस्मात् हमला कर दिया और राजा जोग को गद्दी मे उतार कर १९२७ के आग्ल-इटालियन समझौता का उल्लघन करते हुए अल्बानिया को अपने अधिकार मे ले लिया। ब्रिटेन ने तत्काल ही यूनान और रूमानिया को सुरक्षा सहायता की गारन्टी दी और पारस्परिक सहायता व सहयोग सम्बन्धी एक आग्ल-तुर्की समझौता किया। २६ अप्रैल को चेम्बरलेन ने अनिवार्य सैनिक शिक्षा का एक बिल प्रस्तुत किया। दो दिन के बाद हिटलर ने १९३३ के आग्ल-जर्मन समझौता और १९३४ की जर्मन-पोलिश सधि को मानने से इन्कार कर दिया। उसने ब्रिटेन पर आरोप लगाया कि वह घेरेबन्दी की नीति अपना

रूस-जर्मन सन्धि (२३ अगस्त १९३९)

लायड जार्ज और चर्चिल ने कई बार कहा था यदि ब्रिटेन पोलैंड की जर्मन आक्रमण से रक्षा करना चाहता है तो उसे अविलम्ब रूस के साथ सुदृढ़ समझौता कर लेना चाहिए। मार्च में एक ब्रिटिश राजनयिक शिष्टमण्डल मास्को गया। किन्तु बाल्टिक राज्यों के मामलों पर ब्रिटेन और रूस में कोई समझौता नहीं हो सका। जुलाई में ब्रिटिश [illegible] के [illegible] विलियम स्ट्रांग के नेतृत्व में एक ब्रिटिश सैनिक शिष्टमण्डल रूस के साथ सैनिक योजनाओं पर विचार करने के लिए मास्को भेजा गया। इस अवसर पर फ्रांसीसी सैनिक विशेषज्ञ भी मास्को में उपस्थित हुए। स्तालिन ने पूछा कि जर्मनी के खिलाफ कार्यवाई करने के लिए फ्रांस कितने सैनिक डिवीजन की व्यवस्था कर सकता है। फ्रांसीसी मिशन ने उत्तर दिया कि १०० डिवीजन। इसके बाद स्तालिन ने ब्रिटिश सैनिक शिष्टमण्डल से पूछा। उन्होंने कहा कि दो डिवीजन अभी और दो बाद में। इसके बाद स्तालिन ने कहा कि जर्मनी के खिलाफ युद्ध छेड़ने के लिए हमें तीन सौ से अधिक डिवीजनों की जरूरत पड़ेगी। आखिर वार्ता असफल रही। २३ अगस्त १९३९ को रिबनट्राप और मोलोटोव ने रूसी-जर्मन परस्पर अनाक्रमण सन्धि पर हस्ताक्षर किए। सन्धि में वादा किया गया कि दोनों में कोई भी देश १० वर्षों तक एक दूसरे के प्रति हिंसावादी या आक्रमणकारी कार्यवाई नहीं करेगा न किसी तीसरी ताकत को जो दोनों में से किसी पर आक्रमण करे, इस प्रकार मदद नहीं देगा। एक गुप्त समझौते से जर्मनी ने यह दिखाया कि राजनैतिक दृष्टि से लटाविया, एस्टोनिया तथा फिनलैंड में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं किन्तु लिथुआनिया को वह अपने प्रभाव में रखना चाहता है। रूस जर्मन सन्धि से दोनों सीमाओं पर युद्ध का भय जाता रहा जिससे लाभ उठाकर हिटलर ने पोलैंड पर आक्रमण कर दिया।

पोलैंड

सीमा पर कई घटनाएं होने पर [illegible] अगस्त को डांजिग सीनेट ([illegible]) ने पोलिश कस्टम अधिकारियों को सूचित किया कि वे अब सीमा पर पहरा नहीं दे सकेंगे। [illegible]

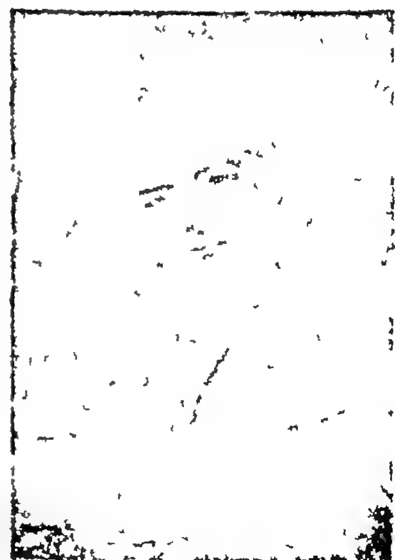
रवैया समझा जायगा। हिटलर ने इसके उत्तर में पोलिश सीमा पर जर्मन सेना तैनात कर दी। २२ अगस्त को चेम्बरलेन ने हिटलर को एक व्यक्तिगत पत्र भेजा जिसमें सीधी पोलिश-जर्मन समझौता वार्ता करने का प्रस्ताव था, जिसमें कोई भी निर्णय होने पर उसे अन्तर्राष्ट्रीय गारन्टी दी जायेगी। हिटलर ने ब्रिटिश राजदूत हेडरसन को उत्तर दिया कि ब्रिटेन द्वारा पोलैंड की सहायता का निर्णय जर्मनी की नीति मे कोई परिवर्तन नही ला सकता और इसी लिए वह जर्मनी के राष्ट्रीय सम्मान का बलिदान करने के बजाय लम्बी लडाई के लिए तैयार है। २५ अगस्त को पारस्परिक सहयोग से आग्ल-पोलिश समझौते पर हस्ताक्षर हुए। २८ अगस्त को ब्रिटेन ने फिर जर्मन-पोलिश झगडे के निबटारे का प्रस्ताव रखा। २९ अगस्त को जर्मनी के समाचार पत्रों ने पोलैंड में जर्मनो की कथित हत्या की खबर प्रकाशित की। इस पर हिटलर ने वर्साय सधि मे सशोधन की माग की और कहा कि पोलैंड के १५ लाख जर्मनो की तत्काल सुरक्षा की व्यवस्था की जाय। उसी दिन हेडरसन को बताया गया कि जर्मनी पोलैंड के साथ वार्ता के लिए उसी हालत में तैयार है जब पोलैंड अपना प्रतिनिधिमण्डल जो प्रस्तावो को तत्काल स्वीकार कर सके, ३० अगस्त को बर्लिन भेजे। हेडरसन ने इसका विरोध किया और कहा कि यह चुनौती है क्योकि एक पोलिश प्रतिनिधि को बिना उसे यह सूचित किये कि वार्ता के प्रस्तावो का आधार क्या है, वार्ता के लिए बुलाना नितात अनुचित है। पोलैंड के प्रति जर्मनी का आक्रमणकारी रवैया पश्चिमी राष्ट्रो के लिए चेतावनी सिद्ध हुई। ३० अगस्त को रिबनट्रोप ने १६ सूत्री प्रस्ताव को असामयिक बताया और कहा कि इसकी अब जरूरत नही। उसी दिन पोलैंड ने अपनी सेनाए सगठित कर ली। १ सितम्बर १९३९ को जर्मनी ने लडाई की सूचना दिये बिना पोलैंड पर आक्रमण कर दिया। तीसरे दिन ही ३ सितम्बर को प्रात ११ बजे ब्रिटेन ने जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। उसी दिन ६ बजे सध्या को फ्रास ने भी ब्रिटेन की नीति का अनुसरण किया और इस तरह एक ऐसे युद्ध का श्रीगणेश हुआ जैसा मानव ससार ने कभी देखा भी नही था।

युद्ध काल की घटनाये

जर्मनी की सफलता—जर्मनी के भयकर आक्रमण के सामने पोलैंड को २६ दिन के भीतर ही आत्मसमर्पण कर देना पडा। इसका विभाजन हुआ, जिसका कुछ हिस्सा रूस को मिला। इधर सोवियत सघ ने फिनलैंड पर आक्रमण कर दिया और उसके प्रमुख प्रदेशो पर अधिकार कर लिया। १९४० की बसन्त ऋतु में जर्मन सेनाओ ने डेनमार्क, नार्वे, लक्मेमबर्ग, बेल्जियम और हालैंड पर अधिकार जमा लिया। मई मे चेम्बरलेन को मजबूर हो कर त्यागपत्र देना पडा और ब्रिटेन के नये

प्रधान मन्त्री श्री चर्चिल बने। उन्हीं दिनों डनकर्क से जर्मनों के घेरे में पड़े ३३५००० ब्रिटिश सैनिकों को निकाला गया। १६ जून को फ्रांस ने जर्मनी के सामने आत्म समर्पण कर दिया। उत्तरी और पश्चिमी फ्रांस जर्मनी के अधिकार में आ गए और विशी नगर पर फ्रांस का केवल नाम मात्र अधिकार रह गया। इसी बीच इटली ने फ्रांस का कुछ हिस्सा अपने अधिकार में लेने के लोभ से दक्षिणी फ्रांस के कुछ पश्चिमी जिलों पर अधिकार कर लिया। जर्मनी ने रूमानिया पर अधिकार किया और रूस ने बेसारबिया पर। डबरूजा, बल्गेरिया को दे दिया गया और ट्रांसिलवानिया का आधा भाग हंगरी को। इटली ने पूर्वी फ्रांस स्थित ब्रिटिश सोमालीलैंड को पराजित कर उसे अपने अधिकार में ले लिया। इसके अतिरिक्त उसने मिस्र पर भी हमला कर दिया। जर्मनी ने बल्गेरिया, यूगोस्लाविया, यूनान और क्रीट पर एक साथ ही धावा बोल दिया और टर्की के साथ परस्पर आक्रमण न करने के समझौते पर हस्ताक्षर किए। इस प्रकार धुरी राष्ट्रों की लगातार सफलता का अन्त हो गया।

स्थिति का पलटना



बल्कान के विभाजन से रूस और जर्मनी के बीच फूट पैदा हो गई। २२ जून १९४१ को हिटलर ने अचानक रूस पर आक्रमण कर दिया। इसी बीच अमरीकी कांग्रेस ने उधार और पट्टा बिल पास किया और ब्रिटेन तथा रूस को हर तरह से सहायता देने का निश्चय किया। रूसी सेना ने जमकर मास्को, लेनिनग्राड तथा सेबास्टपोल की रक्षा की। ७ दिसम्बर को जापान ने पर्लहार्बर में अमरीकी जहाजी बेड़े पर बमबारी की। दूसरे दिन अमरीका ने जापान के खिलाफ युद्ध का एलान कर दिया और इसके तीन दिन बाद इटली और जर्मनी के खिलाफ भी। जापान ने फिलिपिन, डच पूर्वी द्वीप समूह, फ्रांसीसी हिन्दचीन, थाईलैंड, सिंगापुर और बर्मा पर धावा बोल दिया। चर्चिल, स्टालिन और रूजवेल्ट ने मिलकर तमाम मित्र राष्ट्रों को धुरी राष्ट्रों के खिलाफ खड़ा कर दिया। नवम्बर १९४२ में अमरीकी सेनाओं ने उत्तरी अफ्रीका में ब्रिटिश सेना की सहायता की और धुरी राष्ट्रों को उत्तरी अफ्रीका से खदेड़ दिया। आंग्ल-अमरीकी सेनाओं ने पुनः माल्टा और सिसली पर

अधिकार कर लिया और इटली को मजबूर किया कि वह मुसोलिनी को हटाकर सितम्बर १९४३ में एक युद्ध विराम सधि करे। नवम्बर मे चर्चिल, स्टालिन और रूजवेल्ट की एक बैठक तेहरान मे हुई जिसमे पश्चिमी यूरोप मे जनरल आइजनहावर को सर्वोच्च सेनापति नियुक्त किया गया। १९४४ मे रूसी फौजो ने स्टालिनग्राड की लडाई मे जर्मनो को परास्त कर दिया। जून में अमरीकी और ब्रिटिश सेनाए फ्रास के नार्मडी मे प्रविष्ट हुई। पेरिस को आजाद किया और बर्लिन की ओर बढी। फरवरी १९४५ मे याल्टा मे चर्चिल, स्टालिन, और रूजवेल्ट पुन मिले और जर्मनी को परास्त करने की अन्तिम योजना तैयार की। रूसी फौजो ने हर मोर्चे से आक्रमण आरम्भ कर दिया और मई के प्रारम्भ मे पश्चिम मे आग्ल-अमरीकी फौजो तथा पूर्व से रूसी सेनाओ ने बर्लिन पर हमला कर दिया। बर्लिन का पतन हो गया और हिटलर ने आत्महत्या कर ली। मुसोलिनी स्विटजरलैंड की ओर भागता हुआ रास्ते मे मार डाला गया। ६ और ९ अगस्त को अमरीकी फौज ने जापान के प्रमुख नगर हिरोशिमा और नागासाकी पर अणुबम गिराए। इधर रूस ने जापान के खिलाफ युद्ध का एलान कर दिया। २ सितम्बर को जापान ने बिना शर्त आत्मसमर्पण कर दिया। १२ अप्रैल १९४५ को प्रेसीडेन्ट रूजवेल्ट का देहान्त हो गया और उपराष्ट्रपति ट्रूमैन राष्ट्रपति नियुक्त किए गए। जुलाई में चर्चिल के स्थान पर एटली ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री बने। दूसरे विश्व युद्ध का यह सक्षिप्त इतिहास है। वैसे विस्तृत वर्णन के लिए तो काफी पृष्ठो की जरूरत है।

शान्ति सधिया

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विजयी राष्ट्रो के सामने कई गम्भीर समस्याए आ खडी हुई। सब में उलझी समस्या थी कि विजित धुरी राष्ट्रो पर किस तरह से शासन किया जाय जिससे कि भविष्य मे वे पुन युद्ध के लिए खड़े न हो सके। दूसरी समस्या थी युद्ध से क्षतिग्रस्त देशो का पुन निर्माण और पुन सस्थापन। तीसरी सबसे बडी समस्या थी युद्ध से पीडित विश्व मे स्थाई शाति की स्थापना करना। विदेश मन्त्रियो की कई बैठको के बाद २९ जुलाई १९४६ को पेरिस शाति सम्मेलन हुआ जिसमे २१ देशो ने भाग लिया। ७८ दिनो तक विचार करने के बाद १० फरवरी १९४७ को निम्नलिखित सधियो पर हस्ताक्षर किए गए। हस्ताक्षरकर्त्ताओ मे पांच शत्रु देश और मित्रराष्ट्र थे, जिनमें युद्ध चला था।

१ इटली

प्रदेश—इटली ने फ्रास को सेटबर्नार्ड, माटथाबर, बावर्टन, मोटसेनिस, ट डा तथा ब्रिगाजिला, यूगोस्लाविया को जारा, पेलागोसा, लगोस्टा तथा डालमाश्यिन समुद्र तट के कई द्वीपो को सौंपा, ट्रिस्ट को स्वतत्र प्रदेश बना दिया गया जिसका

शासन संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद् को सौंपा गया। यूनान को रोड्स तथा डोडेकैनिज के अन्य द्वीपों को सौंपा गया। अल्बानिया और इथोपिया की स्वतंत्रता को मान्यता दी गयी।

निशस्त्रीकरण—फ्रांस और युगोस्लाविया से मिली हुई इटली की सीमाओं का विसैनीकरण, परमाणु शस्त्रों, पनडुब्बियों, तारपीडो, विमान वाहक जहाजों के निर्माण पर प्रतिबन्ध तथा टैंकों की संख्या घटा कर २०० कर दी गयी। जल बेड़े में युद्ध पोतों की संख्या घटा कर दो और अफसरों और नाविकों की संख्या कुल २५,०० कर दी गयी। थल सेना में सैनिकों की संख्या २५०००० और हवाई बेड़े में लड़ाकू विमानों की संख्या घटाकर २०० और यातायात विमानों की संख्या १५० कर दी गयी।

क्षतिपूर्ति—तय हुआ कि इटली क्षतिपूर्ति के रूप में रूस को १० करोड़ डालर, युगोस्लाविया को १२ करोड़ ५० लाख डालर, यूनान को १० करोड़ ५० लाख डालर, इथोपिया को २॥ करोड़ और अल्बानिया को ५० लाख डालर देगा।

२ रूमानिया

प्रदेश—रूमानिया की सीमाओं का पुनर्संस्थापन।

निशस्त्रीकरण—थल सेना में विमानमार तोपों की संख्या १२०००० से घटाकर ५ हजार कर दी गई। जल सेना में १५ हजार टन के जहाज और ५ हजार जलनाविक, हवाई बेड़े के विमानों की संख्या १५० और सैनिकों की संख्या ८००० कर दी गई। शस्त्रों पर प्रतिबन्ध वैसा ही लगाया गया जैसा कि इटली में।

क्षतिपूर्ति—१२ सितम्बर १९४४ से रूस को ८ वर्षों में ३० करोड़ डालर देगा।

३ हंगरी

प्रदेश—१ जनवरी १९३८ को आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया से सटी निर्धारित सीमाओं का पुनर्स्थापन, तीन गांवों को चेकोस्लोवाकिया, ट्रान्सिलवानिया और रूमानिया में लौटा दिया गया।

निशस्त्रीकरण—थल सेना में सैनिकों की संख्या ६५ हजार, हवाई बेड़े में ५ हजार सैनिक और ९० विमान। इटली की तरह शस्त्रों पर प्रतिबन्ध।

क्षतिपूर्ति—८ वर्षों की अवधि में रूस को २० करोड़, युगोस्लाविया को ५ करोड़ और चेकोस्लोवाकिया को ५ करोड़ डालर।

४ बल्गेरिया

प्रदेश—जनवरी १९४१ की सीमाओं का पुनर्संस्थापन।

निशस्त्रीकरण—थल सेना मे सैनिक ५५ हजार, नौ बडे में ३५०० सैनिक और २५० टन के जहाज, हवाई वेडे में ५२०० सैनिक और ९० विमान, शस्त्रो पर प्रतिवन्ध इटली की तरह।

क्षतिपूर्ति—४॥ करोड डालर यूनान को, २॥ करोड यूगोस्लोवाकिया को ८ वर्षो की अवधि में।

५ फिनलैंड

प्रदेश—जनवरी १९४१ की सीमाओ का पुनर्सस्थापन केवल पेटसामो को छोडकर जो रूस को सौंपा जा चुका है। १२ मार्च १९४० का सोवियत-फिनिश सधि का पुनर्सस्थापन।

निशस्त्रीकरण—थल सेना में सैनिको की सख्या ३४४००, नौ वेडे में कर्मचारियो की सख्या ४५०० और ७० हजार टन के जहाज, हवाई वेडे में ३००० आदमी और ६० विमान।

क्षतिपूर्ति—१९ सितम्वर १९४४ से ८ वर्षो में सोवियत सघ को ३० करोड डालर।

जर्मनी (१९४५–५३)

जर्मनी के आत्मसमर्पण करने के वाद जर्मनी पर अमरीका, ब्रिटेन, फ्रास और रूस का अधिकार माना गया। इससे जर्मनी को ४ टुकडो मे विभाजित करना पडा। विभाजन के अनुसार अमरीका को १ करोड ५ लाख की आवादी का ५२५०० वर्ग मील क्षेत्र, ब्रिटेन को २ करोड ३० लाख की आवादी का ३६ हजार वर्गमील क्षेत्र, फ्रांस को ६० लाख की आवादी का १६५००० वर्ग मील का क्षेत्र और रूस को १ करोड ८० लाख की जनसख्या की ४५ हजार वर्ग मील भूमि प्राप्त हुई। राजधानी वर्लिन को चार राष्ट्रो के नेतृत्व मे चार भागो में विभाजित कर दिया गया। निश्चय हुआ कि जर्मनी पर शासन सम्वन्धित देशो की सरकारो के आदेश पर ही होगा। चारो क्षेत्रो के सेनापतियो को मिलाकर एक नियत्रण परिषद् (कट्रोल काउसिल) वनेगा जिसका निर्णय चारो क्षेत्रो को मानना होगा। २ अगस्त १९४५ को पोट्सडम में अमरीका, ब्रिटेन और रूस के तीन प्रमुख अधिकारियो का एक सम्मेलन हुआ जिसमें निम्नलिखित निर्णय किये गये (१) शाति सधियो के लिये तीनो देशो के विदेश मन्त्री आवश्यक कार्यक्रम तैयार करे। (२) जर्मनी का पूर्ण रूप से असैनिकरण और निशस्त्रीकरण (३) नाजी कानून का उन्मूलन और नाजी दल को भग किया जाय। (४) युद्ध अपराधियो पर मुकदमा। (५) प्रशासन का केन्द्रीयकरण तथा गणतत्री उमूलो पर स्थानीय उत्तरदायित्व का विकास।

(६) शस्त्रों और बारूदों के उत्पादन पर प्रतिबन्ध। (७) जर्मनी की विदेशों में पड़ी सम्पत्ति और औद्योगिक उत्पादनों से प्राप्त रकम क्षतिपूर्ति अदा करने में खर्च की जाय।

१९४६ से जर्मनी से सम्बन्धित प्रत्येक मामलों पर रूस और अमरीका में खींचातानी होने लगी। क्षतिपूर्ति, सीमा निर्धारण तथा जर्मन सरकार के भविष्य को लेकर भारी तनाव फैल गया। रूस की माग थी कि जर्मनी को शक्तिशाली संघीय राज्य बनाया जाय और वह १८ वर्षों के भीतर १० अरब डालर क्षतिपूर्ति अदा करे। इसके अतिरिक्त रूर का अन्तर्राष्ट्रीयकरण किया जाय और पूर्वी सीमायें नये ढंग से निर्धारित की जाय। आंग्ल-अमरीकी गुट चाहता था कि जर्मनी में डेमोक्रेटिक फेडरल सरकार की स्थापना की जाय, सेनाओं का पुनर्निर्धारण किया जाय और जर्मनी को इतना आर्थिक दृष्टि से स्वस्थ बना दी जाय जिससे वह क्षतिपूर्ति आसानी से अदा कर सके। इस सम्बन्ध में १९४७ में लन्दन और मास्को में चार विदेश मन्त्रियों का दो बार सम्मेलन हुआ लेकिन असफल रहा। ६ फरवरी १९४८ को आंग्ल-अमरीकी क्षेत्र के अधिकारियों ने मिलकर रूसी विरोध के बावजूद संगठित और प्रजातन्त्री शासन चलाने का निश्चय किया। सोवियत संघ ने इसके विरोध में विदेश मन्त्री परिषद् और नियन्त्रण परिषद् से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। १९४८ में सोवियत संघ ने बर्लिन जाने वाले रास्तों को बन्द कर दिया और इस तरह शीत युद्ध प्रारम्भ हो गया। पश्चिमी राष्ट्रों ने ६ महीनों तक बर्लिन की जनता को विमान द्वारा भेज कर पूरा किया। १३ अप्रैल १९४९ को वाशिंगटन में तीन विदेश मन्त्रियों (ब्रिटेन, अमरीका तथा फ्रांस) का एक सम्मेलन हुआ जिसके फलस्वरूप तीनों क्षेत्रों के जर्मन-क्षेत्रों को मिलाकर एक पश्चिमी जर्मन सरकार की स्थापना कर दी गई और उसकी राजधानी बोन बनाई गई। इसमें पश्चिमी सैनिक शासन के स्थान पर नागरिक शासन कायम कर दिया गया। १२ मई १९४९ को रूस ने बर्लिन घेरे को उठा लिया। अमरीका ने जर्मनी को शासन आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बनाने के लिये मार्शल सहायता योजना के अन्तर्गत उसे ४० करोड़ ६० लाख डालर की सहायता देना स्वीकार की। २६ मई १९५२ को पश्चिमी राष्ट्रों ने जिन्होंने पहले ही क्षतिपूर्ति की मात्रा कम कर दी थी पश्चिमी जर्मनी में जहाज निर्माण, [illegible] [illegible] बनाने का [illegible] दिया और [illegible] में [illegible]। [illegible] सोवियत संघ के [illegible] से जर्मनी और [illegible] के साथ शान्ति [illegible] नहीं की जा सकी है।

१९५२ से [illegible] जर्मनी [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible]

दल मुर्दाबाद' के नारे लगाये। पश्चिमी राष्ट्रो का कहना है कि यह उपद्रव साम्य-वादी निरकुशता के विरुद्ध जनता के रोप के स्वाभाविक परिणाम थे। किन्तु रूसी अधिकारियो ने फौजी कानून घोपित कर दिया और सैकडो व्यक्ति गिरफ्तार कर लिये गये। उन्होने अमरीकियो पर इन उपद्रवो को भडकाने का आरोप लगाया है।

जापानी शाति सधि

२ सितम्बर १९४५ को जापान द्वारा बिना शर्त आत्मसमर्पण कर देने पर अमरीकी सेनाओ ने टोकियो पर अधिकार जमा लिया और वहा अस्थायी सैनिक शासन की स्थापना कर दी। जनरल डगलस मैकार्थर वहा मित्र राष्ट्रो के सर्वोच्च सेनापति नियुक्त हुए। रूस ने दक्षिणी सखालिन और कुरिल द्वीपो पर अपना अधिकार जमाया। फारमोसा और मचूरिया चीन को वापस कर दिये। कोरिया में रूस ने ३८ वी समानान्तर रेखा के उत्तर और अमरीकी फौजो ने इस रेखा के दक्षिणी भाग पर कब्जा जमाया। दिसम्बर में सर्वोच्च सेनापति के अधीन जापान मे मित्रराष्ट्रीय परिपद् की स्थापना की गई, जिसमें ब्रिटेन, अमरीका, चीन और रूस के प्रतिनिधि रखे गये। मित्र-राष्ट्रीय परिपद् की नीति और सलाह को कार्यान्वित करने के लिये फरवरी १९४६ में वाशिंगटन मे ११ राज्यो के एक सुदूर पूर्वी कमीशन की स्थापना की गई। मित्रराष्ट्रीय परिपद् ने जापान को निशस्त्र कर दिया और युद्ध अपराधियो के विरुद्ध मुकदमा चलाने की व्यवस्था की। जापान मे सबसे बडी व्यापारी सस्था जेबासू को भग कर दिया और जापान के लिये एक नया सविधान तैयार किया। नये सविधान में युद्ध की निन्दा की गई और एक उत्तरदायी ससदीय सरकार की स्थापना की गई। जापान ससद अर्थात् डायट में दो सभायें है एक कामलरो की सभा और दूसरी प्रतिनिधि सभा अर्थात् लोक सभा। वयस्क मताधिकार के आधार पर इनका निर्वाचन क्रमश. ६ और ४ वर्पो के लिये होता है। सविधान मे भापण, प्रकाशन, निष्पक्ष अदालती जाच, अनिवार्य शिक्षा, तथा जाति व धार्मिक स्वतन्त्रता की व्यवस्था है। प्रथम चुनाव १० अप्रैल १९४६ में हुए और प्रधान मत्री शिगेरू योशीदा ने चुनाव के एक मास बाद सयुक्त मन्त्रिमडल की स्थापना की। किन्तु क्षतिपूर्ति और पुनर्शस्त्रीकरण के प्रश्न ने शाति सधि में देर कर दी। १२ मई १९४९ को क्षतिपूर्ति की मात्रा २५ प्रतिशत घटा दी गई। १३ अप्रैल १९५१ को जनरल मैकार्थर (कोरियाई युद्ध को रोकने के लिये कम्युनिस्ट चीन के विरुद्ध आक्रमणकारी कार्रवाई के लिये जिद्द करने के कारण) वापस बुला लिये गये और उनके स्थान पर ले० जनरल मैथ्यू रिजवे सर्वोच्च सेनापति नियुक्त हुए। ११ महीने तक वार्ता के बाद जापानी सधि पर विचार करने के लिये ५२

राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन ४ सितम्बर १९५१ को सानफ्रांसिस्को में हुआ। ८ सितम्बर को, ४९ राष्ट्रों ने सन्धि पर अन्तिम रूप से हस्ताक्षर किये। सोवियत संघ, पोलैंड और चेकोस्लोवाकिया ने हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। भारत और बर्मा सम्मेलन में शामिल नहीं हुए। सन्धि में जापान ने संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बनने की इच्छा प्रकट की।

सन्धि में निम्न बातें निश्चित थीं : १ शान्ति—मित्रराष्ट्रों ने होन्शू, होकैडो, क्यूशू, शिकोकू और कुछ छोटे द्वीपों की सार्वभौमिक सत्ता स्वीकार की। २ प्रदेश—स्पएनपार्ट, पोर्टसमिन्टन, टेग्लाड, दक्षिणी सखालिन, कुरिल द्वीप, रियूकू बोनिन तथा वालकेनो क्षेत्र, पार्सवेला तथा मारकस द्वीपों, स्प्राटली और पार्सेल द्वीपों, मरियाना कैरोलिन तथा मार्शल पर से जापान का अधिकार समाप्त कर दिया गया। ये क्षेत्र अमरीका और संयुक्तराष्ट्रसंघ की संरक्षण समिति के आधीन कर दिये गये। ३ सुरक्षा—तय हुआ कि जापान अपने अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को शान्तिपूर्ण तरीकों से निपटायगा और संयुक्त राष्ट्रसंघ को हर तरह से सहयोग देगा। ४ आर्थिक—जापान को प्रत्येक देश से व्यापार करने का अधिकार दिया गया। ५ क्षतिपूर्ति—युद्ध में हुई क्षति के लिये जापान को मित्रराष्ट्रों को क्षतिपूर्ति देनी होगी। लेकिन चूंकि जापान के पास साधन पर्याप्त नहीं इसलिये जापान क्षतिपूर्ति की अदायगी इस प्रकार करेगा कि क्षतिपूर्ति पाने के अधिकारी राष्ट्रों से कच्चे माल लेकर उनसे आवश्यक माल तैयार कर सम्बन्धित देशों को वापस भेज देगा। अन्तर्राष्ट्रीय विवाद का निपटारा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा किया जायगा।

इस सन्धि की प्रतिक्रिया रूस में काफी तेजी से हुई। संयुक्त राष्ट्रसंघ में रूसी प्रतिनिधि [illegible] ने सन्धि पर हस्ताक्षर करने वालों को सावधान किया कि वह [illegible] एक और युद्ध को जन्म देगा। जापानी शान्ति सन्धि के [illegible] [illegible] जापान के [illegible] [illegible] सन्धि में शामिल नहीं हुआ। [illegible] कि यद्यपि इस सन्धि से [illegible] किन्तु [illegible] सन्धि है। [illegible] [illegible]

[illegible]

व्याख्यान ६

संयुक्त राष्ट्रसंघ

विषय प्रवेश—द्वितीय विश्व युद्ध के अनुभव, विश्व के आर्थिक मामलो को अनिवार्य रूप से एक प्रणाली मे एकरूपता, श्रम अवस्थाओ के समीकरण की बलवती आवश्यकता, जीवन के न्यूनतम स्तर और मानव अस्तित्व के भय ने एक नवीन अन्तर्राष्ट्रीय विभाग को जन्म दिया तथा विश्व सगठन की नीव डाली। विज्ञान की नई शक्तियो उदाहरणत मशीनगन तथा अणुवमो से लडे गये युद्धो से हुए विनाश तथा महानाशो ने मानव जीवन की अनित्यता को बदल दिया और शान्ति स्थापना के लिये विश्व मैत्रित्व की भावना को जन्म दिया। अत उस प्रलय को, जिसका अनुभव मनुष्यो ने अब किया है, रोकने के लिये विश्व के राष्ट्र विशेषकर अमरीका, ब्रिटेन तथा रूस ने विश्व न्याय तथा मैत्रीपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के लिये एक स्थायी विश्व सगठन की स्थापना के निमित्त सजग तथा सामूहिक प्रयास आरम्भ किये। ६ जनवरी १९४१ को जब कि सम्पूर्ण यूरोप धुरी पर गिर चुका था राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने चार आवश्यक स्वाधीनताओ की घोषणा की—

(१) भाषण व अपने अन्य विचारो को प्रगट करने की स्वतन्त्रता। (२) ईश्वर की पूजा व उपासना करने की स्वतन्त्रता। (३) आर्थिक अभाव व कमी से स्वतन्त्रता तथा (४) भय से स्वतन्त्रता जिसका विश्व की भाषा मे अनुदित अर्थ होता है कि विश्व भर मे इस स्तर तक तथा इस ढग से निशस्त्रीकरण किया जाय कि ससार मे कही भी कोई राष्ट्र इस अवस्था में न रह जाय कि दूसरे पडोसी राष्ट्र पर शारीरिक अत्याचार कर सके। १२ जून १९४१ को १४ देशो के प्रतिनिधि जिसमे यूरोप के ९ निर्वासित देश भी सम्मिलित थे, लन्दन मे मिले और बलपूर्वक घोषणा की कि शान्ति स्थापना का एक मात्र सत्य आधार विश्व के स्वतन्त्र व्यक्तियो का इच्छा प्रेरित सहयोग है जिससे अत्याचार के भय से मुक्त होकर सभी आर्थिक तथा सामाजिक सुरक्षा का आनन्द उठा सकेंगे।

जन्म तथा विकास

"सयुक्त राष्ट्रसघ" नाम फ्रैंकलिन डिलेन रूजवेल्ट द्वारा प्रस्तावित किया गया था। इसका पहला प्रयोग सयुक्त राष्ट्र द्वारा की गई घोषणा मे हुआ था और बाद मे अमरीका के स्व० राष्ट्रपति को श्रद्धाजलिस्वरूप नये अन्तर्राष्ट्रीय सगठन की सज्ञा के रूप मे लिया गया था।

लन्दन घोषणा के तीन मास पश्चात् अमरीकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट तथा ब्रिटेन के प्रधान मंत्री चर्चिल के ऐटलांटिक सम्मेलन के परिणामस्वरूप विश्व संगठन के रूप में नया कदम उठा। उनका मिलन अगस्त १९४१ में प्रशान्त सागर में एक जहाज पर हुआ और एक संयुक्त घोषणा की गई जो ऐतिहासिक प्रशान्त आदेश पत्र (चार्टर) नाम से विख्यात है।

प्रशान्त आदेश पत्र

यह केवल उनके देशों की राष्ट्रीय नीति के विशिष्ट समान सिद्धांतों जिन पर उन्होंने विश्व के स्वर्णिम भविष्य के लिये अपनी आशायें प्रकट की थी द्वारा स्वीकृत थी। आदेशपत्र में ८ निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया था —

(१) हम साम्राज्य विस्तार अथवा किसी नव प्रदेश पर अधिकार करना नहीं चाहते हैं। (२) हम बिना जनता की अनुमति के किसी राष्ट्र की सीमा में परिवर्तन नहीं करना चाहते। (३) जनमत से ही प्रत्येक राष्ट्र का शासन चलेगा। (४) प्रत्येक राष्ट्र को व्यापार की पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये और कृत्रिम बाधा का अवसान होना चाहिए। (५) सब राष्ट्रों में पारस्परिक आर्थिक सहयोग रहना चाहिए। (६) नाजीवाद के विनाश के बाद प्रत्येक पराजित राज्य पुनः प्रतिष्ठित होगा और उनको पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। (७) सब राष्ट्रों के लिए समुद्र का पथ खुला रहेगा। (८) शस्त्र अस्त्रों व युद्ध सामग्री में कमी होनी चाहिए और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए प्रत्येक राज्य को प्रयत्न करना चाहिए।

२४ सितम्बर को इस आदेश पत्र पर सोवियत रूस तथा यूरोप के दस अधिकृत देशों बेल्जियम, चेकोस्लोवाकिया, यूनान, लक्जेम्बर्ग, नार्वे, पोलैंड, युगोस्लाविया तथा फ्रांस ने भी हस्ताक्षर किये।

संयुक्त राष्ट्रसंघ और मास्को घोषणा

१ जनवरी १९४२ को प्रेसिडेन्ट रूजवेल्ट, विन्स्टन चर्चिल, लिटविनोव (रूस) तथा टी० वी० सूंग (चीन) ने संयुक्त राष्ट्रसंघ घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किए और दूसरे दिन २२ अन्य राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने भी हस्ताक्षर किए। भारत सरकार की ओर से घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर उस समय अमरीका में भारतीय एजेन्ट जनरल सर गिरिजाशंकर बाजपेयी ने किए। हस्ताक्षर कर्ताओं ने वचन दिया कि वे पृथक् सन्धि न करेंगे।

३० अक्टूबर १९४३ को अमरीका, ब्रिटेन, रूस और चीन के विदेश मंत्रियों का एक सम्मेलन मास्को में हुआ। सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की स्थापना के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना पर जोर दिया गया जो शान्तिप्रिय राज्यों की सार्वभौम समानता के सिद्धान्त पर आधारित हो और जिसकी

सदस्यता बडे छोटे सभी राष्ट्रो के लिए खुली हो। चार राष्ट्रो की उक्त घोषणा के दो महिने के बाद चर्चिल, रूजवेल्ट और स्टालिन प्रथम बार ईरान की राजधानी तेहरान मे मिले। इन तीनो नेताओ ने घोषणा की कि हमे पूर्ण विश्वास है कि हमारा यह प्रयास स्थायी शान्ति की स्थापना में सफल सिद्ध होगा। उन्होने कहा—हम स्वीकार करते है कि शान्ति स्थापना का उत्तरदायित्व तमाम सयुक्त राष्ट्रो और हम पर निर्भर करता है जिसका उद्देश्य विश्व में सद्भावना कायम करना और ससार से युद्ध के भय और भावना को सदा के लिए अन्त कर देना है।

आर्थिक और सामाजिक समस्याओ सम्बन्धी सम्मेलन

आम अन्तर्राष्ट्रीय सस्था की स्थापना के पूर्व सामाजिक और आर्थिक समस्याओ पर विचार करने के लिए सयुक्त राष्ट्रसघ के कई सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन मई-जून १९४३ में वर्जिनिया (हार्टस्प्रिंग्स) में हुआ जिसमें खाद्य और कृषि सम्बन्धी एक अन्तरिम आयोग की स्थापना की गई जो एफ ए ओ के नाम से पुकारा गया। अक्तूबर १९४२ में लन्दन में हुए मित्रराष्ट्रो के शिक्षा मन्त्रियो के सम्मेलन में एक सयुक्त राष्ट्रसघ शैक्षिक तथा सास्कृतिक सस्था (युनेस्को) की स्थापना के लिये योजनाए बनाई गई। इसी बीच ९ नवम्बर १९४३ को वाशिंगटन मे ४४ राष्ट्रो के प्रतिनिधियो ने एक समझौते द्वारा सयुक्त राष्ट्रसघ सहायता तथा पुनर्वास प्रशासन सस्था की स्थापना की। दूसरे ही दिन उक्त सस्था की बैठक न्यूजर्सी मे हुई। जुलाई १९४८ में न्यूहेम्पशायर मे सयुक्त राष्ट्रसघ मुद्रा तथा आर्थिक सम्मेलन हुआ जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और पुनर्निर्माण तथा विकास के अन्तर्राष्ट्रीय बैंक समझौता के लिए धारायें तैयार की गई। निश्चय हुआ कि बैंक में जमा ९ अरब १० करोड डालर के कोष से लम्बी अवधि के लिए ऋण उचित सूद पर दिया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय सिविल अमरीकी सम्मेलन नवम्बर-दिसम्बर १९४४ में शिकागो मे हुआ।

डम्बार्टन ओक और याल्टा

७ अक्तूबर १९४४ को चीन, ब्रिटेन, रूस तथा अमरीका के प्रतिनिधियो की एक बैठक डम्बार्टन ओक मे हुई जिसमें विश्व सस्था के लिए एक प्रस्ताव तैयार किया गया। इस योजना के अनुसार चार सस्थाओ—सभी सदस्यो की महासमिति (जनरल असेम्बली), ११ सदस्यो की सुरक्षा परिषद, आर्थिक और सामाजिक परिषद और एक अन्तर्राष्ट्रीय अदालत को मिला कर सयुक्त राष्ट्रसघ सस्था की स्थापना की जाय। सदस्य राष्ट्र युद्ध को रोकने तथा आक्रमणकारी कार्यवाइयो को दबाने के लिए सुरक्षा परिषद को सैनिक सहायता देंगे। कहा गया कि राष्ट्रसघ के पास सैनिक ताकत न रहने के कारण ही वह असफल रहा। इसलिए सयुक्त

राष्ट्रसंघ की सफलता के लिए सुरक्षा परिषद जैसी संस्था जरूरी समझी गई। यह योजना आवश्यक अध्ययन और विचार के लिए सभी सदस्य मित्रदेशों को भेज दी गई।

डम्बार्टन ओक्स के प्रस्तावों में एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात भूल से छूट गई और वह थी सुरक्षा परिषद् मतदान की प्रणाली। ११ फरवरी १९४५ को क्रिमिया (याल्टा) में चर्चिल, रूजवेल्ट और स्टालिन मतदान प्रणाली पर विचार करने के लिए मिले। बैठक में उक्त प्रश्न हल कर लिया गया और २५ अप्रैल १९४५ को सान फ्रांसिस्को में संयुक्त राष्ट्रसंघ का एक सम्मेलन बुलाया गया। जिसका उद्देश्य डम्बार्टन ओक्स योजना के आधार पर प्रस्तावित अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का चार्टर तैयार करना था। अप्रैल में प्रेसिडेंट रूजवेल्ट का अकस्मात देहान्त हो गया और उनके स्थान पर उपराष्ट्रपति ट्रूमैन प्रेसिडेंट नियुक्त हुए।

सान फ्रांसिस्को सम्मेलन

२५ अप्रैल १९४५ को ५० राष्ट्रों के ८५० प्रतिनिधि गोल्डेन गेट नगर में एकत्रित हुए। ये प्रतिनिधि विश्व की आबादी का ८० प्रतिशत से भी अधिक जनता का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। प्रतिनिधियों ने सचिवालय के ३५०० योग्य पदाधिकारियों के सहयोग से चार्टर तैयार करने का कार्य आरम्भ किया। इस सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व सर रामास्वामी मुदालियर, सर फिरोज खां नून तथा सर वी. टी. कृष्णमाचारी ने किया। इस सम्मेलन में विभिन्न आयोगों और समितियों की ४०० बैठकें हुईं और कई बार ऐसा संकट पैदा हुआ कि ऐसा लगा कि सम्मेलन भंग हो जायेगा। किन्तु आखिर चार्टर स्वीकार कर लिया गया और २६ जून को वेटरन्स मेमोरियल हाल में ५० राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने उस पर हस्ताक्षर कर दिये। प्रेसिडेंट ट्रूमैन ने सम्मेलन के अन्तिम अधिवेशन में भाषण देते हुए कहा : 'संयुक्त राष्ट्रसंघ का चार्टर जिस पर आपने अभी हस्ताक्षर किये हैं वह एक ऐसी मजबूत बुनियाद है जिस पर हम एक सुन्दर विश्व का निर्माण कर सकते हैं। इसके लिए इतिहास आपका सम्मान करेगा।' आगे कहा "चार्टर की सफलता विश्व की जनता पर निर्भर है। यदि हमने इस चार्टर का पालन न किया तो हम विश्व की उस विशाल जनता से गद्दार समझे जायेंगे जिन्होंने शान्ति स्थापना के लिए हमें यहां भेजा है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible] ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बनाने की [illegible] हुई थी।

२४ अक्तूबर १९४५ को हस्ताक्षरकर्ता देशो द्वारा चार्टर की सम्पुष्टि किए जाने के बाद सयुक्त राष्ट्रसघ ने कार्य आरम्भ कर दिया। चार वर्ष तक अथक परिश्रम के बाद युद्ध को रोकने, शाति और न्याय की स्थापना के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सस्था की स्थापना का प्रयास सफल रहा। १० जनवरी १९४६ को सयुक्त राष्ट्रसघ की जनरल असेम्बली की प्रथम बैठक राष्ट्रसघ की २६ वी वर्षगाठ पर लन्दन के वेस्ट मिनिस्टर हाल मे हुई।

सयुक्त राष्ट्रसघ चार्टर

उद्देश्य—चार्टर के अनुसार सयुक्त राष्ट्रसघ के निम्न चार उद्देश्य थे (१) अन्तर्राष्ट्रीय शाति और सुरक्षा की स्थापना, शाति का उल्लघन कर आक्रमण करने वालो के खिलाफ कार्रवाई करना, किसी भी ऐसी कार्यवाई को रोकना जो शाति के लिये खतरनाक हो, अन्तर्राष्ट्रीय विवादो को न्याय के आधार पर शातिपूर्ण तरीके से सुलझाना (२) समान अधिकार और आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के आधार पर राष्ट्रो के बीच मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना तथा विश्व शाति को मजबूत बनाने के लिये आवश्यक कार्यवाई करना, (३) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक और अन्य मानवीय समस्याओ को सुलझाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित करना और मानवीय अधिकारो तथा आधारभूत स्वतन्त्रता का सम्मान करना।

सिद्धान्त—चार्टर की धारा २ में उन मौलिक सिद्धान्तो का उल्लेख किया गया है जिन पर सयुक्त राष्ट्रसघ की स्थापना की गई है। वे है (१) सयुक्त राष्ट्रसघ—इसके सारे सदस्यो के सार्वभौमिक समानता पर आधारित है। (२) प्रत्येक सदस्य चार्टर के प्रति अपने उत्तरदायित्व को निभायेगा। (३) सभी राष्ट्रो को अपने अन्तर्राष्ट्रीय झगडो को शातिपूर्ण तरीके से सुलझाना होगा जिससे शाति और सुरक्षा को खतरा न पहुचे। (४) कोई भी राष्ट्र किसी भी देश की स्वतन्त्रता पर आक्रमण नही कर सकता। (५) कोई भी देश किसी देश को, जो चार्टर के विरुद्ध काम करेगा, सहायता नही देगा। (६) सयुक्त राष्ट्रसघ को इस बात को देखना होगा कि वे देश जो सयुक्त राष्ट्रसघ के सदस्य नही वे विश्व में शाति और सुरक्षा के सहयोग मे बाधा तो नही डालते, (७) सयुक्त राष्ट्रसघ किसी भी देश के घरेलू अर्थात् आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप नही करेगा।

सदस्यता—सान फ्रासिस्को सम्मेलन में भाग लेने वाले तमाम देश सयुक्त राष्ट्रसघ के सदस्य माने गए। सयुक्त राष्ट्रसघ घोषणा पत्र का हस्ताक्षरकर्ता पोलैंड उक्त सम्मेलन मे सम्मिलित नही हो सका था क्योंकि उस समय उसकी सरकार को सयुक्त राष्ट्रसघ के सदस्यो की मान्यता प्राप्त नही हो सकी थी। इसीलिए चार्टर मे उसके लिए एक स्थान सुरक्षित कर दिया गया था जो १५ अक्तूबर १९४५ को हस्ताक्षर कर

उसने भाग ले लिया। इस तरह संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रारम्भिक सदस्यों की संख्या ५१ थी। चार्टर की धारा ४ के अनुसार कोई भी शान्तिप्रिय राज्य जो चार्टर के सिद्धान्तों पर चलने को तैयार हो संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बन सकता था। नये सदस्य सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर ही बनाए जा सकते थे। इसके लिए जनरल असेम्बली (महासमिति) के दो तिहाई सदस्यों का समर्थन प्राप्त करना जरूरी होता था। १९४६–४९ में आंग्ल-अमरीकी गुट ने अल्बानिया, बल्गेरिया, हंगरी, मंगोलिया और रूमानिया को संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाने का विरोध किया और सोवियत संघ ने आस्ट्रिया, आयरलैंड, फिनलैंड, इटली, पुर्तगाल तथा ट्रांसजोर्डन के सदस्यता के आवेदन पत्र को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। इसी बीच १९४६ में अफगानिस्तान, आइसलैंड, स्वीडन तथा थाइलैंड, १९४७ में पाकिस्तान और यमन, १९४८ में बर्मा, १९४९ में इजराइल, १९५० में हिन्देशिया और १९५५–५६ में अन्य १७ राष्ट्र संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य स्वीकार कर लिए गए। इस तरह कुल सदस्य राज्यों की संख्या ७९ हो गई।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के वर्तमान सदस्य राज्यों की संख्या निम्न ८९ है —अफ़-

पहले लेक सक्सेस तथा फ्लशिंग मेडो में थे। बाद में १४ अक्तूबर १९५२ को न्यूयार्क की ४२ वी गली में १। करोड डालर की लागत से तैयार विशाल भवन में सघ का स्थायी कार्यालय लाया गया तभी से वह वही है। सयुक्त राष्ट्रसघ की सरकारी भाषाये चीनी, अग्रेजी, फ्रासीसी, रूसी तथा स्पेनिश है। इसका काम अधिकतर अग्रेजी और फ्रासीसी भाषा में होता है।

महासभा (जनरल असेम्बली)

महासभा मे जो सयुक्त राष्ट्रसघ की धुरी है तमाम सदस्य राष्ट्रो के प्रतिनिधि होते है। एक सदस्य को एक मत का अधिकार होता है। महासभा की बैठक प्रतिवर्ष २ सितम्बर के बाद होनी है जिसका एक ही अधिवेशन होता है। सयुक्त राष्ट्रसघ की बहुमत की माग पर विशेष अधिवेशन बुलाया जा सकता है। महामत्री को १५ दिन के नोटिस पर अधिवेशन बुलाने का अधिकार है। प्रत्येक सदस्य को महासभा की विषय सूची पर कोई भी विषय विचारार्थ रखने का अधिकार है किन्तु वह विषय घरेलू अर्थात् देश के आतरिक मामलो से सम्बन्धित नहीं होना चाहिये। विषय चार्टर के अनुसार होना चाहिए।

महासभा के कार्य निम्न प्रकार है (१) शाति और सुरक्षा की स्थापना के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के सिद्धान्तो पर विचार करना और उस पर अपनी सिफारिशें देना। इसके अतिरिक्त निशस्त्रीकरण तथा शस्त्रीकरण के सिद्धान्तो पर शाति व सुरक्षा का ध्यान रखते हुए विचार करना तथा अपनी सिफारिशे देना (२) किसी भी समस्या पर जो शाति और सुरक्षा के लिये घातक है, विचार करना और सिफारिशे देना। (४) अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक सहयोग को प्रोत्साहित करने, अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विकास, मानव अधिकारो तथा मौलिक स्वतत्रता, आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक, शैक्षिक तथा स्वास्थ्य क्षेत्रो मे अन्तर्राष्ट्रीय सुसम्बन्ध कायम करने पर विचार और उन पर आवश्यक सिफारिशे देना। (५) सुरक्षा परिषद तथा सयुक्त राष्ट्रसघ के अन्य विभागो से रिपोर्टे प्राप्त करना और उन पर विचार करना। (६) राष्ट्रो के परस्पर सम्बन्धो पर प्रभाव डालने वाली किसी भी स्थिति को शातिपूर्ण ढग से सुलझाने के लिए सिफारिशें देना। सरक्षक समझौतो को सरक्षक परिषद द्वारा निरीक्षण और क्रियान्वित कराना (८) सुरक्षा परिषद के लिए ६ अस्थायी सदस्य, आर्थिक तथा सामाजिक परिषद के लिए १८ सदस्य तथा अन्तर्राष्ट्रीय अदालत के लिये १५ जजो को चुनना और सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर महामन्त्री नियुक्त करना। (९) सयुक्त राष्ट्रसघ के बजट पर विचार करना तथा उस पर अपना निर्णय देना।

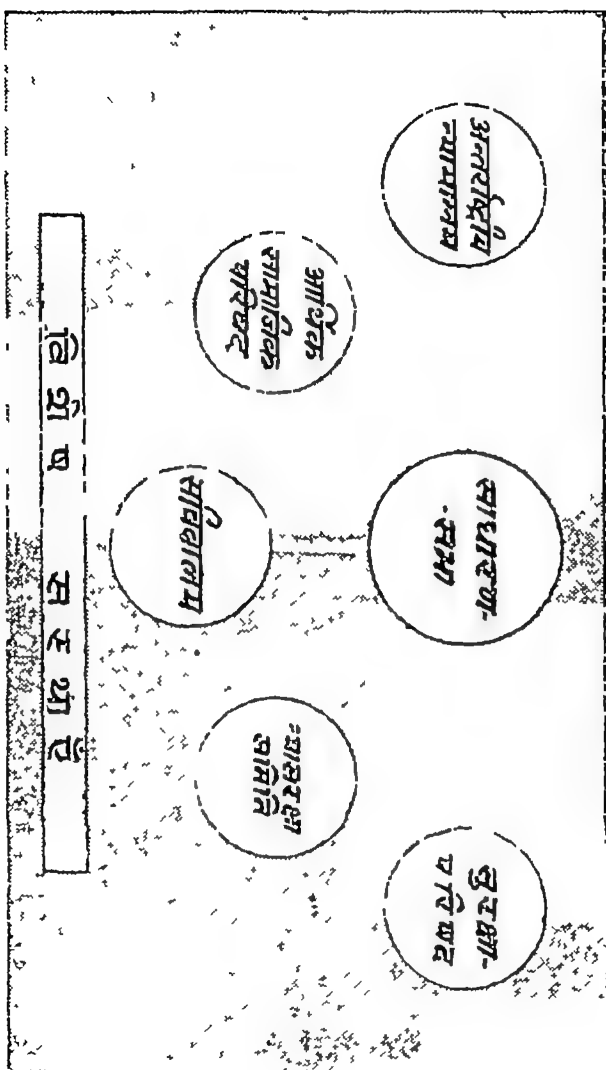
महासभा में मतदान की प्रणाली इस सिद्धान्त पर आधारित है कि महत्वपूर्ण प्रश्नो पर निर्णय उपस्थित सदस्यो में से दो तिहाई के मत से किये जा सकते है।

धारा १८ के अनुसार महत्वपूर्ण प्रश्न निम्न प्रकार के माने गए हैं (१) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की सुरक्षा सम्बन्धी सिफारिशें (२) सुरक्षा परिषद के अस्थाई सदस्यों का चुनाव (३) आर्थिक तथा सामाजिक परिषद के सदस्यों का चुनाव (४) संरक्षण परिषद के सदस्यों का चुनाव (५) संयुक्त राष्ट्रसंघ के नये सदस्य बनाना (६) सदस्यों के अधिकारों और सुविधाओं का स्थगन (७) संरक्षण व्यवस्था को स्थापित करने सम्बन्धी प्रश्न (८) बजट सम्बन्धी प्रश्न। अन्य प्रश्नों का निर्णय उपस्थित साधारण बहुमत द्वारा ही किया जाता है। उस सदस्य राष्ट्र को जिसने कि संयुक्त राष्ट्रसंघ को अपना पूरा चन्दा नहीं दिया है, मत देने का अधिकार नहीं होता। महासभा प्रत्येक अधिवेशन के लिये अध्यक्ष चुनती है। उसे जरूरत पड़ने पर और स्वयं स्थगित करने का भी अधिकार है।

महासभा का कार्य ६ प्रमुख समितियों द्वारा होता है। जिसमें सभी सदस्यों को भाग लेने का अधिकार है। ये ६ समितियाँ निम्न प्रकार हैं: राजनैतिक तथा सामरिक, आर्थिक तथा वित्तीय, सामाजिक, मानवीय तथा सांस्कृतिक, संरक्षण, प्रशासनिक और बजट सम्बन्धी, तथा कानूनी। प्रत्येक समिति अपना अलग-अलग अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और रिपोर्टर चुनती है। सदस्यों का चुनाव योग्यता और अनुभव के अतिरिक्त समान भौगोलिक वितरण के आधार पर होता है। महासभा समय समय पर तदर्थ (एडहाक) समितियों और आयोगों की स्थापना करती है जैसे कि २१ अक्टूबर १९४७ में यूनान, अल्बानिया, बल्गारिया तथा युगोस्लाविया के विवादों का निपटारा करने के लिये उसने सद्भावना समिति की स्थापना की। उसने कोरिया में संयुक्त राष्ट्र आयोग (कमीशन) की भी स्थापना की है। महासभा के दूसरे, तीसरे तथा चौथे अधिवेशनों में सभी सदस्यों को मिलाकर अनिश्चित काल के लिये अन्तरिम समिति की स्थापना की गई जिसका काम इन प्रश्नों पर विचार करना या निरीक्षण आदि और जाँच पर प्रस्ताव पास करना होता है। इस सभा का नाम छोटी सभा है। संयुक्त राष्ट्रसंघ का १९५६ के बजट का अनुमान ४८,५०८,००० डालर* है, जो १९५५ से २,२३३,००१ डालर कम है। बजट इस राशि से पूरा किया जायगा जो सदस्य राष्ट्रों के चन्दे से प्राप्त होगा। कुल खर्च में से अमरीका ३३.३ प्रतिशत, ब्रिटेन [illegible] प्रतिशत, सोवियत संघ १३.८ प्रतिशत, फ्रांस और चीन प्रत्येक ५-५ प्रतिशत और भारत ३ प्रतिशत चन्दा देगा।

महासभा का प्रथम अधिवेशन १० जनवरी १९४६ को लन्दन में आरम्भ हुआ। २१ सितम्बर १९५४ को महासभा का ९ वां अधिवेशन न्यूयार्क में नये भवन में आरम्भ हुआ। उस समय नीदरलैंड्स के Dr E N van Kleffens महासभा के अध्यक्ष चुने गए हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत के प्रतिनिधि, [illegible] ने

* १ डालर ४.७० के बराबर होता है।


संयुक्त राष्ट्रसंघ का संगठन
अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय
साधारण-सभा
सुरक्षा-परिषद
आर्थिक सामाजिक परिषद
सचिवालय
न्यासरक्षा समिति
विशेष संस्थाएँ

सेना श्री ची के [illegible] है। श्री [illegible] संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत के स्थायी प्रतिनिधि हैं।

सुरक्षा परिषद्

सुरक्षा परिषद में ११ सदस्य हैं। इनमें से पांच स्थायी और ६ अस्थायी सदस्य हैं। चीन, फ्रांस, ब्रिटेन, रूस तथा अमरीका स्थायी सदस्य हैं। परिषद के अस्थायी सदस्य हैं, बेल्जियम, ईरान, पीरू (३१ दिसम्बर १९५७ पर्यन्त), और आस्ट्रेलिया, क्यूबा, युगोस्लाविया (१९५८ पर्यन्त)। शान्ति स्थापना सम्बन्धी योग्यता और अनुभव तथा समान भौगोलिक वितरण के आधार पर संयुक्त राष्ट्रीय महासभा दो वर्ष के लिए अस्थायी सदस्यों को चुना करती है। कोई सदस्य अविलम्ब पुनः निर्वाचन के लिए योग्य नहीं होते। परिषद की सदस्य संख्या निर्दिष्ट होने से छोटे छोटे सदस्य राज्य उसकी संख्या की वृद्धि के लिए [illegible] नहीं कर सकते जैसे कि पुरातन राष्ट्रसंघ की परिषद में हुआ करता था। परन्तु भविष्य में यदि कोई महान शक्ति का उत्थान हो तो चार्टर के संशोधन के बिना उसको भी परिषद में स्थायी स्थान मिलना असम्भव है। प्रत्येक सदस्य राज्य का केवल एक ही प्रतिनिधि परिषद में उपस्थित हो सकता है।

कार्यक्रम—सुरक्षा परिषद अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा के लिए उत्तरदायी है। राष्ट्रसंघ के उद्देश्य के अनुसार शान्ति स्थापना के लिए अविलम्ब कार्यवाही जरूरी है। इसलिये धारा २८ के अनुसार सुरक्षा परिषद की बैठक महीने में दो बार होती है। अपनी सुविधा के अनुसार परिषद की बैठक कहीं भी की जा सकती है। आजकल परिषद की बैठक न्यूयार्क में होती है। परिषद का प्रत्येक सदस्य एक मत देने का अधिकारी होता है। केवल कार्यक्रम सम्बन्धी मामलों पर किन्हीं सात सदस्यों की स्वीकार सूचक वोट से निर्णय किया जाता है। अन्य सभी मामलों (मूलभूत) में ([illegible]) सात सदस्यों की स्वीकार सूचक वोट जिसमें पांच स्थायी सदस्यों की सम्मति हो किसी भी निर्णय के लिए आवश्यक है। [illegible] स्थायी सदस्यों में से यदि एक भी [illegible] और अपने वोट के अधिकार का उपयोग [illegible] निषेधाधिकार वोट (वीटो) कहते हैं। [illegible] स्थायी सदस्यों का [illegible] निर्णय में [illegible] होना [illegible]। [illegible] (धारा २७)।

[illegible] परिषद के [illegible] सदस्य [illegible] वोट [illegible], परन्तु [illegible] सुरक्षा परिषद का सदस्य नहीं है और [illegible] संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य

नही है, परिषद के विशेष आमन्त्रण से कार्यक्रम मे भाग ले सकता है किन्तु उसका मताधिकार नही होता। विशेष आमन्त्रण दो आधार पर हो सकता है। प्रथम यदि परिषद की दृष्टि में कोई विचाराधीन समस्या के निर्णय मे किसी सदस्य राज्य के स्वार्थ की हानि हो तो वह उस राज्य को उसमे भाग लेने के लिए अनुरोध कर सकता है (धारा ३८)। द्वितीय, यदि कोई सयुक्त राष्ट्रीय सदस्य या गैर सदस्य सुरक्षा परिषद के विचाराधीन प्रश्न मे एक दल है तो उसे बहस मे बिना मताधिकार के भाग लेने के लिए अवश्य बुलाना चाहिये। सुरक्षा परिषद अपने अध्यक्ष की निर्वाचन प्रणाली तथा कार्यवाई के नियम आदि अपने आप ही प्रस्तुत करती है (धारा ३०)। परिषद के सदस्य, अंग्रेजी नाम के प्रथम अक्षर के क्रमानुसार एक महीने के लिए अध्यक्ष बनते रहते है। यदि परिषद के विचाराधीन प्रश्न मे अध्यक्ष का राज्य, प्रत्यक्ष रूप मे सयुक्त हो, तो उस समय के लिए वह चाहे तो अनुपस्थित रह सकता है।

सयुक्त राष्ट्रसघ के चार्टर (आदेश पत्र) मे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व्यवस्था कायम रखने के लिये परिषद के हस्तक्षेप की चार विभिन्न अवस्थाओ का उल्लेख किया गया है।

प्रथम अवस्था—शान्तिपूर्ण समझौता (धारा ३३)। किसी झगडे के दलो को अपने झगडे, वार्त्ता, जाच, सोच-विचार, विचार-विमर्श, मध्यस्थ-निर्णय, न्यायिक समझौता, प्रादेशिक सस्थाओ का प्रस्थापना, प्रबन्धो या अपने इच्छानुसार अन्य शातिपूर्ण ढग से तय कर लेने चाहिएं। कोई भी राज्य, जो सयुक्त राष्ट्रसघ का सदस्य नही है सुरक्षा परिषद या महासभा के सामने वह झगडा ला सकता है जिसमे वह भी सम्मिलित है। परन्तु शर्त यह है कि वह चार्टर के शाति समझौता की बाध्यतामूलक शर्तो को मान ले।

द्वितीया अवस्था—यदि शाति भग हो जाय अथवा एक राज्य दूसरे पर आक्रमण करे तो परिषद झगडने वाले राज्यो को अपनी स्थायी शर्तो के स्वीकार करने के लिए आह्वान कर सकती है किन्तु उस अवस्था मे उन राज्यो के अधिकार तथा दावे अक्षुण रहेगे। उदाहरण के तौर पर वह मॉग कर सकती है कि सम्बन्धित देश अपनी सेनाएँ कथित स्थिति पर बुला लें या युद्ध विराम पर हस्ताक्षर करे। यदि एक अथवा दोनो दल इन मॉग को अस्वीकार कर दे तो यह भविष्य की कार्यवाही के लिए नोट किया जायगा (धारा ३९-४०)।

तृतीय अवस्था—परिषद सदस्य राज्य से आर्थिक नाकेबन्दी करने—जिसमे रेल, डाक, समुद्र, वायु, तार, रेडियो, तथा यातातात के अन्य साधनो की पूरी या आधी रुकावट या कूटनीतिक सम्बन्ध विच्छेद सम्मिलित हो—को कह सकती है (धारा ४१)।

चतुर्थ अवस्था—अन्त मे यदि परिषद के विचार मे यह सब ढग अपर्याप्त हो तो वह सभी सैनिक कार्यवाही, सैन्य प्रदर्शन, अवरोध तथा वायु, जल या स्थल सेना का

प्रयोग स्थिति के अनुसार कर सकती है। संयुक्त राष्ट्रीय सदस्य (धारा ४३) प्रतिज्ञाबद्ध हैं कि इसके आह्वान पर सशस्त्र सैन्य सहायता तथा सुविधायें जिनमें मार्ग का अधिकार भी सम्मिलित है प्रदान करें। संयुक्त राष्ट्रसंघ की सैन्य आवश्यकता की पूर्ति के लिए सब सदस्य राष्ट्रीय सदस्यों का कर्तव्य है कि वे सदा राष्ट्रीय वायु सेनायें प्रस्तुत रखें, जिससे कि संयुक्त राष्ट्रीय कार्यवाही अविलम्ब की जा सके (धारा ४५)।

सुरक्षा परिषद् का इतना भी अधिकार है कि वह महासभा को किसी सदस्य जिसके विरुद्ध सुरक्षात्मक या रोकथाम पग उठाए जा रहे हों की सदस्यता स्थगित करने तथा बहिष्कार की सिफारिश कर सके। यह परिषद् महासभा के बिना अधिवेशन भी चला सकती है। परिषद् सैनिक दृष्टि से यह प्रमुख भाग है कि प्रत्येक समझौते का समर्थन करती है और सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य स्वभावतः ही प्रन्यासित परिषद् (ट्रस्टीशिप काउन्सिल) के सदस्य हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त महासभा को यह उन शर्तों की सिफारिश करती है जिनके आधार पर कोई राष्ट्र का गैर सदस्य, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय विधान के भागी हो सकता है तथा न्यायालय के विधान के सम्बन्धित होने में शर्तों को निश्चित करती है। सुरक्षा परिषद् तथा महासभा एक साथ मिलकर स्वतन्त्रतापूर्वक, न्यायालय के न्यायाधीशों का निर्वाचन करती हैं। यह महामन्त्री की नियुक्ति तथा नए सदस्यों की महासभा की सदस्यता के लिए सिफारिश करती है।

वार्षिक रिपोर्ट पेश करना परिषद् के प्रधान कार्य है। परिषद् के सहायक अग तीन प्रकार के है—स्थायी, अस्थायी और विशेष। स्थाई अगो में प्रथम–सैन्य कर्मचारी वृन्द समिति—इसमें परिपद के पाच स्थाई राज्यो के सेनापति होते है और वे अपने आधीन सशस्त्र सेनाओ का सचालन, शस्त्रीकरण तथा सम्भावित नि शस्त्रीकरण के लिये उत्तरदायी होते है। द्वितीय—विशेषज्ञो की समिति—जो कि परिपद् द्वारा प्रस्तुत किये गये कार्यवाही नियमो का सशोधन, व्याख्यान और पुनर्विचार करती है। इसमें परिपद् के प्रत्येक सदस्यो के प्रतिनिधि होते है। तृतीय—नये सदस्यो के प्रवेश की समिति—जिसमें परिपद के प्रत्येक सदस्य के एक एक प्रतिनिधि होते है। यह समिति चार्टर की चतुर्थ धारा के अनुसार गैर सदस्य राज्यो के स० रा० स० में प्रवेश करने के आवेदन-पत्रो की छानबीन करती है। अस्थायी सहायक अगो में—अणुशक्ति आयोग (एटोमिक एनर्जी कमीशन) जिसमे सुरक्षा परिपद् के सभी सदस्य और कनाडा सम्मिलित है, उल्लेखनीय है। इसके कार्य—शान्ति के लिये सभी राष्ट्रो के मध्य आधारभूत वैज्ञानिक सूचनाओ का विनिमय तथा शान्तिपूर्ण प्रयोजनो के निमित्त प्रयोग के लिये, अणुशक्ति नियन्त्रण के सुझाव देना है। नि शस्त्रीकरण का क्रियमन, अस्त्र-शस्त्र तथा सेना पर नियन्त्रण के लिये प्रथीय शस्त्रीकरण आयोग (कन्वेनशनल आर्मामेन्टस् कमीशन) जिसमें सुरक्षा परिपद के सदस्य होते है, परिपद् के एक अन्य अस्थायी सहायक अग के रुप में कार्य कर रहा है। विशेप सहायक अगो में स० रा० ने भारत व पाकिस्तान, कोरिया, बल्कान तथा फिलस्तीन आदि प्रत्येक समस्या के लिए पृथक आयोग को नियुक्त किया है। इस प्रकार सुरक्षा परिपद् सयुक्त राष्ट्रसघ का सबसे महत्वपूर्ण अग है क्योंकि इसकी सफलता या असफलता से शाति या युद्ध, अन्तर्राष्ट्रीय वैधानिक अथवा निक्षेपित-राज्य का निर्णय होता है।

एक आधुनिक लेखक के मत मे सुरक्षा परिपद् के स्थायी सदस्यो को निपेधाधिकार (वीटो) देने से इसकी अन्तर्राष्ट्रीय झगडो को निबटाने की शक्ति बहुत ही सीमित हो गयी है। गत दस वर्ष की अवधि में सयुक्त राष्ट्रसघ मे प्रवेश प्रार्थी राज्यो जिनमे मगोलिया, उत्तर और दक्षिण कोरिया, जापान और साम्यवादी चीन है, का आवेदन पत्र कभी रूस और कभी आग्ल-अमरीकी गुट के निपेधाधिकार प्रयोग से रद्द हो गया। चार वर्ष से कोरिया मे साम्यवादियो से राष्ट्रसघ की लडाई जारी है। काश्मीर मे भारत-पाकिस्तान विरोध, दक्षिण अफ्रीका मे रग भेद नीति, यूरोप में शीत-युद्ध नीति और अणुशक्ति नियत्रण प्रश्न का हल सुरक्षा परिपद् अभी तक नही कर पाई। परन्तु परिपद की सहायता से हिन्देशिया तथा इजराइल का निर्माण सम्भव हुआ। परिपद् ने

हथियारों के बल पर आक्रमणकारी गुट का प्रतिरोध करके युद्ध विराम का प्रयास किया था। इन घटनाओं से यह प्रमाणित होता है कि परिषद् अपने कार्यकलाप में सर्वथा ही असफल नहीं रही बल्कि उसने कई स्थानों में संघर्ष को रोक कर शांति का बीज वपन कर दिया है। परन्तु यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि प्रमुख पाँच बड़े राष्ट्रों के पारस्परिक संघर्ष और निषेधाधिकार के प्रयोग से सुरक्षा परिषद् एक प्रकार से पंगु हो गयी है। जून १९५३ तक अकेला रूस ५५ बार निषेधाधिकार को प्रयोग में लाकर महासभा तथा परिषद के निर्णयों का खंडन कर चुका है। इसके विरोध में आंग्ल-अमरीकी गुट ने सितम्बर १९४७ में शांति और सुरक्षा के लिए महासभा की अस्थायी समिति जिसमें महासभा के सारे सदस्य हैं की स्थापना की। इस समिति को छोटी महासभा कहा जाता है। इसका उद्देश्य है कि यदि सुरक्षा परिषद् शान्ति रखने में असफल रहे तो यह महासभा के सामने समझौते तथा सहयोग के लिए अपनी सिफारिश पेश करे अर्थात् निषेधाधिकार प्रयोग करने वाले राज्य के विरुद्ध लोकमत का संगठन करे किन्तु यह ध्यान में रहे कि सं० रा० सं० की स्थापना के पूर्व प्रमुख पाँच राष्ट्रों में निषेधाधिकार सम्बन्ध में समझौता हुआ था और इसीलिए उसका समावेश किया था। जब तक इस बात के बारे में कोई समझौता नहीं होता तब तक इस परिस्थिति में किसी भी परिवर्तन की आशा रखना व्यर्थ है। सुरक्षा परिषद के कार्यकलाप में उन्नति होना तब तक असम्भव है जब तक आंग्ल-अमरीकी पूँजीवादी गुट तथा रूस-चीन द्वारा परिचालित साम्यवादी गुट का आपसी समझौता न हो।

राजनैतिक तथा सुरक्षा प्रश्न

ईरान. ईरान की प्रादेशिक सुरक्षा तथा शांति सम्बन्धी प्रथम प्रश्न सुरक्षा परिषद् के सम्मुख १९४६ में आया। ईरान सरकार ने १९ जनवरी को आरोप लगाया कि सोवियत रूस की सेनाएँ ईरान के विभिन्न भागों पर अधिकार कर रही हैं, २९ जनवरी १९४२ को ब्रिटेन, रूस और ईरान के मध्य हुई त्रिवर्गीय सन्धि तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि का उल्लंघन कर आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप कर रही हैं। सोवियत प्रतिनिधि ने इस आरोप का खंडन किया और कहा कि आजरबैजान [illegible] ईरान राज्य की सीमाओं के अन्तर्गत जनता की लोकप्रिय आकांक्षाओं के कारण हो रही है और कहा कि इसकी समस्या ईरान सरकार से वार्ता द्वारा हल की जा सकती है। इसके अनुसार रूस और ईरानी प्रतिनिधि [illegible]

वार्षिक रिपोर्ट पेश करना परिषद् के प्रधान कार्य है। परिषद् के सहायक अग तीन प्रकार के है—स्थायी, अस्थायी और विशेष। स्थाई अगो मे **प्रथम**—सैन्य कर्मचारी वृन्द समिति—इसमे परिषद के पाच स्थाई राज्यो के सेनापति होते है और वे अपने आधीन सशस्त्र सेनाओ का सचालन, शस्त्रीकरण तथा सम्भावित नि शस्त्रीकरण के लिये उत्तरदायी होते है। **द्वितीय**—विशेषज्ञो की समिति—जो कि परिषद् द्वारा प्रस्तुत किये गये कार्यवाही नियमो का सशोधन, व्याख्यान और पुनर्विचार करती है। इसमें परिषद् के प्रत्येक सदस्यो के प्रतिनिधि होते हैं। **तृतीय**—नये सदस्यो के प्रवेश की समिति—जिसमे परिषद के प्रत्येक सदस्य के एक एक प्रतिनिधि होते हैं। यह समिति चार्टर की चतुर्थ धारा के अनुसार गैर सदस्य राज्यो के स० रा० स० मे प्रवेश करने के आवेदन-पत्रो की छानबीन करती है। अस्थायी सहायक अगो में—अणुशक्ति आयोग (एटोमिक एनर्जी कमीशन) जिसमे सुरक्षा परिषद् के सभी सदस्य और कनाडा सम्मिलित है, उल्लेखनीय है। इसके कार्य—शान्ति के लिये सभी राष्ट्रो के मध्य आधारभूत वैज्ञानिक सूचनाओ का विनिमय तथा शान्तिपूर्ण प्रयोजनो के निमित्त प्रयोग के लिये, अणुशक्ति नियन्त्रण के सुझाव देना है। नि शस्त्रीकरण का क्रियमन, अस्त्र-शस्त्र तथा सेना पर नियन्त्रण के लिये प्रथीय शस्त्रीकरण आयोग (कन्वेनशनल आर्मामिन्टस् कमीशन) जिसमें सुरक्षा परिषद के सदस्य होते है, परिषद् के एक अन्य अस्थायी सहायक अग के रुप मे कार्य कर रहा है। विशेष सहायक अगो में स० रा० ने भारत व पाकिस्तान, कोरिया, बल्कान तथा फिलस्तीन आदि प्रत्येक समस्या के लिए पृथक आयोग को नियुक्त किया है। इस प्रकार सुरक्षा परिषद् सयुक्त राष्ट्रसघ का सबसे महत्वपूर्ण अग है क्योंकि इसकी सफलता या असफलता से शाति या युद्ध, अन्तर्राष्ट्रीय वैधानिक अथवा निक्षेपित राज्य का निर्णय होता है।

एक आधुनिक लेखक के मत मे सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यो को निषेधाधिकार (वीटो) देने से इसकी अन्तर्राष्ट्रीय झगडो को निबटाने की शक्ति बहुत ही सीमित हो गयी है। गत दस वर्ष की अवधि में सयुक्त राष्ट्रसघ मे प्रवेश प्रार्थी राज्यो जिनमे मगोलिया, उत्तर और दक्षिण कोरिया, जापान और साम्यवादी चीन हैं, का आवेदन पत्र कभी रूस और कभी आग्ल-अमरीकी गुट के निषेधाधिकार प्रयोग से रद्द हो गया। चार वर्ष मे कोरिया मे साम्यवादियो से राष्ट्रसघ की लडाई जारी है। काश्मीर मे भारत-पाकिस्तान विरोध, दक्षिण अफ्रीका मे रग भेद नीति, यूरोप में शीत-युद्ध नीति और अणुशक्ति नियत्रण प्रश्न का हल सुरक्षा परिषद् अभी तक नही कर पाई। परन्तु परिषद की सहायता से हिन्देशिया तथा इजराइल का निर्माण सम्भव हुआ। परिषद् ने

कोरियाई युद्ध का गतिरोध रुकने और युद्ध विराम का प्रयास किया था। इन घटनाओं से यह प्रमाणित होता है कि परिषद् अपने कार्यकलाप में सर्वदा ही असफल नहीं रही बल्कि उसने कई स्थानों में सफल हो कर शान्ति का बीज वपन कर दिया है। परन्तु यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि प्रमुख पाँच बड़े राष्ट्रों के पारस्परिक संघर्ष में और निषेधाधिकार के प्रयोग से सुरक्षा परिषद् एक प्रकार से पंगु हो गयी है। जून १९५३ तक अकेला रूस ५५ बार निषेधाधिकार का प्रयोग में लाकर महासभा तथा परिषद के निर्णयों का खण्डन कर चुका है। इसके विरोध में आंग्ल-अमरीकी गुट ने सितम्बर १९४७ में शान्ति और सुरक्षा के लिए महासभा की स्थायी समिति जिसमें महासभा के सारे सदस्य हैं की स्थापना की। इस समिति को छोटी महासभा कहा जाता है। इसके उद्देश्य हैं कि यदि सुरक्षा परिषद् शान्ति रखने में असफल रहे तो यह महासभा के सामने समझौता तथा सहयोग के लिए अपनी सिफारिश पेश करे अर्थात निषेधाधिकार प्रयोग करने वाले राज्य के विरुद्ध लोकमत का संगठन करे किन्तु यह ध्यान में रहे कि सं० रा० सं० की स्थापना के पूर्व प्रमुख पाँच राष्ट्रों में निषेधाधिकार सम्बन्ध में समझौता हुआ था और इसीलिए उसमें योगदान किया था। जब तक कि संघ के चार्टर में कोई संशोधन नहीं होता तब तक इस परिस्थिति में किसी भी परिवर्तन की आशा रखना व्यर्थ है। सुरक्षा परिषद के कायकलाप में उन्नति होना तब तक असम्भव है जब तक आंग्ल-अमरीकी पूँजीवादी गुट तथा रूस-चीन द्वारा परिचालित साम्यवादी गुट का आपसी समझौता न हो।

राजनैतिक तथा सुरक्षा प्रश्न

ईरान —ईरान की आन्तरिक सुरक्षा तथा शान्ति सम्बन्धी प्रथम प्रश्न सुरक्षा परिषद् के सम्मुख १९४६ में आया। ईरान सरकार ने १९ जनवरी को आरोप लगाया कि सोवियत सशस्त्र सेनाएँ ईरान के विभिन्न भागों पर अधिकार कर रही हैं तथा २९ जनवरी १९४२ को ब्रिटेन, रूस और ईरान के मध्य हुई त्रिदलीय सन्धि तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि का उल्लंघन कर आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप कर रही है। सोवियत प्रतिनिधि ने इन आरोपों से इन्कार किया और कहा कि अजरबैजान प्रान्त में होने वाली घटनाएँ ईरान राज्य की सीमाओं में प्रजातन्त्र राज्य की लोकप्रिय भावनाओं के कारण हो रही हैं और कहा कि उसकी सरकार ईरान सरकार से प्रत्यक्ष वार्ता प्रारम्भ करना चाहती है। इसके अनुसार एक ईरानी प्रतिनिधि मण्डल मास्को गया और सोवियत संघ से प्रार्थना की कि वह आन्तरिक हस्तक्षेप न करे और आश्वासन दे कि सोवियत सेनाएँ शीघ्र हटा ली जायेंगी। जब इस प्रार्थना पर सफल नहीं हुए और [illegible] (१) सोवियत सेनाओं की अनिश्चित काल

के लिए ईरान मे स्थिति (२) अजरवेजान की आन्तरिक जनतन्त्रता की स्वीकृति तथा (३) सोवियत ईरानी मयुक्त पूँजी कम्पनी की स्थापना। ईरान ने इन मागो को अस्वीकार कर दिया और सुरक्षा परिषद को समस्या के हल करने को कहा। ४ अप्रैल १९४६ को जब परिपद ने, मामले पर विचार करने का निर्णय किया तो सोवियत प्रतिनिधि ने जिसने स्थगन की माग की थी, भाग लेने से इन्कार कर दिया और सुरक्षा परिपद् से वाक-आउट कर दिया। परिषद् ने विरोध के वाद भी सोवियत सघ से प्रार्थना की कि ६ मई १९४६ तक अपनी सेनाए वापस वुला ले। दस दिन वाद सोवियत सघ ने ईरान के साथ ६ सप्ताह के अन्दर विना शर्त लाल सेनाओ को वापिस वुलाने का वायदा करते हुए एक सधि पर हस्ताक्षर किये। मई के अन्त तक सभी सोवियत सेनाएँ वापिस बुला ली गई और सम्पूर्ण ईरान, ईरान सरकार की सर्व सम्पन्नता को सौंप दिया गया।

सीरिया तथा लेवनान —फरवरी १९४६ में सीरिया तथा लेवनान के प्रतिनिधियो ने सुरक्षा परिपद् का ध्यान उसके प्रदेश मे ब्रिटिश तथा फ्रासीसी दस्तो की उपस्थिति, जो कि सयुक्त राष्ट्रीय आदेश-पत्र की भावना के लिए असगत है, की ओर दिलाया। परिपद् ने, यह विचार करते हुए कि सीरिया तथा लेबनान के प्रदेशो में विदेशी सेनाओ की उपस्थिति आदेशपत्र में निहित सभी सदस्यो की सार्व-भौमता के सिद्धात के अयोग्य है, एक प्रस्ताव रखा जिसमे परिपद् का विश्वास प्रकट किया गया था कि जितनी शीघ्र हो सके विदेशी सेनाए वापिस हटाई जाय तथा दोनो दलो में उसे समाप्त करने के लिए वार्ता प्रारम्भ हो। सोवियत सघ ने स्पष्ट तौर पर इस आधार पर वीटो ले लिया कि इस प्रस्ताव की शव्दावली पर्याप्त रूप से शक्तिपूर्ण नही है। यद्यपि प्रस्ताव पारित होने में असफल हो गया, फ्रास तथा ब्रिटेन ने परिपद् के वहुमत का पालन करते हुए ३० अप्रैल १९४६ को अपनी सेनाए सीरिया तथा लेवनान से हटा ली। यह मामला यह बताने में महत्वपूर्ण है कि सुरक्षा परिपद् का कार्य, वीटो के प्रयोग मे वाधित होने पर भी उन मामलो मे जहा सम्वन्वित शक्तिया सुरक्षा परिपद् के वहुमत के विचार का आदर करती है, का रचनात्मक फल मिलता है।

स्पेन —८ अप्रैल १९४६ को पोलिश (Polish) प्रतिनिधि ने सुरक्षा परिपद् का ध्यान स्पेन की विपम स्थिति की ओर, जो कि अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा तथा शान्ति के लिए खतरा थी, आकर्पित किया। वताया गया कि—१ फासिस्ट इटली तथा नाजी जर्मनी की सहायता मे फ्राको राज्य शक्तिशाली हो गया है। २ फ्राको सयुक्त राष्ट्र के विरुद्ध हुए युद्ध का महत्वपूर्ण वुरा था। ३ फ्राको ने स्पेन को उन जर्मन वैज्ञानिकों, जो मानव मात्र की शान्ति के लिए भयदायक कार्यों मे सलग्न है, के लिए शरणदाता होने की अनुमति दे दी है। ४ फ्राको ने स्पेन का माल वन्द करने के लिए

फ्रांस तो स्पेन तथा फ्रांस की सीमा पर सैनिक जमाव करके अन्तर्राष्ट्रीय विग्रह की स्थिति उत्पन्न करती है। परिषद् ने पांच सदस्यों की एक समिति इस मामले की जांच करने के लिए नियुक्त की। विस्तृत जांच के पश्चात् १२ दिसम्बर को महासभा ने स्पेन की फ्रांको सरकार को अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं (स्पेशलाइज्ड एजेन्सियों) की सदस्यता से निषेध कर दिया तथा सदस्य राज्यों से सिफारिश की कि वे मैड्रिड से राजदूतों को बुला लेवें। तीन राज्यों जिनमें ब्रिटेन भी सम्मिलित था, ने पश्चात् इसे स्वीकार कर लिया जब कि ४८ राज्यों के राजदूत के स्पेन में [illegible] थे ही नहीं। ४ नवम्बर १९५० को संयुक्त राष्ट्र ने प्रतिबन्ध हटा लिया और स्पेन को विशिष्ट संस्थाओं में भाग लेने की अनुमति दी। जनवरी १९५२ में संयुक्त राष्ट्र अमरीका तथा स्पेन के मध्य दो [illegible] का समझौता हुआ जिसके द्वारा स्पेन ने अमरीका की सहायता के बदले सैन्य अड्डों की स्वीकृति प्रदान कर दी थी।

यूनान—जनवरी १९४६ में सोवियत संघ ने सुरक्षा परिषद् का ध्यान यूनान में ब्रिटिश सेनाओं की उपस्थिति, जो कि स्थिति के अनुसार आवश्यक नहीं थी, तथा देश में प्रजातान्त्रिक तत्वों के विरुद्ध प्रतिक्रियावादी तत्वों की सहायता के परिणाम स्वरूप जो विषम स्थिति उत्पन्न हो गई थी उसकी ओर आकृष्ट किया। बताया गया कि यूनान के उत्तर में पड़ोसी विदेशी राज्यों ने [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] में [illegible] को [illegible] किया [illegible]। [illegible] प्रतिनिधि ने [illegible] कि यूनानी [illegible] और [illegible] ब्रिटिश [illegible] की उपस्थिति [illegible] सदस्य [illegible] के लिए [illegible] की शान्ति [illegible] राजनीतिक स्थिति के लिए [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] परिषद् ने [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। यूनानी प्रतिनिधि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के लिए एक [illegible] [illegible] १९४६ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (१) [illegible], [illegible], [illegible] तथा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (२) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (३) [illegible] [illegible] [illegible]

राष्ट्रपति बने। हमारे प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ८ जून १९५० को हिन्देशिया गए और एक घोषणा की कि दक्षिण-पूर्वी एशिया के एक भाग का स्वतन्त्र तथा एक का परतत्र रहना अब अधिक सम्भव नही है। २८ सितम्बर १९५० को वह सयुक्त राष्ट्र का ६० वाँ सदस्य बना। अब डच न्यूगिनी के भावी पद की समस्या और शेष रहती है। हिन्देशिया ने इस भाग की माग की किन्तु आस्ट्रेलिया ने घोषित किया कि भूगोल के अनुसार न्यूगिनी उस का भाग है। ४ दिसम्बर को हेग में डच-हिन्देशियाई सम्मेलन हुआ। हिन्देशिया ने माग की—(१) नीदरलैंड्स को, पश्चिमी न्यूगिनी को हिन्देशिया का भाग घोपित कर देना चाहिए जिसको पाँच माह के बाद कार्य रूप दे दिया जाय। (२) दोनो देश आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक विकासो के लिए सहयोग से काम करें। डच ने इन मागो को पूर्णतया अस्वीकार कर दिया कि जब तक न्यूगिनी के निवासी अपने भाग्य का निर्णय स्वय नही करते उस पर उसका अधिकार रहेगा। इस प्रकार वहाँ भविष्य में सयुक्त राष्ट्रीय हस्तक्षेप की सम्भावना है।

दक्षिण अफ्रीका—जून १९४६ में भारत ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयो के प्रश्न को उठाया। भारत ने कहा कि भारतीय नैटाल के ब्रिटिश उपनिवेश में यूरोप-वासियो की अपील तथा एक समझौते के आधार पर जिसमें कहा गया था कि दक्षिण अफ्रीका में जाने वाले भारतीयो को उससे पृथक विधि (कानून) से जो यूरोपियनो पर लागू है शासित नही किया जायगा। सर्वप्रथम भारतीय १८६० मे प्रतिज्ञावद्ध भारतीय स्वतत्र श्रमिको के रूप में आए थे। किन्तु १८५५ के बाद से निवासियो के विरुद्ध आदोलन से भेदभाव होने लगा। १९०७ में महात्मा गाधी ने धैर्ययुक्त विरोध प्रारम्भ किया तथा पुन १९१३ में अनेको विभिन्न प्रतिवधो का विरोध किया। इसके परिणामस्वरूप गाधी-स्मट्स समझौता तथा भारतीय सहायता विधेयक का निर्माण हुआ जिससे भारतीयो की कठिनाइयो का उपचार हो गया और उनका देशान्तर को जाना रुक गया। १९२७ में केपटाउन-समझौते के विभिन्न नाम से इसका नवीनकरण हो गया। १९४३ में जब भारतीय विरोधी आन्दोलन जोरो पर पहुँच गया तो नेटाल प्रात ने 'नियमन विधेयक' (Pegging Act) पारित किया जिससे एशियाइयो के भूमि प्राप्त करने सम्बन्धी अधिकार पर वैधानिक प्रतिवन्ध लग गये। १९४६ में दक्षिण अफ्रीका सरकार ने एशियाई भूमि अधिकार तथा भारतीय प्रतिनिधित्व विधेयक पारित किये जिसका परिणाम यह हुआ कि व्यापार तथा निवास के बारे मे भारतीयो का पूर्ण अलगाव हो गया। भारत के कथनानुसार इस नियमन से केपटाउन समझौते और मानव अधिकार तथा स्वतत्रता सम्बन्धी सयुक्त राष्ट्रीय आदेश पत्र (चार्टर) का पूर्ण उल्लघन होता है। भारत ने द० अफ्रीकी सरकार से अपने व्यापारिक सम्बन्ध तोड लिये और अपने उच्चायुक्त को वापिस

चुना लिया। दक्षिण अफ्रीकी प्रतिनिधि ने कहा कि समस्या पूर्णतया राज्य के घरेलू अधिकार की है, तथा पश्चिमी जीवन स्तर के स्थायित्व के लिये श्वेत और अश्वेत का भेदभाव अनिवार्य है। १६ नवम्बर १९४६ को प्रथम महासभा ने दक्षिण अफ्रीका को 'धार्मिक जातीय अत्याचार तथा भेदभाव की तुरन्त समाप्ति' के लिये कहा। १९४९ में मेक्सिको तथा फ्रांस ने एक गोलमेज सम्मेलन का सुझाव दिया जो कि दक्षिणी अफ्रीका के सतत विरोध से कभी न हो पाया। दक्षिण अफ्रीका के प्रधान मंत्री डा० मलान ने जून १९५० में प्रसिद्ध वर्गीय क्षेत्र विधेयक पारित कर दिया। मलान की इस नई नीति ने जो 'पृथक्करण' कहलाई, जून १९५२ में भारतीयों को अंहिसात्मक विरोध के लिये बढ़ावा दिया। ११ नवम्बर १९५१ को सातवीं संयुक्त राष्ट्रीय महासभा के सदस्यों के सम्मुख श्रीमती पंडित ने कहा—"दक्षिण अफ्रीका की नीति उन सबके लिये गम्भीर समस्या है जिनके लिये संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुई है। एक जाति का दूसरे पर प्रभुत्व स्थिर रखने के लिये निर्मम जाति भेद-भाव की नीति के अनुसरण से दक्षिण अफ्रीका में स्थिति दिन प्रति दिन बिगड़ रही है।" अपने मूलभूत अधिकारों तथा स्वतन्त्रता स्थापित करने का साहस करने पर भारतीयों को कारावास, जुर्माना, यहां तक कि कोड़े (इत्यादि की मार भी) सहनी पड़ रही है। मौके पर जाकर स्थिति को जांच के लिये ३ सदस्यों का एक संयुक्त राष्ट्रीय सद्भावनात्मक आयोग स्थापित किया गया है। संयुक्त राष्ट्र सभा के कार्यक्रम में पृथक्करण अभी तक सम्मिलित है। भारतीय प्रतिनिधि ने कहा कि जातीय संघर्ष भयानक विस्फोटक स्थिति निर्माण कर रहा है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को सङ्कट तथा संयुक्त राष्ट्रीय अधिकार पत्र (चार्टर) में निहित आधारभूत मानव अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है। वर्गीय क्षेत्र विधेयक की स्थगन समझौता वार्ता जो कि गत [illegible] वर्षों से विचाराधीन है के लिए 'भयंकर धक्का' है। यह दक्षिण अफ्रीकी सरकार के अपने हित में है कि वह स्थिति को बद से बदतर होने से रोकने के लिये निष्पक्षीय आधार का स्वागत करे।

[illegible] महासभा के प्रस्ताव से दक्षिण अफ्रीका के जातीय भेद-भाव के प्रश्न को हल करने के लिये एक आयोग के तीन सदस्यों की व्यवस्था की थी। डा० [illegible], डा० [illegible] तथा श्री [illegible] को इसके लिए निर्वाचित किया गया किन्तु श्री [illegible] ने अपनी असमर्थता प्रकट कर दी थी। भारत, पाकिस्तान तथा दक्षिण अफ्रीका के मध्य समझौता-वार्ता का प्रबन्ध करने के लिये [illegible] के प्रतिनिधियों का एक आयोग भी नियुक्त की गई थी। [illegible] से दक्षिण अफ्रीका में गोरों और [illegible] विधान लागू [illegible] हो रहे हैं।

अत यूरोपीय निवासी भी पृथक्करण कानून की अवैधता को अनुभव करने लगे है और मलान सरकार के विरुद्ध उन्होने भी मोर्चा खोल दिया था। किन्तु साम्यवाद-निरोधक कानून तथा जन-सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत मलान-सरकार को इतने व्यापक अधिकार प्राप्त थे कि वह सत्याग्रहियो पर मनमाना अत्याचार कर रहे थे। फरवरी १९५३ में श्री मणिलाल गाधी को ५० पौंड का जुर्माना या ५० दिनो का सश्रम कारावास का दण्ड मिला। १९५४ में डा० स्ट्रीडम (Strigdom) दक्षिण अफ्रीकी सघ के चुनावो में बहुमत के साथ विजयी हो गए और पृथक्करण व वर्णभेद की नीति अभी भी जारी है।

सन् १९५३ में सयुक्त राष्ट्रसघ की महासभा ने दक्षिण अफ्रीका सघ की जातीय-पृथक्करण नीति का अध्ययन करने के लिए एक आयोग नियुक्त किया। इसके सदस्य है—चाइल के हरमैन सान्ताक्रुज (अध्यक्ष), हैटी के डेन्टिड वेनग्रेड और फ्रास के लेगिर। जुलाई १९५४ को दक्षिण अफ्रीका सघ की सरकार की प्रार्थना पर सघ में स्थित भारतीय दूतावास को बन्द कर दिया गया। दक्षिण अफ्रीका ने भारत से राजनैतिक सबध विच्छेद करने का प्रस्ताव, निरन्तर भारत द्वारा लगाए गए आर्थिक प्रतिबन्धो को दृष्टि मे रख कर प्रस्तुत किया। अक्टूबर १२, १९५५ को राष्ट्र सघीय आयोग ने जो इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए बनाया गया था, अपना तीसरा वार्षिक प्रतिवेदन (रिपोर्ट) दसवी महासभा के समक्ष प्रस्तुत किया। इस प्रतिवेदन के अनुसार पिछले वर्ष में दक्षिण अफ्रीका की नीति के आम तरीको में कोई परिवर्तन नही हुआ। आयोग का कहना है कि साथ-ही साथ ऐसे सविधानिक उपायो को कानूनी रूप दिया गया, जो कि न तो ... तर्त्तव्यो के अनुरूप है जिन्हे चार्टर (आदेश-पत्र) के अन्तर्गत दक्षिण अफ्रीका ... ने ... किया है, और न ही 'मानवीय अधिकारो की सार्वभौम ... है। प्रतिवेदन में कहा गया है "दक्षिण अफ्रीका ... भार है जिसे यह विश्वास है कि वह पृथक्करण के ... न्वित कर सकती है।" प्रतिवेदन को समा... गहराई से कोई व्यक्ति दक्षिण अफ्रीका क... ... ही दृढतापूर्वक वह यह धारण बना ले... स्थिति बेजोड है। साराश रूप में य... अपना कोई मातृ-देश नही है। अत ... स्थिति से सर्वथा भिन्न है।"

भारत का दावा है "अफ्रीका सघ ... अफ्रीका के दूसरे भागो में भी हो रहा

रहा है। उनका कथन है कि रंगभेद नीति को दक्षिण अफ्रीका में ही नहीं, उसकी सीमाओं के बाहर भी शीघ्रता से विस्तार प्रदान करने की आवश्यकता होगी।" सब सरकार ही केवल एक सरकार है जिसने एशियाई-अफ्रीकी-सम्मेलन में, भाग लेना अस्वीकार कर दिया। यह सम्मेलन बाण्डुग में अप्रैल १९५५ में हुआ था। अभी हाल ही की विज्ञप्ति में भारत-सरकार ने ग्यारह वर्ष से चलती हुई इस समस्या पर अपनी नीति को इस प्रकार स्पष्ट किया है "अफ्रीका महाद्वीप की उन्नति के लिए जातिगत सद्भावना और शान्ति अत्यन्त आवश्यक है। यह समझ में आने वाली बात नहीं है कि दक्षिणी अफ्रीका की काली तथा मूल निवासियों की जनसंख्या को हमेशा के लिए शासित किया और दबाया-सताया जा सकता है। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण भूल होगी यदि समस्त विश्व असहाय होकर ताकता रहे जबकि दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद, जातीय घमंड और गोरों की प्रभुता की काल-प्रवाह के विपरीत धारणा के मदान्ध समर्थकों द्वारा मानवीय मूल्यों पर आघात किया जा रहा हो।" इसमें रंच मात्र भी सन्देह नहीं कि यदि संयुक्त राष्ट्रसंघ रंग-भेद की नीति तथा जातीयवाद को समाप्त नहीं करता तो विश्व को भयानक परस्पर जातीय संघर्ष की ज्वाला में जलना पड़ेगा।

काश्मीर—१ जनवरी १९४८ को भारत ने सुरक्षा परिषद् में अधिकार की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुये यह आरोप लगाया कि पाकिस्तान कबायलियों का एक ऐसे राज्य पर जो ब्रिटिश शासन के समाप्त हो जाने के बाद वैधानिक रूप से भारत में सम्मिलित हो गया है, आक्रमण करने (१५ अक्तूबर १९४७) में सहायता दे रहा है। भारत ने मांग की कि यह आक्रमण बन्द कर देना चाहिए, कबायली वापस बुला लिए जाने चाहिएँ तथा पाकिस्तान को भारत प्रदेश की सीमा का उल्लंघन करने से मना किया जाना चाहिए। जब सुरक्षा परिषद् ने इस मामले की जांच की तो पाकिस्तान ने इन आरोपों से इन्कार कर दिया तथा काश्मीर के भारत में प्रवेश को 'फ्रॉड' बताया और दोनों देशों के बीच अन्य कई गम्भीर प्रश्न खड़े कर दिए। चार माह के लम्बे विवादों के पश्चात् २१ अप्रैल १९४८ को परिषद् ने राज्य से [illegible] कबायलियों तथा पाकिस्तानियों [illegible] शान्ति तथा व्यवस्था [illegible] उसके [illegible] भारत तथा पाकिस्तान के लिए एक संयुक्त राष्ट्रीय कमीशन नियुक्त कर दिया। पिछले जुलाई में कमीशन पहुँचा और काश्मीर पर हुए आक्रमण में पाकिस्तान का हाथ बताया। दिसम्बर सन् १९४८ के अन्त तक कमीशन दोनों देशों को युद्ध विराम की घोषणा के लिए सहमत करने में सफल हो गया। ५ जनवरी १९४९ को दोनों देशों ने स्वीकार किया कि —(१) जम्मू काश्मीर [illegible] पर प्रश्न [illegible]। (२) [illegible] काश्मीर सरकार [illegible]। (३) राज्य प्रदेश से पाकिस्तानी तथा दूसरे [illegible]।

(४) पाकिस्तान द्वारा निर्मित या नियन्त्रित सभी सैनिक सगठन नि शस्त्र तथा समाप्त घोपित कर दिए जायेंगे। (५) विसैनीकरण के पश्चात् सघ के सयुक्त राष्ट्रीय तत्वावधान में निष्पक्ष तथा स्वतत्र मतदान से काश्मीर की जनता अपने भविष्य का स्वय निर्णय करेगी। (६) सयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में युद्ध विराम रेखा खीची जायगी। २६ दिसम्बर को सुरक्षा परिषद के अध्यक्ष जरनल मेकनौटन (कनाडा) ने स्वतन्त्र जनमत सग्रह के लिए स्थिति उत्पन्न करने के हेतु युद्ध विराम रेखा के दोनो ओर न्यूनतम तथा उचित सेना के अतिरिक्त विसैनीकरण के लिए एक प्रगतिशील सुझाव रखा। एडमिरल चेस्टर एन० नमित्ज सयुक्त राष्ट्रसघ के चुनाव आयुक्त नियुक्त हुए। भारत ने इस योजना को केवल इस लिए अस्वीकार कर दिया कि इसमें इस तथ्य की उपेक्षा की गई थी कि पाकिस्तान आक्रमणकारी है। १४ मार्च १९५० को सुरक्षा परिपद ने पाच महीनो के अन्दर राज्य के विसैनीकरण के लिए आदेश दिया तथा आस्ट्रेलिया के प्रसिद्ध कानून विशेषज्ञ श्री ओवन डिक्सन को सयुक्त राष्ट्रीय प्रतिनिधि तथा मध्यस्थ नियुक्त किया। १५ सितम्वर को डिक्सन के काश्मीर विभाजन तथा काश्मीर घाटी में जनमत सग्रह के सुझाव को काश्मीर तथा भारत दोनो ने ही अस्वीकार कर दिया। सुरक्षा परिषद ने १९५१ में भारत तथा पाकिस्तान के लिए डा० फ्रैंक पी ग्राहम को सयुक्त राष्ट्रीय प्रतिनिधि नियुक्त किया। नवम्वर १९५२ को डा० ग्राहम ने सुरक्षा परिपद को अपनी चौथी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें कहा गया था कि पाकिस्तान की ओर कवायली तथा पाकिस्तानी सेना वापिस बुला ली जाय जिससे उसकी सैन्य शक्ति वहाँ ३ हजार से ६ हजार तक रह जाय, और भारत अपनी भारी सेनाओ को हटाकर अपने क्षेत्र में सैनिको की सख्या १२ हजार से १८ हजार तक कर दे जिसमे काश्मीर राज्य की सशस्त्र सेना भी सम्मिलित है। भारत ने इस सुझाव को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि उसमे इस बात की उपेक्षा की गई थी कि पाकिस्तान आक्रामक है और भारत काश्मीर मे आन्तरिक तथा वाह्य सुरक्षा के लिए उत्तरदायी है। पाकिस्तान अपनी ओर १५ हजार सैनिक रखने की माग करता है जवकि भारत की ओर से कम से कम २१ हजार की माग है जिसमें काश्मीर की सेना सम्मिलित नही होगी। इन सारे चक्करो से किस प्रकार निकला जाय यह समझने में सभी असफल है।

सुरक्षा परिपद, ऐसा लगता है मानो काश्मीर समस्या के हल के स्थान पर सुरक्षा पर ध्यान दे रही है। डा० ग्राहम ने अपनी असफलता स्वीकार करली। इधर काश्मीर राष्ट्रीय विधान सभा ने न केवल एक जनतन्त्र विधान बना लिया अपितु युवराज कर्णसिंह को १५ नवम्बर १९५२ को राजप्रमुख 'सदर-ए-रियासत भी नियुक्त कर लिया। प्रसन्नता की वात है कि जवकि सयुक्त राष्ट्र काश्मीर समस्या

पर खत्म कर रहा है। इस देश के इतिहास में साम्राज्यवाद तथा सामन्तवाद की समाप्ति होकर एक नया युग प्रारम्भ हो रहा है।

सुरक्षा परिषद् ने काश्मीर विषयक आंग्ल-अमरीकी प्रस्ताव को स्वीकार कर (२३ दिसम्बर १९५२) पाँच वर्षों से चले आ रहे विवाद को अधर में लटका दिया। भारत ने डा० ग्राहम के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने फिर एक बार स्पष्ट कर दिया कि भारत किसी प्रकार की कोई प्रतिबन्धित सीमा स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि यह आधारभूत सिद्धान्त के विपरीत है। १९५३ की ४ फरवरी को डा० ग्राहम ने पाक तथा भारतीय प्रतिनिधि मंडल नेताओं से जनेवा में पुनः अलग-अलग वार्ता की। अनुमान है कि इस समय पाकिस्तान की ब्रिटेन और अमरीका के साथ गुप्त बातचीत चल रही है। वह किसी भी शर्त पर काश्मीर के विषय में ब्रिटेन और अमरीका को अपने पक्ष में करना चाहता है। इधर काश्मीर पर भारतीय संविधान को लागू करने के उद्देश्य से जम्मू में प्रजा परिषद् ने आन्दोलन शुरू कर दिया है। फलस्वरूप परिषद् के अनेक कार्य-कर्ताओं को—जिनमें भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी भी थे—गिरफ्तार कर लिया गया। २३ जून १९५३ को प्रातःकाल श्रीनगर में डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी का हृदय-गति रुकने से स्वर्गवास हो गया।

दिल्ली वार्ता में भारत तथा पाकिस्तान के प्रधान मंत्री आपसी समझौते से इस पर सहमत हुए कि काश्मीर में जनमत संग्रह के लिए निरीक्षक की नियुक्ति अप्रैल १९५४ के अन्त तक हो जाय। जनमत-संग्रह से सम्बन्धित प्रारंभिक विषयों (मुद्दों) पर शीघ्र निर्णय करने के लिए उन्होंने इन समस्याओं पर सैनिक दल के साथ ही विचार करने के लिए अपनी सहमति प्रकट की। ८ अगस्त, १९५३ को शेख अब्दुल्ला को जम्मू-काश्मीर-राज्य के प्रधान मंत्री पद से हटा दिया गया और बाद में फिर गुलमर्ग में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। [illegible] [illegible] किया गया है। [illegible] [illegible] किया गया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया था

"भारत और पाकिस्तान दोनो से मित्रता के सम्बन्ध रखते हुए, पर उन से अपने को अलग रखकर, हमे अपने आपको 'पूर्वी स्विट्जरलैंड' बनाने के विकल्प पर विचार करना है। यह विचार आकर्षक प्रतीत होता होगा। पर्यटन प्रधान देश होने के नाते हमारे लिए इससे प्रत्यक्ष विशेष लाभ हो सकेंगे। २१ अगस्त १९५३ को ईद की प्रार्थना के अवसर पर मै अपनी योजना खोलकर बताऊगा।"

२५ फरवरी १९५४ को सयुक्त राज्य अमेरिका ने पाकिस्तान को फौजी सहायता मजूर की। इसने परिस्थितियो मे मूलभूत परिवर्तन ला दिया और जनमत-सग्रह-निरीक्षक की नियुक्ति का वचन एक रद्दी कागज का टुकडा मात्र रह गया। अगस्त ५, १९५५ को प्रधानमत्री नेहरू ने घोषणा की कि गत सात वर्षो में काश्मीर में बहुत सी घटनाए घटी हैं, जो विचारणीय हैं, यद्यपि वह अभी अपने वचन पर दृढ है। २९ जुलाई, १९५६ को कांग्रेस-ससदीय पार्टी म बख्शी गुलाम मोहम्मद ने कहा "काश्मीर का भारत में विलय वैधानिक था और इसलिए तब से वह भारत का अभिभाज्य अग हो गया है। दुनिया की कोई शक्ति सविधान-सभा द्वारा किए इस निर्णय को नही बदल सकती। जनमत सग्रह को कोई स्थान नही, बल्कि इस सम्बन्ध मे चर्चा करना तक राज्य की जनता के सम्मान पर आघात होगा, जिसकी सर्व-प्रभुत्व-सपन्न सविधान सभा ने यह घोषणा कर दी थी कि काश्मीर भारत का भाग है और यह इसकी एक इकाई होना चाहिए।" पाकिस्तान इस प्रश्न को सुरक्षा-परिषद मे लाने की सोच रहा है जिसके लिए भारत सरकार पूरी तरह से तैयार है।

कोरफू चैनल प्रश्न—१० जनवरी १९४७ को ब्रिटिश प्रतिनिधि ने सुरक्षा परिषद के सम्मुख अल्बेनिया तथा अपनी सरकार के बीच के झगडे को उपस्थित किया। यह मामला २२ अक्तूबर १९४६ को अल्बेनिया के निकट कोरफू चैनल में ब्रिटिश विध्वसक 'वोलेज' तथा 'सोमरेज' की सुरगो से हुई हानि से सम्बन्धित है। विस्फोट के परिणामस्वरूप ४४ नाविक मारे गये तथा ४२ घायल हो गये और दोनो विध्वसको को भी क्षति पहुची जिसमें एक तो पूर्णतया नष्ट हो गया। अल्बेनिया के प्रतिनिधि ने कहा कि उसकी सरकार ने सुरगे नही बिछाई तथा वह अपने प्रादेशिक समुद्र क्षेत्र में नौपरिवाहन की सुरक्षा के लिए उत्तरदायी नही। 'बिना सूचना के शीतकाल मे सुरग बिछाना अनुचित तथा मानवता के विरुद्ध अपराध है' इस ब्रिटिश प्रस्ताव को सोवियत सघ ने वीटो (अस्वीकार) कर दिया। अत मे ९ अप्रैल १९४७ को परिषद ने इस मामले को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के सुपुर्द कर दिया। अल्बेनिया ने सदस्य न होते हुए भी सिफारिश को स्वीकार कर लिया।

मिस्र—८ जुलाई १९४८ को मिस्री प्रतिनिधि ने सुरक्षा परिषद में शिकायत की कि कहीं आंग्ल-मिस्री विवाद अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा के लिए खतरा न बन जाय। यह समस्या दुहरी थी — मिस्र में ब्रिटिश सेनाओं की उपस्थिति तथा आंग्ल-मिस्री सूडान के प्रति ब्रिटेन की नीति। कहा गया था कि ब्रिटिश सेनाएं १९३६ की आंग्ल-मिस्री सन्धि की शर्तों के अनुसार रखी गई थीं। इस प्रश्न पर सुरक्षा परिषद द्वारा दो माह से अधिक विचार किया गया किन्तु ब्रिटेन को, झगड़े वाले दलों में से एक होने के कारण, मत देने का अधिकार न था। यद्यपि परिषद सूडान और मिस्र को ब्रिटिश नियन्त्रण से मुक्त कर देने के लिये पग उठाना चाहती थी किन्तु फिर भी वह कोई निश्चित प्रस्ताव स्वीकार न कर सकी।

फरवरी (१९५३) में ब्रिटेन और मिस्र ने एक समझौते पर हस्ताक्षर कर सूडान को स्वशासन देना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार सूडान पर दोनों देशों का गत ५३ वर्षों से संयुक्त शासन का अवसान हो गया है।

हैदराबाद—१५ अगस्त १९४७ को जब भारत में अंग्रेजी राज्य समाप्त हुआ तो भारतीय रियासतों में सबसे बड़ी रियासत हैदराबाद न तो पाकिस्तान में सम्मिलित हुई और न भारत में। निजाम हैदराबाद ने केवल एक वर्ष के लिए यथापूर्व अस्थाई समझौता किया। २१ अगस्त १९४८ को हैदराबाद ने सुरक्षा परिषद को सूचित किया कि हैदराबाद तथा भारत में गम्भीर विवाद उत्पन्न हो गया है। कहा गया कि इस छोटी रियासत पर आक्रमण करने की धमकियां, सीमोल्लंघन तथा आर्थिक नाकेबन्दी की गई है जिससे कि वह अपनी स्वतन्त्रता से वंचित रह जाय। १३ सितम्बर को भारतीय सेना ने राज्य की ओर कूच किया और घोषणा की 'ऐसे ही [illegible] समाप्त हो जायगा हैदराबाद की जनता को अपने भविष्य तथा भारत के सम्बन्ध के बारे में निर्णय करने का पूरा अवसर दिया जायगा।' भारत ने कहा कि हैदराबाद सुरक्षा परिषद के समक्ष उठाने योग्य नहीं क्योंकि वह स्वतन्त्र नहीं है। इतिहास में वह कभी भी स्वतन्त्र [illegible] नहीं रहा और न ही अगस्त १९४७ से पूर्व, न ब्रिटेन द्वारा [illegible] भारत में और न ही [illegible] द्वारा [illegible] किसी [illegible] विषय में [illegible] इसलिए [illegible] परिषद के [illegible] मामला [illegible] करने का अधिकार [illegible]। [illegible] हैदराबाद सरकार द्वारा [illegible], [illegible], [illegible] हैदराबाद में [illegible] पुलिस कार्यवाही [illegible] गई। सुरक्षा परिषद ने [illegible] द्वारा [illegible] करने पर भी कोई [illegible] का प्रयास नहीं किया।

मंनी—२६ सितम्बर १६४८ को महामन्त्री श्री ली को अमरीका, ब्रिटेन तथा फ्रास द्वारा भेजी गई परिचयात्मक टिप्पणिया प्राप्त हुई जिसमें उनका ध्यान र्बलिन तथा जर्मनी के पश्चिमी अधिकृत क्षेत्रो के बीच सोवियत सघ द्वारा यातायात तथा सचार पर लगाए गए प्रतिबन्ध से उत्पन्न गम्भीर स्थिति की ओर आकृष्ट किया गया था। टिप्पणी में कहा गया था कि यह आदेशपत्र (चार्टर) के अनुच्छेद का उल्लघन है। सोवियत प्रतिनिधि ने कहा कि यह प्रश्न परिषद के अधिकार के बाहर का है क्योकि आदेशपत्र (चार्टर) के अनुच्छेद १०७ के द्वारा 'इस प्रश्न का हल सीधा सम्बन्धित देशो द्वारा होता है' और विदेश मन्त्रियो की परिषद बुलाने का सुझाव दिया। ३ अक्तूबर १६४८ को सुरक्षा परिषद द्वारा र्बलिन करेंसी तथा व्यापार पर तटस्थ देशो द्वारा मनोनीत वित्तीय विशेषज्ञो को एक टैक्निकल समिति नियुक्त कर दी गई। १५ मार्च १६४६ को टैक्निकल समिति सोवियत सघ के साथ किसी समझौते पर पहुचने मे असफल हो गई। इसी बीच सुरक्षा परिषद तथा महासभा का मध्यस्थता प्रयास १२ मार्च १६४६ को रूसी प्रतिबन्ध उठवाने में सफल हो गया। २० दिसम्बर १६५१ को महासभा ने सम्पूर्ण जर्मनी में उचित ढग से स्वतन्त्र तथा गुप्त चुनाव कराने की सम्भावना की जाच के लिए आयोग नियुक्त किया। इस प्रस्ताव द्वारा पूर्वी तथा पश्चिमी जर्मनी के अधिकारियो को कहा गया कि इस आयोग को सम्पूर्ण क्षेत्र मे स्वतन्त्रतापूर्वक यात्रा करने की अनुमति देकर ऐसे व्यक्तियो, स्थानो तथा उपयोगी दस्तावेजो तक पहुचने दिया जाय जो इसके कार्य सम्पादन के लिए आवश्यक हैं। १ सितम्बर १६५२ को सोवियत सघ के असहयोग के कारण आयोग ने अपनी असफलता की सूचना दी।

✓ **फिलस्तीन**—महायुद्ध के वाद फिलस्तीन समस्या वडी गम्भीर समस्या थी। इससे अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा और शाति का भयकर प्रश्न उठ खडा हुआ। इसमें न केवल विश्व के तीन एकेश्वरवादी धर्म यहूदी, ईसाई और इस्लाम मत ही फसे हुए थे वरन् इसमे 'वडे पांच' मे से तीन मदस्य, अमेरिका ब्रिटेन और रूस तथा अरव लीग के समस्त सदस्यो का लाभ भी निहित था। सन् १६४७ से यह समस्या सयुक्त राष्ट्र के सारे कार्यक्रम की धुरी वनी हुई है। महासभा, सुरक्षा परिपद, प्रन्यासिक परिपद और समाज तथा आर्थिक परिपद अपने अनेको अधिवेशनो में इस विपय पर विचार कर चुकी है। शताब्दियो तक फिलस्तीन तुर्की साम्राज्य का एक भाग रहा। यहूदी इसे अपना ऐतिहासिक गृह मानते है, ईसाई इसे ईसामसीह की जन्मभूमि जान कर पूजते है और मुसलमानो के लिए यह तीर्थ-यात्रा का केन्द्र है। प्रथम महायुद्ध में ब्रिटेन ने इस पर विजय प्राप्त की और यहूदियो के लिए एक राष्ट्रीय गृह का वायदा किया। १६१६ के पेरिस शाति सम्मेलन ने फिलस्तीन का अन्तर्राष्ट्रीयकरण

लिया और इसे 'लीग आफ नेशन्स' के 'ए' श्रेणी के शासनादेश के अन्तर्गत ब्रिटेन को सौंप दिया। प्रत्येक देश द्वारा तिरस्कृत और पीड़ित यहूदियों ने ज्योनिस्ट आन्दोलन (Zionist Movement) आरम्भ कर दिया और मांग की कि फिलस्तीन केवल यहूदियों के अधिकार में होना चाहिये। इससे यहूदियों का आवागमन फिलस्तीन में भारी संख्या में होने लगा। ब्रिटेन ने कुछ विशिष्ट सुविधाएं यहूदियों को दीं और ज्योनिस्ट संस्था को अधिकार दिया कि यहूदी बस्ती के निबटारे के सभापतित्व को मान ले।

इसका परिणाम यह हुआ कि यहूदियों की जन संख्या सन् १९२२ में ८३,७९० से १९४६ में ६०,८२७५ तक बढ़ गई। १९३३ में जर्मनी में पीड़ित होने के कारण यहूदी आवासियों की संख्या बढ़ गई और अरबों ने यहूदियों और अंग्रेजों के विरुद्ध आततायी युद्ध छेड़ दिया। सन् १९३९ में ब्रिटेन ने एक नवीन नीति की घोषणा की जिसके अनुसार आगामी पांच वर्ष में केवल ७५,००० आवासी अरब की स्वीकृति से फिलस्तीन आ सकते थे। १९४६ के प्रारम्भ में महासभा के प्रथम अधिवेशन में ही ब्रिटेन ने कहा था कि फिलस्तीन को स्वतन्त्र राज्य बनाने के लिये पग उठाये जायें और आंग्ल-अमरीकी जांच समिति इस कार्य के लिये नियुक्त हुई। इस मास के पश्चात् समिति ने सूचना दी कि फिलस्तीन को एक आदेशपत्र के अन्तर्गत १००,००० यहूदियों को देश में प्रवेश पाने की आज्ञा दे दी जाय जब तक कि कोई अस्थायी प्रबन्ध अर्थात् संरक्षण सम्भव होता हो। अरब लीग ने इसका घोर विरोध किया क्योंकि समिति में कोई अरब प्रतिनिधि न था। इसी बीच में यहूदियों ने अपने स्वधर्मी शरणार्थियों को फिलस्तीन में भरना जारी रखा और अरबों ने यहूदियों के विरुद्ध आन्तरिक युद्ध प्रारम्भ कर दिया। स्थिति भयानक हो गई और आन्तरिक युद्ध प्रारम्भ हो गया।

२ अप्रैल १९४७ में ब्रिटेन ने महासभा का ध्यान फिलस्तीन पर के 'शासना-देश तथा उसकी भावी व्यवस्था की योजना' के प्रश्न की ओर आकृष्ट किया। इस पर विचार करने के पश्चात् ११ सदस्यों (आस्ट्रेलिया, कनाडा, चेकोस्लोवाकिया, ग्वाटेमाला, भारत, ईरान, नीदरलैण्ड्स, पीरू, स्वीडन, यूरूगवे तथा यूगोस्लाविया) की फिलस्तीन पर एक विशेष समिति (UNSCOP) बनाई [illegible] [illegible] के साथ [illegible] [illegible] के लिये नियुक्त की। [illegible] विशेष समिति ने एक मत होकर सिफारिश की कि जितना शीघ्र हो सके शासनादेश [illegible] कर दिया जाय। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—अरब राज्य, यहूदी राज्य, [illegible] [illegible] [illegible] कर दिया जाय। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के

पश्चिमी गलिली, बीरशिब, गाजा, जाफा, तथा समुद्र तट के किनारे की पट्टी और यहूदी राज्य में पूर्वी गेलिली, हैफा तेल एवीव, एसड्लेन तथा नेजीब सम्मिलित होगे। जेरूसलम नगर बैथलम सहित सयुक्तराष्ट्र द्वारा नियुक्त अन्तर्राष्ट्रीय प्रन्यासिक के अधीन 'पृथक् इकाई' रहेगा। दोनो राज्य १ अक्तूबर १९४८ से पूर्व स्वतत्र नही होगे तथा आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् द्वारा निर्वाचित तीन विदेशी राज्यो के तीन प्रतिनिधियो को मिलाकर सम्पूर्ण फिलस्तीन की रेलवे, बन्दरगाह, करेंसी तथा चुगी आदि का प्रबन्ध, आर्थिक सगठन के हेतु, एक सयुक्त आर्थिक मडल द्वारा किया जायगा। अरबो ने इस योजना का विरोध करने का निर्णय किया तथा उपद्रव प्रारम्भ हो गए। एक फिलस्तीन आयोग ने, जिसकी नियुक्ति १ अगस्त १९४८ तक विभाजन कर देने के लिये हुई थी, २ अप्रैल को सूचित किया कि यहूदियो तथा अरबो के सशस्त्र उपद्रवो, ब्रिटेन से सहयोग का अभाव तथा आवश्यक सशस्त्र सहायता के अभाव से महासभा के प्रस्ताव को कार्यान्वित करना असम्भव रहा है। १४ मई को महासभा ने मामला सुरक्षा परिषद के सुपुर्द कर दिया तथा अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रौस के उपाध्यक्ष काउन्ट फौक वर्नाडौट (स्वीडन) को फिलस्तीन में युद्ध विराम के प्रबन्ध के लिए सयुक्त राष्ट्रीय मध्यस्थ नियुक्त किया। उसी दिन ब्रिटेन ने अपने आदेश ७८ दिन पूर्व ही हटा लिए तथा यहूदियो ने इजरायल को स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया, किंतु ईराक, लेबनान, सीरिया तथा ट्रासजोर्डन ने अरबो की रक्षा के लिए फिलस्तीन पर आक्रमण कर दिया और इजरायल को सोवियत सघ की मान्यता प्राप्त हो गई। ११ जून को मध्यस्थ बर्नाडौट अरब तथा यहूदियो मे चार सप्ताह के लिए युद्ध विराम समझौता कराने मे सफल हो गए। इस समय के बाद पुन लडाई आरम्भ हो गई। १८ जुलाई को सुरक्षा परिषद ने एकदम युद्ध विराम का आदेश दिया जिसे अरब और यहूदियो दोनो ने मान लिया। सितम्बर में यहूदियो द्वारा नेजीव पर, जोकि अरबो द्वारा मांगा गया था, अधिकार कर लेने के कारण पुन गडबडी शुरू हो गई। १७ सितम्बर को काउन्ट बर्नाडौट जबकि यहूदी सैन्य सुरक्षा में यरुसलम मे से होते हुए जा रहे थे इजरायली वेषभूषा धारण किए व्यक्तियो द्वारा गोली से मार दिय गए। सुरक्षा परिषद ने डा० राल्फ ज बुच को कार्यवाहक मध्यस्थ नियुक्त किया। २९ दिसम्बर को तीसरी बार युद्ध विराम स्थापित हुआ और २४ फरवरी १९४९ को दोनो राज्यो ने महासभा द्वारा नियुक्त समझौता आयोग के माध्यम से एक सधि पर हस्ताक्षर किए। मई मे इजरायल को सयुक्त राष्ट्र की सदस्यता प्राप्त हो गई। अरब क्षेत्र ट्रासजोर्डन के अधिकार मे आ गया और दक्षिण-पश्चिम किनारे की पट्टी मिस्र के आधीन आ गई। जेरुसलम, इजरायल तथा जोर्डन सेनाओ के आधीन रहा। १० दिसम्बर को महासभा

ने ८० लाख डालर का संयुक्त राष्ट्रीय बजट जेरूसलम, जोकि न्यासिता परिषद के अधीन रखा गया था, के अन्तर्राष्ट्रीयकरण के लिए स्वीकार किया। २ जून १९५० को इजरायल तथा जोर्डन दोनों ने न्यासिता परिषद द्वारा बनाए गए विधान को अस्वीकार कर दिया तथा पवित्र नगर जेरूसलम से अपनी सेनाएं हटाने से इन्कार कर दिया। काउन्ट बर्नाडोट की हत्या की क्षतिपूर्ति के लिये इजरायल ने ५४,६२८ डालर दिये। वर्ष की समाप्ति तक इजरायल को भारत की स्वीकृति प्राप्त हो गई। अस्थायी शांति अभी तक चल रही है तथा इजरायल तथा उसके चार अरब पड़ोसियों के बीच स्थाई समझौता होना अभी शेष है। महासभा ने निकटपूर्व में फिलस्तीन के शरणार्थियों की संयुक्त राष्ट्रीय सहायता तथा कार्य संस्था (UNRWAPR) की स्थापना की है जोकि संरक्षण, सहायक तथा क्षतिपूर्ति का कार्य कर रही है। डाक्टरी तथा शैक्षणिक सहायता के लिए यूनिसेफ (UNICEF) द्वारा ३० लाख डालर, विश्व स्वास्थ्य संघ (WHO) द्वारा ६२,८५७ डालर तथा यूनेस्को (UNESCO) द्वारा ५० हजार डालर चंदे के रूप में दिये गये हैं।

पिछले आठ वर्षों से संयुक्त राष्ट्रसंघ फिलस्तीन के युद्ध से पीड़ित अरब शरणार्थियों की समस्या सुलझाने के लिए प्रयत्नशील है। सन् १९५९ में इन शरणार्थियों की संख्या ८,८७,००० थी। इनमें से लगभग आधे १५ वर्ष से कम आयु के हैं। यह विवरण फिलस्तीन के शरणार्थियों के लिये निमित्त संयुक्त राष्ट्रसंघ की सहायता-कार्य संस्था के रजिस्टरों के अनुसार है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ-सहायता-कार्य-संस्था के संचालक की हैसियत से हेनरी लाबुइस्सी ने कहा "शायद यह कभी अच्छी तरह नहीं समझा गया था कि अरबों के देश में एक फिलस्तीनी-अरब शरणार्थी भी विदेशी है।" जब तक अरब राष्ट्रों और इजरायल में शांतिपूर्ण संधि नहीं हो जाती ये शरणार्थी इधर-उधर मारे-मारे फिरते रहेंगे। अरब राष्ट्रों ने पुनर्वास का विरोध किया, क्योंकि इससे इजरायल को फिलस्तीन में पूर्व-निवासियों को निष्कासित करने तथा उनकी सम्पत्ति हड़प लेने के अधिकार को मान्यता प्राप्त हो जायगी। इजरायल इस बात पर अड़ा हुआ है कि वह इन सब अरब-शरणार्थियों को अपने राज्य में तो क्या, पड़ोसी राज्यों में भी नहीं बसने देगा। १९५६ में संयुक्त राष्ट्रसंघ-सहायता-कार्य-संस्था ने इन शरणार्थियों के पुनर्वास और राहत व्यवस्था के निमित्त ६ करोड़ रुपया व्यय किया। लेकिन यरमौक तथा सिनाई घाटी योजनाओं के पूर्ण होने तक इस समस्या का सन्तोषजनक हल नहीं मिल सकता।

यद्यपि युद्ध समाप्त हो गया है फिर भी 'महासभा' में होने वाली ११ वीं बैठक के कार्यक्रम में फिलस्तीन की समस्या पर विचार करना निश्चित है।

कोरियाई समस्या—१७ सितम्बर १९४७ को अमरीका ने महासभाके दूसरे अधिवेशन में कोरिया की स्वतन्त्रता का प्रश्न प्रस्तुत किया। विषय के तथ्य निम्न है—द्वितीय महायुद्ध में मित्र-राष्ट्रो ने अपनी काहिरा (दिसम्बर १९४३) तथा पोट्सडम (जुलाई १९४५) की घोषणाओ में स्वतत्र कोरिया की घोषणा की थी। २ सितम्बर १९४५ को जब जापान ने आत्मसमर्पण किया तो सोवियत यूनियन ने कोरिया की ३८ वी समानान्तर रेखा के उत्तर में अधिकार कर लिया तथा अमरीका ने इस रेखा से दक्षिण के भाग पर अधिकार किया। मास्को समझौता के अनुसार अमरीका, रूस तथा ब्रिटेन मे, कोरिया को सयुक्त और जनतत्र राज्य प्राप्त कराने तथा अस्थाई कोरियाई सरकार निर्माण करने के लिये एक रूसी-अमरीकी सयुक्त आयोग की स्थापना का समझौता हुआ। आयोग ने दो वर्ष (१९४६-४७) में २४ बैठकें की किंतु किसी भी समझौते पर पहुँचने मे असफल रहा। सोवियत सघ की यह माग, कि आयोग को साम्यवादी दल के अतिरिक्त किसी कोरियाई जनतन्त्र दल से वार्ता नही करनी चाहिए तथा स्थायी सभा के लिये उत्तर तथा दक्षिण से समान प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए (यद्यपि ३ करोड की सारी जन सख्या मे से २ करोड दक्षिण कोरिया में रहते है) अमरीका द्वारा एकदम अस्वीकार कर दी गई। १४ नवम्बर १९४७ को सभा ने निश्चय किया कि एक राष्ट्रीय सभा तथा राष्ट्रीय सरकार स्थापना के लिये कोरिया में चुनाव कराया जाय जो कि अधिकार रखने वाली सेनाओ की वापसी का प्रवध करे। कोरिया के लिए चुनाव शीघ्र कराने के लिये ९ देशो का एक अस्थायी आयोग बनाया गया (जिसमें भारत सम्मिलित है लेकिन अमरीका और सोवियत सघ सम्मिलित नही)। आयोग उत्तरी कोरिया में प्रवेश पाने में असमर्थ रहा तथा महासभा द्वारा नियुक्त आन्तरिक समिति से विचार विमर्श करने के वाद उसने दक्षिण कोरिया मे १० मई १४९८ को चुनाव करा दिए जिसके फलस्वरूप २५ अगस्त १९४८ को कोरिया गणतत्र सरकार की स्थापना हो गई। १७ दिन पश्चात अमरीका ने गणतत्र का अधिकार दक्षिण कोरिया सरकार को जिसका नेतृत्व सिगमैनरी कर रहे थे सौंप दिया। इसी बीच (२५ अगस्त १९४८) में जेनरल किम-इल सग की अध्यक्षता मे उत्तर कोरिया में आम चुनावो के वाद कोरिया गणतत्र कायम हो गया। महासभा के तीसरे अधिवेशन में (दिसम्बर १९४८) दक्षिण कोरिया सरकार को वैध मान लिया गया और अमेरिका से सिफारिश की गई कि वह अपनी सेनाए हटा ले। इसने एक सयुक्त राष्ट्रीय कोरियाई आयोग की नियुक्ति की। सोवियत सघ ने कहा कि महासभा कोरिया के सम्बन्ध में कोई पग नही उठा सकती क्योकि यह प्रश्न मास्को समझौते के आधीन है और उस पर विचार सम्बन्धित मित्र-राष्ट्रो द्वारा किया जाना चाहिए। २५ दिसम्बर १९४८ को रूस ने उत्तरी कोरिया मे अपनी सेनाओ की वापसी की घोषणा की। दक्षिण में अमरीका सैनिको को २९ जून

१९४८ का सार्विक चुनाव किया गया था जिसकी पुष्टि संयुक्त राष्ट्रीय कोरियाई आयोग द्वारा की गई थी। १९४९ में (२१ अक्तूबर) महासभा ने अपने पांचवें अधिवेशन में कोरिया एकीकरण के लिए कमीशन (आयोग) जारी रखने का निर्णय किया और उससे कोरिया में सैन्य संघर्ष से उत्पन्न स्थिति की सूचना देने को कहा।

२५ जून १९५० को उत्तरी कोरिया ने दक्षिण कोरियाई गणतन्त्र पर आक्रमण कर दिया। सात देशों के संयुक्त राष्ट्रीय कोरिया आयोग (जिसकी अध्यक्षता भारत के श्री बी० एन० राव कर रहे थे, और जिसमें अमरीका तथा रूस सम्मिलित नहीं थे) रिपोर्ट दी कि आक्रमण बिना सूचना दिये पूर्व आयोजित तथा पूरी तैयारी के साथ किया गया था। सुरक्षा परिषद की तुरन्त बैठक हुई और निर्णय किया गया कि 'शांति भंग' हुई है। उपद्रवों की शीघ्र समाप्ति तथा ३८ वीं समानान्तर रेखा से उत्तरी कोरियाइयों की वापसी का आदेश दिया। इसमें संयुक्त राष्ट्रीय सदस्यों से प्रस्ताव के कार्यान्वित होने में सहायता तथा उत्तरी कोरियाई अधिकारियों को सहायता देने से बचने को भी कहा। सोवियत संघ, जिसने साम्यवादी चीन को संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बनाने के प्रश्न के बारे में इसका बहिष्कार कर रखा था, इस बैठक में अनुपस्थित था। दो दिन बाद जब परिषद की बैठक दुबारा हुई तो अमरीका के प्रतिनिधि ने बताया कि राष्ट्रपति ट्रूमैन ने फारमोसा पर आक्रमण होने से बचाने के लिए, दक्षिण कोरियाई दलों को सहायता के रूप में अमरीका की सेनाएं तथा नौ सेनाएं भेजने का आदेश दे दिया है। सुरक्षा परिषद ने फिर सिफारिश की कि संयुक्त राष्ट्रीय सदस्यों को कोरिया गणतन्त्र की सहायता तथा सशस्त्र आक्रमण का उत्तर देने तथा अन्तर्राष्ट्रीय शांति की स्थापना के लिए सहायता देनी चाहिए। ४६ सदस्यों ने सेनाएं, ५ ने चिकित्सक दल तथा ५० ने आर्थिक सहायता प्रदान की। श्री राव ने कहा—भारत किसी अन्तर्राष्ट्रीय विवाद को आक्रमण से सुलझाने के विरुद्ध है इसलिए, हमने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है और कोरिया में ऐम्बुलेंस यूनिट भेजी है। ७ जुलाई को परिषद ने संयुक्त कमान स्थापित की तथा जनरल मैकार्थर को कोरिया में संयुक्त राष्ट्रीय सेनाओं का सेनापति बना दिया। सोवियत संघ ने इस प्रस्ताव को गैरकानूनी कहा और अमरीकी सैन्य हस्तक्षेप को बिना शर्त समाप्त करने की मांग की।

७ अक्तूबर को संयुक्त राष्ट्र ने कोरियाई एकीकरण तथा पुनर्वास के लिए नया आयोग नियुक्त किया। एक मास पश्चात् मैकार्थर ने रिपोर्ट दी कि उत्तरी कोरिया में साम्यवादी सेना में चीनी साम्यवादी सेनाएं लड़ाई कर रही हैं। सुरक्षा परिषद ने चीनी गणतन्त्र के प्रतिनिधि को विवाद में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया। [illegible] नहीं क्योंकि [illegible] जुलाई से कोरिया से सभी संयुक्त राष्ट्रीय सेनाओं को वापिस हटाने का प्रस्ताव

छोडने तथा सयुक्त राष्ट्र में स्थान की माग की। १४ दिसम्बर को महासभा ने युद्ध विराम के लिए एल० बी० पियरसन (कनाडा), श्री बी० एन० राव (भारत) तथा श्री यू० ऐंतजम (ईरान) का एक ग्रुप कोरिया मे एक सतोपप्रद सधि की स्थापना के लिए नियुक्त किया किन्तु शातिपूर्ण समझौते के सभी प्रयास असफल रहे। राजनीतिक मामलो पर बोलते हुए आज्ञा का उल्लघन करने पर मेकार्थर को १३ अप्रैल को वापिस बुला लिया गया और उनके स्थान पर जेनरल रिजवे की नियुक्ति हुई। दो माह बाद (जून १९५१) उत्तरी कोरियाई युद्ध विराम के लिए विचार विमर्श करने को तैयार हो गए और १८ माह तक वार्ता चलती रही। यद्यपि विराम रेखा के बारे में समझौता हो गया परन्तु केवल एक बडी समस्या युद्ध बन्दियो की वापसी हल नही की जा सकी। १५ नवम्बर १९५२ को रूस ने युद्ध बन्दियो के सम्बन्ध मे भारतीय प्रस्ताव को पूर्णतया अस्वीकार कर दिया और अब सयुक्त राष्ट्रीय कूटनीतिज्ञ कोरिया के प्रश्न पर एक शातिपूर्ण समझौते में भारी निराशावादी बने हुए है। १९५२ के प्रथम भाग में सयुक्त राष्ट्रसघ मे कोरिया के प्रश्न पर खीच-तान जारी रही। समस्या को सुलझाने के लिए भारत अपने प्रस्ताव में दो बार सशोधन कर चुका है, किन्तु इस पर भी साम्यवादी देशो ने इसको ठुकरा दिया। बडे दिन पर मार्शल स्टालिन ने कहा कि रूस कोरिया मे युद्ध की समाप्ति चाहता है और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए राजनीतिक कार्रवाई में सहयोग देने को तैयार है। उन्होने पुन यह आश्वासन दिया कि अमरीका तथा रूस में युद्ध अवश्यम्भावी नही। परन्तु कोरियाई शान्ति वर्तालाप में कोई प्रगति नही हुई। गत ५ मार्च (१९५३) मे मार्शल स्टालिन की मृत्यु के बाद प्रधान मन्त्री श्री मालेनकोव ने फिर से कोरिया-युद्ध समाप्त करने की इच्छा प्रकट की। चीनी जन सरकार के प्रधान मन्त्री श्री चाउ-एन-लाई ने प्रस्ताव रखा कि पहले कोरिया मे अविलम्ब युद्ध बन्द हो और फिर ११ राष्ट्रो का एक सम्मेलन बुलाया जाय जो कि युद्धबन्दियो के वापिस अपने घर जाने के प्रश्न का निर्णय दे। किन्तु उनकी इस घोषणा का पश्चिमी देशो ने कोई स्वागत नही किया और उसे यह कह कर टाल दिया कि यह तो रूसी प्रस्ताव की नकल है। अप्रैल में कोरिया में घायल और रोगी युद्धबन्दियो की अदला-बदली का कार्य शुरू हो गया। पानमुनजोन में पुन युद्ध-विराम वार्ताए शुरु हो गई। ८ जून को युद्ध-विराम रेखा के निर्धारण के बारे में साम्यवादियो और सयुक्त राष्ट्र में एक समझौता हो गया। परन्तु यह निश्चय हुआ कि स्वदेश वापिस लौटने को अनुत्सुक बन्दियो के लिये पाच तटस्थ राष्ट्रो के एक आयोग की, जिसमें स्विटजरलैंड, स्वीडन, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया तथा भारत थे, स्थापना की जाय। आयोग के किसी राष्ट्र को निषेधाधिकार प्राप्त नही होगा और सभी निर्णय बहुमत से किए जाएगे। इस समझौता पर हस्ताक्षर होने के पहिले

की दक्षिण कोरिया के राष्ट्रपति सिंगमैनरी ने २७ हजार उत्तर कोरियाई युद्ध-बन्दियों को नजरबन्दी शिविरों से मुक्त कर समझौता की पीठ में छुरा भोंक दिया। कहा जाता है कि इन बन्दियों ने भी सरकार के प्रति वफादारी प्रकट की थी और री उन्हें अपनी सेना में भर्ती करना चाहता था। डा० री के इस कार्य से संयुक्त राष्ट्रों की प्रतिष्ठा को भारी आघात पहुंचा। साम्यवादियों का कहना था कि री के इस कार्य के पीछे अमरीका का हाथ था। युद्ध-बन्दियों को पुनः पकड़ा गया।

प्रारम्भ होने से पूरे ३ साल ३३ दिन बाद २७ जुलाई, १९५३ को पानमुनजोन में युद्ध-विराम-संधि पर हस्ताक्षर होने के साथ ही कोरिया-युद्ध समाप्त हो गया। इस युद्ध में १ लाख ८० हजार अमेरिकन हताहत हुए, जिनमें २३ हजार मृत और १४ हजार लापता सैनिक सम्मिलित हैं। युद्ध-विराम-संधि को लागू करने के लिए एक तटस्थ सैनिक-युद्ध-विराम आयोग की स्थापना की गयी। दोनों पक्षों को ६० दिन का अवसर दिया गया जिसमें वे युद्ध-बन्दियों को स्वदेश लौटने को राजी कर सकें। यदि दोनों पक्ष राजी करने में असफल रहें तो इन युद्ध-बन्दियों के भविष्य का निर्णय एक राजनीतिक सम्मेलन द्वारा किया जायगा। यह सम्मेलन भी यदि ३० दिन तक किसी निर्णय पर न पहुंच सका तो उन्हें नागरिक बनाकर मुक्त कर दिया जाय। 'तटस्थ-राष्ट्र-युद्धबन्दी-स्वदेश-प्रत्यावर्तन आयोग' (Neutral Nations Repatriation Commission) उन युद्ध-बन्दियों की व्यवस्था करे जो स्वदेश लौटने से इन्कार करें और तटस्थ राष्ट्रों के नागरिक बनना चाहें।

६ सितम्बर १९५३ को बन्दियों की अदला-बदली का कार्य समाप्त हो गया। साम्यवादियों ने १२,७६० बन्दियों को संयुक्त राष्ट्र कमान के सुपुर्द किया और इसके विनिमय में [illegible] सैनिक उन्हें मित्र राष्ट्रों ने बदले में दिये।

[illegible] को आन्तरिक [illegible] दोनों पक्षों के [illegible] बन्दियों ने स्वदेश लौटने से इन्कार कर दिया। [illegible] २२ हजार थी, [illegible] सैनिक प्राप्त हुए। [illegible]

[illegible]

खडा हुआ। अमरीका की माग थी कि सम्मेलन में वे ही राष्ट्र सम्मिलित हो, जिन्होने युद्ध मे भाग लिया था। इसके विपरीत चीन का मत था कि सम्मेलन में रूस, भारत, इन्डोनेशिया, पाकिस्तान और वर्मा को भी शामिल किया जाय। सयुक्त राष्ट्र सघ की महासभा ने इस सम्मेलन को २८ अक्टूबर, १९५३ से पूर्व ही करने का निर्णय किया तथा रूस और उन १६ राष्ट्रो को, जिन्होने कोरिया में अपने अपने सैनिक दस्ते भेजे थे, तत्सबधी निमत्रण भेज दिया। तटस्थ राष्ट्र-युद्ध वदी स्वदेश प्रत्यागमन आयोग के भारतीय अध्यक्ष ने स्वदेश न लौटने के इच्छुक उन युद्ध वदियो को मुक्त कर दिया जिन्हे नागरिक दर्जा प्राप्त हो गया था। क्योकि अमरीका और उसके साथी राष्ट्र तथा साम्यवादी कोई भी २३ जनवरी के वाद युद्ध-वन्दियो को रोके रखने के पक्ष में न था। मुक्त हुए इन सैनिको की बहु-मख्या, जो लगभग १३ हजार थी, को फारमोसा में बसने की आज्ञा मिल गई।

पानमुनजोन में की गई युद्ध-विराम सधि की शर्तो में दो बातें सम्मिलित थी। पहली, दोनो पक्षो द्वारा ऐसे प्रतिनिधियो की नियुक्ति जो तमाम विदेशी शक्तियो को कोरिया से हटाने की व्यवस्था करें। दूसरी, वे कोरिया के शातिपूर्ण एकीकरण पर वातचीत करें। चेकोस्लोवाकिया, स्वीडन, पोलैंड तथा स्विट्जरलैंड तटस्थ पर्यवेक्षक देने को सहमत हो गए, जिनकी निगरानी मे युद्धविराम सधि की शर्तो को पूरा किया जा सके, लेकिन स्विट्जरलैंड तथा स्वीडन के सदस्यो को उत्तरी कोरिया मे नही घुसने दिया। जून, १९५४ मे कोरिया युद्ध मे सम्मिलित १६ राष्ट्रो के प्रतिनिधि सयुक्त तथा स्वतत्र कोरिया के निर्माण के हेतु विचार विमर्श करने को जिनेवा में इकट्ठे हुए। लेकिन उन्होने अपने आपको विल्कुल नाकारा पाया। १९५४ के सयुक्त राष्ट्र मघ के नवे सत्र मे एक वार पुन कोरिया के प्रश्न को उठाया गया। लेकिन साम्यवादियो ने निम्नलिखित उन दोनो मूलभूत सिद्धातो को ठुकरा दिया, जिन पर गैर-साम्यवादी प्रतिनिधि जोर दे रहे थे।

१ सयुक्त राष्ट्र सघ के हाथ मे यह शक्ति देना ठीक ही है, जिससे वह आक्रमण को दवाने तथा शाति और सुरक्षा की पुन स्थापना करने में सामूहिक कार्यवाही कर सके, और अपनी सम्मानीय स्थिति का उपयोग कोरिया में शातपूर्ण हल को ढू ढने मे कर मके।

२ कोरिया की राष्ट्रमभा के प्रतिनिधियो को स्वतत्र चुनावो द्वारा चुना जावे। ये चुनाव सयुक्त राष्ट्रमघ की देख रेख में हो। राष्ट्र मभा द्वारा प्रतिनिधित्व कोरिया के समस्त भागो में वमने वाली स्वदेशीय (केवल कोरियाई) जनमख्या के सीधे अनुपात मे हो।

इस प्रकार युद्धविराम संधि की शर्तों को लागू नहीं किया जा सका और १९५६ तक तनावपूर्ण स्थिति ज्यों का त्यों बना हुआ है। इसी बीच दोनों पक्षों से इस प्रकार के आरोप प्रत्यारोप किये जा रहे हैं कि विरोधी युद्ध-विराम समझौते को भंग करने के लिए सैन्यीकरण कर रहा है और लगातार सैनिक बढ़ा रहा है। दक्षिण कोरियाई सरकार ने बार-बार सैनिक आयोग तथा युद्ध-विराम-समझौते की शर्तों की आलोचना की है।

विश्व का ध्यान अब कोरिया की समस्या से हट गया है। इसलिए जब तक कोई नया संकट नहीं उठ खड़ा होता या कोरिया के राजनैतिक एकीकरण को निश्चित नहीं किया जाता, तब तक संयुक्त राष्ट्रीय महासभा उसमें सीधे हस्तक्षेप से बचेगी। अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए कि कोरिया का विभाजन उस समय तक बना रहेगा जब तक विरोधियों में अन्तर्विरोधात्मक संघर्ष का अन्तिम निर्णय नहीं हो जाता। जो भी हो, दक्षिण कोरिया की सैनिक स्थिति की जिम्मेदारी संयुक्त राष्ट्र पर भी है। अगस्त १९५३ में संयुक्त राष्ट्रीय कमान के अधीनस्थ सैनिक भागीदारों के साथ १६ राष्ट्रों ने पुनः सशस्त्र आक्रमण का सामना करने की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर किए थे जिसके अनुसार 'इस प्रकार की घटना होने पर शायद कोरिया की सीमाओं में ही सीमित रखना सम्भव न होगा'। साथ ही संयुक्त राज्य अमेरिका ने दक्षिण कोरिया से पारस्परिक रक्षा संधि की है जिससे अमरीका की सेना, प्रतिरक्षा हेतु दक्षिण कोरिया में रहेगी। इसी बीच १९५० में महासभा द्वारा नियुक्त संयुक्त राष्ट्रीय कोरिया पुनर्निर्माण एजेन्सी युद्ध के पश्चात् अर्थ-व्यवस्था को ठीक करने के लिए सहायता तथा परामर्श के काम में लगी है।

इस प्रकार १९५० में आरम्भ होने वाले कोरिया-युद्ध ने यह सिद्ध किया है कि आक्रमण को सामूहिक कार्यवाही द्वारा ही रोका जा सकता है, जो कि [illegible] की भावना का [illegible] है। कोरिया-युद्ध के इस अनुभव ने यह भी प्रदर्शित कर दिया है कि इस प्रकार के सामूहिक [illegible] राष्ट्रों से [illegible] लागू कर सकते हैं और उन परिस्थितियों में परिणाम [illegible] आक्रमणकारी को [illegible] है कि यदि इन [illegible] पर [illegible] विजय किया जा सके, तो [illegible] आवश्यक हो गया है कि आक्रमणकारी [illegible] स्थापित नहीं की जा सकती।

हंगेरियन — २३ [illegible] १९५६ [illegible] के विरुद्ध [illegible] हुआ। [illegible]

से कम्युनिस्ट विरोधी मुक्ति सेना ने अपनी हवाई तथा कल सैनिक टुकडियो के साथ ग्वाटेमाला पर हमला कर दिया था। केंद्रीय अमरीका स्थित यह छोटासा राज्य ग्वाटेमाला वर्षो से कई तानाशाहो के अधीन रहा। इसके अंतिम तानाशाह का स्पेन की फ्रैंको सरकार के साथ मैत्री सम्बन्ध था। इस अंतिम तानाशाह ने ग्वाटेमाला में एक अमरीकी युनाइटेड फ्रूट कम्पनी को काफी सुविधायें दे रखी थी। इस कम्पनी ने फलो की बागवानी के लिये काफी जमीन हथिया ली थी। १९५१ में ग्वाटेमाला के एक नये प्रसिडेन्ट कर्नल जेकब अर्वेज ने एक बडा सख्त भूमि सुधार कानून जारी किया जिसके द्वारा युनाइटेड फ्रूट कम्पनी की सारी जमीन सरकार के हाथ आ गई। इस पर अमरीका को पूरा विश्वास हो गया कि ग्वाटेमाला काफी तेजी से साम्यवादी रूप धारण करता जा रहा है। मार्च १९५३ में काराकस में हुए दसवें अन्तर्अमरीकी सम्मेलन में ग्वाटेमाला के विरुद्ध सयुक्त कानूनी कार्यवाई करने लिये एक प्रस्ताव स्वीकार किया गया। अमरीका ने ग्वाटेमाला के विरोधी राज्यो निकारागुआ और होण्डुराज को शस्त्रास्त्र सप्लाई करना शुरु किया। इस पर ग्वाटेमाला ने सुरक्षा परिषद से हस्तक्षेप की अपील की।

जब मामला विचारार्थ सुरक्षा परिषद मे पेश हुआ तो अमरीकी प्रतिनिधि श्री केबोट लाज ने उक्त घटना को एक अत्याचारी शासन के विरुद्ध जनविद्रोह बताया और जोर दिया कि परिषद यह मामला निबटाने के लिये सयुक्त राष्ट्र सघ के घोषणापत्र के अंतर्गत निर्मित अमरीकी राज्यो की एक क्षेत्रीय सस्था को सुपुर्द करे। सोवियत प्रतिनिधि श्री मारकिन ने अमरीका पर आरोप लगाया कि ग्वाटेमाला पर सशस्त्र आक्रमण का बल सगठन कर रहा है। आपने कहा कि इस समय हमारे सामने समस्या आक्रमण को रोकने की है। आक्रमण चाहे जहा भी हो आक्रमण ही कहा जायगा। सयुक्त राष्ट्र सघ को चाहिये कि वह इस प्रकार के आक्रमण को रोकने के लिये शक्तिशाली कदम उठाये। काफी गरमा गरम बहस के पश्चात् सुरक्षा परिषद ने फ्रास का वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जिसमे ग्वाटेमाला में शत्रुता रोकने की माग की गई थी और राष्ट्र सघ के तमाम सदस्य राष्ट्रो से कहा गया था कि वे वहा सघर्ष में भाग लेने वाले किसी भी दल को सहायता न दें। ६ दिन के बाद ग्वाटेमाला के प्रतिनिधि ने घोषणा की कि आक्रमणकारी ग्वाटेमाला की राजधानी पर बमबारी कर रहे हैं लेकिन परिषद ने (पक्ष मे ५ और विपक्ष में ४ मतो द्वारा) आक्रमण के विरुद्ध कार्यवाई करने से इन्कार कर दिया। एक पखवाडे के बाद ग्वाटेमाला के प्रेसिडेन्ट अर्वेज को भाग कर मेक्सिकन दूतावास मे शरण लेनी पडी और विद्रोही सेनाओ ने कर्नल केस्टिलो आरमस के नेतृत्व में एक नयी सरकार की स्थापना करली और तमाम कम्युनिस्ट तत्वो को कुचल दिया।

फारमोसा — २८ जनवरी १९५५ को न्यूजीलैंड के प्रतिनिधि ने सुरक्षा परिषद में प्रार्थना की कि चीन के तट से दूर फारमोसा के इर्द गिर्द के विभिन्न द्वीपों में सशस्त्र संघर्ष से उत्पन्न गम्भीर स्थिति पर विचार करने के लिए शीघ्र ही बैठक बुलाई जाए। प्रार्थना में यह भी कहा गया कि यदि यह युद्ध इसी प्रकार कायम रहा तो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा के लिए खतरा पैदा हो जावेगा। सोवियत संघ ने अमरीकी कार्यवाही को फारमोसा (ताईवान) क्षेत्र में चीनी गणतंत्र पर आक्रमण बताया।

फारमोसा १८९५ में चीन द्वारा जापान को सुपुर्द कर दिया गया था लेकिन १९४५ में जापान की हार के बाद फारमोसा दिसम्बर १९४३ के काहिरा सम्मेलन निर्णयानुसार राष्ट्रवादी च्यांग काई शेक सरकार के हाथ में आ गया। १९४९ के अन्त तक चीनी साम्यवादियों ने राष्ट्रवादियों को चीन की मुख्य भूमि से बाहर निकाल फेंका और च्यांग काई शेक को मजबूर होकर फारमोसा द्वीप में शरण लेनी पड़ी। इसके बाद अमरीका ने च्यांगकाई शेक को आर्थिक तथा सैनिक सहायता देना शुरू किया। कोरियाई युद्ध आरम्भ होने के दो दिन बाद २७ जून १९५० को प्रेसिडेन्ट ट्रूमैन ने अमरीकी सातवें सैनिक बेड़े को आज्ञा दी कि फारमोसा पर मुख्य चीन की ओर से किसी भी आक्रमण को रोका जाए। फरवरी १९५३ में प्रेसिडेन्ट आइजन हावर ने फारमोसा की तटस्थता-स्थिति समाप्त कर दी। २ दिसम्बर १९५४ को अमरीका और च्यांग सरकार के मध्य पारस्परिक सुरक्षा समझौता हुआ जिसके अनुसार अमरीका ने फारमोसा की सुरक्षा और बचाव का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। समझौता होने पर साम्यवादी चीन ने कई बार ऐलान किया कि फारमोसा मुख्य चीन का एक अविभाज्य अंग है और यदि आवश्यकता पड़ी तो वह उसे प्राप्त करने के लिये सैनिक कार्यवाही भी करेगा। १८ जनवरी १९५५ को साम्यवादियों ने उत्तरी फारमोसा में राष्ट्रवादियों द्वारा अधिकृत [illegible] द्वीप पर कब्जा कर लिया। [illegible]

पेकिंग सरकार ने उक्त निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया और कहा कि जब तक उसे सुरक्षा परिषद में उचित स्थान नही दिया जायगा और च्यांग के प्रतिनिधि को हटाया नही जायेगा जनवादी सरकार निमन्त्रण स्वीकार नही करेगी। फरवरी के प्रारम्भ में अमरीकी सातवे बेडे ने ताइचेन द्वीपो से १४ हजार राष्ट्रवादी सैनिको को हटाया। १४ फरवरी को सुरक्षा परिषद ब्रिटेन के सुझाव पर फारमोसा पर कोई निर्णय दिये बिना स्थगित हो गई लेकिन परिषद ने सुदूरपूर्व की घटनाओ पर निगरानी कायम रखी। अप्रैल १९५५ मे अफ्रीकी एशियाई देशो के बाडुग सम्मेलन के बाद जनवादी चीन ने समझौतापूर्ण रुख अपनाया और पूंजीवाद तथा साम्यवाद के सहअस्तित्व में विश्वास प्रकट किया। इसलिये फारमोसा का प्रश्न अभी भी उन अत्यत खतरनाक बिन्दुओ में से एक है जो विश्व में अशाति के कारण बने हुए है।

चीन के प्रतिनिधित्व का प्रश्न——स्मरण रखने योग्य है कि चीन सयुक्तराष्ट्र सघ के सस्थापक सदस्यो मे से एक है। इसे सुरक्षा परिषद तथा अन्य सभी कमेटियो में एक स्थायी सीट और 'वीटो' का अधिकार प्राप्त है। कम्युनिस्ट सेनाओ ने राष्ट्रवादियो को मार भगाने और चीन की मुख्य भूमि पर कब्जा जमाने के वाद १ अक्तूबर १९४९ को गणतत्र चीन की स्थापना की। अब प्रश्न यह है कि राष्ट्रवादी चीन के प्रतिनिधि को मुख्य चीन का प्रतिनिधि मानना कहा तक उचित है। गणतत्र चीन जिसकी आवादी ६७ करोड है न केवल सर्व प्रभुत्व सम्पन्न सत्ता है वलिक इसे चीनी जनता की वास्तविक सरकार के रूप में भारत, सोवियत सघ और यहाँ तक कि ब्रिटेन की मान्यता भी प्राप्त हो चुकी है। इसके वावजूद अमरीकी सरकार अभी तक जनवादी चीन को चीनी जनता की वास्तविक सरकार मानने मे इन्कार कर रही है और राष्ट्रवादी च्यागकाई सरकार का समर्थन करती आ रही है। जनवादी चीन को सयुक्तराष्ट्र सघ मे प्रतिनिधित्व देने के प्रश्न पर १९४९ के अन्त मे ही विचार हो रहा है। सोवियत सघ ने बरावर जनवादी चीन के प्रतिनिधित्व का समर्थन किया है लेकिन अमरीका ने सदैव उसका विरोध किया। सयुक्त राष्ट्र सघ द्वारा जनवादी चीन को प्रतिनिधित्व न दिये जाने के विरोध स्वरूप सोवियत सघ १३ जनवरी से १ अगस्त १९५० तक सुरक्षा परिषद मे अनुपस्थित रहा। लेकिन अमरीका ने १९५९ तक जनवादी चीन को राष्ट्रसघ मे प्रवेश होने से वचित रखा। जनवादी चीन का प्रतिनिधित्व न देकर आज सयुक्त राष्ट्र सघ ने तमाम विश्व की एक चौथाई आवादी को विश्व सस्था से वचित कर रखा है जबकि सयुक्त राष्ट्र सघ के घोषणापत्र के अनुच्छेद २ में यह स्पष्ट है कि सभी जनता को चाहे उसका राजनैतिक दृष्टिकोण कुछ भी हो बरावर

एक प्राप्त है। अब जनवादी चीन का प्रतिनिधित्व देने का प्रश्न जनरल असेम्बली के आगामी अधिवेशनों में उठाया जायेगा। संयुक्त राष्ट्र संघ के आलोचकों का कहना है कि फारमोसा के राष्ट्रवादी चीन के प्रतिनिधियों का संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन के प्रतिनिधि के रूप में कायम रहना विश्व संस्था के लिये मजाक की बात है। जनवादी चीन के प्रतिनिधित्व का प्रश्न विश्व संस्था में कार्यों के सुचारु ढंग से आगे बढ़ने में न केवल रुकावट पैदा कर रहा है बल्कि विचारार्थ कार्यक्रम सूची का एक ऐसा विषय बन गया है जिस पर दो गुटों में परस्पर तनाव के अतिरिक्त कोई निर्णय नहीं हो पाता। संयुक्त राष्ट्र संघ में बहुमत अमरीका के साथ होने के कारण कम्युनिस्ट चीन का राष्ट्रों की विश्व संस्था में उचित स्थान नहीं मिल रहा है। यह दल बन्दी का स्पष्ट उदाहरण है।

बर्मा —बर्मा के उत्तरी-पूर्वी प्रदेश में चीनी राष्ट्रवादी सेनाओं की उपस्थिति के विरुद्ध बर्मा ने संयुक्त राष्ट्रसंघ में अपनी शिकायत पेश कर दी है। ये सेनाएं अनेक वर्षों से बर्मा की भूमि पर मौजूद हैं और वहीं से पुनः चीन की मुख्य भूमि पर चढ़ाई करने का विचार कर रही हैं। कुछ महीनों से उनके उत्पात जारी हो गए हैं। उन्होंने अनेक गांवों को लूटा और जलाया तथा विद्रोहियों को सरकार के विरुद्ध सहायता दी है। निर्विवाद रूप से उन्होंने बर्मा की सार्वभौमिकता का उल्लंघन किया है। बर्मा ने अमरीका की सहायता शर्तों को रद्द कर दिया है। यह एक खुला रहस्य है कि उक्त सेनाओं को युद्ध की सामग्री फारमोसा सरकार से अमरीका होकर प्राप्त होती है और इस कार्य में अमरीका का भी पूरा हाथ है। संयुक्त राष्ट्रीय महासभा ने इस प्रश्न पर विचार करने के पश्चात् एक प्रस्ताव पास किया जिसमें बर्मा स्थित समस्त चीनी राष्ट्रवादी [illegible] सैनिकों से [illegible] और [illegible] की माँग की है। यह उल्लेखनीय है कि इस प्रस्ताव में चीनी राष्ट्रवादियों के स्थान पर 'विदेशी सैनिकों' का ही प्रयोग किया गया है। इस प्रस्ताव से बर्मा को सन्तोष नहीं हुआ क्योंकि [illegible] विदेशी सेनाओं को [illegible] १९५४ तक [illegible]

[illegible] की समस्या —सन् १९४८ में [illegible]

इन्कार कर दिया जिन पर ६ सम्मेलनो में परिषद ने विचार किया था । जाच के लिए उप-समिति के लिए चिली के प्रस्ताव को सोवियत सघ ने वीटो कर लिया और कोई पग नही उठाया गया । प्रश्न का महत्व केवल प्रचारात्मक रहा ।

यूगोस्लावी शिकायत—दिसम्बर १९५१ में यूगोस्लाविया ने सुरक्षा परिषद में शिकायत की कि सोवियत सघ की बल्गेरिया, हगरी, रूमानिया, अल्बेनिया आदि राज्यो में गडबडी की हलचलो से उसकी सुरक्षा तथा शाति गम्भीर सकट मे पड गई है। गम्भीरता से विचार करते हुए महासभा ने १४ दिसम्बर को सम्बन्धित सरकारो के लिए निम्न सिफारिशें की (अ) सयुक्त राष्ट्रीय आदेश पत्र की भावना के अनुसार अपने विवाद शात करे तथा अपने सम्बन्ध अच्छे बनाये, (ब) मिली-जुली सीमा आयोग द्वारा सीमा सम्बन्धी विवाद हल करे तथा कूटनीतिक विनिमय द्वारा अपने विवाद हल करें। ५ सदस्यो के सोवियत गुट न प्रस्ताव के विरोध मे मत दिया । यूगोस्लाविया ने इन सिफारिशो पर अमल करने का वायदा किया ।

आंग्ल-ईरानी तेल विवाद—२९ सितम्बर १९५१ को ब्रिटेन ने सुरक्षा परिषद में आग्ल-ईरानी तेल विवाद को प्रस्तुत किया। ब्रिटिश प्रतिनिधि ने शिकायत की कि ईरानी मजलिस द्वारा १ मई को पारित राष्ट्रीयकरण विधेयक जिससे आग्ल-ईरानी तेल कम्पनी के अधिकार समाप्त होते है, १९३३ के तेल सुविधा समझौते की शर्तों का उल्लघन करता है। समस्या अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के सुपुर्द की गई जिसने ५ जुलाई को एक अन्तरिम निषेधादेश जारी करके आग्ल ईरानी तेल कम्पनी को न्यायालय के निर्णय तक अपना कार्य करते रहने का आदेश दिया। २५ सितम्बर को इस आदेश के विरोध मे अवादान शोधशाला वन्द कर दी गई तथा ३५० ब्रिटिश प्रविधिको को तेल क्षेत्रो से निष्कासित कर दिया गया । परिषद ने ईरानी प्रधान मन्त्री डा० मुसद्दीक को आमन्त्रित किया । उन्होने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की निन्दा की तथा आग्ल-ईरानी तेल कम्पनी के आरोपो को अस्वीकार कर दिया। परिषद ने किसी सुझाव के लिए बहुमत एकत्रित करने में असफल होने पर मामला वन्द कर दने का निर्णय किया । इसी बीच ब्रिटिश प्रतिनिधि ईरान मे निष्कासित कर दिए गए तथा २२ जुलाई १९५२ को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने निर्णय दिया कि तेल राष्ट्रीयकरण पर आंग्ल-ईरानी तेल कम्पनी का विवाद उसके अधिकार क्षेत्र मे वाहर है। १८ अक्तूबर को ब्रिटेन ने तेल विवाद के आशिक हल के लिए ईरान की ४९० लाख पौंड की माग को पूर्ण अस्वीकृत कर दिया तथा अन्तिम समझौते के लिए तेहरान मे अपना मिशन भेजने से इन्कार कर दिया। ब्रिटेन ने माग की कि ५० करोड के तेल उद्योग की ईरानी राष्ट्रीयकरण मे हुई क्षतिकी पूर्ति ८० वर्ष के लाभ मे की जाय । दो दिन वाद ईरान ने ब्रिटेन के साथ राजनैतिक सम्वन्ध विच्छेद कर लिया ।

१९५३ के प्रारम्भिक दिनों में ईरान के प्रधान मन्त्री डा० मुसद्दीक ने तानाशाही ढंग से सभी अधिकारों को अपने हाथ में ले लिया। प्रधान मन्त्री ने घोषणा की "जनवादी राजतन्त्रों में राजा को शासन करने का उत्तरदायित्व प्राप्त नहीं होता। शाह ईरान को गद्दी पर बने रहना चाहिए लेकिन शासन नहीं चलाना चाहिए।" उन्होंने बताया कि राष्ट्रीयकरण से पूर्व सरकार और शाह में कोई मतभेद नहीं था। परन्तु इसके बाद से मतभेद लगातार बढ़ रहे हैं। मुसद्दीक ने न्यायाधीशों को बर्खास्त कर दिया और वरिष्ठ सदन सीनेट को भंग कर दिया। मजलिस ने उन्हें ईरान पर मनमाने ढंग से शासन करने के विशेष अधिकार दे दिए। किसी न किसी बहाने से उन्होंने मजलिस के १३६ सदस्यों में से ५० को निकाल फेंका। शेष सदस्यों में से केवल ३८ का समर्थन उन्हें प्राप्त था जबकि ४० विरोध में थे। अगस्त १९५३ को उन्होंने मजलिस भंग के लिए आम समर्थन प्राप्त करने के हेतु तेहरान में मतदान कराया।

१५ अगस्त को शाही फौज के अफसरों ने कर्नल नासीरी के नेतृत्व में सैनिक विद्रोह द्वारा मुसद्दीक सरकार को उलटने का प्रयत्न किया। लेकिन डा० मुसद्दीक ने सफलता पूर्वक विद्रोहियों को दबा दिया और कर्नल नासीरी को जेल में डाल दिया तथा शाही फरमानों को अमान्य कर दिया। दूसरे दिन शाह-ईरान रोम भाग गए। जाने से पूर्व उन्होंने मुसद्दीक के स्थान पर जनरल जाहेदी को प्रधानमन्त्री नियुक्त कर दिया। लेकिन मुसद्दीक ने चार्ज देने से इन्कार कर दिया। अगस्त १९ का दूसरा शाही विद्रोह सफल रहा और मुसद्दीक को बन्दी बना लिया गया। भूतपूर्व विदेश मन्त्री फातमी को गिरफ्तार करके मृत्युदण्ड दे दिया गया। डा० मुसद्दीक पर सैनिक अदालत में मुकदमा चलाया गया और तीन साल कैद की सजा दी गई। मार्च १९५६ में उन्हें रिहा कर दिया गया।

[illegible]

को ईरान सरकार से २ करोड ५० लाख पौंड प्राप्त होगे। यह रकम ब्याज रहित होगी और इसकी अदायगी दस वार्षिक किस्तो में होगी जिसका आरम्भ १ जनवरी १९५७ से हो जायगा। जो तेल ईरान में उपभोग किया जायगा और जितने तेल का निर्यात होगा उसके उत्पादन मूल्य का भुगतान राष्ट्रीय ईरान तेल कम्पनी को किया जायगा। इस समझौते का परिणाम यह है कि भविष्य में ईरान को तेल-उद्योग के ५० प्रतिशत लाभ के हिस्सो की प्राप्ति हो जायगी। इस प्रकार बिना सयुक्त राष्ट्रो के हस्तक्षेप मे आग्ल-ईरान-तेल विवाद स्वतन्त्रतापूर्वक उन्ही पक्षो द्वारा हल कर लिया गया, जो प्रत्यक्ष रूप में इससे सम्बन्धित थे।

ट्यूनीसिया —१९५२ में ट्यूनीसिया के प्रश्न को औपचारिक रूप से सयुक्त राष्ट्रसघ की कार्य-सूची में रखा गया। फ्रासीसी प्रतिनिधि ने इस पर विरोध प्रदर्शन किया क्योकि उसके विचार से यह किसी देश के घरेलू अधिकार में हस्तक्षेप करना था। उसने घोषणा की कि महासभा को इस एक सम्बन्ध पर चर्चा करने का कोई अधिकार नही है जो सम्बन्ध १८८१ की कास्र-सैद (Caser Said) और १८८३ की ला मार्सा सधियो (Convention of La Marsa) द्वारा स्थापित किया गया है। इसलिए उसने तत्सम्बन्धी बहस में भाग लेने से इन्कार कर दिया। तेरह एशियाई-अफ्रीकी राष्ट्रो ने जो इस समस्या को महासभा के सामने लाये थे, यह आरोप लगाया कि फ्रास-सरकार अन्तर्राष्ट्रीय समझौतो का उल्लघन कर रही है और ट्यूनीसिया वासियो को प्रारम्भिक स्वतन्त्रता तथा आत्म-निर्णय का अधिकार देने से इन्कार कर रही है। सातवें सत्र में ग्रहण किए गए प्रस्ताव मे यह आशा प्रकट की गई कि फ्रास और ट्यूनीसिया "ट्यूनीसिया को स्वशासन प्राप्त कराने की दृष्टि से एक आवश्यक आधार पर बातचीत जारी रखेगें।" (१९५२)। १९५३ मे आठवें-सत्र में पुन ट्यूनीसिया के प्रश्न को महासभा की कार्य-सूची मे स्थान दिया गया और फ्रासीसी प्रतिनिधि ने पुन विवाद में भाग लेने से इन्कार कर दिया। एक प्रस्ताव, जिसमें ट्यूनीसिया की जनता के लिए 'सर्व-प्रभुत्व सम्पन्नता तथा स्वतन्त्रता' की सिफारिश की गई थी, आवश्यक मतसख्या पक्ष मे न होने के कारण गिर गया।

१९५४ मे यह प्रश्न फिर कार्य-सूची पर आया लेकिन तब वातावरण मे विशेष रूप से परिवर्तन आ गया था। महासभा का अधिवेशन प्रारम्भ होने से थोडे ही समय पूर्व उत्साही फ्रास सरकार ने, जिसकी बागडोर पियरे मेंडेस फ्रास के हाथो में थी फ्रासीसी इतिहास मे सर्व प्रथम मोरक्को और ट्यूनीसिया के मामलो के लिए एक पृथक मन्त्रालय की स्थापना की। यही नही ट्यूनीसिया को तत्काल आतरिक स्वशासन का प्रस्ताव लेकर स्वय प्रधान मन्त्री वायुयान द्वारा नाटकीय ढग

से वहाँ जा पहुँचे। परिणामस्वरूप १९५४ में उस महासभा के प्रस्ताव में सीधे तौर पर यही विश्वास व्यक्त किया गया कि उस समय चल रही बातचीत से एक सन्तोषजनक हल मिल जायगा और 'ट्यूनीशिया' प्रश्न पर विचार करना स्थगित कर दिया।

उस समय फैले आशावाद का असर तब और दिखाई दिया जब सीरिया के प्रतिनिधि जो फ्रांसीसी नीति के कट्टर आलोचकों में से एक हैं ने यह घोषणा की कि ट्यूनीशिया को दिया गया यह आन्तरिक स्वशासन फ्रांसीसी नीति के प्रति परतन्त्र देशों के व्यवहार में एक नवीन युग का श्रीगणेश कर सकेगा।

दस महीने बाद मेंडेस फ्रांस की सरकार पदच्युत कर दी गई। लेकिन प्रधान-मन्त्री एडगर फॉर की नई सरकार ने भी बातचीत का सिलसिला जारी रखा और ३ जून १९५५ को ट्यूनीशिया और फ्रांस की सरकारों ने ट्यूनीशिया को आन्तरिक स्वशासन देते हुए निश्चयात्मक शर्तों की एक लम्बी सूची पर हस्ताक्षर कर दिए। इस निश्चयात्मक शर्तों की सूची को फ्रांसीसी संसद के दोनों सदनों, नेशनल असेम्बली और काउन्सिल ऑफ रिपब्लिक द्वारा क्रमशः ९ जुलाई और ४ अगस्त को स्वीकृति प्रदान कर दी गई।

इन शर्तों के अनुसार ट्यूनीशिया निवासियों को स्वशासन का अधिकार होगा। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय मामलों और रक्षा का अधिकार फ्रांस सरकार के हाथ में ही रहेगा। संयुक्त राष्ट्रसंघ के मानवीय अधिकारों के घोषणा-पत्र के अनुसार समस्त व्यक्तिगत अधिकारों की गारंटी दी गई है। दोनों सरकारें [illegible] एक [illegible] करेंगी, जिसमें तीन ट्यूनिस और तीन फ्रांसीसी [illegible] दोनों में से किसी भी देश का ऐसा निर्णय बिना दोनों सरकारों के आपसी समझौते न होगा।

[illegible] ट्यूनीशिया में [illegible]

वाले सुधारो की सभावना के लिए भी गु जाइश छोड दी गई है। इनमें एक राष्ट्र के नागरिक को दूसरे राष्ट्र मे नागरिक अधिकारो का प्रयोग करना भी सम्मिलित है।

१९५६ में ट्यूनीसिया को विश्व-सस्था सयुक्त-राष्ट्र सघ का ७९ वा सदस्य बना लिया गया है।

मोरक्को —ट्यूनीसिया को आन्तरिक स्वशासन की स्वीकृति मिलने का उत्तरी अफ्रीका मे गम्भीर विपरीत प्रभाव पडा। मोरक्को तथा ट्यूनीसिया सम्बन्धी मामलो के फ्रासीसी मत्री पीयरे जुली स्वय गत अप्रैल को मोरक्को में बसने वालो के एक समूह के सामने उपस्थित हुए। उन्होने कहा, "तुममें से कुछ ने व्याकुलता के साथ ट्यूनीसिया का उदाहरण प्रस्तुत किया, लेकिन ट्यूनीसिया तथा मोरक्को की ममस्या एक जैसी नही है।"

मोरक्को में बसने वाले फ्रासीसियो की सख्या ट्यूनीसिया मे बसने वाले फ्रासीसियो की सख्या से लगभग दो गुनी है और उनकी बहुत बडी पू जी और श्रम यहा की खेती और उद्योग में लगे है। महत्व की दृष्टि से कासाब्लान्का की बन्दरगाह केवल फ्रास की ही दो बन्दरगाहो--- ले हेव्रे और मार्सीली के बाद है। फ्रास और सयुक्त राज्य अमरीका दोनो का सरक्षक-सरकार में जबर्दस्त सामरिक योजना-सबधी हित है। हवाई सामरिक अड्डो के निर्माण में अमरीका ने स्वय ३७२० लाख पौण्ड व्यय किये है। अभी हाल ही मे फ्रास की राष्ट्र-सभा (नेशनल असेम्बली) की सुरक्षा समिति के अध्यक्ष ने घोषणा की कि अगर आवश्यकता हो तो यूरोप मे स्थित फ्रास की सभी सैन्य शक्ति को जिसमें उत्तरी अतलातक-सधि में लगी सैना भी सम्मिलित है, उत्तरी अफ्रीका भेज देना चाहिए। उनकी स्पष्ट घोषणा थी कि यूरोप तथा स्वतन्त्र विश्व (गैर-साम्यवादी राष्ट्र जो पश्चिमी शक्तियो की ओर है और जिन्हें जनतन्त्र वादी राष्ट्र कहा जाता है) की सुरक्षा के लिए उत्तरी अफ्रीका की सुरक्षा परमावश्यक है।

१९५२ से १९५४ तक मोरक्को की समस्या भी ट्यूनीसिया की ममस्या की तरह बार-बार राष्ट्रसघ के समक्ष लायी गई और दोनो ही एक जैसी क्रिया-विधि मे से गुजरी। ट्यूनीसिया को आतरिक स्वशासन दे दिए जाने पर और मोरक्को मे इस प्रकार की किसी भी प्रगति के अभाव में राष्ट्रसघ की महासभा ने अपना तमाम ध्यान मोरक्को की ममस्या पर ही केन्द्रीभूत कर दिया।

१९५४ मे एशियाई-अफ्रीकी राष्ट्रो ने मोरक्को मे हुई प्रगति की सम्पूर्ण कार्य विधि का पर्यालोचन किया और विशेष जोर उस असतोष की स्थिति पर दिया, जो अगस्त १९५३ में सुलतान मुहम्मद-बेन युसुफ के देश निष्कासन तथा उनके स्थान

पर किसी [illegible] समस्या को भारी गति पर विचार के कारण मोरक्को में उत्पन्न हो गयी थी। ईराक के प्रतिनिधि ने इस समय बहुत से राष्ट्रों के प्रतिनिधियों के विचारों की घोषणा कर दी जब उसने कहा कि [illegible] अल्जसिरास (Algeeiras) के १९०६ के अधिनियम के अन्तर्गत दिए गए मोरक्को के सार्वभौम अधिकारों का उल्लंघन है जिसके द्वारा सुल्तान की पूर्ण स्वतन्त्रता तथा उसके प्रदेशों के स्वामित्व की गारन्टी दी गई थी। ईराकी प्रतिनिधि ने १९५२ के अन्तर्राष्ट्रीय अदालत द्वारा दी गयी सम्मति को उद्धृत किया जिसमें कहा गया था कि फ्रांस की १९१२ की संधि, जिसके द्वारा मोरक्को में फ्रांस-[illegible] संरक्षण-सरकार बन गयी थी, के होने पर भी अल्जेसिरास का अधिनियम उस पर हस्ताक्षर करने वाले सभी पक्षों पर लागू होगा। सऊदी अरब के प्रतिनिधि ने कहा, "फ्रांस ने जो हर एक कदम ट्यूनीशिया के लिए आगे बढ़ाया वही कदम मोरक्को के सम्बन्ध में पीछे की ओर हटाया।"

फ्रांसीसी प्रतिनिधि ने निश्चयपूर्वक घोषणा की, 'फ्रांस इन उत्तरदायित्वों को जिन्हें उसने ग्रहण किया है और जिनको पालन करने का उसका विचार है [illegible] भी साझीदार नहीं बनायेगा।' विवाद के [illegible] राष्ट्रों ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया जिसमें मोरक्को की समस्या के हल के लिए मोरक्को की जनता के प्रतिनिधियों तथा फ्रांस सरकार के बीच सीधी बातचीत की माँग थी। [illegible] ने [illegible] का विश्वास प्रकट किया कि समस्या का [illegible] हल निकाल लिया जायगा। [illegible] जून १९५४ को [illegible] सुरक्षा-सभा से [illegible] कि यद्यपि मोरक्को वासियों को [illegible] अधिकार [illegible] उनकी स्वतन्त्र शासन की प्रतिष्ठा [illegible] नहीं हुयी। तो भी [illegible] प्रश्न पर विचार करने [illegible] फिर भी [illegible] फ्रांसीसी [illegible] और मोरक्को [illegible] में [illegible] और [illegible] है।

[illegible] १९५४ को [illegible] राष्ट्रों ने मोरक्को [illegible]

राष्ट्रपति आइजनहावर को बताया कि उन्हे जल्दी ही ग्यारह अमेरिकी हवाबाजो की मुक्ति की अपेक्षा है। तमाम लटके चले आ रहे प्रश्नो के समाधान के लिए चीन सरकार तथा अमेरिकी सरकार के प्रतिनिधियो के मध्य होने वाली बैठक के पूर्व ही चीनी प्रतिनिधि ने घोषित कर दिया कि मेरी सरकार ग्यारह बदी हवाबाजो को मुक्त कर देगी। उसने कहा, "मुझे आशा है कि चीन-सरकार द्वारा उठाये गये इस कदम का वर्तमान बातचीत पर अनुकूल प्रभाव पडेगा।" परिणामस्वरूप ग्यारह अमेरिकी हवाबाजो को ४ अगस्त, १९५५ को मुक्त कर दिया गया।

चाहे किन्ही दूसरे तत्वो ने समस्या के अन्तिम हल तक पहुचने में कोई सहयोग दिया हो, लेकिन महामत्री ने बातचीत में जो हिस्सा लिया, उसको अमेरिका के राष्ट्रपति ने खुले रूप से सबके सामने स्वीकार किया। उन्होने विशेष रूप से धन्यवाद "राष्ट्रसघ और उसके महामत्री को दिया जिन्होने प्रयत्नपूर्वक यह परिणाम प्राप्त किया।"

अल्जीरिया की समस्या —अल्जीरिया का प्रश्न महासभा के समक्ष उसके १९५५ के दसवे सत्र में पहली बार उपस्थित किया गया। गत जुलाई में एक व्याख्यात्मक परिचय-पत्र में १३ एशियाई-अफ्रीकी राष्ट्रो ने कहा कि अल्जीरिया की वर्तमान स्थिति शाति को ठोस खतरा है और अन्तर्राष्ट्रीय विभेद का कारण है। यह परिचय-पत्र इस प्रकार था

"अल्जीरिया में बिगडती हुई स्थिति उपनिवेशीय विजय का प्रत्यक्ष परिणाम है और यह नही कहा जा सकता कि अल्जीरिया निवासियो न राष्ट्र सघ के चार्टर में दिए गए आत्म-निर्णय के अधिकार को प्रयोग किया है। बडे पैमाने पर पकड-धकड जो कि अल्जीरिया में हो रही है, राष्ट्रीय राजनीतिक पार्टियो को गैर-कानूनी घोषित करना, सेसरशिप लगाना, और सशस्त्र फ्रासीसी सैनिक दस्तो द्वारा मकानो पर दखल जमा लेना ये सब अल्जीरिया के लोगो को उनके यथोचित अधिकारो को स्वीकार करने की असफलता के अजीब परिणाम है। ये मामले इस हद तक पहुच गए है कि स्वय फ्रास के प्रधान मन्त्री के अनुसार अल्जीरिया मे पैर जमाए रखने के लिए फ्रास के पास केवल एक ही मार्ग रह गया है कि वह शक्ति का सहारा ले। इस क्षेत्र में लगी १५०,००० की विशाल सशस्त्र सेना और उत्तरी अतलातक सधि-सगठन (नाटो) के फ्रासीसी दस्ते, वहा की गम्भीर स्थिति को स्पष्टता से प्रमाणित करते है। ऐसी स्थिति का बना रहना भूमध्य सागर के क्षेत्र में शाति को गम्भीर खतरा उत्पन्न कर रहा है।"

अल्जीरिया को १८३० मे विजित किया गया और उसे फ्रास के सविधान (१८४८) द्वारा फ्रांस का प्रदेश घोषित कर दिया गया। १८७० में उत्तरी भाग तीन

[illegible] किया गया [illegible] १९५० [illegible] के [illegible] में [illegible] ओर [illegible] गया, [illegible] (फरवरी) [illegible] किया गया [illegible] के [illegible] किया।

१९५० के [illegible] राष्ट्रीय [illegible] के [illegible] ने [illegible] का [illegible] और [illegible] के [illegible] और [illegible] है [illegible] है।

[illegible] के [illegible] किया [illegible]

[illegible]

१ विद्रोहियो की पूर्ण स्वतन्त्रता की माग को छोडते हुए सुलह की शर्तो के लिए अन्तिम प्रयास ।
२ व्यवस्था की पुनर्स्थापना तथा फ्रास-निवासियो की जान-माल की सुरक्षा के लिए बडे पैमाने पर शक्ति का प्रयोग ।
३ आवश्यक आर्थिक तथा सामाजिक सुधार लागू करना ।
४ मुस्लिम जनसख्या के प्रतिनिधियो को चुनने के लिए चुनाव।
५ अल्जीरिया के राजनीतिक स्तर को सुधारने के लिए इन नेताओ से बातचीत, यद्यपि यह स्तर फ्रांस के साथ ही सम्बन्धित रहेगा ।

राष्ट्रवादियो ने इस योजना को बेकार कहकर ठुकरा दिया जबकि यूरोप-वासियो ने उसकी भर्त्सना की । अतएव सशस्त्र सघर्ष जारी रहा ।

२२ मई, १९५६ को पडित नेहरू ने अल्जीरिया के सघर्ष के हल के लिए अपनी पाच-सूत्री योजना प्रस्तुत की जो इस प्रकार है

१ दोनो ओर से हिंसा की समाप्ति के पक्ष में औपचारिक घोषणा द्वारा शातिपूर्ण हल के लिए वातावरण उत्पन्न किया जाना चाहिए ।
२ स्वतन्त्रता के आधार पर अल्जीरिया की राष्ट्रीय सत्ता तथा स्वायत्तता को फ्रास सरकार द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए ।
३ तमाम सबधित पक्षो द्वारा, बिना जातीय भेदभाव के, अल्जीरिया के लोगो की समानता को स्वीकार किया जाना चाहिए ।
४ अल्जीरिया की राष्ट्रीय सत्ता तथा स्वतन्त्रता की स्वीकृति से उत्पन्न तमाम भारो तथा लाभो में अल्जीरिया के सभी निवासियो को समान रूप मे भाग लेना चाहिए ।
५ सबधित पक्षो की सीधी बातचीत सयुक्त राष्ट्रसघ-घोषणापत्र (चार्टर) के अनुसार उपर्युक्त मूलभूत विचारो पर आधारित होनी चाहिए ।

नेहरू जी की इस योजना को फ्रास ने ठुकरा दिया और १८ जून को यह प्रश्न सयुक्त राष्ट्रसघ की सुरक्षा-परिषद् में ले जाया गया ।

निशस्त्रीकरण —जून, १९५५ मे हुए सयुक्त राष्ट्र-सघ के घोषणापत्र (चार्टर) की १०वी जयती के सानफ्रासिस्को अधिवेशन मे कनाडा के प्रतिनिधि ने घोषणा की

"अब शक्ति सतुलन का स्थान भय-सतुलन ने ले लिया है और यह सुरक्षा का कोई सुदृढ और स्थायी आधार नहीं है । एक उदजन बम से शाति भग होने का भय है और दो उदजन बमो मे तो शान्ति भग होने का भय और भी बढ जाता है ।"

इस प्रकार निःशस्त्रीकरण की जटिल समस्या पर विश्व के राष्ट्रों का मत परिवर्तित होता है।

सन् १९४६ में आणविक शक्ति पर नियन्त्रण करने के प्रश्न पर [illegible] स्थापित किया गया और उसके बाद [illegible] के परिणाम स्वरूप [illegible] महासभा ने [illegible] किया, जिसके [illegible] आणविक शक्ति आयोग और परम्परागत शस्त्रों (Conventional Armament) के लिए [illegible] के स्थान पर [illegible] निःशस्त्रीकरण आयोग की स्थापना की गई।"

निःशस्त्रीकरण आयोग की प्रथम बैठक में अमेरिका, [illegible] ब्रिटेन ने समस्त सेनाओं तथा शस्त्रों के [illegible] प्रकट करने तथा [illegible] की जांच करने का प्रस्ताव उपस्थित किया। इस [illegible] में [illegible], जल सेना तथा हवाई सेना और [illegible] के आणविक शस्त्र भी शामिल थे।

राष्ट्र के हाथ मे नही है। परन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि रूस और अमेरिका दोनो आणविक युद्ध की विभीषिकाओ का भली प्रकार अनुभव करते जा रहे है, जो यदि हुआ तो विजित और विजेता दोनो का सर्वनाश कर देगा। १९५३ में राष्ट्रपति आइजन हावर ने स्पष्ट घोषणा की "यदि आणविक युद्ध हुआ तो सभ्यता के नष्ट हो जाने, मानवजाति की अद्वितीय विरासत के लोप हो जाने तथा मानव जाति के इस हद तक पतन की सम्भावना है कि उसे पुन असभ्यता से सभ्यता की ओर अपना पुरातन सघर्ष करना पडेगा।"

रूसी प्रधान मत्री बुल्गानिन ने अभी हाल ही मे घोषणा की कि बडे पैमाने पर विनाश के और ज्यादा खतरनाक और शक्ति शाली आयुधो की खोज नये युद्ध की अशका को बढाती है जिससे परिणाम स्वरूप अनगिनत आपत्तियो और मुसीबतो का पहाड टूट पडेगा।

निश्शस्त्रीकरण आयोग की उप-समिति की २५ जनवरी से १८ मई, १९५५ तक लन्दन में होने वाली बैठक में सर्वमान्य हल के लिए योजना स्वीकार की गयी। आम सिद्धान्तो पर समझौता हो गया जिनके अनुसार निम्नलिखित व्यवस्था होगी

१ आणविक तथा बडे पैमाने पर विनाशकारी आयुधो के बनाने तथा उपयोग पर पूर्ण प्रतिबन्ध और वर्तमान आणविक आयुधो को शातिपूर्ण उद्देश्यो की पूर्ति के लिए परिवर्तित करना।

२ तमाम सशस्त्र सेनाओ तथा अभिसामयिक आयुधो (Conventional Armaments) की बडे पैमाने पर कमी।

३ एक नियत्रणकारी सस्था की स्थापना, जिसके पास इतने पर्याप्त अधिकार, शक्तिया और कार्य हो कि वह इस बात की गारन्टी कर सके कि सर्व-स्वीकृत प्रतिबन्धो और आयुधो की कमी की योजना का प्रभाव-पूर्ण ढग से पालन हो रहा है।

४ सशस्त्र सेना, अभिसामयिक आयुधो (कन्वेशनल) में या ३१ सितम्बर, १९५८ के स्तर से अधिक स्तर पर सैनिक-खर्च मे किसी प्रकार की बढा-तरी न हो।

५ चीन, रूस, अमरिका की सशस्त्र सेनाओ मे १० लाख से १५ लाख तक की, और फ्राम तथा ब्रिटेन की सेनाओ में ६॥ लाख तक की कमी। ३१ दिसम्बर १९५८ में जितनी सेनाए थी तथा सेनाओ में जितनी कमी

के लिए [illegible] बनाया गया उन दोनों [illegible] के [illegible] के [illegible] की [illegible] पूरा [illegible] के भीतर भीतर पूरी हो जाय। [illegible] की [illegible] के बाद [illegible] और [illegible] [illegible] पूर्ण [illegible] हो जाय। [illegible] [illegible] समाप्ति [illegible] तथा [illegible] सेनाओं में [illegible] की गयी अन्तिम [illegible] के [illegible]। [illegible] का उपयोग शान्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिए होगा।

६ वे राष्ट्र, जिनके आणविक और वैज्ञानिक ज्ञान है, आणविक शक्ति को शान्तिपूर्ण कार्यों में प्रयोग करने के लिए सहयोग करें।

७ एक निःशस्त्रीकरण संस्था स्थापित की जाय, जिसे काम के अधिकार हों -

(क) वायु आधार पर देख-रेख रखने का अधिकार जिसमें [illegible] सैनिक अड्डों का निरीक्षण भी शामिल है।

(ख) [illegible] सभी देशों में [illegible] ऐसी [illegible] हो जो [illegible] सीमाओं के भीतर-भीतर [illegible] पर निगरानी रख सके।

(ग) सैनिक [illegible] के लिए [illegible] जो [illegible] उसको निरीक्षण [illegible] देख-रेख [illegible] का अधिकार।

(घ) समझौते के [illegible] का अधिकार

[illegible]

[illegible]

है, क्योंकि निशस्त्रीकरण सर्वदा सैनिक हितों का विषय ही नहीं है।" उन्होंने निशस्त्रीकरण के परम्परागत तथा नकारात्मक पहलू को ठुकरा दिया, क्योंकि, किसी वाह्य शक्ति के नाम पर, प्रत्येक देश में छिपे हुए या गुप्त रीति से रक्खे हुए सैनिक-साधन सामग्री को, किस प्रकार नियन्त्रित किया जा सकता है ? उस अपराध की सजा कैसे दी जाय, जिसको प्रकट करने का कार्य ऐसी नियत्रण-संस्था का हो ?"

सबसे नाटकीय प्रस्ताव राष्ट्रपति आइजन हावर की ओर से आया, जिन्होंने हवाई निरीक्षण की योजना प्रस्तुत की जिसके अन्तर्गत रूस तथा अमेरिका दोनो देशो के एक छोर से दूसरे छोर तक अपने-अपने सैनिक प्रस्थापनाओ का आदि से अंत तक पूरा-पूरा व्योरा-फोटो एक दूसरे को दें। उन्होंने यह भी प्रस्ताव प्रस्तुत किया, "हम आपको हवाई पर्यवेक्षण के लिए पर्याप्त सुविधाए देंगे। जहाँ आप (रूस) जो फोटो-नक्शे लेना चाहें ले सकेंगे और उनका भली प्रकार से अध्ययन करने के लिए उन्हें अपने देश ले जा सकेंगे और हम भी आशा रखते है कि आप (रूस) ठीक उसी प्रकार की सुविधाए हमे (अमेरिका को) प्रदान करेंगे।"

शिखर सम्मेलन की अन्तिम विज्ञप्ति में चारो शक्तियां, सयुक्त राष्ट्र-सघ निशस्त्रीकरण आयोग की उप-समिति द्वारा निशस्त्रीकरण के लिए सर्व स्वीकृत प्रणाली के विकासार्थ आपस में कार्य करने को सहमत हो गई। इस उप-समिति की अगस्त, १९५५ और फरवरी, १९५६ मे वैठकें हुई, जिसके फौरन वाद फ्रांस, कनाडा ब्रिटेन, अमेरिका और रूस के प्रतिनिधियो की आपसी चर्चाओ के कई दौर हुए। जुलाई, १९५६ में इन चर्चाओ की रिपोर्ट निशस्त्रीकरण आयोग को दे दी गई जिसके १२ सदस्य हैं—ग्यारह सुरक्षा परिषद के सदस्य और एक कनाडा।

इस सम्मेलन में जो भी समझौता हुआ था तो उसमें निरीक्षण और नियन्त्रण के प्रश्न पर रूस तथा पश्चिमी शक्तियो के बीच मतभेद उत्पन्न हो गया।

फ्रास, कनाडा अमेरिका और ब्रिटेन ने निशस्त्रीकरण समझौते के आधार-रूप निम्नलिखित सिद्धातो को प्रस्तुत किया

निशस्त्रीकरण की क्रिया शनै शनै हो, जिसका प्रारम्भ अभिसामयिक (कन्वेंशनल) सशस्त्र शक्ति में कमी से हो और उचित स्थिति पर आणविक शस्त्रो के उत्पादन को रोकने तक यह क्रिया चलती रहे। एक प्रभावकारी अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण होगा, जिसमें प्रारम्भ से हवाई पर्यवेक्षण भी सम्मिलित रहेगा। यह कार्य क्रम एक के वाद एक धीरे-धीरे प्रगति करेगा। एक स्थिति से दूसरी स्थिति तक पहुचने मे कितना समय लगे यह उस वात पर निर्भर होगा कि पिछली हरेक स्थिति

थी। तथापि सन्तोषपूर्ण ढंग से हो सकी या नहीं तथा इसी बड़ी राजनीतिक समस्याओं के समाधान द्वारा पारस्परिक विश्वास भावना में कितनी वृद्धि हुई। यदि शान्ति को खतरा उत्पन्न हो जाय या कोई बड़ा राष्ट्र अपना दायित्वों को निभाने में असफल रहे तो तमाम योजना को रद्द करने की व्यवस्था भी रखनी चाहिए।

रूसी प्रतिनिधि [illegible] ने पश्चिमी योजना की तीव्र आलोचना की। उन्होंने निःशस्त्रीकरण के कार्यक्रम को बड़ी राजनैतिक समस्याओं के समाधान के साथ मिलाने तथा हवाई-निरीक्षण शीघ्र ही करने के प्रस्ताव पर आपत्ति प्रकट की। उनके विचार में पश्चिमी मित्र निःशस्त्रीकरण को अनिश्चित काल तक टाल देंगे और, जैसा कि उन्होंने आगे कहा, इसके लिए भारत की [illegible] बना देंगे। इसके विपरीत रूसी प्रतिनिधि की मांग यह थी कि निःशस्त्रीकरण के कार्यक्रम का प्रारम्भ अन्तर्राष्ट्रीय समझौते से शक्ति प्रसार और आणविक शस्त्रों के प्रयोग के विरुद्ध स्पष्ट घोषणा से किया जाय।

पश्चिमी शक्तियों ने उत्तर में कहा कि कोई भी देश निःशस्त्रीकरण नहीं करेगा जब तक उसे यह विश्वास न हो जाय कि समझौते से बाकी दूसरे राष्ट्र भी अनुसार कार्य कर रहे हैं। पर्याप्त नियन्त्रण के बिना किसी भी राष्ट्र का विश्वास नहीं रहेगा। नियन्त्रण का कोई भी कितना ही उदार [illegible] निरीक्षण [illegible] पूर्ण [illegible] है [illegible] राष्ट्रों के [illegible] की पूर्णतया जानकारी रखने में सफल नहीं हो सकता। पश्चिमी शक्तियों का कहना था, इसी तरह राजनीतिक समस्याओं को इससे अलग छोड़ने का अर्थ है [illegible] निःशस्त्रीकरण को सार्थक बनाने के लिए अनुकूल वातावरण का होना भी आवश्यक है। [illegible] राष्ट्रों के [illegible] भी [illegible] नहीं है कि वे [illegible] क्योंकि [illegible] राजनीतिक समस्या [illegible] जब तक नहीं सुलझायी जाती है [illegible] तब तक [illegible] नहीं [illegible]।

[illegible] विशेष प्रदर्शित किया। [illegible]

प्रारभ से ही आयोग ने यह स्वीकार किया

"अ तिम अणु-ईधन को शातिकारी प्रयोगो में लाया जाय या विनाशकारी प्रयोगो में—उत्पादक रीतिया अणु-आयुध बनाने की अग्रिम अवस्था तक एक जैसी और अभिन्न है। इस प्रकार, शातिकारी उद्देश्यो के प्रयोग को अणु-शक्ति द्वारा सुनिश्चित करने, राष्ट्रीय युद्धास्त्रो में से अणु-अस्त्रो को समाप्त करने तथा जिन राष्ट्रो ने इस सम्बन्ध में स्वीकृति प्रदान कर दी है, उनकी षड्यन्त्रो और सधि-उल्लघनो के सकटो से रक्षा करने के लिए अणु-शक्ति पर नियत्रण अवश्य ही केवल एक ही नियत्रण और निरीक्षणकारी सगठित अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली द्वारा होना चाहिए, जिसका उद्देश्य इन सबधित उद्देश्यो को भली प्रकार कार्यान्वित करना हो।"

इस तथ्य ने आयोग को 'नियत्रणो' के विकास पर ध्यान केंद्रित करने की स्थिति में पहुचाया। १४ जून, १९४६ को, न्यूयार्क में अणु-शक्ति-आयोग की पहली बैठक, अमेरिका के श्री बर्नार्ड बारुच की अध्यक्षता में हुई। अणु आयुधो पर प्रतिबध तथा नियत्रण के लिए एक राष्ट्र सघीय अणु विकास अधिकार-सस्था स्थापित करने के लिए अमेरिका ने प्रस्ताव रखा, जबकि रूस ने इस बात पर जोर दिया कि सर्वप्रथम अणु-सामग्री के भडार को नष्ट करने पर समझौता हो जाय, इसके बाद नियत्रण हो। सम्मितियो में इस मतभेद के कारण जटिल गत्यवरोध उत्पन्न हो गया। मई, १९४८ में आयोग ने कहा कि वह ऐसी विषमस्थिति में पहुँच गया है कि उसे भग नही किया जा सकता, साथ ही उसने अपनी असफलता भी स्वीकार की। अगले चार सालो में नियत्रणकारी सस्था के सबध में सर्व-सम्मत हल तक पहुँचने की रचमात्र भी आशा दिखाई नही दी। अतएव, शातिकारी उद्देश्यो के लिए अणु-शक्ति के प्रयोग पर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के विकास की दिशा में कुछ भी नही किया गया।

८ दिसम्बर, १९५३ को राष्ट्रपति आइजनहावर ने सयुक्त राष्ट्रसघ की छत्रछाया में अणु-शक्ति-सस्था की स्थापना का प्रस्ताव महासभा के सामने रखा, जो ऐसे उपाय निकाले जिससे अणु-सामग्री को मानव-जाति के कल्याणकारी उद्देश्यो में प्रयोग किया जा सके। इस सस्था को एक सचयकारी सस्था (बैंक) का रूप दिया गया, जिसका काम उस समस्त अणु-सामग्री को एकत्रित करना तथा उसकी रक्षा करना था, जो उसे विभिन्न राष्ट्रो से उस सीमा तक प्राप्त हो जिस सीमा तक उन राष्ट्रो की साधारण समझ अनुमति दे। साथ ही उस सस्था का यह भी दायित्व होगा कि यह कृषि, औषध तथा विद्युत-शक्ति के क्षेत्रो मे अणु-शक्ति के प्रयोगो का अध्ययन करे और उनकी सिफारिश करे। महासभा के नवें सत्र (१९५४) में आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, कनाडा, फ्रास, दक्षिण अफ्रीका सघ, इगलैंड तथा अमेरिका ने अन्तर्राष्ट्रीय अणु-सस्था तथा एक अन्तर्राष्ट्रीय शिल्पिक सम्मेलन बुलाने के

सदन में एक संयुक्त प्रस्ताव उपस्थित किया। संस्था की स्थापना के लिए वार्ताएँ आरम्भ हुईं। परन्तु उनकी प्रगति दुस्ता से उन्हीं सात राष्ट्रों के हाथ में रही जिन्होंने प्रस्ताव प्रेषित किया था। लेकिन अमेरिकी देशों तथा रशिया ने जो प्रस्तावित अन्तर्राष्ट्रीय आणविक एजेंसी के कार्यों का विवरण गुप्त रूप से उल्लिखित होगा। वे तमाम राज्य जो आरम्भ में समझौते पर अपनी स्वीकृति दे चुके हैं एजेंसी के सदस्य होंगे और उनके अतिरिक्त और सदस्यों को भी शामिल करने की व्यवस्था होगी। सदस्यों को एजेंसी का सहयोग के रूप में आवश्यक सामग्री प्रस्तुत करना, सलाह देने, वित्तीय सहयोग देने, स्वतन्त्र रूप से काम के लिये सुविधायें तथा शान्तिपूर्ण अनुसन्धानात्मक कार्यों में अन्य देशों को सहायता प्रदान करने का भार ग्रहण करना होगा।

यद्यपि संयुक्त राष्ट्रसंघ और एजेंसी के सम्बन्धों के विषय में कोई समझौता नहीं हुआ तथापि असेम्बली ने एक प्रस्ताव द्वारा केवल यह निर्णय किया कि एजेंसी की स्थापना तथा सम्बन्ध के विषय में संयुक्त राष्ट्रसंघ से कोई समुचित ढंग से समझौता करके हल की जायगी। समझौता के इस प्रकार की एजेंसी के लिये एक परिनियम प्रारूप तैयार किया और अप्रैल १९५५ में यह आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, कनाडा, फ्रांस, पुर्तगाल, दक्षिण अफ्रीकी संघ और ब्रिटेन के पास भेजा गया। केवल दो प्रश्न जिन पर कोई निर्णय नहीं किया जा सका ये थे- (१) क्या एजेंसी का प्रत्येक सदस्य एक एक मत का हकदार होना चाहिये अथवा आणविक विकास के परिमाण के अनुसार मतों का निर्धारण होना चाहिये और (२) क्या संयुक्त राष्ट्रसंघ और एजेंसी का परस्पर कैसा सम्बन्ध होना चाहिए।

से पहले ही से हमारी अणु शक्ति कार्यक्रम मे सहयोग के विकास के लिये विभिन्न कई देशो मे वार्ता हो चुकी थी।

१९५४ मे बेल्जियम, फ्रास, इटली, नीदरलैंड, नार्वे, स्वीडन, स्विटजरलैंड और ब्रिटेन ने आणविक शक्ति के अनुसधान मे सहयोग के विकास तथा उसे उद्योगो में प्रयोग करने के लिये यूरोपीय अणु शक्ति सोसायटी की स्थापना की। एक वर्ष पूर्व इन राज्यो ने डेनमार्क, यूनान, जर्मनी, बेल्जियम और यूगोस्लाविया के साथ अणु शक्ति के अनुसधान के लिये उक्त यूरोपीय सस्था की स्थापना के निमित्त एक समझौता पत्र पर हस्ताक्षर किये। इसके तत्काल बाद ही अणु शक्ति के अनुसधान के लिये इस सस्था ने जनेवा मे अपनी प्रयोगशाला की स्थापना की। उन्ही दिनो १९५५ में अमरीका का २७ देशो के साथ एक समझौता हुआ जिसके अनुसार इस समझौते के हस्ताक्षरकर्त्ता प्रत्येक देश को अनुसधानिक भट्टी के प्रयोग के लिये अमरीका से पट्टे पर १३ २ पौंड सामग्री लेने का हक दिया गया। जुलाई १९५६ में भारत की प्ररुचि पर अणु शक्ति के शांतिपूर्ण प्रयोग और प्रशिक्षण मे सहयोग के तरीको पर विचार करने के लिये भारत, बर्मा, लका, इण्डोनेशिया और मिस्र के प्रतिनिधियो का बम्बई मे एक सम्मेलन हुआ। ४ अगस्त १९५६ को भारत में ३० लाख रुपये की लागत से पहली देशी भट्टी चालू हुई। भारत की यह भट्टी भारत में ही नही बल्कि एशिया मे पहली भट्टी है।

जनेवा अन्तर्राष्ट्रीय अणु सम्मेलन—जिस प्रस्ताव में उक्त अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसी का उल्लेख था उसी में सयुक्त राष्ट्रसघ के तत्वावधान में अन्तर्राष्ट्रीय टेक्निकल सम्मेलन करने का भी उल्लेख था। प्रस्ताव के अनुसार सम्मेलन का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा अणु शक्ति के शातिपूर्ण प्रयोगो के विकास के लिये साधनो की खोज करना और खास तरह से अणु शक्ति के विकास का अध्ययन तथा जीव-विज्ञान दवाइयो, आधारभूत विज्ञान जैसे टेक्निकल क्षेत्रो में जिनमें अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग बडे प्रभावपूर्ण ढग से कायम किया जा सकता है, अध्ययन करना है। सम्मेलन का आयोजन करने का उत्तरदायित्व सेक्रेटरी जनरल और एक सलाहकार समिति पर होगा, जिसमे ब्रेजिल, कनाडा, फ्रास, भारत, रूस, ब्रिटेन और अमरीका के प्रतिनिधि शामिल होंगे। अगस्त १९५५ में जनेवा मे भारत के डा० होमी जे भाभा की अध्यक्षता में हुए सम्मेलन को उक्त सम्बन्ध में प्रस्ताव अथवा कोई औपचारिक कार्यवाई करने का अधिकार नही मिला था। इसका खास काम नये शक्ति साधनो की आवश्यकता तथा शक्ति उत्पादन मे अणु शक्ति के महत्व पर विचार करना, एक अणुशक्ति कारखाने का निर्माण तथा वर्तमान अणु शक्ति कारखानो मे अनुभव प्राप्त करना अणु शक्ति के स्वास्थ्य तथा सुरक्षा सम्बन्धी पहलुओ पर विचार तथा

आइसोटोपों (Isotopes) के निर्माण और उनका विज्ञान, उद्योग, कृषि, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में प्रयोग पर विचार हुआ है। सम्मेलन में लगभग ६० राष्ट्रों तथा विशेष संस्थाओं के लगभग १४ सौ वैज्ञानिकों ने भाग लिया। विशेषज्ञों ने ११०० सर्वेक्षण सामग्री सम्बन्धी कागजात प्रस्तुत किये जिनमें ४५० मौखिक प्रस्तुत किये गये, जो बाद में सम्मेलन की तीन सरकारी भाषाओं में प्रकाशित किये गये। सम्मेलन के काम के लिये निर्धारित [illegible] वैज्ञानिक सामग्री सम्बन्धी कागजातों के प्रकाशन [illegible] के लिये रखा गया था। प्रकाशन पर [illegible] नहीं [illegible] प्रत्येक [illegible] कुछ ऊँचा सम्मेलन के प्रकाशित [illegible] प्राप्त हुआ। इन [illegible] से मालूम हुआ कि विभिन्न देशों में अणु शक्ति के शान्तिपूर्ण उपयोग के विकास की स्थिति [illegible] है। सम्मेलन में प्रस्तुत [illegible] 'बम' की ओर नहीं हुयी थी।

[illegible] कि विश्व की भावी शक्ति आवश्यकताओं, [illegible] और भविष्य के [illegible] की तुलना के [illegible] दृष्टि से [illegible] प्रश्नों पर किये गये निर्णयों में [illegible] था। विश्व में अतिरिक्त शक्ति की आवश्यकता [illegible]

शक्ति से काफी लाभ होगा। आज जहाँ ५ करोड टन कोयला इस्तेमाल किया जाना है वहा अरणु शक्ति से केवल ६० हजार टन कच्ची धातु से जरूरत पूरी हो सकेगी। उन देशो को जहा शक्ति के अन्य साधनो का अभाव है वहा अणु शक्ति आसानी से ले जायी जा सकती है और वितरित की जा सकती है। प्रमुख वैज्ञानिक आइस्टाइन के अनुसार एक ग्राम तत्व का समूल विनाश २ करोड टन कोयले के बराबर ताकत पैदा कर सकेगा। इस का अर्थ यह हुआ कि प्रतिवर्ष १३० किलोग्राम या २८७ पौंड तत्व नष्ट करने से विश्व की वर्तमान आवश्यकतायें पूरी हो सकेंगी। फिर भी तत्व का सम्पूर्ण विनाश अभी सम्भव नही है। इसके अतिरिक्त शक्ति के उत्पादन के लिये अणु शक्ति के विशाल कारखानो के निर्माण की बडी भारी समस्या है, जिसमें अणु भट्टी, रेडियेशन शिल्ड, अनकन्वेंशनल पम्प, बेकार रेडियो सक्रिय तत्वो को नष्ट करना, विकीर्ण मापक यत्र तथा इस्तेमाल हुए ईंधन को पुन प्रयोग लायक बनाना आदि शामिल है।

सम्मेलन की एक विशेष रिपोर्ट भावी कार्यवाई सम्बन्धी प्रस्तावो के साथ सयुक्त राष्ट्रसघ के तमाम सदस्यो के पास भेज दी गई है।

सयुक्त राष्ट्रसघ के लिए अणुविकीर्ण की समस्या निरन्तर बडे महत्व का विषय बनती जा रही है। औपचारिक रूप से ८ अप्रैल १९५४ को प्रथम बार यह समस्या निशस्त्रीकरण आयोग के समक्ष पेश की गई। भारत ने इस सिलसिले में एक चार सूत्री कार्य-क्रम रक्खा जिसमें एक भावी विस्फोटो सम्बन्धी यथा-पूर्व समझौता तथा दूसरी बात इन शस्त्रो के प्रभाव के विषय में प्राप्त तथा गुप्त जानकारियो का प्रचार था। यह प्रश्न सरक्षण परिषद में उठाया गया। अमेरिकी प्रशासन के अन्तर्गत प्रशान्त द्वीपो के महत्वपूर्ण सरक्षित क्षेत्र मे मार्शलीज काग्रेस स्थगन-समिति (Holdover Committee) ने सरक्षण परिषद मे उक्त क्षेत्र में अमेरिका द्वारा अणु शस्त्रो के परीक्षण के सिलसिले मे एक विरोध-पत्र पेश किया। परिषद में मार्शलीज काग्रेस के विरोध-पत्र पर विचार करते हुए परीक्षण से वहा के निवासियो की जान और माल की क्षति पर दुख प्रकट किया और आशा प्रकट की कि भविष्य मे समुचित सावधानी बरती जायेगी। अणुविकीर्ण के प्रश्न पर अणु शक्ति के शान्तिपूर्ण प्रयोगो के सम्बन्ध में १९५५ मे हुए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में कुछ विस्तार से विचार किया गया। समस्या के सबसे महत्वपूर्ण पहलुओ में से इस पहलू पर कि अणु-विकीरण का प्रभाव मानव के स्वास्थ्य और सुरक्षा पर कैसा पडेगा जनरल असेम्बली के आगामी अधिवेशन मे विचार किया जायेगा। अमेरिका ने आगामी अधिवेशन की कार्य-क्रम सूची मे शामिल करने के लिए एक कार्य-क्रम प्रस्तुत किया है जिसमे इस विषय के सम्बन्ध में प्राप्त सूचनाओ को सम्बद्ध करने का उल्लेख है। कार्य-क्रम

में यह भी कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ [illegible] एक उचित संस्था है जो सरकारों द्वारा वर्तमान परीक्षणों के परिणाम के आधार पर प्रस्तुत रिपोर्टों का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संग्रह तथा उन्हें प्राप्त करने की व्यवस्था कर सकती है। ब्रिटेन के मेडिकल रिसर्च कौंसिल द्वारा हाल में प्रकाशित 'आणविक तथा [illegible] सम्बन्धी विकिरण [illegible] को खतरे' रिपोर्ट से पता चलता है कि यदि आणविक विकिरण पर नियन्त्रण रखने के लिए समुचित सुरक्षात्मक कार्यवाही की गई तो भय का कोई कारण नहीं। फिर भी कुछ तत्व ऐसे हैं जो काफी चिन्ता का विषय [illegible] हैं। इनमें सबसे मुख्यतम Strontium-90 है जिसके फैलने से विनाशकारी परिवर्तन हो जाता है।

अस्वशासित जनता की समस्याएँ

संयुक्त राष्ट्रीय घोषणा-पत्र की धाराएँ [illegible] सम्बन्धी धाराओं [illegible] अधिक प्रगतिशील हैं। सबसे उल्लेखनीय [illegible] क्रियान्वय के क्षेत्र में है। [illegible] के अनुसार [illegible] उपनिवेश [illegible] किन्तु [illegible] देशों के उन उपनिवेशों [illegible] था। घोषणा-पत्र के अनुसार [illegible] परिषद की स्थापना की गई है [illegible] जो स्थायी [illegible] है। [illegible] के आधार पर [illegible] देशों के उपनिवेशों पर शासन करता [illegible] रिपोर्ट नियमित रूप से [illegible] होती है। इन रिपोर्टों पर [illegible] [illegible]

[illegible]

अन्तर्राष्ट्रीय [illegible]

से और यदि सामरिक महत्व का क्षेत्र है तो सुरक्षा परिषद से उसका सम्बन्ध होगा। सरक्षित क्षेत्र तीन श्रेणियो मे विभाजित किये गये है

१ पुराने अधिदिष्ठ क्षेत्र जैसे कि वह १९४५ मे राष्ट्रसघ के प्रतिश्रव के निर्माण के समय थे।

२ द्वितीय विश्व युद्ध में शत्रु देशो जापान और इटली से जीते गये क्षेत्र।

३ वे क्षेत्र जो सम्बन्धित राज्यो द्वारा स्वेच्छा से सरक्षण व्यवस्था के मातहत कर दिये गये है।

१९५६ तक किसी भी राज्य ने अपना उपनिवेश सरक्षण परिषद में निरीक्षण के मातहत नही किया। साम्राज्यवादी राष्ट्र अतलातक घोषणा पत्र और युद्ध काल के अन्य वायदो को आसानी से भूला बैठे। इसलिये सरक्षित क्षेत्र या तो जर्मनी के वे क्षेत्र है जो प्रथम विश्व युद्ध मे जर्मनी की हार के बाद प्राप्त हुए अथवा इटली और जापान के है, जो द्वितीय विश्व युद्ध में उनके पतन के बाद साम्राज्यवादियो के हाथ में आये।

सरक्षित क्षेत्रो का वितरण

प्रशासक देश	क्षेत्र	जनसख्या	सरक्षित क्षेत्र का रूप
ब्रिटेन	टगानियाका	८० लाख	साधारण क्षेत्र
	केमरून	१४ लाख	साधारण क्षेत्र
	तोगोलैंड	४ लाख	,,
फ्रांस	केमरून	३१ लाख	,,
	तागोलैंड	१० लाख	,,
बेल्जियम	रुआडा-उरुडी	४१ लाख	,,
न्यूजीलैंड	पश्चिमी समोआ	९२ लाख	,,
आस्ट्रेलिया	न्यूगियाना	१२ लाख	,,
	नोरू	३ हजार	,,
इटली	सोमालीलैंड	१३ लाख	,,
अमरीका	प्रशान्तद्वीप	५८ हजार	सामरिक महत्व का क्षेत्र

इस प्रकार अफ्रीकी सरक्षित क्षेत्र जो २१ लाख १६ हजार ७२ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र मे फैला हुआ है उसकी आबादी १ करोड ९४ लाख है जबकि प्रशान्त क्षेत्र जो २ लाख ८५ हजार ७०९ वर्ग किलोमीटर म फैला हुआ है उसकी आबादी १३ लाख है। सरक्षित क्षेत्रो के अफ्रीकियो की आबादी और क्षेत्र क्रमश ९३ प्रतिशत और ८९ प्रतिशत है।

संरक्षण परिषद — घोषणा-पत्र के अनुच्छेद ८६ के अनुसार संरक्षण परिषद में ये सदस्य शामिल हैं (क) जिनका संरक्षित क्षेत्रों पर प्रशासन है, (ख) सुरक्षा परिषद् के वे स्थायी सदस्य (अनुच्छेद २३) जिनका संरक्षित क्षेत्रों पर प्रशासन नहीं (ग) और वे सदस्य जो संरक्षण परिषद में संरक्षित क्षेत्रों के प्रशासक तथा गैर प्रशासक सदस्यों की संख्या को बराबर रखने के लिए तीन वर्ष के लिए चुने जाते हैं। संरक्षण परिषद महासभा के आर्थिक तथा सामाजिक परिषद तथा विशेष समितियों से इससे सम्बन्धित मामलों में सहायता करती है (अनुच्छेद ६७)। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संरक्षित क्षेत्रों के प्रशासकों की संख्या पर निर्भर होने के कारण संरक्षण परिषद के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं है। १९४७ में जब संरक्षण परिषद का उद्घाटन हुआ उसमें केवल १० सदस्य थे। १९४८ में परिषद में (१) ६ प्रशासक राष्ट्र — आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, फ्रांस, न्यूजीलैंड, ब्रिटेन और अमरीका (२) सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य जिनका संरक्षित क्षेत्रों पर प्रशासन नहीं — चीन और रूस (३) संरक्षण परिषद में संरक्षित क्षेत्रों के प्रशासक राष्ट्रों की सदस्य संख्या को गैर प्रशासक सदस्यों की संख्या के बराबर रखने के लिये जनरल असेम्बली द्वारा निर्वाचित ४ सदस्य — मैक्सिको और इराक (१९४९ तक) और कोस्टारिका तथा फिलिपाइन (१९५० तक के लिये)। इसके अतिरिक्त १९५० में सोमालीलैंड पर १० वर्ष के लिये प्रशासक नियत किया गया, १९५५ तक इटली संयुक्त राष्ट्र का सदस्य नहीं था फिर भी उसे संरक्षण परिषद की कार्यवाहियों में पूर्ण भाग लेने का मौका दिया गया। लेकिन किसी मामले पर मत देने का अधिकार नहीं दिया। इटली के (१९५५ में) संयुक्त राष्ट्रसंघ में शामिल हो जाने के बाद [illegible] और गैर प्रशासक सदस्य निर्वाचित किया जायगा। इस प्रकार १९५८ में संरक्षण परिषद में १४ सदस्य हो जायेंगे।

[illegible] संरक्षण परिषद [illegible]

१. [illegible] रिपोर्टों पर विचार करना।

२. [illegible]

[illegible]

४. संरक्षित क्षेत्रों में [illegible]

१. वार्षिक रिपोर्टों पर विचार— [illegible]

सुनवाई करने का अधिकार है। सरक्षण परिषद ने सबसे पहले यह सुविधा फ्रासीसी तोगोलैंड के सिलवानस इ० ओलम्पिओ को (८ दिसम्बर १९४७ में) स्वीकार की। यह सुविधा सिलवानस इ० ओलम्पिओ को अधिकार के रूप में नही बल्कि सुविधा के तौर पर दी गई, जिसमें सिलवानस इ० ओलम्पिओ को यू जनता के एकीकरण के लिये लिखित प्रार्थना-पत्र के समर्थन में यू निवासियो के मामले को पेश करने की सुविधा दी गई। १९५५ तक ८ मौखिक सुनवाई जिनका लिखित प्रार्थना-पत्र से सम्बन्ध नही था और ४ अन्य मौखिक सुनवाई उनके पिछले प्रार्थना-पत्रो के विस्तृत व्याख्या के लिये स्वीकार की गई ।

सरक्षण प्रणाली के क्रियान्वय में एक सबसे उल्लेखनीय बात जिस पर सयुक्त राष्ट्रसघ के घोषणा-पत्र के निर्माताओ का भी ध्यान नही गया होगा, वह है जनरल असेम्वली की सरक्षण सम्बन्धी चौथी समिति द्वारा सरक्षित प्रदेशो की राजनैतिक सस्थाओ के पीडित प्राथियो को मौखिक सुनवाई की अधिक से अधिक सुविधा देना।

दक्षिण–पश्चिमी अफ्रीका के पहले के अधिदिष्ट क्षेत्र के सबध में चतुर्थ महासभा (१९४९) की चतुर्थ समिति ने माइकेल स्काट को प्रथम मौखिक सुनवाई की स्वीकृति प्रदान की तो भी सरक्षित प्रदेश के प्रथम निवासी जो निर्धारित परपरा का अनुकरण करते हुये चतुर्थ समिति के समक्ष उपस्थित हुए, सिलवानस ओलम्पिओ थ जो अखिल-यू सम्मेलन के प्रतिनिधि थे। उन्होने यू-कबीलो के एकीकरण-सवधी अपने पक्ष को छठी महासभा (१९५१) के समक्ष प्रस्तुत किया। तव से इन मौखिक सुनवाईयो की सख्या में इस प्रकार वृद्धि हुई कि इनकी जो सख्या ७वी महासभा (१९५२) मे ११ थी वही ९वी महासभा (१९५४) में बढकर १५ तक जा पहुँची। इन सुनवाईयो में से तेरह की स्वीकृति तो फ्रास तथा ब्रिटेन के प्रशासनाधीन तोगोलैंड के विभिन्न राजनीतिक दलो के प्रतिनिधियो को देदी गयी।

चतुर्थ समिति ने हर प्रार्थना पर उसके गुणो के आधार पर विचार किया है और इन प्रार्थनाओ में से अधिकाश को स्वीकृति देदी है, जिनमें महासभा से सीधी अपील के मामले भी सम्मिलित हैं। प्रशासकीय अधिकारियो ने महासभा से की जाने वाली मौखिक सुनवाईयो के लिए समस्त प्रार्थनाओ की कथित अविवेकपूर्ण स्वीकृति की एक मत मे भर्त्सना की है। तो भी यह प्रतीत होता है कि मौखिक सुनवाईयों की स्वीकृति की ओर वढती हुई प्रवृत्ति,सरक्षण परिषद में प्रशासकीय तथा गैर प्रशासकीय शक्तियो के मध्य समानता के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया है। मौखिक सुनवाईयो का महत्व इस तथ्य में प्रकट होना कि सदस्य स्वतत्रतापूर्वक प्रतिनिधियो से प्रश्न करते हैं, जिसमे

इन विषयों-सम्बन्धी प्रश्नों के सम्बन्ध में अधिकतम जानकारी प्राप्त होती है और समिति मानों राज-नीति के पहलुओं पर प्रभावपूर्ण ढंग से विचार करके उपयुक्त प्रस्ताव तैयार करती है। प्रत्येक समिति द्वारा [illegible] के सम्बन्ध में [illegible] के प्रतिनिधि भी [illegible] हैं कि [illegible] के अधिकार का [illegible] है। इन [illegible] का प्रधान [illegible] विशेष है। [illegible] के मौलिक प्रतिनिधित्व के लिए [illegible] होने से सभी के [illegible] है।

६ दोहरा मत वाले शिष्ट-मण्डल—अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाचन के क्षेत्र में सदस्य राष्ट्रमण्डल [illegible] के प्रकाशित नियमों में [illegible] परिवर्तन यह है कि [illegible] बहुमत [illegible] प्रदेशों में [illegible] दोनों का [illegible] है। [illegible] (अनुच्छेद १८०)। यद्यपि दोहरा मत वाले शिष्ट-मण्डल [illegible] [illegible] प्रकाशित और गैर-प्रकाशित [illegible] के आधार पर [illegible] है, अब से [illegible] हो गयी है। [illegible] के [illegible] दिया गया है, जिसके अनुसार [illegible] (अर्थात् [illegible]), [illegible] (ब्रिटेन तथा फ्रांस के [illegible] और [illegible]), [illegible] (जैसे [illegible] और [illegible]) में [illegible] किये गये, जिनमें विभिन्न [illegible] के [illegible]

[illegible]

सुनवाई करने का अधिकार है। सरक्षण परिपद ने सबसे पहले यह सुविधा फ्रासीसी तोगोलैंड के सिलवानस इ० ओलम्पिओ को (८ दिसम्बर १९४७ में) स्वीकार की। यह सुविधा सिलवानस इ० ओलम्पिओ को अधिकार के रूप में नही वल्कि सुविधा के तौर पर दी गई, जिसमें सिलवानस इ० ओलम्पिओ को यू जनता के एकीकरण के लिये लिखित प्रार्थना-पत्र के समर्थन में यू निवासियो के मामले को पेश करने की सुविधा दी गई। १९५५ तक ८ मौखिक सुनवाई जिनका लिखित प्रार्थना-पत्र से सम्बन्ध नही था और ४ अन्य मौखिक सुनवाई उनके पिछले प्रार्थना-पत्रो के विस्तृत व्याख्या के लिये स्वीकार की गई।

सरक्षण प्रणाली के क्रियान्वय मे एक सबसे उल्लेखनीय बात जिस पर सयुक्त राष्ट्रसघ के घोषणा-पत्र के निर्माताओ का भी ध्यान नही गया होगा, वह है जनरल असेम्बली की सरक्षण सम्बन्धी चौथी समिति द्वारा सरक्षित प्रदेशो की राजनैतिक सस्थाओ के पीडित प्रार्थियो को मौखिक सुनवाई की अधिक से अधिक सुविधा देना।

दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका के पहले के अधिदिष्ट क्षेत्र के सबध में चतुर्थ महासभा (१९४९) की चतुर्थ समिति ने माइकेल स्काट को प्रथम मौखिक सुनवाई की स्वीकृति प्रदान की तो भी सरक्षित प्रदेश के प्रथम निवासी जो निर्धारित परपरा का अनुकरण करते हुये चतुर्थ समिति के समक्ष उपस्थित हुए, सिलवानस ओलम्पिओ थे जो अखिल-यू सम्मेलन के प्रतिनिधि थे। उन्होने यू-कवीलो के एकीकरण-सबधी अपने पक्ष को छठी महासभा (१९५१) के समक्ष प्रस्तुत किया। तब से इन मौखिक सुन-वाईयो की सख्या में इस प्रकार वृद्धि हुई कि इनकी जो सख्या ७वी महासभा (१९५२) में ११ थी वही ९वी महासभा (१९५४) मे बढकर १५ तक जा पहुँची। इन सुनवाईयो में से तेरह की स्वीकृति तो फ्रास तथा ब्रिटेन के प्रशासनाधीन तोगो-लैंड के विभिन्न राजनीतिक दलो के प्रतिनिधियो को देदी गयी।

चतुर्थ समिति ने हर प्रार्थना पर उसके गुणो के आधार पर विचार किया है और इन प्रार्थनाओ में से अधिकाश को स्वीकृति देदी है, जिनमें महासभा से सीधी अपील के मामले भी सम्मिलित हैं। प्रशासकीय अधिकारियो ने महासभा से की जाने वाली मौखिक सुनवाईयों के लिए समस्त प्रार्थनाओ की कथित अविवेकपूर्ण स्वीकृति की एक मत से भर्त्सना की है। तो भी यह प्रतीत होता है कि मौखिक सुनवाईयो की स्वीकृति की ओर बढती हुई प्रवृत्ति, सरक्षण परिपद मे प्रशासकीय तथा गैर प्रशासकीय शक्तियो के मध्य समानता के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया है। मौखिक सुनवाईयो का महत्व इस तथ्य में प्रकट होता कि सदस्य स्वतत्रतापूर्वक प्रतिनिधियो से प्रश्न करते है, जिसमे

[illegible] प्राप्त [illegible], और [illegible] प्रभावपूर्ण [illegible] प्रस्ताव [illegible] करती है। [illegible] के प्रतिनिधि [illegible] है। [illegible]

८ [illegible] राष्ट्रीय [illegible] महत्वपूर्ण परिवर्तन [illegible] है। [illegible] (अनुच्छेद [illegible]) [illegible] परिवर्तनशील हो गयी है। [illegible] के अनुसार [illegible] (पंजाब, [illegible]), [illegible] (बम्बई [illegible] और [illegible]) तथा चार [illegible] (मद्रास, [illegible] और [illegible]) [illegible]

[illegible]

तागानीका (ब्रिटेन) की जनता के लिए २० या २५ वर्षो मे स्वायत्त-सरकारो की स्थापना हो जाने की मभावना है। इसने पहली बार ही सरक्षित क्षेत्रो के लिए स्वतन्त्रता के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समय-सीमा, अर्थात् निर्दिष्ट तारीखो की सिफ़ारिश की। इस प्रकार शिष्ट-मडल के सदस्यो ने राष्ट्र सघीय ध्वजा फहराते हुए आदि-निवासियो के प्रवक्ताओ तथा स्थानीय अधिकारियो से खुलकर भेंट की। इस प्रकार लोगो के हृदयो मे शिष्ट-मडल ने यह तथ्य भली प्रकार जमा दिया कि सयुक्त राष्ट्रसघ उनके कल्याण के लिए चितित है और उनकी अन्तिम स्वतन्त्रता के लिए कार्य-रत है। इस शिष्ट-मडल द्वारा यह सुअवसर प्राप्त हुआ है कि इन क्षेत्रो की सीधी और सच्ची खोज की जा सके। परन्तु इसकी सदस्यता में उदारता से काम लेना चाहिए, जिससे गैर-प्रशासकीय शक्तियो की मख्या इसमें अधिक हो सके।

दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका का स्तर—महायुद्ध से पूर्व दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका का जर्मन उपनिवेश ही एकमात्र पहले का शासनादिष्ट क्षेत्र है, जो सरक्षित क्षेत्र के रूप मे 'अन्तर्राष्ट्रीय प्रन्यास प्रणाली' के अन्तर्गत नही रखा गया है। समस्त प्रदेश मे दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका का क्षेत्रफल लगभग ३१७,७२५ वर्ग मील है, जिसमे बसने वाली ४१४,६०० की जनसख्या मे से ४८,५८८ यूरोपीय है (१९५३)। भविष्य मे दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका का स्तर क्या होगा, इस सम्बन्ध में विवाद का मूल १९१९ मे दस राष्ट्रो की परिषद् की गुप्त कार्यवाहियो मे खोजा जा सकता है। २४ जनवरी को दक्षिण अफ्रीका सघ के जनरल स्मट्स ने जर्मनी के दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका के अधिकारकरण का दावा विजित प्रदेश के बतौर किया। राष्ट्रपति विल्सन ने उनकी माग के उत्तर मे निश्चयपूर्वक कहा, "मूलभूत विचार यह होगा कि ममस्त विश्व प्रन्यासी के रूप मे शासनादेश द्वारा उस दिन तक कार्य करता रहेगा, जब तक आदि-निवासियो की सच्ची आकाक्षाओ का निश्चय न हो सके।" इस प्रकार जनता की सच्ची आकाक्षाए ही क्षेत्र को सघ में मम्मिलित करने का एकमात्र आधार है। अत समझौता 'सी' श्रेणी के शासनादेशो द्वारा उत्पन्न किया गया है जो 'लीग' के नियम के अनुबध २२ मे जैसा दिया गया है उसके अनुसार "शासनादिष्ट राज्य के अविभाज्य अग के रूप मे" प्रशासित होता है।

महासभा (१९४५-४६) के सान-फ्रासिस्को तथा लन्दन मे होने वाले प्रथम अधिवेशन मे दक्षिण अफ्रीका सघ की सरकार ने दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका को सघ-क्षेत्र मे शामिल करने का अपना दावा पुन सामने रखा। एक वर्ष पूर्व जब प्रन्यास प्रणाली अस्तित्व मे आयी, सन् १९४६ मे 'लीग आव नेशन्स' के भग हो जाने से सघ-सरकार को दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका पर अधिकार करने का आसानी से बहाना

किया गया। संघ-सरकार ने [illegible] की अपनी नीति की घोषणा दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका के निवासियों की ८५ प्रतिशत जनसंख्या की [illegible] की पुष्टि में [illegible] की। यह दावा किया गया कि २०८,८५० [illegible] ने [illegible] में मत दिया था। [illegible] ३३,५२० [illegible] ने इसका विरोध किया तथा ५६,७९० की [illegible] राय नहीं ली जा सकी। [illegible] दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका [illegible] दिया।

१९४९ में [illegible] महासभा की [illegible] दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका [illegible] संयुक्त राष्ट्रसंघ [illegible] किया। [illegible] २६ नवम्बर, १९४९ को महासभा की [illegible] समिति ने [illegible] श्री माइकेल स्काट [illegible] १९४९ में [illegible] दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका [illegible]। श्री माइकेल स्काट ने महासभा को यह [illegible] किया कि [illegible] (Referendum) [illegible]। महासभा ने यह प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को भेज दिया, जो जुलाई १९५० में इस निर्णय पर पहुँचा कि दक्षिण अफ्रीका ने जो [illegible] १९२० में ग्रहण किया था, उसके परिणामस्वरूप दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका के प्रति [illegible] अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व हैं और [illegible] संयुक्त राष्ट्रसंघ [illegible] सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने यह भी [illegible] दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका [illegible]

की, कि क्या दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका सबधी मामलो में महासभा द्वारा कार्य-प्रणाली के जो विशेष नियम अपनाए गए है वे अदालत की १९५० की राय की सही व्याख्या है। क्षेत्र-सम्बन्धी सिफारिशो को स्वीकार करने के लिए लीग परिषद् के एकमत के नियम के स्थान पर दो-तिहाई बहुमत का विशेष नियम था। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने माना कि बिना वैधानिक परिवर्तन के दो-तिहाई बहुमत का नियम एकमत के नियम का स्थान नही ले सकता। १९५६ मे सर्व प्रथम १० वी महासभा ने दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका के क्षेत्र से प्राप्त याचिकाओ सम्बन्धी कानून तथा प्रतिवदनो को स्वीकार करने का निर्णय किया है। यद्यपि सघ सरकार ने वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए इन्कार कर दिया है, तथापि सयुक्त राष्ट्रसघ द्वारा स्वय प्रतिवेदन लिखे जा रहे है और याचिकाए भी स्वीकार की जा रही है।

सोमाली लैंड— इटली के प्रशासनाधीन सोमाली लैंड का सरक्षित क्षेत्र ही एक मात्र ऐसा क्षेत्र है जो १९६० में स्वतन्त्र होना है। पिछडे हुए सोमालियो को स्वायत्त सरकार के स्तर तक ले जाने की समस्या एक दुष्कर समस्या है। १९५५ में नगरपालिका के चुनाव हुए और १९५६ में सम्पूर्ण देश में आम चुनाव करने के लिए प्रशासनिक सुधार किये गए थे। १९५४ में दौरा करने वाले शिष्ट-मडलो ने सरक्षण परिषद को सूचित किया कि "सायनिक (एक्जीक्यूटिव) उत्तरदायित्व सोमालियो को हस्तातरित करने के लिए अभी तक कोई योजना नही है।" एकमात्र यही ऐसा क्षेत्र है, जिसकी राजधानी मोगाडिस्को मे, इटली जो कि प्रशासनिक अधिकारी है, को सहायता तथा सलाह देने के लिए तीन सदस्यो का राष्ट्र-सघीय सलाहकार परिषद हमेशा उपस्थित रहता है। अभी हाल ही में इसने बताया है कि "क्षेत्र के राजनीतिक जीवन में मूल-निवासियो के भाग न लेने के कारण इस क्षेत्र के राजनीतिक भविष्य के सम्बन्ध में कोई भी भविष्यवाणी नही की जा सकती।" इस क्षेत्र के आर्थिक साधन बहुत ही अपर्याप्त तथा क्षीण है। निर्यात तो मुख्य रूप से केलो, खालो, घी, रुई तथा धूप तक ही सीमित है। क्योंकि यहा की जमीन बजर है और निवासी एक स्थान पर टिक कर नही रहते इसलिये यहा खेती का व्यवसाय भी लाभकारी नही है। १,२७०,००० की जनसख्या मे से दो-तिहाई से भी अधिक निवासी घूमने-फिरने वाले है और नितात अपढ है। १९५४ मे दौरे करने वाले शिष्ट-मडल ने अपने प्रतिवेदन में कहा "१९६० तक यदि कोई उल्लेखनीय प्रगति नही हुई तो स्वतन्त्र राज्य को वार्षिक ५ से १० लाख डालर तक की कमी का सामना करना पड सकता है। अदायगियो की शेष रकम की कमी जो १० लाख डालर तक पहुँच सकती है, यहा के केलो के लिए बाजार का अभाव, अविकसित व अप्रगतिशील अर्थ-व्यवस्था और पानी की पूर्ति तथा जो सामाजिक व शैक्षणिक सेवाएँ

प्रन्यासिता प्रशासन में प्रत्याशित की गई थी कि स्थायी बनाए रखने के लिए, पर्याप्त साधन—इन सब समस्याओं का भी नये स्वतन्त्र राज्य को सामना करना पड़ सकता है।" अगर सोमाली लैंड का एक-सत्ता-सम्पन्न राज्य बनाना है तो इस क्षेत्र की वर्तमान सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने होंगे। यहां पर भी बता देना चाहिए कि केवल ५ प्रतिशत सोमाली पढ़े-लिखे हैं और बजट की रकम में से केवल १० प्रतिशत ही शिक्षा-प्रसार के लिए रखा गया है। इथोपिया तथा सोमाली लैंड के मध्य सीमा निर्धारण की समस्या भी एक विवादास्पद प्रश्न है जिसका संतोषजनक हल न हो सका है। न्यास परिषद् का ... चाहिए कि वह चार वर्ष बाद इटली से सोमालियों को शक्ति हस्तान्तरण के लिए आवश्यक पग उठाए।

टोगोलैंड एकीकरण की समस्या - इवस तथा अन्य जातियों ने अन्तर्गत टोगोलैंड के दोनों भागों के एकीकरण का प्रश्न एक ऐसा प्रश्न है जो इस समय में महासभा के समक्ष आने वाले प्रन्यासित क्षेत्रों के सब प्रश्नों में से सर्वाधिक उलझन पूर्ण है। टोगोलैंड के सम्पूर्ण क्षेत्र में जमीन की दो लम्बी पट्टियां हैं, जिनमें से एक इंगलैंड के प्रशासित क्षेत्र है, जिसका क्षेत्रफल १३,०४१ वर्गमील है और दूसरा, जिसका क्षेत्रफल २१,००० वर्गमील है फ्रांसीसी अधिकार क्षेत्र में आता है। १९४८ में ब्रिटिश टोगोलैंड के उत्तरी तथा दक्षिणी भागों की जनसंख्या क्रमशः लगभग १८८,८३० और २२३,४३० आंकी गयी थी। फ्रांसीसी क्षेत्र में रहने वालों की जनसंख्या लगभग ९,०३९,३०३ थी।

प्रन्यास परिषद को विषय का सावधानतापूर्वक ध्यान से अध्ययन करना चाहिए और प्रत्येक क्षेत्र की स्वाधीनता के लिए एक निश्चित तिथि सुनिश्चित करनी चाहिए, जो प्रत्येक क्षेत्र की परिस्थितियो तथा वह विकास के किस स्तर पर पहुँचा है इस पर निर्भर हो।

१९५३ में महासभा ने प्रन्यास-परिषद से कहा कि वह अपने आगामी वार्षिक प्रतिवेदनो मे एक परिच्छेद "प्रन्यासित क्षेत्रो द्वारा स्वायत्त-शासन अथवा स्वाधीनता प्राप्ति के उद्देश्यो" का और सम्मिलित कर लें। इस परिच्छेद मे केवल हरेक क्षेत्र में अधिपत्र के उद्देश्यो की दिशा मे हुई प्रगति का ही निरूपण न हो अपितु प्रगति किस ढग की हुई इस सम्बन्ध में परिषद का निष्कर्ष भी उसमें दिया जाय। लेकिन १९५६ तक प्रशासनिक शक्तियो के विरोध के कारण किसी भी निष्कर्ष को ग्रहण नही किया गया। महासभा के समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले अपने वार्षिक प्रतिवेदनो में उपर्युक्त परिच्छेद को सम्मिलित करने के पक्ष में मत देने से प्रशासनिक शक्तियो ने इन्कार कर दिया है। आगामी वर्षों में यह प्रश्न उपनिवेशवादी तथा गैर उप-निवेशवादी शक्तियो के मध्य अवश्य ही एक विवाद खडा कर देगा।

जून १९५६ में फ्रास की ससद के एक निर्णय के अनुसार फ्रास के अन्तर्गत तोगोलैड प्रन्यास पूर्ण आन्तरिक स्वशासन सम्पन्न एक वैधानिक गणराज्य बन गया है। प्रतिरक्षा तथा अन्तर्राष्ट्रीय-सबधो पर फ्राँस ने अपना ही अधिकार रखा है। सितबर में निकोलस ग्रन्त्रिकी तोगोलैड के नवीन गणराज्य के प्रथम प्रधान मत्री बने तथा उन्होने फ्रासीसीयो को तोगोलैड में बने रहने तथा एक कुशल नागरिक सेवा के निर्माण मे योग देने का आह्वान किया। राष्ट्रसभा (असैंबली) के विरोधी दलो ने सयुक्त राष्ट्रसघ को तार भेजकर फ्रास प्रशासन द्वारा राष्ट्र सघीय प्रन्यास सम-झौते के विपरीत विधान को थोपने के लिए अवाछित साधनो को अपनाने के विरुद्ध विरोध प्रदर्शित किया है।

गैर-स्वशासित-क्षेत्र—प्रन्यास की धारणा अधिपत्र के ११ वे परिच्छेद में सिद्धात समाहित है। अधिपत्र में ११वे परिच्छेद को विधि रूप देने के लिये बने आयोग के अध्यक्ष के नाते अफ्रीका सघ के फील्ड मार्शल श्री स्मट्स ने सान-फ्रासिस्को मे १९४५ में कहा—

"यह योजना विषय क्षेत्र मे पुरानी प्रतिश्रव वाली योजना से अत्यधिक विशाल है। प्रन्यास का सिद्धात अब आमतौर पर लागू किया जाता है। यह तमाम परावलम्बी क्षेत्रों की समस्त परावलम्वी जनता पर लागू होता है। इसके अन्तर्गत वे सब आ जाते हैं, इसीलिए महत्वपूर्ण तथा अत्यन्त दूरगामी प्रभाव वाले सिद्धात को विस्तार दिया गया है।

अधिपत्र के अनुच्छेद ७३ का पालन इस दृष्टिकोण की पुष्टि कर देगा।

अनुच्छेद ७३ में "परतन्त्र इलाकों" के बारे में चार्टर ने निम्नलिखित घोषणा की है :—संयुक्त राष्ट्र संघ के वे सदस्य जिन पर उन इलाकों के शासन की जिम्मेदारियां हैं या होंगी, जहां लोगों ने पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता नहीं पाई है, यह स्वीकार करते हैं कि उन इलाकों के निवासियों के हितों को सबसे पहले होना चाहिए, और वे एक संरक्षण (पुण्य न्यास) के रूप में अपना यह दायित्व मानते हैं कि वर्तमान चार्टर में स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा-प्रणाली के अधीन, अधिक से अधिक इन देशों के निवासियों की भलाई करेंगे और इसके लिये उन्हें —

(क) इन इलाकों के लोगों की संस्कृति का पूरा ध्यान रखते हुए उनकी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और शिक्षा की उन्नति, उनके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार और उन्हें अत्याचारों से बचाने का पक्का प्रबन्ध करना होगा।

(ख) हर इलाके और उनके लोगों की अपनी अपनी परिस्थितियों के और उनके विकास की अवस्था के अनुसार, उनमें स्वशासन की भावना पैदा करना, उनकी राजनीतिक आकांक्षाओं का उचित ध्यान रखना, और उनकी स्वतन्त्र राजनीतिक संस्थाओं के प्रगतिशील विकास में सहायता देने का पूरा प्रबन्ध करना होगा।

(ग) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बढ़ानी होगी।

(घ) इस अनुच्छेद के बताये सामाजिक आर्थिक और वैज्ञानिक प्रयोजनों की पूर्ति के लिये, विकास के रचनात्मक कार्यों को बढ़ावा देना होगा, खोज कार्यों को प्रोत्साहन देना होगा और एक दूसरे के साथ, और जब और जहां ठीक हो विशेष कार्य करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ सहयोग स्थापित करना होगा।

(ङ) सुरक्षा और वैधानिक बातों की सीमाओं का ध्यान रखते हुए महासचिव को इन इलाकों की आर्थिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी परिस्थितियों के बारे में समय समय पर आंकड़े और सूचनायें भेजनी होंगी, जिनके लिये वे जिम्मेदार हैं।

इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि [illegible] [illegible] राजनीतिक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

श्यकता तथापि इसमें तथा प्रन्यास-प्रणाली में यह अन्तर है कि इसमें अन्तर्राष्ट्रीय सगठन के प्रति औपनिवेशिक शक्तियो की सीमित जवाबदेही है और किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षण तन्त्र के लिए किसी प्रकार की जवाबदेही नही है । औपनिवेशिक शक्तियो ने आग्रहपूर्वक अनुच्छेद २ (७), जो कि आन्तरिक अधिकार क्षेत्र-सम्बन्धी धारा है, के अन्तर्गत अपने उपनिवेशो मे किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप का विरोध किया है । अधिपत्र के अनुच्छेद ७३ (ई) के अन्तर्गत गैर-स्वशासन-प्राप्त क्षेत्रो से सूचनाओ की प्राप्ति के लिए १९४७ में संयुक्त राष्ट्र सघीय महासभा ने एक विशिष्ट समिति की स्थापना की । १९५२ में 'विशिष्ट' शब्द, जिसके अर्थ के साथ परिवर्तनशीलता की भावना जुडी थी, को हटा दिया तथा अनुच्छेद ७३ (ई) का सदर्भ भी जान-बूझ कर विलुप्त कर दिया गया, क्योकि औपनिवेशिक शक्तिया किसी भी प्रकार की राजनीतिक जानकारी प्रस्तुत करना नही चाहती थी । १९४६ में आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, डेन्मार्क, फ्रास, नीदरलैंड, न्यूजीलैंड, ब्रिटेन तथा सयुक्त राज्य अमेरिका, इन आठ देशो ने चौहत्तर गैर स्वशासन प्राप्त क्षेत्रो के सम्बन्ध में जानकारी प्रस्तुत की थी । इन क्षेत्रो की क्या परिभाषा की जाय, इस प्रश्न को प्रथम महासभा मे उठाया गया परन्तु किसी भी निर्णय पर नही पहुचा गया । जिन क्षेत्रो की जानकारी दी गयी, उनकी सख्या १९५५ में घट कर ५५ रह गयी । इस तथ्य के कारण कि बहुत से क्षेत्र पूर्ण स्वशासन-प्राप्त हो गये थे अथवा उन्हें राजधानी सम्बन्धी सविधानिक ढाचे में समानता का दर्जा दे दिया गया था, अधिकाश हालतो में जानकारी रोक दी गयी ।

१९५३ मे आठवी महासभा में सदस्य-राष्ट्रो का बहुमत नीदरलैंड की इस बात मे सहमत न हो सका कि सुरिनाम (Surinam) और अटिल्लास (Antillas) में स्वायत्त-शासन हो गया है तथा महासभा ने प्रार्थना की कि जानकारी भेजना जारी रहना चाहिए । नीदरलैंड ने ऐसा करने के लिए मना कर दिया । क्योकि स्वायत्त-शासन प्राप्त हो गया है अथवा नही इसका निश्चय करना केवल मात्र उसका ही अधिकार है । महासभा ने अपने नवें अधिवेशन में निर्णय किया कि अनुच्छेद ७३ (ई) के अन्तर्गत की जाने वाली जानकारी को रोकने के लिए प्रकाशित विज्ञप्ति का अनुशीलन किया जाना चाहिए, जिसमे विशेष जोर उस ढग पर हो, जिसके द्वारा आत्म-निर्णय का अधिकार प्राप्त किया गया है और स्वतन्त्रता से उसका उपयोग किया गया है "जो स्तर वहां की जनता को प्राप्त है या स्तर में जिस परिवर्तन की वह इच्छुक है, तत्सम्बन्धी उसकी राय, जहां तक सम्भव हो, पूरी तरह से आकने के लिए, अगर महासभा उपयुक्त समझे तो प्रशासनिक-सदस्य से समझौता करके एक

प्रभुसत्ता-हस्तातरण अविपत्र के २ अनुच्छेद के अन्तर्गत 'प्रतिनिधि शासित क्षेत्र का वर्तमान स्तर' पूर्ववत रखा जाना था कि जिससे हस्तातरण की तिथि के दो वर्ष पश्चात दोनो सरकारो की बातचीत द्वारा न्यूगिनी के भविष्य के राजनीतिक स्तर के प्रश्न का निर्णय किया जाता।

विवाद का मूल अनुच्छेद-२ की विवादस्पद व्याख्या में प्राप्त किया जाना है। डच सरकार का कथन है कि समझौते के सपूर्ण प्रकरण में वर्तमान स्तर का अर्थ है पश्चिमी न्यूगिनी पर पूर्ण प्रभुसत्ता जिसका प्रयोग वे प्रभुसत्ता हस्तातरण के पूर्व करते थे। इसके विपरीत हिन्देशिया की मान्यता यह है कि इसका अर्थ पश्चिमी न्यूगिनी पर केवल अस्थायी प्रशासनिक अधिपत्य है, जो समझौते की शर्तो के अनुसार है। हिन्देशिया सरकार ने वताया कि क्योकि प्रभुसत्ता-हस्तातरण अविपत्र ने पहले अनुच्छेद में "विनाशर्त्त" हिन्देशिया के नवीन गणराज्य का "हिन्देशिया पर प्रभुसत्ता" स्वीकार कर ली थी, अतएव पश्चिमी ईरियन को जो कि हिन्देशिया का ही एक भाग है, गैर-स्वशासन प्राप्त क्षेत्र नही माना जाना चाहिए।

१६५४ मे जव यह स्पष्ट हो गया कि विवाद का कोई भी समझौता सभव नही, तो हिन्देशिया सरकार ने महासभा मे औपचारिक प्रार्थना की कि वह इस प्रश्न पर विचार करे, जिसका समाधान न निकाला गया तो वह उस क्षेत्र में निरन्तर शाति और सुरक्षा को खतरा वना रहेगा।

प्रथम समिति मे विवाद के मध्य हिन्देशिया के प्रतिनिधि ने कहा कि "नीदरलैंड के विधान मे 'नीदरलैंड ईस्ट इडीज' शब्द का स्थान 'हिन्देशिया' ने ले लिया है। क्योकि पश्चिमी ईरियन नीदरलैंड ईस्ट इडीज का अविभाज्य अग रहा है, इसलिये अब यह हिन्देशिया का ही एक भाग होना चाहिये। जहा तक इस तर्क का सम्बन्ध है कि ईरियन-निवासी हिन्देशियाई नही, यह एक अविवेकपूर्ण तर्क है क्योकि 'हिन्देशिया' जाति-द्योतक नही, अपितु राष्ट्र-द्योतक तथा राजनीतिक शब्द है।" उसने नीदरलैंड पर आरोप लगाया कि इतना ही नही, नीदरलैंड अधिकारियो ने ईरियन जनता के कल्याण की सदा अवहेलना की तथा उस क्षेत्र में तव तक शाति नही हो सकती, जव तक यह औपनिवेशिक श्रृखला में जकडा हुआ रहेगा। हिंदेशिया सरकार अभी तक इस सम्वन्ध में नीदरलैंड से वात-चीत करने को आतुर है तथा महासभा मे केवल यही प्रार्थना कर रही है कि वह एक शातिपूर्ण हल ढूढ निकालने में हिन्देशिया को सहयोग दे।

इस समस्या के इतिहास का निरूपण करते हुए नीदरलैंड के प्रतिनिधि ने कहा कि हस्तातरण-अविपत्र ने स्पष्टतया घोषणा की है कि "यह अभी तक सम्भव नही हुआ है कि न्यूगिनी पर विरोधी पक्षो ने विचार किया हो, अतएव यह प्रश्न

विवादास्पद ही बना हुआ है।" यह भी निष्कर्ष निकाला गया कि विद्यमान परिस्थिति में कोई भी परिवर्तन नहीं होगा, जब तक कि ऐसे परिवर्तन पर दोनों पक्ष स्पष्टरूप से एकमत नहीं हो जाते। हिन्देशिया सरकार ने नीदरलैंड के इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया कि हस्तांतरण-संधि-पत्र सम्बन्धी उसकी व्याख्या के प्रश्न को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में ले जाया जाय। साथ-ही-साथ नीदरलैंड सरकार उपयुक्त समय हर ईरियन की जनता को अपने भविष्य का निश्चय करने देने के लिए तत्पर थी, परन्तु हिंदेशिया ने अपनी स्वयं की राजनीतिक महत्वाकांक्षा तथा प्रेरणा से प्रेरित होकर, जनता से उसका आत्म-निर्णय का अधिकार छीनते हुए, पश्चिम ईरियन पर अधिकारकरण के लिए प्रयत्न किया। इसलिए नीदरलैंड के प्रतिनिधि ने घोषणा की कि "यह अब किसी भी निष्पक्ष प्रेक्षक को स्पष्ट हो जाना चाहिए कि नीदरलैंड सरकार बातचीत को प्रारम्भ करने के सिलसिले में भविष्य में आने वाले किसी भी प्रस्ताव पर क्यों विचार नहीं कर सकती।"

औपनिवेशिक शक्तियों ने नीदरलैंड का समर्थन किया। उनका कथन था कि विवाद क्षेत्रीय था, जिसमें शांति को कोई खतरा नहीं था, अतएव महासभा को इसमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं था। वे अनुभव करती थे कि जनता के शैक्षणिक, सामाजिक तथा राजनीतिक विकास को बढ़ावा देने के लिए हिंदेशिया की अपेक्षा नीदरलैण्ड अच्छी स्थिति में है। हिन्देशिया का समर्थन करने वाले प्रतिनिधियों की यह मान्यता थी कि पश्चिमी ईरियन आवश्यक रूप से औपनिवेशिक समस्या है, क्योंकि ईस्ट इंडीज में डच-शक्ति का आधार उपनिवेश विजय है। उनके विचार में डचों के इस तर्क ने कि पश्चिमी ईरियन गैर स्वशासन-प्राप्त क्षेत्र है, नीदरलैंड के मामले को पक्षपातपूर्ण कर दिया क्योंकि अनुच्छेद ७३ (ई) के अन्तर्गत अधिपत्र की मंशा उपनिवेशवाद को स्थिर करने की नहीं, अपितु स्वाधीनता एवं स्वावलम्बन के उद्देश्य को बढ़ावा देने की थी। डच-सरकार के कानूनी तर्कों के बावजूद उन्होंने यह अनुभव किया कि केवल राजनीतिक स्थिति के सम्बन्ध में न्याय ही पश्चिमी ईरियन-वासियों को आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक पूर्णता की ओर अग्रसर कर सकेगा। उन्होंने दृढ़तापूर्वक स्वीकार किया कि पश्चिमी ईरियन, हिन्देशिया समझे जाने वाली राष्ट्रीय तथा राजनीतिक सत्ता का एक भाग था और है तथा समस्या को दो प्रभु-सत्ता-सम्पन्न शक्तियों के कानूनी विवाद के रूप में लिया जाना चाहिए।

विवाद की समाप्ति पर प्रथम समिति ने अर्जेनटाइना, कोस्टारिका, क्यूबा, इक्वेडोर, एल सल्वाडोर, सीरिया, भारत तथा यूगोस्लाविया द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव ग्रहण कर लिया, जिसके पक्ष में ६८ तथा विपक्ष में १४ मत आए और १० प्रतिनिधि

अनुपस्थित थे या उन्होने मत नही दिया। प्रस्ताव मे यह आशा प्रकट की गयी कि हिन्देशिया तथा नीदरलैंड दोनो विवाद को सयुक्त राष्ट्र-सघ-अधिपत्र के सिद्धातो के अनुरूप हल करेंगे। तथापि सम्पूर्ण अधिवेशन मे प्रस्ताव आवश्यक दो-तिहाई बहुमत प्राप्त न कर सका, इसलिए महासभा ने इस मामले में कोई भी फैसला नही किया। महासभा के ११ वे अधिवेशन, नवम्बर १६५६ मे हिन्देशिया द्वारा पुन इस प्रश्न को उठाया जायगा।

साइप्रस—साइप्रस समस्या, जो सयुक्त राष्ट्र-सघ के समक्ष पहली बार महासभा के नवें अधिवेशन मे आई, सर्वाधिक ध्यानाकर्षक समस्या है, क्योकि यह प्रथम और एकमात्र प्रसग है, जब सयुक्त राष्ट्र-सघ के समक्ष समस्या प्रस्तुत करते हुए अधिपत्र के अनुच्छेद १ (२) की आत्म-निर्णय की धारा की विशेष माग की गयी। साथ-ही-साथ साइप्रस का प्रश्न इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योकि बहुत से द्विअर्थी तर्क तथा विरोधाभासो को प्रकट करता है, जो आत्म-निर्णय के सिद्धात को लागू करने के प्रयत्नो के समय उठ खड़े होते है।

सक्षिप्त में साइप्रस की समस्या इस प्रकार है साइप्रस को, जिसकी ८० प्रतिशत जनसख्या मूल तथा भाषा की दृष्टि से यूनानी है, तुर्की ने १८७८ में इगलैण्ड को सौप दिया था। १९१४ में यह उपनिवेश सीधा ब्रिटिश-ताज के अन्तर्गत आ गया, तथा १९२३ की लौजान-सधि के अनुच्छेद २० के अन्तर्गत साइप्रस पर ब्रिटिश सरकार की प्रभु-सत्ता को मान्यता दे दी गयी। इस सधि का एक हस्ताक्षर-कर्त्ता यूनान भी था। ब्रिटेन के लिए साइप्रस का महत्व द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् युद्ध-योजना की दृष्टि से अत्यधिक बढ गया है, विशेषत जब कि हैफा और स्वेज का अड्डा ब्रिटेन के हाथ मे निकल गया है। साइप्रस के ५००,००० निवासियो में से ८० प्रतिशत यूनानी है, जबकि लगभग १८ प्रतिशत तुर्की है। ग्रीक-आर्थोडोक्स-चर्च के स्थानीय पादरी मकारिअस के नेतृत्व मे यूनान में विलीनीकरण के लिए एक प्रचड आन्दोलन जो 'इनोसिस' कहलाता है, साइप्रस में बढा। १९४८ मे इस द्वीप के लिए ब्रिटेन ने एक विधान दिया तथा घोषणा की कि साइप्रस मे उसका अन्तिम लक्ष्य द्वीप निवासियो को स्वायत्त-शासन की स्वीकृति देना है। साइप्रस-वासी-यूनानियो ने विधान को ठुकरा दिया तथा पहले की भाँति ही यूनान मे मिलने की चिल्ल-पुकार जारी रखी।

१९५४ में यूनान सरकार ने इस प्रश्न को सयुक्त राष्ट्र सघ मे उठाया। उसने कहा, "पिछले महायुद्ध की समाप्ति पर, सक्रियता तथा प्रभावपूर्ण समान सघर्ष मे भाग लेते हुए, तथा न्याय और स्वतत्रता के उन सिद्धातो मे विश्वास

करते हुए, जिनकी उद्घोषणा अतलांतक-अधिपत्र में की गयी थी, तत्पश्चात् जिसे संयुक्त राष्ट्र-संघ-अधिपत्र ने मान्यता दे दी, साइप्रस की जनता ने यूनान में मिलने की अपनी आकांक्षा को पुनः स्थिर किया। १९५० में ग्रीक-आर्थोडोक्स-चर्च ने एक जनमत-संग्रह आयोजित किया। ९५.७ प्रतिशत मतदाताओं ने यूनान से मिलने के पक्ष में मत दिया। जनमत-संग्रह के परिणाम तदनुसार लंदन भेज दिये गए। साइप्रस यूनान की हरेक प्रार्थना की ब्रिटिश सरकार ने उपेक्षा की है।

ब्रिटिश-प्रतिनिधि ने उत्तर देते हुए कहा कि ईसा से पूर्व चौथी सदी के अल्पकाल को छोड़कर, द्वीप कभी भी यूनान का भाग नहीं रहा। साइप्रस पर ब्रिटेन की प्रभुसत्ता को १९२३ से यूनान सहित अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हो गयी। आगे उसने कहा कि द्वीप में दो विभिन्न प्रजातीय समूह हैं—एक तुर्की बोलने वालों का, दूसरा यूनानी भाषियों का—एक ईसाइयों का दूसरा मुसलमानों का। क्या कोई भी विश्वास करता है कि तुर्की प्रजातीय समूह को अपने भविष्य निर्णय का अधिकार दिया जायगा? और इस तर्क के उत्तर में कि साइप्रस की जनता को आत्म निर्णय का अधिकार मिलना चाहिये, उसने घोषणा की, "अधिपत्र में ऐसी कोई शर्त नहीं है, जो किसी भी सदस्य राष्ट्र को, किसी भी परिस्थिति में अपने क्षेत्र को दूसरे को सौंपने को बाध्य करती हो। इसमें किसी विशेष स्थिति में या किसी विशेष प्रजातीय समूह के लिए आत्म-निर्णय की स्वीकृति देने के लिए, कोई भी स्पष्ट बन्धन नहीं है।"

यूनानी प्रतिनिधि ने प्रत्युत्तर में कहा कि ईसा से १५०० वर्ष पूर्व से साइप्रस यूनान का अंग रहा है। इसके निवासी यूनान वंश परम्परा के हैं और अपनी मातृ-भूमि से मिलना चाहते हैं। तुर्की से हुई १९२३ की सन्धि का जहां तक सम्बन्ध है, उसमें तो केवल तुर्की के समस्त अधिकारों का परित्याग विहित था, अर्थात् "इन क्षेत्रों तथा द्वीपों का भविष्य सम्बन्धित पक्षों द्वारा निर्णीत हो अथवा किया जाय।" यूनानी प्रतिनिधि ने महासभा को विश्वास दिलाया कि १८ प्रतिशत तुर्की अल्प-संख्यकों को यूनान से भयभीत होने का कोई भी कारण नहीं मिलेगा। स्वयं यूनान में तुर्की अल्प-संख्यक हैं जो समानता और स्नेह-भाव के आधार पर अपने सह-देशवासी यूनानियों के साथ रहते हैं। यूनान संयुक्त राष्ट्रसंघ से औपनिवेशिक सत्ता के उन्मादन के लिए आवेदन कर रहा है।

संक्षिप्त विवाद के पश्चात् महासभा की प्रथम समिति ने यूनान के उस प्रस्ताव को अंगीकार करने का निर्णय किया, जिसमें महासभा ने यह इच्छा प्रकट की थी कि द्वीप की जनसंख्या के सामने से आत्म-निर्णय का सिद्धान्त लागू किया जाय।

इसके वदले में समिति ने इस विषय पर आगे विचार न करने का निश्चय किया "क्योकि हाल-फिलहाल साइप्रस के प्रश्न पर कोई भी प्रस्ताव ग्रहण करना उपयुक्त नही समझा गया।"

फरवरी, १९५६ में ब्रिटेन ने 'स्वशासन का विस्तृत साधन' प्रस्तुत किया, जिसके अन्तर्गत इगलेंड की सरकार द्वीप की विदेश-नीति, प्रतिरक्षा तथा आतरिक सुरक्षा पर नियत्रण रखेगी। लेकिन साइप्रस-वासी राष्ट्रीय सगठन के प्रमुख, पादरी मकारिअस ने इसे ठुकरा दिया। मकारिअस ने माग की कि समस्त राजनीतिक अपराधियो की मुक्ति, आन्तरिक सुरक्षा पर ब्रिटेन के नियन्त्रण की समय-सीमा तथा इस बात की प्रतिश्रुति (गारन्टी) कि निर्वाचित विधान मडल में साइप्रस-वासी यूनानियो का बहुमत रहेगा। साइप्रस युवको की गुप्त सस्था 'इओका' (Eoka) के द्वारा जो हिंसक आन्दोलन किया जा रहा है उसको भी समाप्त करने से उन्होंने इकार कर दिया। आतककारी हलचलें चालू रही। मार्च ९ को पादरी मकारिअस को साइप्रस के गवर्नर जनरल हार्डिंग ने बन्दी वना लिया तथा उन्हें निर्वासित करके हिन्द महासागर के द्वीप सेकेलेस में भेज दिया क्योकि साइप्रस में "पुन शान्ति-पूर्ण स्थिति उत्पन्न करने के रास्ते में वह स्वय एक बहुत बडी रुकावट थे।" परिणाम-स्वरूप अग्रेजो के विरुद्ध हिंसा ने और जोर पकडा तथा विरोध प्रकट करने के लिए यूनान सरकार ने ब्रिटेन से राजनैतिक सबध विच्छेद कर लिये।

ब्रिटेन की साइप्रस छोडने की हिचक का प्रमुख कारण साइप्रस की युद्ध-योजना के अनुकूल स्थिति तथा द्वीप स्थित ब्रिटेन के सैन्य सस्थानो का महत्व है—विशेषतया उस स्थिति में जव ब्रिटिश सेनाएँ स्वेज नहर क्षेत्र से अभिनिष्क्रमण कर गई है। २६ जुलाई, १९५६ को स्वेज नहर के राष्ट्रीयकरण के पश्चात् आंग्ल-फ्रासीसी फौजें साइप्रस में उतारी गयी। इस वीच यूनान ने सयुक्त राष्ट्रसघ के महामन्त्री से साइप्रस के प्रश्न को महासभा के ११वें अधिवेशन की सयुक्त राष्ट्र सघीय कार्य-सूची (अजेंडा) में स्थान देने की प्रार्थना की है। १५ सितम्बर को ब्रिटिश उपनिवेश सचिव अलान लेन्नोक्स वायड ने हाउस आव कामन्स में कहा कि विश्व इतिहास की वर्तमान स्थिति में साइप्रस पर ब्रिटेन की प्रभुसत्ता, अगर हमें अपने वर्तमान दायित्वो का निर्वाह करना है, तो नितान्त अनिवार्य है।" "मध्य पूर्व में अभी हाल मे हुई घटनाओ ने इस हमारे विश्वास को और भी दृढ कर दिया है जैसा कि हमने हमेशा कहा है कि स्वतन्त्र राष्ट्रो के सामरिक सम्बन्धी हमारे हितो की रक्षा के लिए साइप्रस का वडा महत्व है।" उन्होंने घोषणा की कि फिर भी ब्रिटेन के प्रसिद्ध कानून-शास्त्री लार्ड रेडक्लिफ साइप्रस के लिए विधान बनाने में रत है। हाउस आफ कामन्स ने इस नीति पर ६५ के वहुमत से

स्वीकृति की मुहर लगा दी। इसके पक्ष में ३९८ तथा विपक्ष में २४३ मत थे। साइप्रस-वासियों के आत्म-निर्णय के अधिकार के सिद्धान्त के पक्ष विपक्ष में दिए गए तर्कों पर टिप्पणी करते हुए लन्दन के 'टाइम्स' पत्र ने अभी हाल में कहा है "विलय के विरुद्ध तर्कों में कोई भी वास्तविक औचित्य नहीं है। वे तर्क अखण्डनीय हो सकते हैं . . . .इस समस्या का समाधान तभी हो सकता है यदि ब्रिटेन बीस वर्ष तक के लिए द्वीप में वर्तमान सैनिक अड्डों को पट्टे पर लेने के बदले साइप्रस का यूनान में विलय करे। . . .भारत, हिन्देशिया, बर्मा, फारस और अन्य देशों में सन् १९४५ से अबतक जो अनुभव प्राप्त हुए हैं उनसे यह स्पष्ट है कि रक्त-पात तथा आर्थिक हानि की सम्भावनाएँ जाग्रत राष्ट्रीय भावनाओं के मार्ग में कोई भी रुकावट नहीं हैं तथा भावनात्मक तर्क ही केवल मात्र ऐसा तर्क है कि जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस प्रकार, साइप्रस विश्व के संघर्ष पूर्ण विषयों में से एक विषय बना रहेगा।"

आर्थिक समस्यायें

संयुक्त राष्ट्रसंघ अधिपत्र में वर्णित है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ रहन-सहन के उच्चतर स्तर तथा सामाजिक प्रगति और विकास में वृद्धि करेगा। हम संयुक्त राष्ट्र-संघ के आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में उसके महत्वपूर्ण क्रिया-कलापों में से कुछ का निरूपण करेंगे।

आर्थिक अध्ययन--विश्व के अधिकांश राष्ट्रों की आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में विश्वस्त आंकड़ों तथा महत्वपूर्ण जानकारी का अभाव बुद्धिमत्तापूर्ण आयोजन के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट है। संयुक्त राष्ट्रसंघ अत्यधिक आवश्यक जानकारी की पूर्ति में सहयोग कर रहा है। राष्ट्रसंघ ने अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में जितना प्रकाशन नहीं निकाला उससे अधिक संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अपने ग्यारह वर्षों में निकाला है। विशेष रूप से उल्लेखनीय वे साधारण आर्थिक सर्वेक्षण हैं, जिनको संयुक्त राष्ट्रसंघ ने प्रकाशित किया है। १९४८ में उसने 'विश्व आर्थिक स्थिति के प्रमुख लक्षण १९४५-४७' (Salient Features of the World Economic Situation 1945 47) शीर्षक से एक प्रतिवेदन प्रकाशित किया जो युद्धोत्तर काल में प्रकाशित विश्व की आर्थिक स्थिति सम्बन्धी प्रथम विस्तृत प्रतिवेदन है। १९४९ से संयुक्त राष्ट्रसंघ विश्व की आर्थिक स्थितियों के सम्बन्ध में वार्षिक प्रतिवेदन प्रकाशित कर रहा है तथा इसके साथ ही यूरोप, एशिया, सुदूरपूर्व तथा लेटिन अमरीका के वार्षिक आर्थिक सर्वेक्षणों के विवरण भी।

प्राविधिक सहायता तथा आर्थिक विकास.—१९४८ में महासभा ने आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् तथा विशेषता प्राप्त संस्थाओं से प्रार्थना की कि वे अर्द्ध-

विकसित देशो मे प्राविधिक सहायता तथा आर्थिक विकास की ओर विशेष ध्यान दें तथा साथ ही आशा व्यक्त की कि पुनर्निर्माण तथा विकास के लिए बना अन्तर्राष्ट्रीय बैंक इस प्रकार के उद्देश्यो के लिए कर्ज देगा। महासभा ने इस कार्यक्रम के निमित १९४९ के लिए २८८,००० डालर की स्वीकृति दी।

१ ताब (TAB), ताक (TAC), ता (TAA)—१९४९ में नियामक सस्था के रूप में राष्ट्रसघ ने एक मडल स्थापित किया, जिसे प्राविधिक सहायता मडल ('ताब') कहते थे तथा इसमें सयुक्त राष्ट्रसघ विशेषता प्राप्त सस्थाओ के कार्य-कारी प्रमुख सम्मिलित थे। दूसरी समिति प्राविधिक सहायता समिति ('ताक') के नाम से पुकारी गयी, जिसमें आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् के सदस्यता प्राप्त राष्ट्रो के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। महासभा ने सचिवालय की पृथक शाखा के रूप में एक प्राविधिक सहायता प्रशासन ('ता') की भी स्थापना कर दी। सैद्धातिक दृष्टि से 'ताक' 'ताब' को निर्देश नही दे सकती तथा न ही 'ताब' विशेषता प्राप्त सस्थाओ को क्योकि ये सस्थाएँ अपने कार्य करने मे स्वतन्त्र है और अपनी पृथक पृथक नीति-निर्मात्री सस्थाओ के नियन्त्रण में है। सयुक्तराज्य अमेरिका सयुक्त राष्ट्रसघ के नियमित बजट के अतिरिक्त कोष मे अधिक अनुदान देने के कारण सयुक्त राष्ट्रसघ प्राविधिक सहायता कार्य पर विशेष प्रभाव रखता है।

२ **कार्यक्रमों को वित्तपोषण**—वर्तमान स्थिति में प्राविधिक सहायता कोष के दो साधन है। एक इसके नियमित कोष से सम्बन्धित छोटा भाग तथा दूसरा विशेष अनुदान के रूप में इससे अधिक बडा हिस्सा। इस प्रकार का सर्वप्रथम अनुदान २०,०००,००० डालर का था, जिसमें अमेरिका का भाग १२,०००,००० डालर था। तो भी अब तक बुद्धिमत्तापूर्ण विस्तृत आर्थिक आयोजन में वित्तीय अनिश्चितताएँ एक बडी रुकावट है। कार्यक्रम के लिए कुल आवश्यक व्यय मे लगभग १७ प्रतिशत प्रशासनिक व्यय तथा ऐसा व्यय है, जो कार्यक्रम को चलाने में परोक्ष रूप से व्यय होता है। १९५४ में २५ ३ मिलियन डालर विशेष कोष में वास्तव मे दिए गये। १९५५ मे अनुदान के लिए जो प्रार्थनाएँ की गयी थी, उनका अनुमान ३२ ३ मिलियन डालर तक का था। अनेक परिवर्तनो के पश्चात्, प्राविधिक सहायता मडल (ता) ने १७ मिलियन डालर का मूल भूत कार्यक्रम व्यय जिसमें प्रशा-सनिक व्यय तथा सचित कोष नही है तथा जब अतिरिक्त अशदान प्राप्त हो जाए तब ९ मिलियन डालर का अनुपूरक व्यय स्वीकृत किया। इन वित्तीय अनिश्चित-ताओ का सामना करने के लिए तीन पग उठाये गए है। सर्वप्रथम, सहायता योग्य मामलो में कठोर प्रतिश्रुतियो (गारटीज) के साथ, अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से ऋण देने की प्रार्थना की गयी। कुछ उदाहरण ये है—मेक्सिको को ३४ मिलियन डालर का ऋण शक्ति-योजनाओ के वित्तीय पोषण के निमित्त, ५ मिलियन डालर में से एक मिलियन

डालर का कोलम्बिया को कृषि-यन्त्रों के लिए तथा ३८ मिलियन डालर भारत को रेल सड़क विकास के निमित्त। दूसरा, सदस्य राष्ट्रों पर दबाव डाला गया है कि वे एक वर्ष से अधिक लम्बे समय के लिए योगदान देने का वचन दें तथा कुछ ने इसे पूरा भी किया है। १९५५ में अमेरिका ने १८ मास के लिए उपादानों की स्वीकृति दी। २८ मिलियन डालर के इस कार्यक्रम में १५.५ मिलियन डालर १९५६ के लिए है। तीसरा, १९५४ में महासभा ने ३ मिलियन डालर के विशेष संचित कोष का चालू पूंजी तथा संचित कोष के रूप में फिर से निर्माण किया। इनमें १९५४-५५ के योगदान के ३ मिलियन डालर इसके अतिरिक्त हैं। १९५६ तक १२ मिलियन डालर के उच्छिन्न स्तर तक पहुंच जायगा। अल्प-विकसित देशों में अब तक प्राप्त परिणाम प्रेरणाप्रद हैं। १९५४ में १९.५ मिलियन डालर कार्यक्रम पर व्यय किये गए, जब कि सहायता प्राप्त करने वाले देशों ने ६० मिलियन डालर योजनाओं के निर्माण तथा साधनों के लिए व्यय किये। इससे आर्थिक विकास में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का मूल्य प्रमाणित होता है।

३ योजनाएँ तथा समस्याएं—सर्व श्री पीटर तथा डोरोथिया फ्रैंक के शब्दों में प्राविधिक सहायता के उपाय सरल तथा अल्प-विस्तृत से लेकर असीम जटिल तक भिन्न-भिन्न हैं, जैसे उस कार्यरत प्रतिनिधि मंडल को सहयोग प्रदान करना जिसे प्रार्थी सरकार की नागरिक सेवा प्रणाली का पुनर्संगठन करने का अधिकार दिया जाता है। कभी-कभी केवल मात्र एक विशेषज्ञ को विशेष देशों में अध्ययन-कार्य के लिए भेज देते हैं। लेकिन दो या तीन के दलों को ही बहुधा भेजा जाता है। यह विशेषज्ञ-मंडल तीन प्रकार के होते हैं (अ) सर्वेक्षण मंडल (Survey Mission), (ब) सलाहकार मंडल (Advisory Mission), (स) कार्य करने वाले मंडल (Operating Mission)। सर्वेक्षण मंडल किसी भी वास्तविक कार्यक्रम के हेतु प्रारम्भिक अनिवार्यता है लेकिन क्योंकि यह अधिक व्यय साध्य होता है, अतएव इसके भेजने की तभी सम्भावना होती है जब प्रार्थी देश इस पर होने वाले व्यय में हिस्सा बटाए। सलाहकार मंडल प्रार्थी सरकार को तत्परता से मान्य होते हैं क्योंकि इसका कार्य केवल 'सलाह' देने का है। कार्य करने वाला मंडल सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इस पर किसी योजना को पूर्ण करने तथा उस देश के निवासियों को प्राविधिक 'जानकारी' देने का उत्तरदायित्व होता है। कभी-कभी तो इसे दीर्घकाल तक रुकना पड़ता है तथा इसे आधार भूत आर्थिक तथा सामाजिक सुधारों को अपने हाथ में लेना पड़ सकता है।

हेटी संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रथम सदस्य था, जिसने प्राविधिक सहायता कार्य के लिए प्रार्थना की तथा उसका स्वागत किया। १९४८ में बारह विशेषज्ञों के सदस्

ने दो महीने तक अध्ययन कार्य किया। इन विशेषज्ञो में उष्ण कटिबन्ध में कृषि, मछली-उद्योग, औद्योगिक विकास, वित्तीय मामलो, शिक्षा तथा जन-स्वास्थ्य के विशेषज्ञ थे, जो विशेषता प्राप्त सस्थाओ तथा सयुक्त राष्ट्रसघ के सचिवालय में मे लिये गये थे। मडल का प्रतिवेदन १६४६ में प्रकाशित हुआ। इसमे बहुमूल्य सम्मितिया थीं, जिनमें दो विशेष रूप से निम्न थी, मारबियल मूलभूत शिक्षा-प्रयोग तथा चर्म रोग अथवा आश रोग के विरुद्ध अभियान—ये राष्ट्रसघ के महत्वपूर्ण कार्य है।

१६५० से सयुक्त राष्ट्रसघ ने इन देशो को प्राविधिक सहायता दी अफगानिस्तान—कृषि, उद्योग, भूगर्भशास्त्र तथा जन-प्रशासन का सवक्षण, बिलोचिस्तान—आर्थिक उत्पादन की पुनर्स्थापना के लिए सहायता, बोलीविया—लोक वित्तीय व्यवस्था, खदान, यातायात, विद्युत शक्ति, श्रम कानून, समाज-कल्याण, शिक्षा, कृषि तथा जगलात पर सलाह, ब्राजील—राष्ट्रीय आय के आकडो तथा वित्तीय विकास में सलाह, वर्मा—केन्द्रीय परिगणन सेवा की सगठना पर सलाह, चाइल—वित्त व्यवस्था में लोक-नीति, मूल्य तथा मजदूरी के स्थरीकरण तथा आर्थिक विकास का अध्ययन, डोमिनिकन गणराज्य—प्रभावशाली अ तरिक्ष विद्या-सेवा, इक्वेडर—कर, लोक वित्त व्यवस्था, सीमा-शुल्क, लोक प्रशासन तथा जनमत गणन पद्धति पर विधि-निर्माण के लिए सलाह, भारत—सामुदायिक आयोजन तथा आवास और दल-दल सुधार तथा विकास पर सम्मति, ईराक—यान-चालन सेवा की प्रति-स्थापना, लीबिया—लोक लेखाध्यक्षो का प्रशिक्षण, लेबनान—३८५ ग्रामो मे बडे पैमाने पर मलेरिया विरोधी अभियान, मेक्सिको—लोहा तथा इस्पात उद्योग मे सगठनात्मक तथा शिल्प कला-सम्बन्धी समस्याओ पर सलाह, पाकिस्तान के तार-सचार के सम्पूर्ण कार्य मे विस्तार तथा आधुनिकीकरण, पनामा की स्वास्थ्य सेवाओ में सुधार, थाइलड—परिगणन सेवा के सगठन पर सलाह।

सयुक्त राष्ट्रसघ ने एक 'साहचर्य कार्यक्रम' (फैलोशिप प्रोग्राम) को भी चालू किया है जिसके अन्तर्गत अल्प विकसित देशो के योग्यता-प्राप्त व्यक्ति दूसरे देशो की योजनाओ का अध्ययन कर सके। १६५४ में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत १५८४ शिल्प कला-दक्षो को ७१ देशो तथा क्षेत्रो में लगाया गया तथा ८६ देशो, क्षेत्रो तथा उपनिवेशो के निवासियो को १५८४ 'फैलोशिप' दी गयी। वृद्धि प्राप्त कोषो में से ३० ८ प्रतिशत एशिया तथा सुदूर पूर्व को, २६ प्रतिशत लेटिन अमेरिका को, २१ ५ प्रतिशत मध्यपूर्व को, १० प्रतिशत यूरोप को, ८ १५ प्रतिशत अफ्रीका को तथा ३ ४ प्रतिशत मिले-जुले क्षेत्रो की योजनाओ को प्राप्त हुआ। १६५५ के आधारभूत आयोजन में ८२ देशो में ८८० योजनाएँ सम्मिलित है, जिनमे १७०० से अधिक विशेषज्ञ तथा १८०० से भी अधिक फैलोशिप प्राप्त व्यक्ति लगे हुए है।

प्राविधिक सहायता कार्यक्रम के कई दूसरे प्रकार भी है, जिनमे दक्षिण पूर्व एशिया, लेटिन अमेरिका, मध्यपूर्व तथा अफ्रीकी क्षेत्रो मे प्रादेशिक योजनाए, लोक प्रशासन के प्रशिक्षण के निमित्त एक अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र तथा १६५० मे न्यूयार्क मे 'लोक कार्यकर्ता व्यवस्था' पर हुई गोष्ठी सम्मिलित है। भीषण कठिनाइयाँ तथा समस्याये ये है (१) विभिन्न संस्कृतियो में तदनुकूल व्यवहार कर सकने वाले विशेषज्ञो का चयन, (२) एक योजना के पूर्व मूल्याकन के लिए कसौटी (३) पर्याप्त साधनो की प्राप्ति तथा यथा-स्थान प्रस्थापन, (४) सभा सदस्यता (फैलोशिप्स) परिपक्वता तथा आयु-दल(age-group) की उपाधि (डिग्री)। विशेषज्ञो के उस दल का १६५१ मे दिया गया प्रतिवेदन विशेष आकर्षक है, जिसे महामन्त्री ने अल्प विकसित देशो के आर्थिक विकास के लिए साधनो के निमित्त नियुक्त किया था।

विश्व की खाद्य समस्याए —विश्व की दो-तिहाई जनसख्या को पर्याप्त भोजन प्राप्त नही होता है। अनुमान लगाया जाता है अगर बडे पैमाने पर होने वाली भुखमरी से बचना है तो आगामी पच्चीस वर्षो में अन्न-उत्पादन मे ११० प्रतिशत की वृद्धि अवश्य ही करनी होगी। इस प्रकार के ये सब तथ्य अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो की दृष्टि से आधारभूत है तथा संयुक्त राष्ट्रसघ के लिए विशेष चिन्ता के विषय है, और वह भी विशेष रूप से खाद्य तथा कृषि सगठन (FAO) के लिए, जो विशेषता प्राप्त सस्थाओ मे से एक सर्वाधिक लाभदायक सस्था है। इसने आवश्यक आकडे तथा प्राविधिक जानकारी दी है तथा विभिन्न देशो को विशेषज्ञो के प्रतिनिधि मडल भेजे है और सम्मेलनो की एक शृखला चलाई है। इसने १६५० की विश्व-कृषि गणना के दायित्व को सम्हाला तथा अन्तर्राष्ट्रीय गेहूँ समझौते का प्रालेखन तैयार किया, जिसको गेहूँ का उत्पादन करने वाले बडे देशो मे से अधिकाश देशो ने स्वीकार किया। खाद्य-कृषि-सगठन (FAO) बहुत-सी दूसरी संयुक्त राष्ट्रीय सस्थाओ के साथ रहकर कार्य करता है तथा सयुक्त राष्ट्र सघीय प्राविधिक सहायता कार्यक्रम मे प्रमुख भाग लेता है। यह अब तक विभिन्न समस्याओ की पूर्ति के लिए प्राविधिक सहायता दे चुका है, जैसे कि पशु तथा पौधो की बीमारी पर नियन्त्रण, खाद्यान्नो का भण्डार रखना, भूमि-क्षरण को रोकना तथा सुरक्षा, मछली-उत्पादन आदि। यूरोप, एशिया, सुदूर पूर्व तथा लेटिन अमेरिका मे क्षेत्रीय आयोगो ने, खाद्य-कृषि-सगठन के सहयोग से अध्ययन करने के लिए तथा तदनुसार खाद्यान्न के उत्पादन तथा वितरण, खाद और कृषि यन्त्रो मे वृद्धि के लिए संयुक्त कार्यकारी दल स्थापित किये है। खाद्य-कृषि-सगठन ने अन्तर्राष्ट्रीय चावल आयोग, बैंकाक में हिन्द प्रशान्तीय मछली-उद्योग परिषद् तथा यूरोप और लेटिन अमेरिका के लिए वन आयोग जैसी सस्थाओ को बढावा दिया है। शिशु-पोषण कार्यक्रम के पौष्टिक रूपो के लिए निर्मित अन्तर्राष्ट्रीय शिशु आपातकालीन कोष से भी कार्य करता है। 'खाद्य तथा जनता की' समस्याओ

पर विश्व-व्यापी शिक्षा को बढाने के लिए इसके पास यूनेस्को के साथ एक सयुक्त योजना है। इसका मुख्य कार्यालय रोम मे है तथा इसके निदेशक श्री बी० आर० सेन है, जो भारतीय नागरिक है तथा १९५६ में चुने गये है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (ILO) -- १९२० से अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सगठन ससार-भर में श्रम स्तरो तथा हालतो मे सुधार के लिए कार्य कर रहा है (इस पुस्तक के पृष्ठ ३४-३५ देखो)। सयुक्त राष्ट्रमघ प्रणाली के अन्तर्गत इस सगठन के कार्य क्षेत्र में विशेष रूप से श्रम-समस्याएँ आती है। लेकिन कई दूसरी सस्थाएँ भी, श्रम समस्याओं में दिलचस्पी रखती है। जिनमे आर्थिक तथा सामाजिक परिपद्, आर्थिक तथा अधियोजन (एम्पलायमेण्ट) आयोग, तथा परिपद् का जनसख्या आयोग और सचिवालय का आर्थिक विभाग उल्लेखनीय है यहाँ तक कि अन्तर्राष्ट्रीय विस्थापित सगठन भी उन श्रम समस्याओ के लिए कार्य करता है, जिनका सम्बन्ध विस्थापितो में किये जाने वाले उसके कार्य से है। इस कार्य के सीमा क्षेत्र मे देश स्थानान्तरण मे सहायता तथा पुनर्वास के कार्य आते है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के कार्य कलापो का अनुमान उन विषयो से किया जा सकता है, जिन पर युद्ध-काल के पश्चात् की कालावधि मे इसकी सिफारिशे अथवा सम्मतियाँ ग्रहण की गयी थी। ये विपय है आवश्यकता से अधिक श्रम-शक्ति का उस क्षेत्र मे स्थानान्तरण करना जहाँ इसकी अधिक माग है, श्रम-सघो के अधिकारो की रक्षा तथा विस्तार, सस्था बनाने की स्वतन्त्रता (१९४८-४९ की सम्मतिया), बलात् श्रम का मूलोच्छेदन, नाविको को सवैतनिक अवकाश, यान-चालक दल को जहाज पर रहने को स्थान, जहाज पर कार्य करने के घटे तथा मजदूरी, गैर सरकारी ठेको मे श्रम सम्बन्धी धाराएँ, मजदूरी की रक्षा, व्यावसायिक मार्ग दर्शन, प्राविधिक प्रशिक्षण केन्द्र तथा काम दिलाऊ दफ्तर का सगठन, सामूहिक रूप से सगठित होने तथा सौदा-बाजी करने के अधिकार के सिद्धान्तो को व्यावहारिक रूप देना।

यातायात तथा सचार —सयुक्त राष्ट्रसघ का यातायात तथा सचार आयोग इस प्रकार की समस्याओ पर विशेप ध्यान देता है जैसे कि हवाई तथा समुद्री सुरक्षा कार्यो मे नियामकता, एशिया तथा लेटिन अमेरिका मे आन्तरिक यातायात, वीसा प्रणाली तथा सीमा पर होने वाली औपचारिकताओ का सरलीकरण तथा मोटर यातायात और सडक के अधिनियमो में सुधार।

अन्तर्राष्ट्रीय मार्गो के नामो तथा बस या ट्रक के सीधे यातायात पर से प्रति-बन्ध हटाने जैसे विपयो मे इसमे पूर्व ही कुछ उन्नति हो चुकी है। १९४९ में एक सम्मेलन मे एक सडक मोटर यातायात अधिनियम के लिए प्रस्तावो को तैयार किया गया। मार्च १९४८ मे एक अन्तर्राष्ट्रीय सामुद्रीय सलाहकार सगठन के लिए एक

अधिनियम सयुक्त राष्ट्रसघ की विशेषता प्राप्त एक सस्था के रूप में, स्वीकार किया गया। इसका प्रमुख कार्य है सामुद्रीय तथा उन वस्तुओं की सुरक्षा, जो कि समुद्री जीवन तथा अन्तर्राष्ट्रीय जहाजरानी पर प्रभाव डालती है। अन्तर्राष्ट्रीय लोक हवाई यातायात सगठन (ICAO) ने सुरक्षा प्रबन्धकारी अधिनियमो की एक शृंखला अगीकार की है। इसने नौतरग स्टेशनों को उत्तरी अतलान्तक में जहाजो को बचाने के लिए मौसम की जानकारी रखने के काय को विस्तृत सहायता दी है। यह सगठन अन्तर्राष्ट्रीय हवाई यात्रा मे सुरक्षा वृद्धि के लिए भी महान सेवा कर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय टेली सचरण सघ (ITU) विश्व के राष्ट्रों द्वारा प्रसारण की आवश्यकताओं के लिये रेडियो आवृत्ति (Radio Frequency) को निश्चित करने की प्राविधिक समस्या को हल करने का प्रयत्न कर रहा है। इसने अन्तर्राष्ट्रीय तार तथा टेलीफोन सचार के प्रेषण के सशोधित नियमो पर सम्मति प्राप्त करने का प्रयास किया है। विश्व डाक सघ (UPU) इसके लिए हर उपाय कर रहा है कि डाक-सचार बे-रोक-टोक होता रहे, जिसके अभाव में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध किसी भी अर्थकारी दृष्टि से असम्भव है।

यूरोप के लिये आर्थिक आयोग (ECE)—२८ मार्च १९४७ को आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् ने यूरोप के लिए आर्थिक आयोग को जन्म दिया, जो सयुक्त राष्ट्रसघ की प्रथम प्रादेशिक सस्था है। तब से दो अन्य प्रादेशिक सस्थाएँ—एक, एशिया तथा सुदूरपूर्व के लिए तथा दूसरी, लेटिन अमेरिका के लिए—स्थापित की गई है, और कम-से-कम दो अन्य—मध्य पूर्व के लिए तथा अफ्रीका के लिए—विचाराधीन है। यूरोप के लिए आर्थिक आयोग (ECE) वास्तविक महत्व की कार्यकारी सस्था है तथा जितना अब तक इस पर ध्यान केंद्रित किया गया है उससे अधिक की आवश्यकता है। इसके कार्य है—यूरोप के पुनर्निर्माण के लिए सम-वद्ध कार्य सरल करना, यूरोपीय आर्थिक क्रिया-कलाप के स्तर को ऊँचा उठाना तथा यूरोपीय राष्ट्रों मे पारस्परिक आर्थिक सम्बन्ध व ससार के दूसरे राष्ट्रों से ऐसे ही सम्बन्धो को पुष्ट करने के उपायो में प्रथम पग उठाना तथा उसमें भाग लेना। लगभग इसके प्रादुर्भाव से ही यह सम्पूर्ण यूरोपीय आर्थिक सहयोग के लिए केन्द्रीय सस्था बन गया है।

छब्बीस यूरोपीय देशों, आयरलैण्ड तथा अमेरिका ने यूरोप के लिए बने इस आर्थिक आयोग में भाग लिया है, यद्यपि सयुक्त राष्ट्रीय सघ के सदस्य-राष्ट्रों को ही मत-दान का अधिकार है। इसका मुख्य कार्यालय जनेवा मे उसी स्थान पर है, जहा पहले राष्ट्र सघ (लीग आफ नेशन्स) का मुख्यालय था। इसके सचिवालय मे लगभग दो सौ सदस्य है जिनके प्रमुख कार्यकारी सचिव प्रो० गुन्नर मिडल है, जो स्वीडन

के एक प्रमुख समाज शास्त्री तथा भूतपूर्व व्यापार-मन्त्री हैं। इस आयोग (ECE) ने तीन अन्तर-सरकार-सगठनो के कार्यों को अपने हाथ में ले लिया, जिनकी युद्धोत्तर काल में ध्वस्त यूरोप के पुनर्निमाण के हेतु स्थापना की गई थी। ये सगठन थे—यूरोपीय केन्द्रीय आन्तरिक यातायात सगठन, यूरोपीय कोयला सगठन तथा यूरोप के लिए बनी आपात-कालीन आर्थिक समिति। कृषि-समस्याओ, उद्योग विकास तथा व्यापार, उद्योग तथा उत्पादन-सामग्री, कोयला, विद्युत शक्ति, इस्पात, लकडी, आन्तरिक यातायात तथा जन-शक्ति आदि विषयो के लिए निर्मित समितियाँ हैं। इनके द्वारा ही यूरोप के लिए बना यह आर्थिक आयोग आधारभूत खाद्यान्नो, खादो, औषधियो, इस्पात, कोयला, कोक, खदानो, धातु गलाने के साधन, हाई टेन्शन इन्सूलेटर्स और विशेष प्रकार का इस्पात जो बिजली का सामान बनाने के के काम आता है, गृह-निर्माण-सामग्री, बाल-बियरिंग्स, कृषि-यन्त्र, ट्रैक्टर तथा मोटर-परिवहनो, बाक्साइट, रेलवे के लिए निर्मित रेल-गाडी के डिब्बे, लकडी तथा दूसरे कच्चे माल के उत्पादन में वृद्धि करने तथा इनके वितरण में सुधार करने के लिए प्रयत्नशील है। यह आयोग (ECE) इस प्रकार अखिल यूरोपीय आत्म-सहायता के लिए एक साधन है। इसके अनेक प्राविधिक अध्ययन तथा सर्वेक्षण, सरकारो तथा व्यक्तिगत सगठनो के लिए विशेष महत्व के सिद्ध हुए हैं।

एशिया तथा सुदूरपूर्व के लिए आर्थिक आयोग (ECAFE)—सुदूर-पूर्व तथा एशिया के लिए बने 'इकोसाक' (ECOSOC) के कार्यकारी दल ने लेक-सक्सेस मे फरवरी, १९४७ में हुई बैठक में सिफारिश की कि 'इकोसाक' को एशिया तथा सुदूरपूर्व के लिए एक आर्थिक आयोग को जन्म देना चाहिए। इसके मुख्य कार्य हैं — (अ) सुदूर-पूर्व तथा एशिया के आर्थिक पुनर्निर्माण के हेतु क्रम-बद्ध कार्य को सरल बनाने के लिए उपायो मे प्रारम्भिक पग उठाना तथा भाग लेना, (ब) एशिया-तथा सुदूर-पूर्व के क्षेत्रो के अन्दर-अन्दर आर्थिक तथा प्राविधिक समस्याओ के ऐसे अध्ययन तथा खोजें करना, जिनको आयोग हाथ में लेना ठीक समझे, (स) ऐसे आर्थिक, प्राविधिक तथा आकडे-सम्बन्धी जानकारी के सग्रह, पुनर्मूल्यन तथा विस्तार के कार्य को सम्भालना, जैसे आयोग उपयुक्त समझे।

उपर्युक्त सस्था (ECAFE) का प्रथम अधिवेशन शघाई में जून, १९४७ में हुआ था। इसके प्रथम निदेशक डा० पी० एस० लोकनायन् थे। १९५६ में इनका स्थान भारत के नरसिंहम् ने ले लिया। इसका मुख्य कार्यालय बैंकाक मे है। इसकी कुछ सफलताएँ ये हैं — (१) आन्तरिक यातायात समिति की स्थापना, (२) सहायता योग्य प्रादेशिक बैठको की व्यवस्था करना, (३) उद्योग, व्यापार, वित्त, आन्तरिक यातायात, बाढ-नियन्त्रण तथा गवेषणा और आकडो के क्षेत्रो मे सलाह देना। ३१ मार्च, १९५९ तक एशिया की आर्थिक स्थिति के अन्तिम

निरूपण के अनुसार इस आयोग के सदस्य-राष्ट्रों के व्यापार मे १५.६ प्रतिशत से निर्यात मे ८३२६ मिलियन डालर तक तथा ५ प्रतिशत से आयात मे ८६२२ मिलियन डालर तक की वृद्धि १९५५ मे दिखाई देती है— निर्यात-अर्जन की वृद्धि में जापान का भाग दो तिहाई है (लोहा तथा इस्पात उत्पादन, मशीनें तथा रसायनिक पदार्थ) तथा मलाया (रबर)।

लेटिन अमेरिका के लिए आर्थिक आयोग (ECLA)—२५ फरवरी, १९४८ को 'इकोसाक' ने लेटिन अमेरिका के लिए एक आर्थिक आयोग की स्थापना की। इस आयोग के सामने मुख्य समस्या है औद्योगीकरण तथा कृषि-साधनो के आधुनिकीकरण द्वारा सीमित साधनो का उपयोग करके रहन-सहन के स्तर को उन्नत करना। इसे यह शक्ति दे दी गयी कि यह लेटिन अमेरिका के देशों के आर्थिक स्तर को उन्नत करने के लिए क्रम-बद्ध कार्य करे तथा इन राष्ट्रों के आर्थिक सम्बन्ध विश्व के दूसरे राष्ट्रों से सुदृढ करे। उसे यह अधिकार भी दिया गया कि वह आर्थिक, प्राविधिक, तथा आकडो-सम्बन्धी व्यवहारो के अध्ययनो तथा गवेषणाओ के लिए पग उठाए तथा अपने कार्यो तथा सयुक्त राष्ट्र संघ की दूसरी संस्थाओ जिनमें विशेषता-प्राप्त संस्थाए भी सम्मिलित है, के कार्यों मे नियामकता लाए। १९४८ मे लेटिन अमेरिका का आर्थिक सर्वेक्षण प्रकाशित किया। यह इस आयोग का वार्षिक प्रकाशन है जो कि इसका अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य है। १९५२ मे लेटिन अमेरिका के लिए निर्मित इस आयोग ने हाल ही की आर्थिक प्रवृत्तियो तथा आर्थिक विकास के प्रोत्साहन के साधनों का अध्ययन करने का निर्णय किया। यह आवा-गमन की सुविधाओ तथा औद्योगिक शक्ति के विकास का अध्ययन करने को भी सहमत हो गया, तथा प्राविधिक गवेषणा की अवस्था, विदेशी विनिमय सन्तुलनो तथा पनामा में मुक्त-क्षेत्र के कार्य को भी इसने स्वीकार कर लिया।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार—विश्व आर्थिक प्रतिवेदन, १९५३-५४ के अनुसार "विश्व व्यापार का कुल विस्तार १९५४ मे तनिक सा बढा; व्यापार-सचरणों (मूव मेंट्स) मे सम्यावस्था (इक्विलिब्रिअम) ज्यादा बडी हुई थी तथा मुद्रा प्रारक्षित स्थिति मे विशेषतया डालर के अभिदेश (रेफरेंस) के साथ, सुधार होता रहा।" इन सब अनुकूल प्रवृत्तियो के होने पर भी विश्व व्यापार के विस्तार मे बडी संख्या में रुकावटे है। इनमे से सर्वाधिक महत्वपूर्ण रुकावटे इस कारण से है कि द्वितीय महा-युद्ध के बाद से विश्व आर्थिक व्यवस्था का सन्तुलन बिगड गया है। प्रतिबन्धो, विनिमय नियन्त्रणो तथा उच्चतर तटकर की सहायता के बिना अधिकाश देशो की पर्याप्त चालू मुद्रा निधियों को बनाये रख सकने की असमर्थता ही अभी तक विश्व व्यापार के विस्तार को सीमित करने मे बडी भारी रुकावट है।

१९४८ से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में तटकरो को सीमा करने तथा सीमा शुल्को

व्यवस्था, नगर तथा ग्राम-योजना तथा (४) समाज-नीति तथा विकास। सयुक्त-राष्ट्र-सघ का बजट सलाहकार समाज-कल्याण सेवाओ के लिए धन देता है, जिन सेवाओ में जन-कल्याण प्रशासन, समाज-बीमा, शिशु-कल्याण तथा व्यावसायिक पुनर्वास जैसे क्षेत्रो में प्राविधिक सहायता भी सम्मिलित हैं। विभिन्न देशो में अपग व्यक्तियो को सहायता इसके कार्य का विशेपतया लोकप्रिय पहलू रहा है। समाज-सुरक्षा के क्षेत्र में अपराध की रोक, अपराधियो के साथ व्यवहार, वेश्यावृत्ति को दवाना, नैतिक परीक्षा, बाल-अपराध में कमी तथा दूसरी सम्बन्धित समस्याए आती हैं। सचिवालय का समाज कल्याण-विभाग आवास-व्यवस्था तथा नगर-गाव-योजना पर नियमित बुलेटिन प्रकाशित करता है तथा यह इस क्षेत्र में अत्यधिक कार्य कर रहा है। महासभा ने १९५० में ऊष्ण-कटिबन्ध में आवास-व्यवस्था के लिए एक प्रतिनिधि मडल भेजा, जिसने दक्षिण-पूर्वी-एशिया का दौरा "नम-ऊष्ण कटिबन्ध में नीची आय वालो के लिए आवास-व्यवस्था से सम्बन्धित प्राविधिक प्रश्नो" का पता लगाने के लिए किया। राष्ट्र-सघ ने महिलाओ तथा बालको के अनैतिक व्यापार को समाप्त करने का जो महान् कार्य अपने हाथ में लिया था, उसे सयुक्त-राष्ट्र सघ ने जारी रखा है, और उसे बढा रहा है। १९४९ में महासभा ने इस विपय से सम्बन्धित एक नया कानून स्वीकार कर लिया, परन्तु अमेरिका जैसे कुछ देश अभिपुष्ट करने में असमर्थ रहे।

सास्कृतिक क्रिया-कलाप—सयुक्त राष्ट्र सघ शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक सगठन (यूनेस्को) उन रुचियो पर ध्यान देता है, जो इसके शीर्पक से ज्ञात होती हैं। यह बुनियादी शैक्षणिक स्तरो को उन्नत करने, ज्ञान के सर्वतोमुखी विकास करने, सांस्कृतिक क्रिया-कलापो को वढावा देने, तथा अन्तर्राष्ट्रीय समझ मे वृद्धि करने के लिए प्रोत्साहित करने का प्रयत्न करता है। इसने अपना विशेप ध्यान मूलभूत शिक्षा की ओर लगाया है। इस क्षेत्र मे मार्ग-निर्देशक योजनाएँ यह हेटी तथा वगलोर मे चला रहा है। युद्ध मे ध्वस्त देशो में शैक्षणिक सुविधाओ के पुनर्निमाण तथा अल्प-विकसित क्षेत्रो मे स्तरो के सुधार मे इसकी अत्यधिक अभिरुचि है। इसने पाठ्य-पुस्तको तथा दूसरी शिक्षा सम्बन्धी सामग्री के परीक्षण तथा तद्नुसार सुधार के लिए एक कार्यक्रम अभिप्रेरित किया जिसने दो तथ्यो का उद्घाटन किया। एक तो वे पुस्तकें गुण की दृष्टि मे इतने निम्न स्तर की हैं कि यह चिन्ता का विपय है, दूसरे, बच्चो की पाठ्य-पुस्तको में सकीर्ण देशभक्ति या उग्र राष्ट्रवाद उद्वेगकारी सीमा तक है। यूनेस्को ने जनतन्त्र तथा उन मनोवैज्ञानिक तनावो के अध्ययन का प्रवन्ध किया है, जो विभिन्न राष्ट्रो की पारस्परिक सहयोग की भावना को प्रभावित करते हैं। इसने सस्कृति, जातीय धारणा तथा 'स्वतन्त्रता' (Liberty) शब्द की विभिन्न व्याख्याओ के तुलनात्मक अध्ययनो की श्रृंखला प्रारम्भ की है।

प्राकृतिक विज्ञान मे भी यूनेस्को समान रूप से सक्रिय है। इसके विज्ञान-अफसर चीन, मिस्र, भारत तथा यूरुग्वे में हैं। इसने वैज्ञानिक संघो की अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् के लिए पर्याप्त सहायता की मजूरी दी है। इसने 'हाईलीन अमेजन' (Hylean Amazon) की स्थापना मे सहायता दी तथा मरुभूमि की वृद्धि को रोकने मे विशेष रुचि ली है। रियो-डी-जनीरो, काहिरा तथा नई दिल्ली में यह क्षेत्रीय विज्ञान-कार्यकारी अफसरो का प्रबध करता है, जो प्राविधिक ज्ञान तत्परता से सुलभ करते हैं। इस प्रकार यह युद्ध-विज्ञान को मिटाने का प्रयत्न कर रहा है। यूनेस्को के सविधान की भूमिका मे लिखा है : "युद्ध का प्रादुर्भाव मानव-मस्तिष्क में होता है तथा मानव-मस्तिष्क में ही शान्ति की सुरक्षाओ का निर्माण करना चाहिए।" यूनेस्को ने उन विस्तृत क्षेत्रो में, जिनमे उसकी अभिरुचि है, विभिन्न देशो के कुछ विशेषज्ञो की सेवाओ की सूची बनाई है। इसके प्रथम दो महा-निदेशको—जुलियन हक्सले, विश्व-विख्यात ब्रिटिश वैज्ञानिक तथा जैमे टोरेस बोडेट, मेक्सिको के भूतपूर्व विदेश-मन्त्री और शैक्षणिक नेता—ने इस संस्था को प्रभावपूर्ण नेतृत्व प्रदान किया। इसका मुख्य कार्यालय पेरिस में है तथा १९५३ में इसके प्रथम अध्यक्ष भारत के उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् थे।

विश्व-स्वास्थ्य-सघ (WHO)

विश्व-भर की जनसंख्या के स्वास्थ्य को सुधारने के लिए १९४८ मे विश्व स्वास्थ्य सघ की स्थापना की गई। जब मिस्र में हैजा तथा अफगानिस्तान में १९४९ में लाल ज्वर फैला तो इसने शीघ्रता से उनका सामना किया। विश्व-स्वास्थ्य सघ ने व्यापक रोग सूचना सेवा को बढाया तथा उसे अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के स्तर पर लाने की कोशिश कर रहा है। आमतौर से, विश्व-स्वास्थ्य सघ राष्ट्र-स्वास्थ्य सेवाओ के माध्यम से कार्य करता है। इसने छ: क्षेत्रो में कार्यक्रमो को सर्वोपरि प्राथमिकता दी है—मलेरिया, गुप्त रोग, तपेदिक, वातावरण-सम्बन्धी स्वास्थ्य-शास्त्र, मातृ तथा शिशु-स्वास्थ्य तथा पोषक खुराक। कृमिनाशक दवा (DDT) के मलेरिया के विरुद्ध, पेन्सीलीन के गुप्त रोगो के, बी सी. जी टीके के तपेदिक के विरुद्ध प्रभावपूर्ण प्रयोगो ने स्वास्थ्य तथा जीवन के लिए अनवरत मानवीय संघर्ष मे नाटकीय सफलता प्रदान की है। अल्प-विकसित देशो मे यह वातावरण-सम्बन्धी स्वास्थ्य-शास्त्र के सुधार के लिए प्रयत्नशील है। स्वास्थ्य-विशेषज्ञो की राय में विश्व की ७५% से भी अधिक जनसंख्या गंदगी से उत्पन्न रोगो से पीडित है, जो मल-त्याग, अशुद्ध-जल-पूर्ति, कीड़ो तथा गन्दे दूध और दूसरे इसी प्रकार के खाद्यो से उत्पन्न होते हैं। मियादी बुखार, पेचिश, हैजा, हुकवार्म, प्लेग तथा ऐसी ही दूसरी बीमारियो से जो मृत्युए होती हैं, उनका कारण लचर स्वास्थ्य-शास्त्र है, जो अभी तक उन लोगो मे उसी ऊँचे स्तर पर भी

व्यवस्था, नगर तथा ग्राम-योजना तथा (४) समाज-नीति तथा विकास। सयुक्त-राष्ट्र-सघ का बजट सलाहकार समाज-कल्याण सेवाओ के लिए धन देता है, जिन सेवाओ में जन-कल्याण प्रशासन, समाज-बीमा, शिशु-कल्याण तथा व्यावसायिक पुनर्वास जैसे क्षेत्रों मे प्राविधिक सहायता भी सम्मिलित हैं। विभिन्न देशो में अपग व्यक्तियो को सहायता इसके कार्य का विशेपतया लोकप्रिय पहलू रहा है। समाज-सुरक्षा के क्षेत्र में अपराध की रोक, अपराधियो के साथ व्यवहार, वेश्यावृत्ति को दबाना, नैतिक परीक्षा, बाल-अपराध में कमी तथा दूसरी सम्बन्धित समस्याए आती हैं। सचिवालय का समाज कल्याण-विभाग आवास-व्यवस्था तथा नगर-गाव-योजना पर नियमित बुलेटिन प्रकाशित करता है तथा यह इस क्षेत्र में अत्यधिक कार्य कर रहा है। महासभा ने १९५० में ऊष्ण-कटिबन्ध में आवास-व्यवस्था के लिए एक प्रतिनिधि मडल भेजा, जिसने दक्षिण-पूर्वी-एशिया का दौरा "नम-ऊष्ण कटिबन्ध में नीची आय वालो के लिए आवास-व्यवस्था से सम्बन्धित प्राविधिक प्रश्नो" का पता लगाने के लिए किया। राष्ट्र-सघ ने महिलाओ तथा बालको के अनैतिक व्यापार को समाप्त करने का जो महान् कार्य अपने हाथ में लिया था, उसे सयुक्त-राष्ट्र सघ ने जारी रखा है, और उसे बढा रहा है। १९४९ में महासभा ने इस विपय से सम्बन्धित एक नया कानून स्वीकार कर लिया, परन्तु अमेरिका जैसे कुछ देश अभिपुष्ट करने में असमर्थ रहे।

सास्कृतिक क्रिया-कलाप—सयुक्त राष्ट्र सघ शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक सगठन (यूनेस्को) उन रुचियो पर ध्यान देता है, जो इसके शीर्षक से ज्ञात होती हैं। यह बुनियादी शैक्षणिक स्तरो को उन्नत करने, ज्ञान के सर्वतोमुखी विकास करने, सांस्कृतिक क्रिया-कलापो को बढावा देने, तथा अन्तर्राष्ट्रीय समझ में वृद्धि करने के लिए प्रोत्साहित करने का प्रयत्न करता है। इसने अपना विशेप ध्यान मूलभूत शिक्षा की ओर लगाया है। इस क्षेत्र मे मार्ग-निर्देशक योजनाएँ यह हेटी तथा बगलोर मे चला रहा है। युद्ध में ध्वस्त देशो में शैक्षणिक सुविधाओ के पुनर्निमाण तथा अल्प-विकसित क्षेत्रो में स्तरो के सुधार में इसकी अत्यधिक अभिरुचि है। इसने पाठ्य-पुस्तको तथा दूसरी शिक्षा-सम्बन्धी सामग्री के परीक्षण तथा तदनुसार सुधार के लिए एक कार्यक्रम अभिप्रेरित किया जिसने दो तथ्यो का उद्घाटन किया। एक तो वे पुस्तकें गुण की दृष्टि मे इतने निम्न स्तर की हैं कि यह चिन्ता का विपय है, दूसरे, बच्चो की पाठ्य-पुस्तको में सकीर्ण देशभक्ति या उग्र राष्ट्रवाद उद्वेगकारी सीमा तक है। यूनेस्को ने जनतन्त्र तथा उन मनोवैज्ञानिक तनावों के अध्ययन का प्रबन्ध किया है, जो विभिन्न राष्ट्रो की पारस्परिक सहयोग की भावना को प्रभावित करते हैं। इसने सस्कृति, जातीय धारणा तथा 'स्वतन्त्रता' (Liberty) शब्द की विभिन्न व्याख्याओ के तुलनात्मक अध्ययनो की शृखला प्रारम्भ की है।

प्राकृतिक विज्ञान में भी यूनेस्को समान रूप से सक्रिय है। इनके विज्ञान-अफसर चीन, मिस्र, भारत तथा यूरुग्वे मे हैं। इसने वैज्ञानिक सघो की अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् के लिए पर्याप्त सहायता की मजूरी दी है। इसने 'हाईलीन अमेजन' (Hylean Amazon) की स्थापना मे सहायता दी तथा मरुभूमि की वृद्धि को रोकने मे विशेष रुचि ली है। रियो-डी-जनीरो, काहिरा तथा नई दिल्ली में यह क्षेत्रीय विज्ञान-कार्यकारी अफसरो का प्रबध करता है, जो प्राविधिक ज्ञान तत्परता से सुलभ करते हैं। इस प्रकार यह युद्ध-विज्ञान को मिटाने का प्रयत्न कर रहा है। यूनेस्को के सविधान की भूमिका मे लिखा है : "युद्ध का प्रादुर्भाव मानव-मस्तिष्क में होता है तथा मानव-मस्तिष्क मे ही शान्ति की सुरक्षाओ का निर्माण करना चाहिए।" यूनेस्को ने उन विस्तृत क्षेत्रो में, जिनमे उसकी अभिरुचि है, विभिन्न देशो के कुछ विशेषज्ञो की सेवाओ की सूची बनाई है। इसके प्रथम दो महा-निदेशको—जुलियन हक्सले, विश्व-विख्यात ब्रिटिश वैज्ञानिक तथा जैमे टोरेस बोडेट, मेक्सिको के भूतपूर्व विदेश-मन्त्री और शैक्षणिक नेता—ने इस सस्था को प्रभावपूर्ण नेतृत्व प्रदान किया। इसका मुख्य कार्यालय पेरिस में है तथा १९५३ में इसके प्रथम अध्यक्ष भारत के उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् थे।

विश्व-स्वास्थ्य-सघ (WHO)

विश्व-भर की जनसख्या के स्वास्थ्य को सुधारने के लिए १९४८ में विश्व-स्वास्थ्य सघ की स्थापना की गई। जब मिस्र में हैजा तथा अफगानिस्तान मे १९४९ में लाल ज्वर फैला तो इसने शीघ्रता से उनका सामना किया। विश्व-स्वास्थ्य सघ ने व्यापक रोग सूचना सेवा को बढाया तथा उसे अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के स्तर पर लाने की कोशिश कर रहा है। आमतौर मे, विश्व-स्वास्थ्य सघ राष्ट्र-स्वास्थ्य सेवाओ के माध्यम से कार्य करता है। इसने छः क्षेत्रो में कार्यक्रमो को सर्वोपरि प्राथमिकता दी है—मलेरिया, गुप्त रोग, तपेदिक, वातावरण-सम्बन्धी स्वास्थ्य-शास्त्र, मातृ तथा शिशु-स्वास्थ्य तथा पोषक खुराक। कृमिनाशक दवा (DDT) के मलेरिया के विरुद्ध, पेन्सीलीन के गुप्त रोगो के, बी सी जी. टीके के तपेदिक के विरुद्ध प्रभावपूर्ण प्रयोगो ने स्वास्थ्य तथा जीवन के लिए अनवरत मानवीय सघर्ष में नाटकीय सफलता प्रदान की है। अल्प-विकसित देशो मे यह वातावरण-सम्बन्धी स्वास्थ्य-शास्त्र के सुधार के लिए प्रयत्नशील है। स्वास्थ्य-विशेषज्ञो की राय में विश्व की ७५% से भी अधिक जनसख्या गंदगी से उत्पन्न रोगो से पीड़ित है, जो मल-त्याग अशुद्ध-जल-पूर्ति, कीडो तथा गन्दे दूध और दूसरे इसी प्रकार के खाद्यो से उत्पन्न होते हैं। मियादी बुखार, पेचिस, हैजा, हुकवार्म, प्लेग तथा ऐसी ही दूसरी बीमारियो से जो मृत्युएं होती है, उसका कारण नचर स्वास्थ्य-शास्त्र है, जो अभी तक उन लोगो में उसी ऊँचे स्तर पर भी

उसी अवस्था में है जिस पर पिछली सदियो में था। जब तक जन-साधारण को पर्याप्त खाने को तथा बीमारी से मुक्ति नही मिलती तब तक उनसे यह अपेक्षा करना व्यर्थ है कि वे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में स्वतन्त्र मानवो के नाते क्रियात्मक भाग ले सकेंगे। दरिद्रता, बीमारी तथा दैन्यता के अर्द्ध-ढाँचे पर कोई भी आशाप्रद अथवा स्थायी राजनीतिक, सामाजिक अथवा आर्थिक ढाँचे का निर्माण नही किया जा सकता। तमाम विश्व में स्वास्थ्य की हालतो को सुधारने के प्रयत्न मे, विशेपतया अल्प विकसित देशो मे जहाँ बीमारी, अपौष्टिक खुराक तथा मृत्यु-सख्या का विस्तार भयावह रूप में अधिक है, विश्व-स्वास्थ्य सघ तथा सयुक्त राष्ट्रसघ की अन्य सस्थाए महान् मानवीय सेवाएँ कर रही हैं तथा उन समस्याओ से निबट रही हैं जो वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो में आधारभूत हैं। सितम्बर, १९५६ मे विश्व-स्वास्थ्य-सघ की प्रादेशिक समिति ने १९५८ मे सदस्य-सरकारो के सहयोग से दो सौ स्वास्थ्य योजनाएँ चालू करने का निर्णय किया, जिन पर ७ मिलियन डालर का कुल व्यय आएगा। इसे आशा है कि यह दक्षिण-पूर्वी एशिया से १९६१ तक मलेरिया का सफाया कर देगा।

नशीली दवाइयो पर नियत्रण

१९४६ में सयुक्त राष्ट्रसघ ने नशीली दवाइयो के अन्तर्राष्ट्रीय नियत्रण से सम्बन्वित राष्ट्रसघ (लीग आफ नेशन्स) की शक्तियो तथा कार्यो को सम्हाला तथा मामला आर्थिक तथा सामाजिक परिपद् को सौप दिया। जितनी अफीम दुनिया भर में उत्पन्न होती है, उसका केवल दसवाँ हिस्सा दवाइयो तथा वैज्ञानिक उद्देश्यो के लिए काम में आता था। लीग ने नशीली दवाइयो पर अन्तर्राष्ट्रीय नियमो की शर्तो के अन्तर्गत एक स्थायी केन्द्रीय अफीम मण्डल तथा एक निरीक्षक मडल की स्थापना की। इन दो सस्थाओ में एक नयी सस्था—नशीली दवाई-आयोग—और शामिल कर दिया तथा इस प्रकार इन तीनो को मिलाकर अब केवल एक नियत्रण सस्था बन गयी है। स्थायी केन्द्रीय मडल में आठ सदस्य हैं, जो सामाजिक तथा आर्थिक परिपद् द्वारा नियुक्त किये गये हैं। इसे सदस्य राष्ट्रो से प्रतिवेदन प्राप्त होते रहते हैं, जिनमें नशीली दवाइयो के कच्चे माल के आयात तथा निर्यात, उत्पादन और उपभोग के आँकडे दिए होते हैं। अभी हाल ही में इस क्षेत्र में जो नवीन प्रगति हुई है, वह है एक नया 'मसविदा' को अङ्गीकार करना, क्योकि १९४८ में ऐसी मिलावटी दवाओ के अभिनव विकास के कारण नयी स्थिति पैदा हो गई थी, जिनका समावेश पुराने कानून में नहीं होता था। ४७ राष्ट्रो ने इस ममविदे पर हस्ताक्षर किए हैं। १९४९ में तुर्की की राजधानी अकारा में अफीम का उत्पादन करने वाले मुख्य देशो की तदर्थ कमेटी की बैठक हुई तथा उसमें अन्तर्राष्ट्रीय अफीम एकाधिकार का प्रस्ताव ग्रहण

किया गया। लेकिन प्रभुसत्ता की भीषण रुकावट के कारण आयोग पर्याप्त प्रगति करने मे असमर्थ रहा। १९४९ मे महासभा ने एक जाँच-पडताल का आयोग दक्षिण अमेरिका इसलिए भेजा कि वह इस बात का अध्ययन करे कि कोको के पत्ते चबाने का वहा के लोगो पर क्या प्रभाव है। आयोग इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि कोका की पत्तिया चबाने से अवश्य हानिप्रद प्रभाव पडता है। पेरू तथा बोलिविया ने इस प्रतिवेदन को ठुकरा दिया क्योकि इससे सबधित डाक्टरी तथा मनोवैज्ञानिक पहलुओ की वैज्ञानिक गवेषणा पर्याप्त नही हुई थी। मई, १९५२ मे आयोग ने इस समस्या पर अपना अध्ययन जारी रखने का निर्णय किया तथा बोलिविया और पेरू पर कोका की पत्तियो के उत्पादन को सीमित करने का दबाव डाला गया, जिससे कोकीन और कोको का अवैध व्यापार रुक सके। आयोग दूसरी नशीली दवाओ पर भी नियत्रण लागू करने का प्रयत्न कर रहा है। सर्वाधिक प्रभावशाली कार्यक्रम जो भी सामाजिक तथा आर्थिक परिषद् के अन्तर्गत हाथ में लिया गया है, इस आयोग के क्रिया-कलाप उसी प्रभावशाली कार्यक्रम का प्रतिनिधित्व करते हैं।

सहायता तथा पुनर्वास

प्रथम महासभा के सामने सबसे बडी समस्या थी युद्ध-ध्वस्त यूरोप महाद्वीप के पुनर्वास की तथा लाखो विस्थापितो के स्वदेश-गमन या पुनर्वास की। कोरिया, फिलस्तीन, तथा हिंदचीन मे हुए सघर्षो ने सयुक्त राष्ट्र सघ के समक्ष उनके परिणामो से मुक्त करने के नवीन उत्तरदायित्व उपस्थित कर दिए। विश्व के अधिकाश भाग में जो विस्थापित आज हैं, वे द्वितीय महायुद्ध के शिकार नही हैं, अपितु पुराने राज्यो में नवीन ढग की सरकारो की स्थापना के परिणाम स्वरूप जो नये नये राज्य उत्पन्न हो गए हैं, उनके कारण हुए राजनीतिक परिवर्तनो के शिकार हैं। निम्न बातो के लिए १९४७ मे एक अन्तर्राष्ट्रीय सगठन की स्थापना हुई : (अ) स्वदेश-गमन-इच्छुक विस्थापितो को उनके अपने देशो मे भेजने, (ब) नये देशो में विस्थापितो के पुनर्वास तथा (स) जो विस्थापित पुनर्वास की प्रतीक्षा करते हुए शिविरो मे पडे हैं, उनकी देख-भाल। यह विस्थापित सगठन (IRO) १० लाख विस्थापितो को बसा चुका है। अमेरिका ने १½ लाख, इजराइल ने १⅓ लाख तथा आस्ट्रेलिया ने १ लाख, दूसरो के साथ-साथ, विस्थापितो को बसाना स्वीकार किया। फिलस्तीन पर अरब-यहूदी सघर्ष ने एक उलझन भरी समस्या उत्पन्न कर दी। १९४८ में फिलस्तीन के विस्थापितो के लिए एक सयुक्त राष्ट्र सघीय सहायता-योजना की स्थापना महासभा ने की तथा यह अभी तक फिलस्तीन के आठ लाख विस्थापितो की देख-भाल कर रही है। १९५१ में अन्तर्राष्ट्रीय विस्थापित सगठन को तोड दिया गया तथा इसका स्थान विस्थापितो के लिए नियुक्त सयुक्त राष्ट्र सघीय उच्च-आयुक्त ने ले लिया। उच्चायुक्त

का कार्यालय जनेवा में है। साथ-साथ ही संयुक्त राष्ट्रीय कोरिया पुनर्निर्माण संस्था का एक महाभिकर्ता है। विस्थापितो को खपाने के कार्यक्रम में विस्थापितो को कृपि, व्यापारो, छोटे व्यवसायों या धन्धो, व्यावसायिक प्रशिक्षण, मकान बनाने आदि कार्यो में लगाना सम्मिलित है। अनुमान लगाया जाता है कि कार्यक्रम को पूर्ण होने मे आगामी चार वर्ष लग जायेंगे तथा लगभग १६ मिलियन डालर का व्यय होगा। फिलस्तीन के विस्थापितो के लिए सयुक्त राष्ट्र सघ के १९५५-५६ के बजट में १२० मिलियन डालर की व्यवस्था की गयी थी। राजहीन व्यक्तियो अर्थात् विस्थापितो के स्तर का समस्त प्रश्न किसी नये समाधान का आह्वान करता है। इनकी दयनीय स्थिति पर सहानुभूतिपूर्ण ध्यान देने की आवश्यकता है, कम-से-कम उन्हें यात्रा-अधिकार-पत्र, न्यायालयो में प्रवेश, सामाजिक बीमा लाभ, कार्य करने का अधिकार, शिक्षा की सुविधाये, तथा शरण-स्थान में बने रहने का अधिकार प्रदान कराने पर तो ध्यान देना ही चाहिए। इस समस्या पर अन्तर्राष्ट्रीय विधि आयोग तथा दूसरी सयुक्त राष्ट्र सघीय सस्थाओ ने वाद-विवाद किया लेकिन आधारभूत समस्या अब तक बनी हुई है।

सयुक्त राष्ट्र सघीय अन्तर्राष्ट्रीय शिशु आपात्-कालीन कोष (UNICEF)

बहुमूल्य कार्य करने वाली इस सस्था की ४५ देशो तथा ३० से भी ज्यादा क्षेत्रो की जनता तथा सरकारो से स्वेच्छया धन, वस्तुओ तथा सेवाओ की सहायता मिलती है। अमेरिकी सरकार ने महत्वपूर्ण वित्तीय सहायता दी है। इसने शिशु तथा स्कूली-बच्चो को खुराक देने, दूध सुरक्षित रखने, डाक्टरो, नर्सो, सामाजिक कार्यकर्ताओ के प्रशिक्षण, मलेरिया तथा तपेदिक के नियन्त्रण तथा शिशु-कल्याण-सस्थाओ के उपकरण के लिए विश्व-व्यापी कार्यक्रम प्रारम्भ किया है। इसने ७० लाख बच्चो तथा गर्भवती स्त्रियो को यूरोप में तथा ५ लाख अरब-विस्थापितो को फिलस्तीन मे पूरक खुराक प्रदान की है। बीमार बालको तथा पक्षाघात मे पीडित शिशुओ के उपचार के लिए इसने अल्प-विकसित देशो को भी बहुत-से उपकरण प्रदान किये हैं।

दासता का उत्सादन

दासता-उत्मादन राष्ट्रसघ (लीग आफ नेशन्स) के समक्ष प्रमुख चिन्ता के विपयो में से एक था। १९२६ में दासता-विरोधी कानून तैयार किया गया, लेकिन अभी तक दासता का अपने विभिन्न रूपो में मूलोच्छेदन नही हो सका। १९२६ के इस कन्वेंशन को अनुपूरित करने के लिये सितम्बर १९५६ मे, आर्थिक-सामाजिक-परिपद् ने, समस्या के गहन अध्ययन के पश्चात्, एक सम्मेलन बुलाया। दासता-विरोधी सस्था ने यह अनुमान लगाया कि दुनिया भर में दासो की सख्या ११ मिलि-

यन से अधिक है, जिनमे ८ मिलियन लेटिन अमेरिका में बसते हैं तथा लगभग ५ लाख सऊदी अरब मे, जो वहाँ की अनुमानित १० मिलियन की जन-सख्या के ५ प्रतिशत हैं। सम्मेलन ने कन्वेंशन के इस प्रारूप को ४० के विरुद्ध शून्य मतो से ग्रहण कर लिया। अमेरिका, अर्जेण्टाइना तथा चाइल मतदान में अनुपस्थित रहे। इसमें यह उल्लिखित है कि दास-प्रथा वाले देशो को दासता तथा इसी प्रकार के ऐसे ही दूसरे व्यवहारो को उत्सादित करने के अपने-अपने प्रयत्नो को, विभिन्न देशो मे दासो के आवागमन को रोकने के लिये देशो के पारस्परिक सूचना-विनिमय द्वारा, तीव्र करना चाहिए। अगर कोई भी दास हस्ताक्षर-कर्त्ता-राष्ट्र के जहाज पर शरण लेता है, तो वह स्वत. मुक्त हो जायगा। कन्वेंशन मे घोषित किया गया है कि किसी भी व्यक्ति को दासत्व-पाश में बांधना अपराध होगा। उसने हस्ताक्षरकर्त्ता-राष्ट्रो पर यह बंधन लागू किया कि वे शीघ्रातिशीघ्र ऋण-बंधन, दास-वृत्ति. शिशु-श्रम का शोषण तथा निम्नलिखित उन सस्थाओ अथवा व्यवहारो का मूलोच्छेदन करें, जिनके द्वारा—(१) किसी असहाय औरत को उसके माँ-बाप, सरक्षक, कुटुम्ब या किसी दूसरे व्यक्ति या समूह पर मेहरबानी करके, रुपया-पैसा लेकर विवाह करवा के किसी भी व्यक्ति के सुपुर्द कर दिया जाता है, (२) कोई भी पति मूल्य लेकर अपनी पत्नी को किसी भी व्यक्ति को दे देता है, (३) किसी भी औरत पर उसके पति की मृत्यु के पश्चात् किसी दूसरे का अधिकार हो जाता है। हस्ताक्षरकर्त्ता राष्ट्र विवाह-योग्य कम-से-कम आयु का निर्धारण करता है तथा दोनो पक्षो की रजामन्दी के प्रयोग को प्रोत्साहन देता है। यह कन्वेंशन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के लिये बने समस्त स्वशासित न्यास, औपनिवेशिक तथा अन्य गैर-देशीय क्षेत्रो, जिनके लिये किसी भी हस्ताक्षरकर्त्ता देश का दायित्व है, पर लागू होगा।

मानवीय अधिकार तथा मूलभूत स्वतंत्रताएँ

इस विश्वास के साथ कि शांति तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता दोनो अनिवार्य हैं, सयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रवर्तको ने मानवीय अधिकारो की प्रगति के हेतु पिछली सस्था राष्ट्रसंघ (लीग आफ नेशन्स) के लिये जो कार्य आवश्यक समझा था, उससे अधिक बड़ा कार्य इस नवीन विश्व-सगठन को सौंपा है। इसके अधिपत्र में मानवीय अधिकारो के पृथक्-पृथक् सात अभिदेशो (रेफरेन्सेज) हैं तथा मानवीय अधिकारो को बढ़ाने के लिए एक विशिष्ट आयोग की स्थापना की व्यवस्था है। महासभा के प्रथम अधिवेशन की विषय-सूची में तत्सबंधी रुचि परिलक्षित हुई तथा सयुक्त राष्ट्रसंघ की पहले दस वर्षो में जिन विषयो मे अभिरुचि है, वे हैं—मूलभूत मानवीय अधिकारो तथा स्वतन्त्रताओ पर घोषणा, उत्पीडन तथा भेद-भाव, नारियो के स्तर अथवा

अधिकार, सूचना-प्राप्ति की स्वतन्त्रता, जाति-वध तथा दक्षिण-अफ्रीकी-सघ में भारतीयो के साथ व्यवहार।

मानवीय अधिकारो की सार्वभौम घोषणा

श्रीमती फ्रेंकलिन रूजवेल्ट की योग्य अध्यक्षता के अन्तर्गत ढाई वर्ष के घोर परिश्रम के पश्चात् "तमाम देशो तथा उनकी जनता के लिए समान स्तरो की प्राप्ति" के रूप में मानवीय अधिकारो की सार्वभौम घोषणा तैयार की गई। इतिहास में अपने प्रकार की इस अद्वितीय घोषणा को १० दिसम्बर १९४८ मे ४८ के विरुद्ध शून्य मतो से ग्रहण किया गया। ८ राष्ट्रो ने मतदान में भाग नही लिया, जिनमें छ तो रूसी गुट के थे तथा अन्य दो थे—साउदी अरब तथा दक्षिण-अफ्रीका-सघ।

इस घोषणा में प्रस्तावना के साथ तीस धाराएँ हैं। घोषणा-पत्र में मनुष्य के सम्मान और मूल्य को महत्व दिया गया। इसमें कहा गया कि सभी व्यक्तियो को स्वतन्त्र रहने का अधिकार है और सम्मान और अधिकारो की दृष्टि से सभी समान हैं (धारा १)। घोषणा-पत्र में उल्लिखित अधिकारो और स्वतन्त्रता के लिए सभी व्यक्ति हकदार हैं (धारा २)। सभी व्यक्तियो को जीवन, स्वतन्त्रता और सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है (धारा ३)। कोई भी व्यक्ति गुलाम नही रखा जा सकता। गुलामी और गुलामो का व्यापार हर तरह से प्रतिवन्धित होगा (धारा ४)। किसी भी व्यक्ति के साथ अत्याचार अथवा अमानवीय व्यवहार नही किया जा सकता (धारा ५)। कानून के सामने सभी को सभी जगह मनुष्य के रूप में स्वीकृति का अधिकार प्राप्त है (धारा ६)। कानून के सामने सभी व्यक्ति वरावर हैं और सभी को कानून का वरावर सरक्षण प्राप्त होने का अधिकार है (धारा ७)। कानून द्वारा स्वीकृत मौलिक अधिकारो का उल्लघन अथवा नाजायज लाभ उठाने वालो के खिलाफ अदालती कार्यवाई करने का सवको अधिकार प्राप्त है (धारा ८)। कोई भी व्यक्ति विना उचित कारण के गिरफ्तार अथवा नजरवन्द नही किया जा सकता। सभी व्यक्तियो को अपने प्रति लगाये गए आरोपो और अपराधो की सुनवाई निष्पक्ष अदालत द्वारा करवाने का हक होगा (धारा १०) जव तक अदालत से कोई व्यक्ति अपराधी न मान लिया जाय' तव तक उसे अपराधी नही कहा जा सकता (धारा ११) किसी भी व्यक्ति के घरेलू तथा निजी काम में वाहरी हस्तक्षेप स्वीकार नही किया जा सकता। इसके अतिरिक्त उसके सम्मान और प्रतिष्ठा पर किसी तरह की चोट नही की जा सकती (धारा १२)। सभी व्यक्तियो को आवागमन और निवास का समान अधिकार प्राप्त है (धारा १३)। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रक्षा के लिए दूसरे देश का आश्रय लेने का अधिकार है (धारा १४)। सभी को राष्ट्रीयता का अधिकार है (धारा १५)। प्रत्येक व्यक्ति को शादी करने और परिवार वसाने का अधिकार है

(धारा १६)। सभी को सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकार है (धारा १७)। सभी को मनन करने, अपने विचार दूसरो को प्रकट करने, शातिपूर्ण तरीके से सभाएँ तथा सघ कायम करने का अधिकार है (धारा १८-२०)। सभी को अपने देश की सरकार में भाग लेने और नौकरियो में आने का अधिकार है। सभी व्यक्तियों को अपना मत गुप्त रूप से प्रकट करने का अधिकार होगा। सभी को काम करने, वेतन के साथ आवश्यक छुट्टियाँ पाने, बेकारी के विरुद्ध सरक्षण, काम के अनुसार वेतन व ट्रेड यूनियन में शामिल होने का अधिकार तथा नौकरी ढूँढने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। सक्षिप्त में घोषणा-पत्र में किसी भी मानवीय अधिकार को छोडा नही गया है।

मानवीय अधिकारो पर व्यवस्थान

तब आयोग ने और भी अधिक दुष्कर कार्य की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया और वह कार्य था मानवीय अधिकारो पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थान का प्रालेखन। पाँच वर्षो के घोर परिश्रम के उपरात आयोग ने दो प्रालेख (ड्राफ्ट्स) तैयार किये— एक था राजनीतिक तथा नागरिक अधिकारो पर और दूसरा आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक अधिकारो पर । ये दोनो प्रालेख विचारणीय विवाद के विषय हो गये। प्रालिखित व्यवस्थान के अनुसार एक राष्ट्र की दूसरे के विरुद्ध ऐसी शिकायतें, जैसे कि उस राष्ट्र ने व्यवस्थान के अन्तर्गत अपने दायित्वो का पूर्ण निर्वाह नही किया है, एक समिति के समक्ष उपस्थित की जा सकती हैं। इस समिति का कार्य है तथ्यो को उप-लब्ध करना तथा सन्धि कराना। यदि किसी समाधान तक न पहुँचा जा सके तो अन्तत इन तथ्यो को निर्णय प्राप्त करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है। साथ ही, हस्ताक्षरकर्त्ता राष्ट्र व्यवस्थान के अन्तर्गत अपने दायित्वो को पूर्ण करने के लिये जिन उपायो को व्यवहार में लाये हैं, उन पर वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करने की आम प्रणाली की व्यवस्था भी इसने की है। सयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार ने घोषणा की कि वह इन व्यवस्थानों पर हस्ताक्षर नही करेगी क्योकि वह यह अनुभव नही करती कि वर्तमान स्थिति मे मानवीय अधिकारो की प्रगति के लिये सन्धि का उपाय ही सर्वोत्तम उपाय है। विभिन्न प्रकार की आलोच-नाएँ की गईं। एक ओर यह तर्क उपस्थित किया गया कि मानव-अधिकार आयोग सदस्य राष्ट्रो के आन्तरिक मामलो में हस्तक्षेप करेगा, जो कि सयुक्त राष्ट्रसघ-अधिपत्र का उल्लंघन है। दूसरी ओर यह तर्क था कि इस व्यवस्था को कार्यान्वित करने के लिये जिस तत्र का निर्माण किया है वह पर्याप्त कार्य नही करता है क्योकि इसने याचिका प्रस्तुत करने का अधिकार गैर-सरकारी सगठनो तथा व्यक्तियो को नही दिया है।

भारतीय प्रतिनिधि के शब्दो में, "व्यक्ति ही इन अधिकारो में आधार रहा है तथा वही इनके उल्लघन के प्रति अपना विरोध प्रदर्शित करे।" उपनिवेशवादी शक्तियो ने विभिन्न देशो की जनता के आत्म निर्णय के अधिकार की धारा को दोनो व्यवस्थानो में सम्मिलित करने का तीव्र विरोध किया। ब्रिटिश-प्रतिनिधि ने चेतावनी दी कि इस धारा को बनाये रखने से अभिशासक राष्ट्रो की स्वीकृति पर्याप्त समय के लिये विलम्बित हो जायगी और शायद अनिश्चित समय तक के लिये हो जाय। इन मुद्दो पर भावना की गहराई ऐसी है कि किसी समझौते के लिये किंचित गुञ्जाइश नही है। अतएव मुट्ठी-भर देशो से ही इन व्यवस्थानो की स्वीकृति की सभावना है। इसलिए अगर इन व्यवस्थानो को अगीकार भी कर लिया जाय तो भी यह सन्देहास्पद ही है कि ये व्यवस्थान कभी भी स्वीकृत हो जायेंगे और इन्हे वास्तविक रूप में लागू किया जायगा। जेकव ने ठीक ही कहा है कि, "इस क्षेत्र में आदर्शों को स्वीकार करने की अपेक्षा सरकारें कार्य करने के प्रण के लिए कम इच्छुक हैं।"

जाति-नाश पर कानून (कन्वेशन)

१९४८ में महासभा ने सर्वसम्मति से जाति-नाश के विरोध तथा सजा के लिए एक कानून स्वीकृत किया। इसने अन्तर्राष्ट्रीय विधि-आयोग को भी निमत्रण दिया, जो ऐसे लोगो के मुकदमे के लिए, जिन पर जाति-नाश का आरोप है, एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायिक सस्था की स्थापना की सम्भावना का अध्ययन करे। १९५० में विधि आयोग ने यह प्रतिवेदन प्रस्तुत किया कि इस उद्देश्य के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय अपराध न्यायालय उपयुक्त भी है तथा सम्भव भी। जाति-नाश का अर्थ है एक राष्ट्रीय, जातीय तथा धार्मिक समुदाय का सम्पूर्ण अथवा आशिक विनाश। उदाहरण के तौर पर जैसे नाजी जर्मनी द्वारा यहूदियो को अपराधी घोषित करके सत्रस्त किया था। कानून (कन्वेंशन), जिस पर २३ से भी अधिक राष्ट्रो ने स्वीकृति की मुहर लगा दी, जनवरी १९५१ में प्रभाव में आया। दस वर्ष तक इसकी शक्ति रहेगी तथा इसके बाद पाँच वर्ष तक इसका प्रभाव उन राष्ट्रो पर रहेगा जो उस समय तक इससे लगाव रखेंगे, सिवाय इसके कि जब इससे लगाव रखने वालो की सख्या १६ से नीचे चली जायगी, यह निष्क्रिय हो जायगा। इसने इन अपराधो के लिए सजा की व्यवस्था की है (१) किसी समुदाय के सदस्यो की इसलिए हत्या करना कि वे उसमे लगाव रखते है, (२) किसी समुदाय के सदस्यो को शारीरिक या मानसिक कष्ट देना, (३) जान-बूझ कर किसी समुदाय पर ऐसी शर्त थोपना, जिससे उसका अस्तित्व मिट जाय, (४) ऐसे साधनो का थोपना, जिससे किसी समुदाय की वृद्धि रुक जाय, (५) बालको को एक समुदाय से दूसरे समुदाय में जबर्दस्ती भेजना। इसके अन्तर्गत जाति-नाश करने की प्रेरणा या षड्यन्त्र के साथ ही अपराध में सहयोग भी आते हैं। अमेरिका ने

जाति-नाश के इस कानून (कन्वेशन) पर स्वीकृति की मुहर नही लगाई। १६५० मे महासभा ने अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से इस प्रश्न पर सलाह देने को कहा कि क्या जाति-नाश कानून के व्यावेस (reservation) के लिए दूसरे पक्षो की सर्व-सम्मत राय लेना उसमे पहले ही आवश्यक है जब व्यावेसो वाले साधन को स्वीकार किया जाय ? ७ से ५ के उपात (मारजिन) से न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि जबतक व्यावेसो का कानून (कन्वेंशन) की भावना से सामजस्य न हो तबतक इस प्रकार की सर्व-सम्मत राय अनिवार्य नही है।

सूचना प्राप्त करने की स्वतत्रता (Freedom of Information)

सूचना तथा प्रेस की स्वतन्त्रता की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिश्रुतियो (गारटी) का प्रश्न सयुक्त राष्ट्र सघ के समक्ष दूसरा जटिल प्रश्न रहा है। १६४८ में सूचना प्राप्त करने की स्वतन्त्रता पर सयुक्त राष्ट्र सघ सम्मेलन की बैठक जनेवा में हुई तथा इसने अनेक प्रालिखित सिफारिशो को सूत्रित किया। १६ मई, १९४९ को महासभा ने समाचार प्रेषण तथा सशोधन के अधिकार पर प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेंशन अगीकार किया। यह कन्वेशन रूस के विरोध तथा १३ राष्ट्रो के मतदान में लाभ न लेने पर भी अंगीकार कर लिया गया। १९५१ मे सूचना प्राप्त करने की स्वतन्त्रता पर प्रस्तावित कन्वेंशन इकोसॉक (ECOSOC) के समक्ष प्रस्तुत किया। लेकिन बड़ी शक्तियो में से अधिकांश ने अभी तक बहुत सारे प्रतिबन्धक सरकारी नियन्त्रणो से चिपके रहने की इच्छा प्रदर्शित की। यहां तक कि सयुक्त राज्य अमेरिका भी इसको अगीकृत करने का विरोधी था।

स्त्रियों की सामाजिक स्थिति

लिग-भेद के आधार पर भेद-भाव को रोकने की समस्या सयुक्त राष्ट्र की विशेष पूर्व-धारणा बन चुकी है। सयुक्त राष्ट्र सघ अधि-पत्र नर-नारियो के समान अधिकारो मे जनता की आस्था की पुन विशेष रूप मे पुष्टि करता है। १६४६ मे मानव अधिकार-आयोग के अन्तर्गत एक उप-समिति स्त्रियो की सामाजिक स्थिति निर्धारित करने के हेतु स्थापित की गई। उसे यह अधिकार दिया गया कि वह राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, नागरिक तथा शिक्षा क्षेत्रो मे नारी अधिकारो को बढावा देने के लिए सिफारिशे प्रस्तुत करे। गत दस वर्षो के अपने कार्य-काल में आयोग अत्यधिक सक्रिय रहा है। राजनीतिक अधिकारो के क्षेत्र में आयोग ने एक कन्वेशन का प्रालेखन किया तथा महासभा ने १६५२ के अपने सातवें अधिवेशन में इसे अगीकार कर लिया। इसमे बिना किसी भेद-भाव के नारियो को पुरुषो के समान ही निम्नांकित अधिकार देने की व्यवस्था की गयी। ये हैं—(अ) समस्त निर्वाचनो मे मतदान का अधिकार; (ब) समस्त लोक निर्वाचित सस्थाओ मे पद-ग्रहण करने की योग्यता; (स)

लोक-पद प्राप्त करने का अधिकार तथा समस्त लोक कार्य करने का अधिकार । यह कन्वेंशन ७ जुलाई, १९५४ को कार्यान्वित किया गया तथा २२ राष्ट्रो ने इस पर स्वीकृति की मोहर लगाई । लेकिन इसके पास नारियो के इन राजनीतिक अधिकारो को उन देशो पर लागू करने का कोई भी साधन नही, जो नारी को समान अधिकार देने के अनिच्छुक है । आयोग के दूसरे उद्देश्य हैं—अधिकारो के राष्ट्रीय कानूनो तथा विवाहित नारियो की राष्ट्रीयता के अन्तर्गत और अधिक पर्याप्त सुरक्षा, नारियो के लिए शैक्षणिक सुविधाओ का विस्तार, समान कार्य के लिए समान वेतन की प्रतिश्रुति (गारटी) लोक-सेवाओं में नारियो के नौकरी करने के विरुद्ध भेदभाव को हटाना, तथा सयुक्त राष्ट्र सघ के कार्य में स्त्रियों के भाग लेने में वृद्धि । १९५६ मे विवाहित नारियो की राष्ट्रीयता पर प्रालिखित कन्वेशन आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् के समक्ष प्रस्तुत किया गया । अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (ILO) मे भी समान कार्य के लिए समान पारिश्रमिक पर प्रालिखित कन्वेंशन की सिफारिश को गई है । आयोग का अन्य महत्व-पूर्ण कार्य पृथक पृथक देशो में नारियो का क्या स्तर है, तत्सम्बन्धी सूचनाओं के व्यवस्थित सकलन तथा प्रकाशन का है ।

अल्प-सख्यको की सुरक्षा

अल्प-सख्यको की सुरक्षा का प्रश्न सर्वप्रथम तब उठा जब मानव-अधिकारो की सार्वभौम घोषणा तैयार की जा रही थी । सयुक्त राष्ट्र सघ अल्प-सख्यको की दशा के सम्बन्ध में तटस्थ न रह सका तथा १९४७ मे अल्प-सख्यको की सुरक्षा तथा उनके प्रति भेद-भाव को रोकने के लिये एक उप आयोग की स्थापना इसलिए की कि राष्ट्रीय, जातीय, धार्मिक तथा भाषायी अल्प-सख्यको की सुरक्षा के लिए प्रभावकारी कदम उठाए जा सकें । १९५१ मे इस आयोग को भग कर दिया गया, क्योंकि यह अनुभव किया गया कि जाति-नाश को रोकने के लिए बना कन्वेशन तथा मानव अधिकार-व्यवस्थान(Covenant)इस समस्या के लिए पर्याप्त तथा सतोषजनक रीति से पूर्ण हैं । वर्षो के गम्भीर अध्ययन के बाद यह इस निर्णय पर पहुँचा कि मूलोत्पत्ति, स्वभाव तथा रचना की दृष्टि से विभिन्न देशो में बसे अल्प-सख्यको में बहुत अधिक अन्तर है । अतएव यह सर्वथा असम्भव है कि कोई ऐसी एक ही आम परिभाषा अल्प सख्यको के लिए बनाई जा सके, जो सब स्थानो पर लागू हो सके ।

१९५४ में उप-आयोग की पुनर्स्थापना इसलिए हुई कि वह विश्व भर में फैले अल्प सख्यको की वर्तमान स्थिति के अध्ययन का काय प्रारम्भ करे । १९५५ में इसने अल्प सख्यको की विशेष सुरक्षा की इस समस्या के और अध्ययन करने के कार्य को तब तक टालने का निर्णय किया, जब तक कि मानव अधिकार आयोग (Commission on Human Rights) इस विषय पर कोई निश्चित निर्देश न दे दे ।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय सयुक्त राष्ट्रसघ का मुख्य न्यायिक अग है। मघ का यह अग नवीन नही है। यह वही पुरानी अन्तर्राष्ट्रीय अदालत है जिसे राष्ट्रसघ ने १६२१ में हेग में स्थापित किया था। चार्टर (धारा ६२-६६) ने उक्त पुराने न्यायालय मे केवल जान डाली है। सयुक्त राष्ट्रसघ के तमाम सदस्य अन्तर्राष्ट्रीय अदालत के आधीन हैं। न्यायिक प्रश्नो पर आधारित मदस्य राज्यो के सभी झगडो का निर्णय इस न्यायालय मे अन्तर्राष्ट्रीय विधान के अनुसार होता है (धारा ९२-९६)। वह देश भी जो सयुक्त राष्ट्र का सदस्य नही है, सुरक्षा परिषद् की सिफारिशो के आधार पर महासभा द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के विधान की पार्टी बनाया जा सकता है। व्यक्तिगत तौर पर अपने मामले न्यायालय के सामने नही रखे जा सकते हैं। केवल राज्य न्यायालय के सम्मुख उपस्थित हो सकते हैं।

इस न्यायालय में १५ न्यायाधीश होते और सविधि के अनुसार ये व्यक्ति उच्च नैतिक चरित्र तथा अपने राज्य के कानून के विशेषज्ञ अथवा अन्तर्राष्ट्रीय न्याय में पारदर्शी होने चाहियें (See Appendix Membership of the Court)। कोई दो न्यायाधीश एक ही राज्य के नही होने चाहियें। न्यायाधीशो का साधारण कार्य काल ९ वर्ष है और वे पुनः निर्वाचित हो सकते हैं। प्रथम चुनाव में ५ तीन वर्ष के लिये, ५ छ वर्ष के लिये तथा शेष ५ नौ वर्ष के लिये चुने गये थे। न्यायाधीशो की निर्वाचन प्रणाली पेचीदी है। राष्ट्रीय कानून विशेषज्ञ द्वारा चार प्रसिद्ध नियमज्ञो को नामजद किया जाता है परन्तु उसमें दो से अधिक अपने राष्ट्र से सम्बन्धित नही होने चाहिये। इस प्रकार नामजद सूची में से न्यायाधीशो का निर्वाचन महासभा तथा सुरक्षा परिषद् एक-दूसरे से स्वतन्त्र रहकर करती हैं। विधि में कहा गया है कि विश्व की सभी प्रमुख विधियो को न्यायालय में प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये। जो कानून विशेषज्ञ सुरक्षा परिषद् और महासभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त कर लेते हैं वे स्वभावत ही चुन लिये जाते हैं। साधारणतया किसी मामले की सुनवाई १५ न्यायाधीश एकत्रित मिलकर करते हैं किन्तु कम से कम ९ न्यायाधीश उपस्थित रहने से राय दे सकते हैं। न्यायालय के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष तीन वर्ष के लिए न्यायालय द्वारा चुने जाते हैं और वे पुनः निर्वाचित भी हो सकते हैं। न्यायाधीशो का वार्षिक वेतन २१,००० डालर (लगभग ५२५० पौंड) होता है किन्तु इसके अतिरिक्त अध्यक्ष को विशेष भत्ता मिलता है। स्मरण रहे कि कोई भी न्यायाधीश कोई राजनैतिक अथवा शासन सम्बन्धी अथवा किसी दूसरे पेशे में योगदान नही कर सकता। केवल न्यायालय को ही न्यायाधीशो के बर्खास्त करने का अधिकार है परन्तु इस विषय में अन्य न्यायाधीशो का एकमत होना आवश्यक है। सब न्यायाधीश अपने

अपने कार्यकाल मे कूटनीतिज्ञ सुविधाओ के अधिकारी होते हैं। झगडा करने वाले राज्यो के न्यायाधीशो को भी न्यायालय में भाग लेने के लिये आमन्त्रित कर सकते हैं, यदि उस राज्य के प्रतिनिधि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीश न हों। गैर सदस्य राज्य अपने राज्य के प्रतिनिधि के रूप मे दूसरे सदस्य राज्य के न्यायाधीश को मनोनीत कर सकते हैं यदि उस राज्य के प्रति-निधि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीश न हो।

सदस्य राज्य द्वारा रखे गये प्रत्येक न्यायिक प्रश्न तथा सयुक्त राष्ट्र आदेश पत्र मे अनुबधित मामले तथा सभी लागू सधियाँ और रीतियाँ इसके अधिकार क्षेत्र मे हैं। न्यायालय के सामने निम्नलिखित मामले पेश किये जाते हैं: (१) एक सदस्य राज्य का अधिकार है कि वह दूसरे किसी राज्य के साथ अपने झगडे को इसके सामने उपस्थित कर सके। (२) अन्तर्राष्ट्रीय सधियो, समझौतो तथा परम्पराओ के सम्बन्ध मे यदि कोई वाद विवाद हो तो वह इसके सामने पेश किया जा सकता है। (३) कोई राज्य यदि अल्पकाल अथवा सदा के लिए अपने मामलो का निर्णय इस न्यायालय से कराने का निश्चय करे तो ऐसे राज्यो के मामले स्वभावत ही इस न्यायालय के विचाराधीन हो जाते हैं। इस प्रकार पुराने न्यायालय की भाँति नये न्यायालय के भी "अनिवार्य" तथा "एच्छिक" अधिकार हैं। (४) इसके अतिरिक्त महासभा तथा सुरक्षा परिषद् किसी वैधानिक प्रश्न का न्यायालय से मन्त्रणा पाकर विचार कर सकती है। सुरक्षा परिषद् अथवा राष्ट्रसघ की विशिष्ट सस्थाओ के कोई भी अग, जैसे आर्थिक तथा सामाजिक परिषद्, सरक्षक परिषद् आदि, महासभा द्वारा विशेष अधिकार पाकर परामर्श सम्बन्धी विचार विनिमय कर सकते है। यह न्यायालय अन्तर्राष्ट्रीय परम्परा, पुरातन रीति, स्वीकृत विधि, विशिष्ट मामलो के निर्णय आदि सिद्धान्त के आधार पर राय देता है। सयुक्त राष्ट्र सघ के प्रत्येक सदस्य को न्यायालय के निर्णय को, जिस किसी भी मामलो से वह सम्बन्धित हो अगीकार करना पडता है। यदि कोई पार्टी न्यायालय के निर्णय को अस्वीकार करती है तो अन्य पार्टी सुरक्षा परिषद् को इस निर्णय को क्रियान्वित करने के लिये उपयुक्त निर्देश दे सकती है।

अन्तर्राष्ट्रीय मामलो की सभी कार्यवाहियाँ जनता के सम्मुख होती है और सभी निर्णय उपस्थित न्यायाधीशो के बहुमतो से होते हैं। न्यायिक अवकाशो के अतिरिक्त न्यायालय का कार्यक्रम स्थायी रूप से चलता रहता है। वर्तमान में नीदरलैंड (हालैंड) के हेग शहर के शान्तिप्रासाद (पीस पैलेस) में स्थित है, किन्तु उसकी बैठक कहीं भी हो सकती है। न्यायालय का उद्घाटन अधिवेशन ३ अप्रैल १९४६ मे हुआ। इस समय श्री G H Hackworth (U.S A.), इसके अध्यक्ष हैं। हमारे विधान निर्माताओं में कानून विशेषज्ञ श्री बी० एन० राव नवम्बर

१९५२ मे नौ वर्ष के लिए अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीश चुने गये थे। सक्षेप में न्यायालय की निष्पक्षता सर्वमान्य है।

(क) साधारण-विवाद का निर्णय—न्यायालय के कार्यकलाप की आलोचना करते समय हमे दो प्रकार के मामलो का ध्यान रखना चाहिए। पहला, विभिन्न राज्यो का साधारण न्यायिक झगडा। दूसरा, सयुक्त राष्ट्रसघ के प्रमुख अगो मे उत्थापित विवाद। न्यायालय पहले में निर्णय देता है और दूसरे में परामर्श देता है।

(१) २१ अक्तूबर १९४६ में ब्रिटेन के चार जहाज अल्बेनिया के तट के किनारे कोर्फू चैनेल में सामुद्रिक वम्ब (माइन) के विस्फोट के कारण क्षतिग्रस्त हुए। उसमें २४ ब्रिटिश नाविक मृत्युग्रस्त हुए और अनेक घायल हुए। अल्बेनिया सयुक्त राष्ट्र सघ का सदस्य नही था। ब्रिटेन ने इस घटना के लिए अल्बेनिया को उत्तरदायी समझा और क्षतिपूर्ति के लिए दावा किया। सुरक्षा परिषद् ने इस जटिल प्रश्न पर अल्पकाल विचार करने के बाद इसे अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को सौप दिया। अल्बेनिया ने चेकोस्लोवाकिया के न्यायाधीश ईकर को अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में भेजा। बहुमत से न्यायालय ने दिसम्बर १९४९ मे अल्बेनिया से एक करोड बीस लाख रुपया क्षतिपूर्ति लेने का निर्णय दिया। अल्बेनिया ने इस क्षतिपूर्ति को देना स्वीकार किया और समस्या का हल हुआ।

(२) ३ जनवरी १९४९ को एक पिरुवियन राजनैतिक नेता श्री डीला टोरे ने कोलम्बिया के दूतावास मे शरण ली और कोलम्बिया के राजदूत ने पिरुवियन सरकार को उक्त शरणार्थी को विदेश जाने की आज्ञा देने के लिए अनुरोध किया। इस पर पिरुवियन सरकार ने टोरे को राजनैतिक शरणार्थी स्वीकार नही किया बल्कि उस पर फौजदारी का दोषारोपण किया। इस झगडे को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय मे पेश किया गया। इसमें दो जटिल प्रश्न थे—पहला क्या कोलम्बिया की सरकार को अधिकार है कि वह टोरे के राजनीतिक अपराधी होने के विषय में अपना निर्णय दे सके ? दूसरा क्या पिरुवियन सरकार अपराधी को विदेश जाने की आज्ञा देने के लिए वाध्य है ? अन्तर्राष्ट्रीय न्याय में ऐसा कोई विधान नही है जिसके अनुसार इस समस्या का समाधान हो सकता। गम्भीर आलोचना के बाद न्यायालय ने २०, नवम्बर १९५० को निर्णय दिया कि कोलम्बिया को पिरुवियन नेता को अभयदान देने का कोई अधिकार नही है।

(३) १९५२ के नवम्बर में तीन वर्ष पुरातन आग्ल-नार्वेजियन मछली विवाद का निर्णय दिया। सन् १९३५ में नार्वे की सरकार ने अपने तट के कुछ भागो में एक विशेष घोषणा द्वारा मछली पकडना निषिद्ध कर दिया था। ब्रिटेन का कहना है कि

इस मामले में विगत महायुद्ध के अन्त तक नार्वे से कोई समझौता नही हुआ था। इसलिए ब्रिटेन के मछुओ को क्षति हुई। उसकी पूर्ति के लिए नार्वे पर दावा किया। न्यायालय ने नार्वे के पक्ष में अपना निर्णय दिया।

(४) मई १९५१ में ब्रिटेन ने आग्ल ईरानियन तेल विवाद को न्यायालय के सामने उपस्थित किया। ईरान के प्रधान मन्त्री मुसद्दिक ने स्वय न्यायालय में अपने मामले की वकालत की। उन्होंने आग्ल-ईरानियन तेल सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण का समर्थन किया। न्यायालय के ब्रिटिश अध्यक्ष मेकनैयर को इस मामले में अध्यक्षता से वचित होना पडा क्योकि ब्रिटेन इस मामले में सयुक्त था। इसलिए एल० साल्वाडर के डा० गुरार्स जो कि उप-अध्यक्ष थे, अध्यक्ष बने। रूसी न्यायाधीश गोलुस्की बीमारी के कारण अनुपस्थित थे। डा० मुसद्दिक ने स्पष्ट कहा कि, "आप धमकी से एक छोटे राज्य के अधिकार को (ब्रिटेन जैसे कुटिल राज्य के आर्थिक शोषण नीति से) वचित नही कर सकते।" २२ जुलाई सन् १९५२ को न्यायालय ने इस समस्या को हल करने मे अपनी असमर्थता प्रकट की। परिणाम स्वरूप ब्रिटेन की क्षतिपूर्ति का दावा अपूर्ण रह गया। न्यायालय ने हाल ही मे दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका मे दक्षिण-अफ्रीका के अधिकार के मामले में राय दी।

(ख) परामर्श सूचक विचार—नवम्बर १९४७ में महासभा ने न्यायालय से निम्नलिखित दो प्रश्नो पर मत्रणा मांगी —

(१) क्या कोई सदस्य अपने अगीकार मत (वोट) को किसी शर्त पर दे सकता है ?

(२) क्या कोई सदस्य अपने अगीकार मत को प्रवेश प्रार्थियो के विषय में ऐसी शर्त के आधीन कर सकता है जिसका कि चार्टर की धारा ४ में कोई उल्लेख नही है ? २८ मई १९४८ में न्यायालय ने दोनो प्रश्नो का उत्तर "ना" दिया। पुन मार्च १९५० में दो और सलाह सुरक्षा परिषद ने न्यायालय से मांगी।

(१) यदि किसी राज्य का प्रतिनिधि, सदस्य अथवा गैर सदस्य, रा० स० के विशेष आयोग के कर्त्तव्य पालन करते समय क्षतिग्रस्त हो, तो राष्ट्र सघ अपराधी राज्य से पूर्ति का दाव कर सकता है या नही ?

(२) इसी प्रकार यदि राष्ट्रसघ की जान या माल की क्षति हो तो रा०स० उन राज्य पर दावा कर सकता है या नही ? न्यायालय ने दोनो प्रश्नो का उत्तर रा० स० के पक्ष में दिया।

वर्तमान समय में न्यायालय २५ विभिन्न जटिल विषयो का अध्ययन कर उन पर अन्तर्राष्ट्रीय विधान प्रस्तुत कर रहा है। इनमें मध्यस्थ प्रणाली, राज्य के उत्तर-

दायित्व, शरण देने का अधिकार, संधि का नियम, समुद्र की सीमा आदि सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय न्याय आयोग (१५ सदस्य) अन्तर्राष्ट्रीय-अपराध कानून, जिसमें शान्ति के विरुद्ध अपराध, युद्ध अपराध और मानवता के विरुद्ध अपराध है—तथा राज्य के अधिकार और कर्त्तव्य सम्बन्धी घोषणा-पत्र तैयार कर रहा है।

१९४९ के अपने प्रथम अधिवेशन में अन्तर्राष्ट्रीय विधि आयोग ने मुख्य सागरो की प्रचलित व्यवस्था पद्धति का चुनाव किया तथा जनेवा मे २ मई से ८ जुलाई, १९५५ तक अपने सातवें अधिवेशन मे सामयिक आलेखन पूर्ण किया। अब इसे सदस्य-सरकारो को अपनी-अपनी पृथक-पृथक टिप्पणी देने के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है। क्षेत्रीय-सागर की प्रचलित व्यवस्था-पद्धति का प्रारूप (ड्राफ्ट) भी सरकारो को उनके पर्यवेक्षणो (ऑवजर्वेशन्स) को जानने के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है। साथ-ही-साथ, अन्तर्राष्ट्रीय विधि आयोग (ILC) अपने स्थान का न्यूयार्क से जनेवा के लिए स्थानान्तरण कराने को कह रहा है। इसकी मांग यह भी है कि इसके सदस्यो का कार्यकाल तीन वर्ष के स्थान पर पाँच वर्ष रहे तथा विधिज्ञो की अन्त -अमेरिकी परिषद् की तृतीय बैठक, जो कि १९५६ में मेक्सिको में होनी है, में एक प्रतिनिधि भेजने का इसे अधिकार दिया जाय। यह महासभा से यह भी माग कर रहा है कि वह इसके कागजातो की प्रकाशन-सख्या में वृद्धि की सभावना पर विचार करे,जिससे वे शिक्षा सस्थाओ तथा आम जनता को शीघ्र सुलभ हो सकें। चार वर्ष से मध्यस्थता की प्रक्रिया के प्रश्न पर अन्तर्राष्ट्रीय विधि आयोग (ILC) विवाद करता रहा है। १९५२ में ३२ अनुच्छेदो के एक प्रालिखित कन्वेशन को ग्रहण किया गया जो सदस्य देशो को उनकी टिप्पणी के लिए भेजा गया। केवल ११ सरकारो ने प्रत्युत्तर दिया तथा इनमें से कुछ ने प्रालेख पर गम्भीर अपवाद (रिजर्वेशन्स) व्यक्त किए। महासभा की छठी समिति ने प्रालेख पर दो वर्ष तक विवाद किया। १९५६ में महासभा को अन्तिम निर्णय पर पहुँचना ही होगा। प्रालेखन का जो रूप अब है, उसमे यह उल्लिखित है कि एक बार जब विरोधी पक्ष पच निर्णय के लिए तैयार हो गए हो, तो उसके बाद उनके बीच कोई मतभेद उठ खड़ा हो, ऐसी स्थिति में उन पक्षो में से कोई एक पक्ष विवाद को एक-पक्षीय रूप में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को भेज सकता है। तब जो राष्ट्र जिद्द पर अड़ा है, उस पर न्यायालय के निर्णय का बन्धन लागू हो जाता है। कई सरकारो ने इसका विरोध इसलिए किया कि प्रालेख में पञ्च न्यायाधिकरण ने 'राष्ट्रोपरि' (Supra-National) सस्था का रूप धारण कर लिया है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, सचिवालय के कानूनी विभाग, महासभा की छठी समिति, अन्तर्राष्ट्रीय विधि आयोग (ILC) ने इस दिशा में गत दस वर्षों में उत्साहपूर्ण प्रयत्न किए। इन प्रयत्नो मे अन्य तदर्थ समितियां भी सम्मिलित थी, जिनकी स्थापना इसलिए हुई थी कि वह शांति तथा सुरक्षा के

प्रश्नो के समाधान के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय विधि का प्रचलित पद्धति को स्थापित करने के लिए विशिष्ट कानूनी समस्याओ का अध्ययन करें। महामन्त्री ने अपने हाल ही के प्रतिवेदन में घोषणा की है कि राष्ट्रो के पारस्परिक सम्बन्धो में 'विधि-नियम' (Rule of Law) के स्थापना के कार्य की गति निराशाजनक रूप से मध्यम है। पर साथ ही उन्होने कहा, "लेकिन मुझे आशा है कि अब हम समय के ऐसे दौर में प्रवेश कर रहे हैं, जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो में विधि के प्रभाव को सतुष्ट करने के लिए और अधिक अनुकूल वातावरण होगा।" महामन्त्री ने विश्वास प्रकट किया कि न्याय व्यवस्था के अपने विरोधी तर्कों को प्रस्तुत करने में जो सरकारें हिचकती हैं तथा राजनीति व्यवस्था को अधिमान (प्रिफ़ेंस) देती हैं, इसका कारण अन्तर्राष्ट्रीय विधि का अनिश्चित तथा बिखरा हुआ होना है, जो उन्हे ऐसा करने से रोकता है। तो भी यदि दूरदृष्टि से स्थिति का अवलोकन किया जाय तो समस्त सदस्य राष्ट्रो के यह हित मे ही होगा कि जहाँ तक सम्भव हो ऐसे क्षेत्र के विस्तार को रोका जाय जहाँ शक्ति ही तर्क है तथा ऐसे क्षेत्र को जहाँ तक सभव हो वहाँ तक विस्तृत किया जाय, जहाँ विधि तथा न्याय के विचार प्रभावशाली हो। अधि-पत्र पर आधारित आम-विधि का प्रारम्भ तथा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की सलाहकारी मन्त्रणा के अनुसार कार्य करने की प्रवृत्ति को संयुक्त राष्ट्र सघ ने जो वढावा दिया, ये दोनो परिवर्तन प्रगतिशील ढग से अन्तर्राष्ट्रीय विधि को प्रणाली में जो अपूर्णताएँ हैं, उनको ठीक कर रहे हैं। पच-प्रक्रियाएँ जव उचित विवादो में प्रयुक्त की जाती हैं, तव कानून की शक्ति को सम्पुष्ट करने को भी वढावा मिलता है। महामन्त्री ने यह भी इगित किया कि राष्ट्रो में प्रचलित परम्पराओ के समझौते और विरोध की सीमाओ को प्रकाश में लाने के लिए जिन व्यवस्थित जाँच के साधनो की आवश्यकता है, उनसे कही अधिक साधन सयुक्त राष्ट्र सघ के पास हैं। उन्होने मन्त्रणा दी है कि राष्ट्रीय स्तर पर विशिष्ट समूहो का निर्माण किया जाय, जिसमें उच्च योग्यता प्राप्त विधिज्ञ हो, जिनका कार्य उत्तरदायी सरकार के अधिकारियो द्वारा सुविचारित तथा सुविज्ञ निर्णयो को सरल वना देगा।

सचिवालय

इसमें सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर महासभा द्वारा नियुक्त महामत्री तथा वे कर्मचारी वृन्द, जिनकी आवश्यकता होती है, होते हैं। महामत्री के कार्य निम्न होते हैं (धारा ९८, ९९) —(१) सयुक्तराष्ट्र का मुख्य प्रशासक होना, (२) आतरिक शान्ति तथा सुरक्षा के लिए खतरनाक मामलो को सुरक्षा परिषद् को सौंपना; (३) सयुक्तराष्ट्र के कार्य की वार्षिक तथा आवश्यक पूरक रिपोर्ट वना कर महासभा को देना, (४) सयुक्त राष्ट्र के किसी सदस्य की किसी भी सधि को रजिस्टर करना तथा प्रकाशित करना। सचिवालय के सदस्यो के चुनाव तथा सेवा की शर्तें नियुक्त

करते समय कार्यदक्षता, योग्यता तथा सत्यता का ध्यान रखना किन्तु आदेशपत्र (Charter) में यह नियम है कि स्टाफ (कर्मचारी वृन्द) का चुनाव जहाँ तक हो सके विस्तृत भौगोलिक आधार पर होना चाहिए। उसमे यह भी कहा गया है कि महामत्री तथा उसके कर्मचारी वृन्द को 'किसी सरकार तथा सस्था से बाहर की किसी शक्ति से कोई आदेश या परामर्श नही लेना चाहिये' और उन्हे किसी भी ऐसे कार्य से बचना चाहिए जो उनके सस्था के उत्तरदायित्वपूर्ण पदो को प्रभावित करे। प्रत्येक सदस्य राज्य, महामन्त्री तथा उसके कर्मचारीवृन्द का आदर अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर करता है और उनको प्रभावित करने का प्रयास नही करना चाहिये। सचिवालय में ८ विभाग होते हैं :—(१) सुरक्षा परिषद् के मामलो का, (२) आर्थिक मामलो का, (३) सामाजिक मामलो का, (४) ट्रस्टीशिप का, (५) जन सूचना का, (६) सम्मेलन तथा साधारण सेवाओ का, (७)प्रशासनिक तथा वित्तीय सेवाओ का, तथा (८) वैधानिक विभाग। इस समय ४१०० कर्मचारी स्टाफ मे हैं जिनमे से ३२२५ सयुक्त राष्ट्र के नये प्रमुख शिविर न्यूयार्क मे हैं तथा अन्य ८७५ अन्य कार्यालयो में। हाल ही मे सयुक्त राष्ट्रीय महासभा का स्थायी सभा भवन न्यूयार्क के ईस्ट रिवर नदी के किनारे पर, १८ एकड भूमि मे १,२२,५०,००० डालर की लागत से बनकर तैयार हुआ है। इस ३६ मजिल वाले सभा भवन में ८०० दर्शक और ७२ प्रतिनिधि-मडल अच्छी तरह बैठ सकते हैं।

महामत्री की नियुक्ति ५ वर्ष के लिये होती है और उसे २०,००० डालर (लगभग ५ हजार पौंड) जिस पर कर नही होता, वेतन मिलता है। इसके अतिरिक्त प्रतिनिधित्व वेतन २०,००० डालर मिलता है। सयुक्त राष्ट्र उसके सरकारी निवास-स्थान का भी व्यय उठाता है। पांच वर्ष की कालावधि के पश्चात् उसकी नियुक्ति पुनः की जा सकती है। १ फरवरी १९४६ को नार्वे के विदेश मन्त्री श्री ट्रिग्वेली सयुक्त राष्ट्र के प्रथम महामन्त्री नियुक्त हुए थे। नवम्बर १९५० में उनकी कार्यावधि ३ वर्ष के लिए बढा दी गई थी। १० नवम्बर १९५२ को उन्होने साम्यवादी गुट द्वारा शांति निर्माता अस्वीकार किये जाने, सयुक्त राष्ट्रीय बजट में सलग्न कठिनाइयो तथा संयुक्त राष्ट्र सीनेट द्वारा नियुक्त मेकेरन आतरिक सुरक्षा समिति द्वारा सयुक्त राष्ट्र में नोकर २० अमरीकी साम्यवादियो की जाँच के कारण अपना त्यागपत्र दे दिया। १० अप्रैल १९५३ मे स्वीडन के प्रजाजन श्री डाग हैमर सोल्ड को महामत्री नियुक्त किया गया।

१९५३ में सयुक्त राष्ट्रसघ प्रशासनिक न्यायाधिकरण ने सचिवालय में कार्य करने वाले ११ अमेरिकी नागरिको को १७९,४२० डालर की रकम की क्षति-पूर्ति देने का निर्णय किया। इनको महासचिव ने नौकरी से इसलिये अलग कर दिया था

कि इन पर सयुक्त राष्ट्रसघ के प्रति निष्ठा-भग का आरोप था। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने इस पर विरोध प्रकट किया तथा माँग की कि महासभा अदायगी से इन्कार कर दे। परन्तु यह विरोध असफल रहा। लेकिन एक समझौता-प्रस्ताव पारित किया गया, जिसमे अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से सलाह देने की माँग की गयी। १३ जुलाई, १९५४ को न्यायालय ने यह निर्णय किया कि महासभा के पास किसी प्रकार का कोई भी आधार नही है, जिस पर वह क्षति-पूर्ति (मुआवजा) देने के कार्य को कार्यान्वित करने से इन्कार कर दे। १९५५ में एक १८ सदस्यो वाली विशिष्ट समिति प्रशासनिक न्यायाधिकरण के निर्णयो का निरूपण करने के लिए स्थापित की गयी। इसने न्यायाधिकरण के निर्णयो के निरूपण के लिए क्रिया-विधि की सिफारिश की (अ) अपने अधिकार-क्षेत्र तथा सामर्थ्य का अतिक्रमण किया है, (ब) इसने क्रिया-विधि में मूलभूत भूल की है, (स) अथवा इसने अधिपत्र से सम्बन्धित विधि के प्रश्न पर कोई भूल की हो, तथा यदि निरूपण के लिए ३० दिन के अन्दर-अन्दर लिखित प्रार्थना स्क्रीनिंग-समिति (आंता-समिति) को भेज दी गयी हो। यदि समिति इस निणय पर पहुँचती है कि निरूपण के लिए कोई भी आधार नही है, तो न्यायाधिकरण का निर्णय अन्तिम हो जायगा। यदि कमेटी इस निर्णय पर पहुँचती है कि निरूपण के लिए आधार है, तो वह अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से सलाह-सम्मति देने की प्रार्थना करेगी। इस प्रकार सयुक्त राष्ट्रसघ प्रशासनिक न्यायाधिकरण के अधिकारो तथा इसका सहासभा से क्या सम्वन्ध हो इस पर अभी तक विवाद चल रहा है।

अपने न्यूयार्क के मुख्यालय तथा जनेवा कार्यालय के साथ-ही-साथ सचिवालय ने प्रादेशिक आयोगो तथा सूचना केन्द्रो के लिए अल्प क्षेत्रीय सेवाओ के लिए कर्म-चारी मडलों की व्यवस्था की है। ये प्रादेशिक आयोग तथा सूचना केंद्र वकाक, वेलग्रेड, व्यूनस एअरिम, काहिरा, कापनहेगन, जकार्ता, जनेवा, कराची, लदन, मेक्सिको नगर, मान्रोविया, मास्को, नयी दिल्ली, पेरिस, प्रेग, रिओ-डी-जैनीरो, शघाई, सिडिनी, तेहरान, वार्सा तथा वाशिंगटन मे हैं। सचिवालय अनेक अप्रत्यक्ष, परन्तु आवश्यक तथा योग्य कार्य करता है। यह सयुक्त राष्ट्रसघ की विभिन्न सस्थाओ तथा उनके लिए वनी विशिष्ट एजेंसियो (अभिकरणो) की वैठको की व्यवस्था करता है, जो अपने आप में ही वृहद् कार्य है। इन वैठको के लिए आवश्यक सामग्री तथा अध्ययनो को तैयार करता है। यह कार्यकारी अभिकर्ता के नाते कार्य करता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के अतिरिक्त और सव प्रमुख सस्थाओ के लिए सचिवालय-सम्वन्धी सेवाएँ सुलभ करता है। यह समस्त प्राप्त साधनो द्वारा तथा

जितने देशो में सम्भव हो उनमें, सयुक्त राष्ट्रसघ के उद्देश्य तथा क्रिया-कलापो की सूचना पहुँचाने की व्यवस्था करता है।

अधिपत्र में सशोधन—अधिपत्र के पुनरावलोकन तथा सशोधन के लिए आवश्यक निर्देशो का समावेश इसकी धारा १०८-१०९ में है। ये निर्देश वस्तुतः अपरिवर्तनशील हैं, यद्यपि सीमित विश्व-सरकार की दिशा में मूलभूत वास्तविक परिवर्तनो के अभिभापक (पक्ष-पाती, हामी) बार-बार उनमे परिवर्तन करने की माग करते हैं। महासभा के सदस्यो के दो-तिहाई बहुमत से ही अधिपत्र में सशोधन हो सकता है, जिस पर सयुक्त राष्ट्रसघ के सदस्यो के दो-तिहाई बहुमत की स्वीकृति की मोहर लगनी चाहिए। सयुक्त राष्ट्रसघ के इन सदस्यो मे सुरक्षा परिषद के सदस्य भी शामिल हैं। अधिपत्र के पुनर्निरीक्षण के लिए जनरल कान्फ्रेंस किसी समय भी महासभा के सदस्यो के दो-तिहाई मतो तथा सुरक्षा परिषद् के किन्ही सात सदस्यो के एकमत द्वारा आयोजित की जा सकती है। अगर ऐसा निश्चित हो जाय तो उसी क्रिया-विधि के अनुसार दस वर्षो के अन्त में ऐसा सम्मेलन अवश्य बुलाया जाना चाहिए। इसके लिए एक अपवाद है और वह यह कि महासभा में साधारण बहुमत ही पर्याप्त होगा।

सयुक्त राष्ट्रसघ तथा राष्ट्रसघ की तुलना

अगर हमे सयुक्त राष्ट्रसघ के कार्य का विधिवत ज्ञान प्राप्त करना है, तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम यह जानें कि यह क्या है और क्या नही? सर्व प्रथम तो यह समझ लेना चाहिए कि यह न तो 'राष्ट्रोपरि राज्य है' और न ही वास्तविक अर्थ में विश्व-सरकार का एक रूप है। वस्तुत. यह प्रभु-सत्ता-सम्पन्न राष्ट्रो का एक सघ है, और इस प्रकार यह 'राष्ट्र-राज' ('एक राष्ट्र एक राज' के सिद्धान्त पर आधारित राज—Nation State System) के रूढ ढाँचे से अलग हटकर किसी भी व्यवस्था का प्रतिनिधित्व नही करता। यद्यपि यह विश्व इतिहास में सर्वाधिक विस्तृत अन्तर्राष्ट्रीय सस्था है, तथापि यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के साधारण साधनो का स्थान लेने को प्रयत्नशील नही है अथवा स्थानीय तथा प्रादेशिक प्रकार की बहुपक्षीय तथा द्विपक्षीय व्यवस्थाओ का उल्लघन नही करता है। इसके अतिरिक्त क्योंकि सयुक्त राष्ट्रसघ का सकल्प शांति स्थापित करने की अपेक्षा शांति को स्थिर रखना है, इसलिए शक्ति प्रयोग के स्थान पर इसका जोर समझौते तथा सुलह पर रहता है। और भी, यह राष्ट्रोपरि विधायिका सभा नही है। प्रो० क्लाइड ईगल्टन के कथनानुसार, "संयुक्त राष्ट्रसघ के किसी भी अग के पास कानून-निर्माण का अधिकार नही है तथा कोई भी ऐसा विधि नियम नही निकाला जा सकता, जो सदस्य

राष्ट्र पर बिना उसकी सहमति के बंधन-रूप हो।" परन्तु इस तथ्य से इन्कार नही किया जा सकता कि महासभा के प्रस्तावो का गंभीर नैतिक प्रभाव तथा दबाव पडता है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो में शक्ति प्रयोग के अधिकार पर कुछ परि-सीमाओ को छोड कर सब राष्ट्र अपनी इच्छानुसार कुछ भी कार्य करने को कानूनी दृष्टि से स्वतन्त्र हैं। इस प्रकार, जहाँ तक आधारभूत विशेषता का सम्बन्ध है संयुक्त राष्ट्संघ तथा राष्ट्रसंघ (लीग आफ नेशन्स) में अत्यधिक साम्यता है। इन दोनो ही की स्थापना प्रभु-सत्ता सम्पन्न राष्ट्रो के केवल सीमित अधिकार सम्पन्न संगठनो के रूप में हुई थी। इन दोनो ही अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओ के प्रणेता अमेरिकी राष्ट्रपति ही थे। प्रेसिडेन्ट विल्सन ने १९१९ में लीग आफ नेशन्स की तथा १९४५ में प्रेसिडेन्ट ट्रूमैन ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना की प्रेरणा दी। दोनो का ही जन्म अन्तर्राष्ट्रीय जगत मे अधड तथा दबाव के मध्य हुआ तथा दोनो को उत्तराधिकार में युद्ध-ध्वस्त विश्व की जटिल राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक समस्याएँ प्राप्त हुई। दोनो ही स्थितियो मे विश्व की बडी शक्तियो ने अपने आपको युद्ध रोकने तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को बढावा देने के कार्य में तब संलग्न कर दिया, जब उन्होने यह प्रतीत कर लिया कि युद्ध का मूल्य उसमे प्राप्त परिणामो की अपेक्षा अधिक चुकाना पडता है। मूलरूप मे दोनो ही संस्थाओ की स्थापना के समय विजेता राष्ट्रो ने पराजित राष्ट्रो को छोड दिया तथा जब राष्ट्रसंघ (लीग आफ नेशन्स) की स्थापना हुई तो इसकी सदस्य संख्या इन राष्ट्रो तक ही सीमित रही तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के समय ५० राष्ट्रो तक। जहाँ तक दोनो संगठनो के ढाँचो का संबध है दोनो के परिपत्रो तथा अधिपत्रो में आश्चर्यजनक साम्यता है। दोनो में ही एक महासभा की व्यवस्था की गयी, जिसके सभी राष्ट्र सदस्य हो, एक परिषद् की व्यवस्था की गयी, जिसके ११ सदस्य हो। इन ग्यारह सदस्यो में से ५ स्थायी सदस्य हो। इसके अलावा दोनो ही संगठनो में एक सचिवालय तथा एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय और छ स्थायी समितियो की व्यवस्था की गई। दोनो ही संगठनो में परिषद् के अध्यक्ष-पद को क्रमानुसार रखने की व्यवस्था की गयी। दोनो में ही व्यवहार तथा तत्व, निर्णयो तथा सिफारिशो में अंतर रखा गया।

प्रो० ईगल्टन का कथन है, "यद्यपि दोनो संगठनो के ढाँचो तथा वाह्य रूपो में साम्यता है, तथापि मूलभूत भेद यह प्रदर्शित करते हैं कि संयुक्त राष्ट्रसंघ धारणा तथा गुण-विशेषता की दृष्टि से राष्ट्रसंघ से सर्वथा भिन्न है।" राष्ट्रसंघ की तुलना में संयुक्त राष्ट्रसंघ के बड़ी संख्या में आम लाभ हैं। यह अधिक लचीला संगठन है तथा विस्तार की दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है। (१) संयुक्त राष्ट्रसंघ का अधिपत्र एक पृथक पुरजा है, जबकि राष्ट्रसंघ के परिपत्र का समावेश १९१९ की

वर्साय की सधि मे ही सम्मिलित था। (२) संयुक्त राष्ट्रसघ की सदस्य-सख्या राष्ट्र-सघ की सदस्य-सख्या से अधिक है क्योकि ७६ सदस्य-राष्ट्र इस संगठन के भागीदार हैं। राष्ट्रसघ में तत्कालीन ५ वडी शक्तियो मे से दो ही स्थायी सदस्य के रूप मे सम्मिलित रहती थी, जवकि सयुक्त राष्ट्रसघ में द्वितीय महायुद्धोत्तर तीनो वडी शक्तियाँ शामिल हैं। सयुक्तराज्य अमेरिका कभी भी राष्ट्रसघ में सम्मिलित नही हुआ तथा रूस के इसमें प्रवेश करते ही जापान तथा जर्मनी इसमें से निकल गए। अत विश्व के महान शक्तिशाली राष्ट्रो का जैसा जमाव सयुक्तराष्ट्र सघ में है वह राष्ट्रसघ में कभी भी नही रहा। (३) दोनो में भिन्नता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विन्दु है वडी शक्तियो की स्थिति की भिन्नता। राष्ट्रसघ द्वारा अनुज्ञप्तियो (Sanctions) के प्रयोगार्थ विवाद से सम्वन्धित पक्ष या पक्षो को छोड कर परिषद के सदस्यो की सर्व-सम्मत सहमति की आवश्यकता होती थी। इस व्यवस्था में छोटी शक्तियो के भी मत शामिल हो जाते थे, जिन्हें इसमें अस्थायी स्थान प्राप्त हुए थे। इस प्रकार छोटे तथा वडे सभी राष्ट्रों को जो परिषद् के सदस्य थे और विवाद से सम्वन्धित नही थे, निषेधाधिकार प्राप्त था। कुछ परिस्थितियो में राष्ट्रसघ की महा-सभा अनुज्ञप्तियाँ लगा सकती थी। ऐसा पग उठाने के लिए परिषद में सदस्यता-प्राप्त समस्त राष्ट्रो की स्वीकृति तथा अन्य दूसरे राष्ट्रो के वहुमत की स्वीकृति अनिवार्य थी। इसमें भी विवाद से सम्वन्धित पक्ष शामिल नही थे। दूसरी ओर सैद्धान्तिक मामलो में सयुक्त राष्ट्रसघ की सुरक्षा परिषद का वही निर्णय होगा, जिसके पक्ष में सात सदस्यो ने वोट दिया हो और सभी स्थायी सदस्यो का एकमत हो [अनुच्छेद २७ (३)] क्योकि सुरक्षा परिषद् मे पाँच स्थायी सदस्य हैं—अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रास, राष्ट्रवादी चीन तथा रूस तथा छ अस्थायी सदस्य हैं, अतएव परिषद में कोई भी छोटा राष्ट्र अथवा ऐसे ही चार राष्ट्र मिलकर भी सयुक्त राष्ट्रसघ द्वारा लगाई गई अभि-ज्ञप्तियो के विनियोग को निषेधाधिकार द्वारा ठुकरा नही सकता। इसका अर्थ यह हुआ कि 'पाँच वडो' में से कोई भी सुरक्षा परिषद मे अपने प्रभाव का उपयोग कर इतनी वाधा उत्पन्न कर सकता है जितनी कि चार छोटे राष्ट्र मिलकर भी नहीं कर सकते। निषेधाधिकार के इस फार्मूले के पीछे यह मान्यता थी कि कुछ वडी शक्तियो को ऐसी स्थिति में रख देना एक भूल होगी, जिस स्थिति में वे एक वडी शक्ति तथा छः छोटी शक्तियो के निर्देश पर किसी दूसरी वडी शक्ति को दण्ड दे सकें, जवकि वे शक्तियाँ दण्ड देने के लिए जिस शक्ति की आवश्यकता है, उसके पर्याप्त भार को वहन करने में समर्थ न हो सकें। इस व्यवस्था की खुलकर आलोचना हुई है, परन्तु फिर भी यह व्यवस्था इसके परिणामो को भली प्रकार समझकर ही की गयी थी। सयुक्त राष्ट्रसंघ अधिपत्र इस दृष्टि से पर्याप्त वास्तविक संगठन था कि वह किसी वड़ी शक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध युद्ध में प्रवृत्त करने की अपनी इच्छा का दृढतापूर्वक

प्रकटीकरण कर सके। अत सयुक्त राष्ट्रसघ को 'बडी शक्ति के सर्व-सम्मत के सिद्धान्त' पर आधारित कहा जा सकता है। (४) वास्तविक आक्रमण को रोकने के लिए सयुक्त राष्ट्रसघ अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली तथा निर्णयात्मक पग उठाने में समर्थ है। उदाहरणार्थ, इटली ने जब इथोपिया पर आक्रमण किया उस समय के राष्ट्र सघ द्वारा इटली के विरुद्ध उठाये गये पग की हम उस पग से तुलना करें जो सयुक्त राष्ट्रसघ ने १९५०-५१ में उत्तर कोरिया के विरुद्ध उठाया था, जब इसने दक्षिण कोरिया पर आक्रमण किया था। (५) राष्ट्रसघ की अपेक्षा सयुक्त राष्ट्रसघ की आर्थिक, सामाजिक, तथा मानवीय समोन्नति के लिए निर्मित सस्थाएँ अधिक विस्तृत तथा निश्चित हैं। मानव-अधिकारो की सार्वभौम घोषणा मानव के आधारभूत अधिकारो की प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृति है, जो समस्त विधि का स्रोत है। (६) प्रादेशिक सगठनो तथा अन्य सस्थाओ और समझौतो के कार्य को जो विस्तार सयुक्त राष्ट्रसघ देता है, वह भी अपेक्षाकृत बडा है। (७) सयुक्त राष्ट्रसघ की सुरक्षा परिषद और महासभा के कार्यो का विभाजन राष्ट्रसघ की महासभा तथा परिषद के कार्यो के विभाजन के मुकाबले अधिक निश्चित है। अधिपत्र के अन्तर्गत सयुक्त राष्ट्रसघीय महासभा, प्रतिश्रव (Covenant) के अन्तर्गत राष्ट्रसघ की महासभा की अपेक्षा अधिक आम निर्देशनकारी सस्था है। सयुक्त राष्ट्रसघ की सुरक्षा परिषद पर राष्ट्रसघ की परिषद की अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को स्थायी रखने का अधिक उत्तरदायित्व है। (८) राष्ट्रसघ प्रतिश्रव (Covenant) के विपरीत सयुक्त राष्ट्रसघ-अधिपत्र स्थानीय समस्याओ के हल के लिए प्रादेशिक सुरक्षा प्रबन्ध पर अधिक जोर देता है। अनुच्छेद ५२ के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शाति एव सुरक्षा-सम्बन्धी मामलो को तय करने वाली प्रादेशिक कार्यवाही के लिए जितने भी उपयुक्त प्रबन्ध और साधन इस समय हैं, उनके बने रहने में वर्तमान अधिपत्र के अनुसार कोई बाधा नही पडेगी, शर्त यह है कि वे प्रबन्ध या सस्थायें और उनके काम सयुक्त राष्ट्रसघ के प्रयोजनो और सिद्धान्तो से मेल खाते हो। अगर सयुक्त राष्ट्रसघ के सदस्य ऐसी सस्थाओ के सदस्य हो या उन्होने ऐसे प्रबन्ध किये हो तो वे स्थानीय झगडो को सुरक्षा परिषद के सामने आने से पहले इन्ही प्रादेशिक सस्थाओ या प्रबन्धो के द्वारा शान्तिपूर्ण ढग से सुलझाने की कोशिश करेंगे। अगर राष्ट्र अपनी इच्छा प्रकट करे या सुरक्षा परिषद की ओर से कोई सकेत मिले तो स्थानीय झगडे इन्ही प्रादेशिक सस्थाओ या प्रबन्धो के द्वारा सुलझाए जाएँगे। सुरक्षा परिषद इस प्रकार के सम्मान को बढाया देगी। (९) अन्तर्राष्ट्रीय प्रन्यास-प्रणाली, जिसमें सीधी याचना करने की प्रणाली, समय समय पर दौरा करने वाले शिष्ट-मडल, तथा मौखिक सुनवाई आदि की व्यवस्था है, प्रन्यास-क्षेत्रो की जनता की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, तथा शैक्षणिक उन्नति को राष्ट्रसघ की शासनादिष्ट प्रणाली की अपेक्षा अधिक सुनि-

श्चित करती है। राष्ट्रसघ की इस शासनादिष्ट प्रणाली का तीन श्रेणियो 'अ', 'ब', 'स',—में वर्गीकरण किया गया था जो कि शासनादिष्ट क्षेत्रो के राजनीतिक विकास के माप दण्ड के अनुसार था। प्रन्यास तथा गैर स्वशासन-प्राप्त क्षेत्रो को स्वतन्त्रता प्रदान करने की निर्दिष्ट तिथियाँ रख दी गयीं—उदाहरण स्वरूप लिबिया के मामले में १९५२ तथा इटली-सोमालीलैंड के मामले मे १९६०। राष्ट्रसघ के अन्तर्गत ऐसा करना अकल्पनीय था। (१०) सयुक्त राष्ट्रसघ ने प्राविधिक सहायता द्वारा विश्व के अल्प-विकसित प्रदेशो तथा देशो के आर्थिक विकास पर जोर दिया है, जिसकी राष्ट्रसघ ने उपेक्षा कर दी थी। इसके अतिरिक्त सयुक्त राष्ट्रसघ पारस्परिक समझ तथा प्रभावपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा मानव-सम्बन्धो को सुदृढ करने की दिशा में प्रयत्नशील है, जिसके विषय में राष्ट्रसघ मे केवल चर्चा होकर ही रह जाती थी। इस प्रकार, सयुक्त राष्ट्रसघ ने विचारो का आदान-प्रदान जिस हद तक उपलब्ध कर लिया है वह राष्ट्रसघ के मुकाबले कही अधिक है।

इन सब भिन्नताओ के होने पर भी मूलरूप से दोनो सगठनो को एक-सा समझना शायद उचित ही है। तब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि नवीन नाम से इस नवीन सगठन को स्थापित करना क्यो अनिवार्य हुआ ? क्या पुराने सगठन में ही नव-जागरण तथा नव-जीवन का सचार नही किया जा सकता था ? अगर यह संभव हो सकता, तो नि.संदेह एक बडे श्रम की बचत हो जाती तथा उत्तराधिकार से सम्बन्धित अनेक कानूनी प्रश्नो से आसानी से बचा जा सकता था। इस प्रश्न का एक उत्तर है कि राष्ट्रसघ पर असफलता का कलक लग गया था, इसके साथ रूस के लिये इसकी कटु स्मृतियाँ थी क्योकि इसे इसमें से निकाल फेंका गया था। इसके अतिरिक्त यह अमेरिका की आशिक समस्या में शामिल हो गया, जिसने इसे इसकी अस्वीकृति अथवा समाप्ति की स्थिति में पहुँचा दिया। यह आशा की गयी कि सयुक्त राष्ट्रसघ, जिसका नाम सर्वप्रथम प्रेसिडेन्ट फ्रेंकलिन रूजवेल्ट को सूझा था, स्वच्छ वातावरण में नवीन योजनानुसार प्रारम्भ हो सकेगा तथा अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा, शाति, सहयोग तथा समझौते की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देगा, जिससे कि बडे-छोटे सभी राष्ट्रो को मिलाकर मानवता की उन्नति सुनिश्चित हो सके

संयुक्त राष्ट्रसघ की अपूर्णताए

सयुक्त राष्ट्रसघ एक पूर्ण सगठन नही है। इसमें अनेक अपूर्णताएँ हैं, जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है : (१) इसकी सदस्यता में सार्वदेशिकता का अभाव है : अभी तक विश्व के समस्त राष्ट्र इसके सदस्य नही हैं। इसके जन्म के ग्यारह वर्ष के पश्चात् भी ६० करोड की जनसख्या वाले जनवादी चीन को, जो जनसख्या की दृष्टि से विश्व का सबसे बड़ा राष्ट्र है और जिसकी जनसख्या विश्व की कुल जनसख्या

की एक-चौथाई है, इस सगठन में अभी तक स्थान नही दिया गया। इसके साथ-साथ ही गत महायुद्ध में पराजित राष्ट्र जैसे जर्मनी (पश्चिमी जर्मनी तथा पूर्वी जर्मनी) तथा जापान भी इसके सदस्य नही हैं। मगोलिया, वीतनाम, वीतमिन्ह, उत्तर तथा दक्षिण कोरिया जैसे छोटे-छोटे राष्ट्र भी संयुक्त राष्ट्रसघ से वाहर हैं। इस प्रकार इसकी अधिकार-सीमा सीमित है तथा यह समस्त विश्व की जनता का प्रतिनिधित्व नही करता। (२) राष्ट्रसघ की त्रुटियो मे से एक त्रुटि की इस सगठन में भी पुनरावृत्ति की गई है। यह सगठन इस सिद्धान्त पर आधारित है कि क्षेत्रफल अथवा सीमा तथा जनसख्या की भिन्नता होते हुए भी सब सदस्य राष्ट्र समान हैं। वैधानिक समानता की इस मान्यता के कारण मताधिकार की दृष्टि से बडे राष्ट्र भी छोटे राष्ट्रो के सम-कक्ष आ गये हैं। इस प्रकार ३६ करोड की विशाल जन-सख्या वाले देश भारत को भी वही अधिकार प्राप्त है, जो १९ लाख की जनसख्या वाले एल-साल्वाडर तथा ११ लाख की जनसख्या वाले लेवनान को है। (३) सयुक्त राष्ट्रसघ का हर सदस्य-राष्ट्र पूर्ण प्रभु-सत्ता-सम्पन्न है। इस प्रकार यह अन्तर्राष्ट्रीय सगठन राष्ट्रोपरि सगठन नही है और न ही यह एक विश्व-सघ है। यह तो केवल चर्चा, वाद-विवाद तथा विवादो के शातिपूर्ण हल के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय स्थल मात्र है। इसके पास अपनी स्वय की शक्ति नही, सिवाय उन अधिकारो के जो सदस्य-राष्ट्र उसे स्वेच्छया प्रदान करते हैं। विभिन्न देशो के 'घरेलू मामलो' में इसका कोई अधिकार नही है, जिसकी विस्तृत परिभाषा घोषणापत्र में नही दी गयी है। इसका परिणाम यहाँ तक हुआ है कि औपनिवेशिक प्रश्न अथवा गैर-स्वशासन प्राप्त क्षेत्रो को आत्म-निर्णय का अधिकार देने के प्रश्न पर भी औपनिवेशिक शक्तियों ने इनको अपने घरेलू अधिकार-सीमा के अन्तर्गत मानकर विचार किया है। (४) निषेधाधिकार का दुरुपयोग—सुरक्षा-परिषद् में ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रास, रूस तथा राष्ट्रवादी चीन को निषेधाधिकार प्राप्त है, जो विश्व में शाति तथा सुरक्षा को स्थिर करने की दिशा में प्रभावकारी पगो में अवरोध उत्पन्न कर देता है। सयुक्त राष्ट्रसघ के प्रथम महामन्त्री (Secretary General) ट्रिग्वेली ने स्वीकार किया है, "निषेधाधिकार के कारण सयुक्त राष्ट्रसघ अशक्त है, वडे राष्ट्रो के सघर्ष ने इसे पगु बना दिया है तथा 'शीत-युद्ध' ने इसकी गतिशीलता को और भी ठडा कर दिया है।" हैराल्ड लस्की ने लिखा है, "अन्त -युद्धीय वर्षो में हमें वस्तुत ऐसा पाठ मिला है, जिसकी वास्तविकता से मुँह नही मोडा जा सकता और वह पाठ यह है कि एक बार किसी अन्तर्राष्ट्रीय सस्था के सदस्यो ने उन सिद्धान्तो को, जिनके लिए वे प्रतिज्ञा वद्ध हैं, अपने पक्ष के वचाव के लिए तोडना मरोडना प्रारम्भ कर दिया, तो फिर अन्तत समस्त सस्था विशृखलित होनी प्रारम्भ हो जाती है। विशृखलता जब होती है तो इकट्ठी हो जाती है।" १९५२

तक रूस ने ५५ बार निषेधाधिकार का प्रयोग किया है। संयुक्त राष्ट्रसघ मे जनता की आस्था को जितना सुरक्षा-परिषद् मे निषेधाधिकार के बे-रोक-टोक उपयोग अथवा दुरुपयोग ने कम किया है, उतना और किसी ने नही। आलोचको का यह कथन है कि निषेधाधिकार का अनुभव प्रदर्शित करता है कि आधाररूप से सयुक्तराष्ट्र सघ अपर्याप्त है तथा युद्ध और शाति की समस्याओ को प्रभावपूर्ण ढग से नही सुलझा सकता। (५) संयुक्त राष्ट्रसघ के निर्णयो का महत्व सिफारिशो मे अधिक कुछ नही है तथा एक सदस्य-राष्ट्र को यह छूट है कि वह उन्हे स्वीकार करे अथवा ठुकरा दे। इसके पास कोई भी विवशकारी शक्तियाँ (Coercive Powers) नही हैं तथा आक्रात शक्ति के विरुद्ध सामूहिक सुरक्षा साधनो को काम में लाने के लिए कितनी सैनिक सहायता दी जाय इसकी व्याख्या कही भी नही की गई है। सयुक्त राष्ट्र सघ घोषणा-पत्र में आत्म-सुरक्षा तथा आक्रमण के मध्य भेद का स्पष्ट शब्दो मे उल्लेख नही है। उत्तर कोरिया द्वारा दक्षिण कोरिया पर आक्रमण करने के मामले मे भी केवल १६ राष्ट्रो ने ही सयुक्त राष्ट्र सघ को सैनिक सहायता दी। (६) सयुक्त राष्ट्र सघ का प्रमुख दोष यह है कि विश्व के राष्ट्र दो विरोधी गुटो में बँट गए हैं तथा अधिकाश समस्याएँ शक्ति राजनीति द्वारा तय होती हैं। रूसी गुट हमेशा आग्ल-अमेरिकी गुट का तथा आग्ल-अमेरिकी गुट रूसी गुटका विरोध करते रहते हैं तथा समस्त प्रश्नो का निर्णय इन दोनो गुटो के लाभो अथवा हितो की दृष्टि में रखकर होता है। अत. ऐसे मामलो के जिनमें उनके हित प्रत्यक्षत. सम्मिलित हैं, मुश्किल से ही उद्देश्यपूर्ण विश्लेषण या निष्पक्ष निर्णय होते हैं। (७) विश्व के परस्पर दो विरोधी गुटो में बँट जाने मे छोटी शक्तियो के निर्णय तथा इच्छा का कोई महत्त्व नही रह गया। वे किसी भी शक्ति-गुट के पक्ष मे उसके अनुयायी की तरह जाने को विवश हो जाते हैं। इस तरह विवेकपूर्ण तथा शान्तिपूर्ण वाद-विवाद के स्थान पर तमाम विवादो के निर्णय आमतौर पर छोटे राष्ट्रो के मत प्राप्त कर लेने से होते हैं। अभी हाल ही में एक नवीन गुट एशियायी अफ्रीकी गुट के नाम से अस्तित्व में आया है। यह गुट औपनिवेशिक शासन के अधीन विश्व की परतत्र जनता की स्वाधीनता का पक्षपाती है। यह जातीय भेदभाव को मिटाने तथा समस्त विवादो के शांतिपूर्ण समाधान का समर्थक है। (८) सयुक्त राष्ट्र सघ की सबसे बड़ी कमी यह है कि रूस तथा पश्चिमी शक्तियो में ऐसे सैद्धातिक मतभेद हैं, जिनपर समझौता नही हो सकता है। इन मतभेदो को प्रायः 'तानाशाही' तथा 'जनतन्त्र', 'साम्यवाद' तथा 'पूँजीवाद', 'समाजवाद' तथा 'स्वतन्त्र व्यवसाय-व्यवस्था' आदि नामो से प्रकट किया जाता है। एक विचारधारा द्वारा दूसरी पर शासन करने और यहाँ तक कि उसे समाप्त करने के प्रयत्नो ने 'शीत-युद्ध' को जन्म दिया, जिससे एक स्थायी शान्ति असम्भव है जो

वस्तुत अत्यधिक अनिश्चित एव सशययुक्त है। (९) इसका दूसरा दोष यह है कि शस्त्रो के एकत्रीकरण तथा निर्माण को कम करने के मामलो में बडी शक्तियो में ईमानदारी का अभाव है। अणुबम तथा उद्जन बम सरीखे विध्वसकारी अस्त्रो के निरतर परीक्षण ने स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय तनाव तथा सघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर दी है, जो छोटी-बडी सभी शक्तियो को युद्ध की ज्वाला में झोक सकती है। विवादास्पद मामलो के समाधान में कुछ बडी शक्तियो ने तो सयुक्त राष्ट्र सघ का भी अतिक्रमण कर दिया, जैसा कि फ्रास ने जुलाई १९५४ में हिन्द-चीन युद्ध-विराम-समझौते मे किया। (१०) क्रिया-विधि में विलम्ब, निष्फल वाद-विवाद तथा अन्तर्राष्ट्रीय सेना अथवा शक्ति का अभाव शीघ्र तथा निर्विलब कार्यवाही में बाधा उत्पन्न करते हैं। कुछ भी हो, परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि सयुक्त राष्ट्र सघ आज दिन तक विश्व युद्ध रोकने तथा शाति को बनाए रखने में सफल हुआ है।

सयुक्त राष्ट्र सघ को सुदृढ बनाने के प्रस्ताव

सयुक्त राष्ट्र सघ का अब तक का लेखा-जोखा निर्विवाद रूप से निराशा-जनक ही रहा है। एक सुविख्यात आलोचक श्री क्युन्सी राइट का कथन है, "बडी शक्तियो के पारस्परिक वैमनस्य, परस्पर शत्रु राष्ट्रो के बीच शांति-स्थापना की असफलता तथा अणुशक्ति-नियन्त्रण पर सुलह समझौता न हो सकने के क्षीणकारी प्रभाव के मुकाबले इसकी सफलता कम ही रही है।" तथापि इस अणु युग में जब महायुद्ध की स्थिति में मानवता की जीवन-रक्षा ही नितात सन्देहास्पद है, सयुक्त राष्ट्र सघ ही मानव-जाति का एकमात्र आशा-दीप है। भूतपूर्व महामन्त्री श्री ट्रिग्वेली ने एक बार कहा था, "सयुक्त राष्ट्र सघ एक ऐसी प्रमुख शक्ति बन गया है जिसने उन विवादोत्पादक तनावो तथा प्रयत्नो के विरुद्ध जो विश्व के राष्ट्रो को एक-दूसरे से अलग कर रहे हैं, विश्व को एक सूत्र में बाँधा हुआ है।" सयुक्त राष्ट्र सघ को सुदृढ करने के लिए विभिन्न प्रस्ताव सामने आते हैं, जिनमें ढाँचे में परिवर्तनो से लेकर सुरक्षा परिषद् में मतदान की प्रक्रिया के सुधार तक सम्मिलित हैं।

घोषणापत्र पुनरीक्षण —सयुक्त राष्ट्र सघ को सुदृढ बनाने के उपायो में से एक उपाय है कि घोषणा-पत्र में परिवर्तन व सशोधन किया जाय, जिससे यह और अधिक प्रभावशाली बन सके। १९५५ में ६० प्रतिनिधियो में से ५२ ने घोषणापत्र-पुनरीक्षण से सम्बन्धित चर्चा में भाग लिया। इनमें से २० राष्ट्र घोषणापत्र की एक या दो धाराओ में सशोधन के पक्षपाती थे। घोषणापत्र के सशोधन के लिए निम्नाकित सुझाव थे

१ अन्तर्राष्ट्रीय विवादो के शातिपूर्ण समाधान के समस्त प्रश्नो तथा नए सदस्यो के स्थान देने में 'निषेधाधिकार' को हटा दिया जाय।

२. अनुच्छेद २(७) के अन्तर्गत घरेलू अधिकार क्षेत्र के विस्तार की पुनर्व्याख्या की जाय।

३. महासभा के कार्य-क्षेत्र को विस्तृत करके घोषणापत्र को और अधिक परिवर्तनशील तथा जनतान्त्रिक बनाया जाय।

४ राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य तथा आत्म-निर्णय की समस्याओ पर अधिक जोर दिया जाय, जिससे पराधीन क्षेत्रो को स्वतत्र राष्ट्रो के समुदाय मे शीघ्र मान लिया जाय। अर्थात् अनुच्छेद १० का स्पष्टीकरण किया जाय।

५. घोषणापत्र का सुस्पष्ट एव स्पष्टार्थी शब्दो में पुनर्लेखन किया जाय, सयुक्त राष्ट्रसघ पर जो दायित्व हैं उसके मुकाबले उसके अधिकार में जो साधन हैं, इन दोनो मे जो बिगडा अनुपात है उसे ठीक किया जाय। इसका प्रयोजन यही है कि सयुक्त राष्ट्र सघ की सिफारिशो को सब राष्ट्र स्वीकृत करके तदनुसार आचरण करने लगें।

६. अनुच्छेद ६७ में सुधार किया जाय, जिससे सुरक्षा परिषद् की सिफारिश के बिना महासभा महामन्त्री की नियुक्ति कर सके।

७ अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के अभिशासन का विस्तार किया जाय।

८. एक ही प्रादेशिक सगठन में आने वाले राष्ट्रो के पारस्परिक विवादो की स्थिति मे क्या क्रिया-विधि अपनाई जाय, इस सम्बन्ध में बने परिच्छेद VIII का स्पष्टीकरण किया जाय। १९५४ से महामन्त्री आठवी महासभा (१९५३) के प्रस्ताव की पूर्ति हेतु कुछ चीजो को तैयार कर रहा है, प्रकाशित कर रहा है तथा प्रेषित कर रहा है : ये हैं—(१) सान फ्रांसिस्को सम्मेलन के कागज-पत्रो का एक व्यवस्थित सकलन, (२) सम्मेलन के कागज-पत्रो की पूर्ण विषय-सूचि; (३) सयुक्त राष्ट्रसघ के विभिन्न अगो के कार्यो का कोष उसकी अनुक्रमणिका सहित। दसवी महासभा (१९५५) के चाइली अध्यक्ष श्री जोसे माजा के अनुसार प्रस्तावित घोषणापत्र-पुनरीक्षण सम्मेलन १९५७ में होगा, जिसमें घोषणा-पत्र के निर्देशो पर चर्चा होगी। परन्तु कुछ आलोचको का कथन है कि वास्तव मे आवश्यकता घोषणा-पत्र पुनरीक्षण की नहीं, वल्कि लोगो के मस्तिष्को के पुनरीक्षण की है। कुछ भी हो, संयुक्त राष्ट्र सघ के तन्त्र तथा प्रक्रिया में पर्याप्त सुधार की गुञ्जाइश है, जिससे इसकी कार्यक्षमता मे वृद्धि होगी।

महामन्त्री त्रिग्वेली के सुझाव

१९४८ की महासभा को अपने तृतीय वार्षिक प्रतिवेदन में सयुक्त राष्ट्र सघ को सुदृढ करने के लिए उन्होने अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिए। सर्वप्रथम "जर्मनी के भविष्य की समस्या के समाधान की अपेक्षा और कुछ भी सयुक्त राष्ट्र सघ के प्रभाव

को बढाने मे सहायक नही हो सकता।" दूसरे, उन्होने, "शाति के स्थायित्व तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादो के समाधान के लिए महासभा तथा सुरक्षा-परिषद् के समस्त अधिकारो के पूरे-पूरे उपयोग" की आवश्यकता पर बल दिया। तीसरे सुरक्षा-परिषद् के उपयोग के लिए सशस्त्र सेना प्रदान करके और इस प्रकार घोषणापत्र के अनुच्छेद ४३ को क्रियान्वित करने के लाभ की ओर उन्होने ध्यान आकृष्ट किया। चौथे, उन्होने सुझाव दिया कि सयुक्त राष्ट्रसघ को कृमि आयुधो तथा प्राणघातक रासायनिक आयुधो के नियन्त्रण से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करना चाहिए। पाँचवें, उन्होने यह आशा व्यक्त की कि सुरक्षा-परिषद् के स्थायी सदस्य सयुक्त राष्ट्र सघ के सार्वदेशिक सदस्यता की ओर शीघ्रगामी कदमो को निषेधाधिकार के निरन्तर प्रयोग से नही रोकेंगे। अन्त में उन्होने सयुक्त राष्ट्रसघ के सदस्यो पर इस बात के लिए जोर डाला कि महासभा तथा सुरक्षा-परिषद् के निर्णयो को "वे समस्त सम्भव समर्थन तथा बल दे, चाहे वे निर्णय सदस्य राष्ट्रो को सिफारिशो के रूप में ही दिए जाँय।"

१९५० में श्री ली ने सयुक्त राष्ट्र सघ द्वारा शान्ति-प्राप्ति के लिए 'बीस वर्षीय कार्यक्रम' का प्रस्ताव पेश किया, जो निम्नाकित दस-सूत्री-कार्यक्रम को लागू करने पर पूरा हो सकता है —

(१) सुरक्षा-परिषद् की समय-समय पर बैठकें 'परामर्श' के लिए हो, जिनमें विश्व की सरकारो के विदेशमन्त्री, प्रधान अथवा दूसरे सदस्य उपस्थित हो। इनमें से अधिकाश कार्यक्रम निजि रूप से होगा। जो समस्या सामने हो, उसके प्रश्नो पर समझौते की दिशा में प्रयत्न किए जायें, पारस्परिक मिथ्या धारणाओ को मिटाया जाय, जिससे कि नये पग उठाने के लिए तैयारी हो सके। इस प्रकार भविष्य में होने वाली बैठको में निश्चित समझौते पर पहुँचने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ निर्माण की जा सके। (२) अणु-शक्ति के अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण पर समझौते को प्राप्त करने के नवीन प्रयत्न किए जांय। (३) सब प्रकार के शस्त्रो के नियन्त्रण की दिशा मे नया पग उठाया जाय। (४) सुरक्षा-परिषद् के लिए सशस्त्र सेनाओ को सुलभ किया जाय। (५) सयुक्त राष्ट्र सघ की सार्वदेशिक सहायता की ओर शीघ्र उन्नति की जाय। (६) ठोस तथा विस्तृत प्राविधिक सहायता-कार्यक्रम। (७) विशिष्ट सस्थाओ का और अधिक तीव्र प्रयोग। (८) मानव अधिकारो का और अधिक आदर। (९) परतन्त्र राष्ट्रो के लिए समानता की स्थिति को बढावा। (१०) तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि का उत्तरोत्तर विकास। श्री ली के इस कार्यक्रम में केवलमात्र नवीन प्रस्ताव प्रथम प्रस्ताव ही है। दूसरे मुद्दे ऐसे हैं, जो वस्तुत कार्य करने के लिए विशेष आयोजनो के रूप में नही हैं। वे तो ऐसी भावनाओ के स्मरण मात्र है, जिनको प्राय प्रदर्शित किया जाता रहा है।

शाति प्रस्ताव (१९५०) के लिए एकता

जून १९५० मे कोरिया-समस्या के परिणामो मे से एक परिणाम यह हुआ कि महासभा ने ३ नवम्बर, १९५० को कतिपय 'शांति के लिए एकता' प्रस्ताव को अगीकार किया। इस प्रस्ताव की मुख्य-मुख्य व्यवस्थाएँ ये हैं -

(क) ऐसी आपात कालीन स्थिति में, जब सुरक्षा परिषद् के लिए कार्य करने की रोक हो, महासभा को यह अधिकार दिया गया कि वह अल्प-कालीन सूचना पर बैठक बुला सके तथा उपयुक्त सामूहिक उपायो की सिफारिश कर सके, जिनमे आवश्यकता पडने पर सशस्त्र सेनाओ का प्रयोग भी सम्मिलित है।

(ख) इसने चौदह राष्ट्रो के शाति निरीक्षण आयोग की स्थापना की, जो विश्व के किसी भी भाग में खतरनाक स्थितियो पर निगाह रखे तथा उसकी रिपोर्ट दे।

(ग) इसने समस्त सदस्य राष्ट्रो से अपनी सशस्त्र सेना मे एक ऐसे तत्व को शामिल करने को कहा, जो सुरक्षा-परिषद् या महासभा के आह्वान पर सयुक्त राष्ट्रसघ की सेवाओ के लिए सुलभ हो सके।

(घ) इसने १४ राष्ट्रो की सामूहिक उपाय समिति की स्थापना की, जो अन्तर्राष्ट्रीय शाति एव सुरक्षा को सुदृढ एव स्थायी रखने के इन तथा दूसरे उपायो का अध्ययन करे तथा तत्सबधी प्रतिवेदन उपस्थित करे।

(ङ) इसने समस्त सदस्य राष्ट्रो पर इस बात का जोर दिया कि वे सयुक्त राष्ट्र सघ के प्रति अपनी निष्ठा को नये सिरे से सुधारें, इसके निर्णयो को मान्यता दें तथा मानवीय अधिकारो के तथा आर्थिक स्थायित्व एव सामाजिक उन्नति की उपलब्धियो के प्रति आदर को आगे बढायें।

लीलेंड एम गुडरिच तथा हान्स केल्मेन जैसे कानून विशेषज्ञ तथा आलोचको ने महासभा की निर्णय-बुद्धि तथा वैधानिकता दोनो के प्रति सन्देह प्रकट किया, जो महासभा अपने दो-तिहाई बहुमत से सुरक्षा परिषद का उल्लघन करके शक्ति प्रयोग के उपायो की सिफारिश कर देती है, जबकि वह समस्या सुरक्षा परिषद् की विचाराधीन कार्य-सूची में है। रूसी गुट का यह कहना है कि प्रस्ताव का उद्देश्य सुरक्षा-परिषद् को उसके शांति तथा सुरक्षा को स्थिर रखने के मुख्य दायित्व से वचित करना है, और इस प्रकार इसका प्रभाव घोषणा-पत्र के अनुच्छेद १२, पैरा

परन्तु उनके कार्यान्वित करने के कोई प्रत्यक्ष साधन नही हैं। दूसरे, यह खतरा है कि कही सयुक्त राष्ट्रसघ के सीमित साधनो के कारण उसकी दूसरे राष्ट्रीय कार्यक्रमो, जैसे अमेरिका चतुर्थ सूत्री तथा सुरक्षा-सहायता-कार्यक्रम, से अमित्रतापूर्ण प्रतिद्वद्विता न उत्पन्न हो जाय। तीसरे, ऐसी सम्भावना कठिन ही मालूम पडती है कि बडी जन-सख्या वाले अल्प-विकसित देशो के मानवीय तथा सामग्री-सम्बन्धी साधनो में कोई ठोस सुधार हो सकेगा, जिसका अवश्यभावी परिणाम यह होगा कि अनेक नयी राजनीतिक समस्यायें उत्पन्न हो जायेगी। तो भी, चाहे अत्यन्त धीमी ही क्यो न हो, सराहनीय प्रगति की अवश्य जा रही है तथा निकट भविष्य में हम आशा करते हैं कि सयुक्त राष्ट्रसघ के तत्वावधान में सदस्य-राष्ट्रो के राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक सहयोग से शाति को स्थायी रखा जा सकेगा। सयुक्त राष्ट्रसघ विभिन्न राष्ट्रीय सरकारो के प्रवक्ताओ की वक्तृत्वकला एव विवादो का स्थल बना रहेगा। एक आधुनिक लेखक के कथनानुसार, "मानव जाति का इतिहास परीक्षण तथा भूलो की कहानी है तथा अच्छे उद्देश्यो के लिये अच्छे व्यक्तियो का निरन्तर प्रयास ही इस कहानी का सर्वाधिक उत्साहवर्धक भाग है। यह दृष्टिकोण विषादपूर्ण हो सकता है, पर किसी भी प्रकार नैराश्यपूर्ण नही है।"

व्याख्यान ७

क्षेत्रवाद

भूमिका—तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो में जिन सर्वाधिक प्रवृत्तियो का विकास हुआ उनमें से एक प्रवृत्ति है क्षेत्रवाद की ओर निरन्तर बढता हुआ झुकाव। सयुक्त राष्ट्रसघ के अनुच्छेद ५२ के अन्तर्गत इसे विशेष रूप से मान्यता दी गई। क्षेत्रीय सगठन विकास की पूर्ण अवस्था तक पहुँच गया है, जिसने व्यावहारिक दृष्टि से विश्व के सभी भागो को समेट लिया है। यही नयी प्रवृत्ति किसी सीमा तक इस विभाजित विश्व में सुरक्षा के राष्ट्रीय साधनो को परिपूर्ण करने की आवश्यकता का परिणाम है। इस प्रवृत्ति की वृद्धि का कारण अनेक दूसरे दवाव भी है, जो वर्तमान युग में विभिन्न राष्ट्रो को एक दूसरे के समीप ले जा रहे हैं। सुविज्ञ अधिकारी व्यक्तियो के अनुसार 'एक राष्ट्र, एक राज्य,' की प्रणाली, जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो का प्रभावशाली ढांचा पिछले ५०० सालो से रही है, एक ऐसी प्रणाली का रूप लेने की दिशा मे उत्तरोत्तर विकास कर रही है, जिसमें राष्ट्रो के क्षेत्रीय समूहो का महत्व स्वाधीन प्रभुसत्ता-सम्पन्न राष्ट्र की अपेक्षा अधिक होगा। जैसा कि वाल्टर लिप्पमान का विश्वास है, "यह सम्भव है कि भविष्य में किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के सदस्य स्वाधीन राष्ट्र न होकर राष्ट्र के समुदाय होगे।" यदि इस व्याख्या को स्वीकार किया जाय तो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के एक अन्य ही प्रकार के ढाँचे के विकास में वर्तमान प्रवृत्तियाँ तो केवल मात्र एक परिवर्तनशील अवस्था हैं।

इस अध्याय में हम अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रवाद के अर्थ, प्रवृत्ति तथा उसका क्या परिणाम होगा इसकी व्याख्या करेंगे। साथ ही, अब जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्रीय व्यवस्थाएँ कार्य कर रही हैं तथा जिनके बनाने के लिए गम्भीर विचार किये जा रहे हैं, उनकी भी चर्चा करेंगे। इनमें जो क्षेत्रीय व्यवस्थाएँ सम्मिलित हैं वे हैं—अमेरिकी राज्यो का सगठन, पश्चिमी सघ के विभिन्न क्षेत्रीय सगठन, उत्तर अतलातक सधि सगठन (NATO), अरब संघ, ANZUS, सीटो (दक्षिण पूर्वी एशिया सुरक्षा सगठन) तथा बगदाद-सधि। क्षेत्रीय व्यवस्थाओ की परिसीमाओ तथा सम्भावनाओ का कुछ गुणागुणज्ञान प्राप्त करना हो तो हमें सयुक्त राष्ट्रसघ से तथा अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के दूसरे सदस्यो से इनके सम्बन्ध का, इनके हानि-लाभ के साथ, अवश्य ही अध्ययन करना चाहिए।

क्षेत्रवाद की धारणा

'क्षेत्र' अथवा 'क्षेत्रवाद' शब्दों का प्रयोग—क्षेत्र अथवा क्षेत्रवाद या क्षेत्रीय सगठन आदि शब्दो के आधुनिक प्रयोग के विभिन्न अर्थ होते हैं। 'प्रदेश' शब्द का साधारण प्रयोग राज्य के किसी छोटे भाग के लिये किया जाता है। इसीलिये यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो मे प्रदेश उस क्षेत्र को कहते हैं जिसने तीन या अधिक राज्यो को अपने अन्दर समेटा हुआ है। ये राज्य अपने समान हितो तथा भौगोलिक स्थिति के बन्धनो के कारण एक साथ इकट्ठे हो जाते हैं। यह आवश्यक नही कि यह एक दूसरे के समीप हो या एक ही उप-द्वीप मे हो। उदाहरण स्वरूप वे राष्ट्र जिनकी सीमाओ से एक ही सागर टकराता है, अपने समान हितो का बढावा देने के लिये सघ बनाकर एक अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र का निर्माण कर सकते है, चाहे वे एक-दूसरे से सैकडो या हजारो मील दूर ही क्यो न हो। उदाहरण के लिये उत्तर अतलांतक सधि सगठन (नाटो) को लें। यह सगठन यद्यपि अतलातक ही नही भूमध्य सागर के भी दोनो ओर भौगोलिक दृष्टि से बिखरा है, तथापि यह समझा जा सकता है कि यह राज्यो का एक वास्तविक समुदाय अथवा एक अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र है।

परिभाषा—१९४५ में सान-फ्रांसिस्को सम्मेलन में मिस्री प्रतिनिधि ने सयुक्त राष्ट्रसघ घोषणा-पत्र के मूल मसविदे में एक सशोधन प्रस्तुत किया। इस सशोधन के अनुसार 'क्षेत्रीय व्यवस्थाओं' के अर्थ को निम्न व्याख्या द्वारा सीमित करना था। "ऐसे सगठन जो स्थायी हो तथा किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र के ऐसे कई देशो का सघ बनाएं जो पारस्परिक सन्निध्य के कारण, समान हितो के मेल के कारण अथवा सास्कृतिक, भाषाई, ऐतिहासिक या आत्मिक सम्बन्धो के कारण, आपसी विवादो के शान्तिपूर्ण समाधान के लिए तथा अपने हितो को बनाये रखने के लिये और अपने आर्थिक तथा सास्कृतिक सम्बन्धो के विकास के लिये सयुक्त रूप से उत्तरदायी हो।" बी० बुत्रोस घाली, जो एक प्रसिद्ध मिस्री विद्वान् हैं तथा जिन्होने क्षेत्रीय व्यवस्था के सर्वोत्तम अध्ययनो में से एक अध्ययन लिखा है, उन्होने उपर्युक्त परिभाषा का निम्न प्रकार पुनरावलोकन किया है, "उन स्थायी सगठनो को ही क्षेत्रीय व्यवस्था माना जायेगा, जो दो से अधिक ऐसे देशो को सगठित करें, जिन देशो ने पारस्परिक सन्निव्य के कारण, समान हितो के मेल या सादृश्यताओं के कारण अपने ऊपर स्वय सयुक्त उत्तरदायित्व डाल लिया हो, जिससे वे अपने क्षेत्र में शान्ति एव सुरक्षा को स्थायी रखें और साथही अपने आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक सहयोग में वृद्धि करें। इस सबके साथ उनका अन्तिम लक्ष्य यह भी हो कि वे मिलकर एक अन्तर्राष्ट्रीय इकाई बनें।" डाक्टर ई० एन० वान० क्लेफेन्स ने, जो पुर्तगाल में उच्च-दूत हैं तथा महासभा के नवें अधिवेशन के अध्यक्ष थे, इस प्रकार इसकी परिभाषा दी है, "क्षेत्रीय व्यवस्था या

समझौता एक विशेष क्षेत्र मे अवस्थित प्रभुसत्ता-सम्पन्न राष्ट्रो का स्वेच्छया बनाया हुआ संघ है, जिनके सयुक्त उद्देश्य के लिए उस क्षेत्र मे समान हित हैं, लेकिन वह उद्देश्य आक्रमणात्मक नही होना चाहिये।" क्लेफेन्स ने अपनी परिभाषा में दो शब्दो का प्रयोग एक ही अर्थ मे किया है। वे शब्द हैं—'व्यवस्था' तथा 'समझौता'। ये प्रयोग भ्रम मे डालने वाले प्रतीत होते हैं, क्योकि 'समझौता' मे किसी भी प्रकार के प्रशासनिक तत्र की आवश्यकता नही जबकि क्षेत्रीय सस्थाओ में इसकी अनिवार्यता निर्विवाद है।

अतएव यह तो स्पष्ट ही है कि क्षेत्रवाद की परिभाषा मे विद्वानो का एकमत नही है। यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो में अभी तक पारिभाषिक शब्द नही बना है, जिसे सार्वदेशिक मान्यता प्राप्त हो गई हो। लेकिन तो भी, हम कह सकते हैं कि क्षेत्रीय सगठन में निम्नलिखित विशेषताएँ अवश्य ही होनी चाहिएँ, (१) इसमें दो से अधिक प्रभुसत्ता-सम्पन्न राष्ट्र अवश्य ही होने चाहिएँ, (२) यह ठोस समान प्रयास में सलग्न होना चाहिए, (३) यह सुरक्षा उद्देश्यों के लिए ही होना चाहिए, ताकि यह सयुक्त राष्ट्रसघ घोषणा-पत्र के अतर्गत आ जाय, (४) इसके सदस्य राष्ट्रो मे ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एव आत्मिक समानताएँ हो, (५) इसमे क्षेत्रीय सम्बद्धता का तत्व होना चाहिए अर्थात् उसके सदस्य राष्ट्रो का सम्बन्ध एक ही क्षेत्र से होना चाहिए, (६) इसमें (अ) क्षेत्र के अन्दर ही अन्दर अन्तर्राष्ट्रीय विवादो के शातिपूर्ण समाधान तथा (व) सदस्य राष्ट्रो की आर्थिक, सास्कृतिक तथा सामाजिक सहकार्यता के हेतु एक तत्र की व्यवस्था होनी चाहिए। किसी एक विशेष बडे क्षेत्र में कई क्षेत्रीय सगठन हो सकते हैं और यह आवश्यक नही कि उस क्षेत्र के सभी देश उस क्षेत्रीय संगठन में शामिल हो। एक देश राजनैतिक अथवा सैद्धान्तिक कारणो से इस सगठन से पृथक रखा जा सकता है, उदाहरण के तौर पर फ्रैंको का स्पेन। दूसरे, कोई भी राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय जाल में फंसने के भय से तथा अधिकाश स्थितियो में अपनी तटस्थता भग की सम्भावना से इस संगठन से बाहर रह सकता है जैसे आस्ट्रिया और स्विटजरलैंड।

क्षेत्रीय सगठन तथा क्षेत्रीय गठबन्धन

'क्षेत्रीय समझौता' समान नीतियो को लागू करने के लिए नितात ही किसी तत्र के बिना ही सम्भव हो सकता है, जबकि 'क्षेत्रीय व्यवस्था' में यह आवश्यक है। इस प्रकार, समझौते में किसी पूर्ण एव निश्चित कार्य की अपेक्षा आम दृष्टि-कोण को अधिक अपनाया जाता है। 'क्षेत्रीय व्यवस्था' तथा 'गठ-बन्धन' के बीच भी भेद करना आवश्यक है। डा. वान क्लेफेंस ने उल्लेख किया है: "ऐसा प्रतीत होता है कि क्षेत्रीय व्यवस्था तथा गठबन्धन में त्रिपक्षीय भेद है, जो अस्पष्ट पारिभाषिक

क्षेत्रवाद की धारणा

'क्षेत्र' अथवा 'क्षेत्रवाद' शब्दों का प्रयोग—क्षेत्र अथवा क्षेत्रवाद या क्षेत्रीय सगठन आदि शब्दो के आधुनिक प्रयोग के विभिन्न अर्थ होते है। 'प्रदेश' शब्द का साधारण प्रयोग राज्य के किसी छोटे भाग के लिये किया जाता है। इसीलिये यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो में प्रदेश उस क्षेत्र को कहते हैं जिसने तीन या अधिक राज्यो को अपने अन्दर समेटा हुआ है। ये राज्य अपने समान हितो तथा भौगोलिक स्थिति के बन्धनो के कारण एक साथ इकट्ठे हो जाते हैं। यह आवश्यक नही कि यह एक दूसरे के समीप हो या एक ही उप-द्वीप में हो। उदाहरण स्वरूप वे राष्ट्र जिनकी सीमाओ से एक ही सागर टकराता है, अपने समान हितो का बढावा देने के लिये सघ बनाकर एक अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र का निर्माण कर सकते है, चाहे वे एक-दूसरे से सैकडो या हजारो मील दूर ही क्यो न हो। उदाहरण के लिये उत्तर अतलांतक सधि सगठन (नाटो) को लें। यह सगठन यद्यपि अतलातक ही नही भूमध्य सागर के भी दोनो ओर भौगोलिक दृष्टि से बिखरा है, तथापि यह समझा जा सकता है कि यह राज्यो का एक वास्तविक समुदाय अथवा एक अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र है।

परिभाषा—१९४५ में सान-फ्रांसिस्को सम्मेलन में मिस्री प्रतिनिधि ने सयुक्त राष्ट्रसघ घोषणा-पत्र के मूल मसविदे में एक सशोधन प्रस्तुत किया। इस सशोधन के अनुसार 'क्षेत्रीय व्यवस्थाओ' के अर्थ को निम्न व्याख्या द्वारा सीमित करना था। "ऐसे सगठन जो स्थायी हो तथा किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र के ऐसे कई देशो का सघ बनाएँ जो पारस्परिक सन्निध्य के कारण, समान हितो के मेल के कारण अथवा सास्कृतिक, भाषाई, ऐतिहासिक या आत्मिक सम्बन्धो के कारण, आपसी विवादो के शान्तिपूर्ण समाधान के लिए तथा अपने हितो को बनाये रखने के लिये और अपने आर्थिक तथा सास्कृतिक सम्बन्धो के विकास के लिये सयुक्त रूप से उत्तरदायी हो।" बी० बुत्रोस घाली, जो एक प्रसिद्ध मिस्री विद्वान् हैं तथा जिन्होने क्षेत्रीय व्यवस्था के सर्वोत्तम अध्ययनो में से एक अध्ययन लिखा है, उन्होने उपर्युक्त परिभाषा का निम्न प्रकार पुनरावलोकन किया है, "उन स्थायी सगठनो को ही क्षेत्रीय व्यवस्था माना जायेगा, जो दो से अधिक ऐसे देशो को सगठित करें, जिन देशो ने पारस्परिक सन्निध्य के कारण, समान हितो के मेल या सादृश्यताओ के कारण अपने ऊपर स्वय सयुक्त उत्तरदायित्व डाल लिया हो, जिससे वे अपने क्षेत्र में शान्ति एव सुरक्षा को स्थायी रखें और साथही अपने आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक सहयोग में वृद्धि करें। इस सबके साथ उनका अन्तिम लक्ष्य यह भी हो कि वे मिलकर एक अन्तर्राष्ट्रीय इकाई बनें।" डाक्टर इ० एन० वान० क्लेफेन्स ने, जो पुर्तगाल में उच्च-दूत हैं तथा महासभा के नवें अधिवेशन के अध्यक्ष थे, इस प्रकार उसकी परिभाषा दी है, "क्षेत्रीय व्यवस्था या

समझौता एक विशेष क्षेत्र मे अवस्थित प्रभुसत्ता-सम्पन्न राष्ट्रो का स्वेच्छया बनाया हुआ सघ है, जिनके सयुक्त उद्देश्य के लिए उस क्षेत्र मे समान हित हैं, लेकिन वह उद्देश्य आक्रमणात्मक नही होना चाहिये।" क्लेफेन्स ने अपनी परिभाषा में दो शब्दो का प्रयोग एक ही अर्थ में किया है। वे शब्द हैं—'व्यवस्था' तथा 'समझौता'। ये प्रयोग भ्रम में डालने वाले प्रतीत होते हैं, क्योकि 'समझौता' में किसी भी प्रकार के प्रशासनिक तत्र की आवश्यकता नही जबकि क्षेत्रीय सस्थाओ में इसकी अनिवार्यता निर्विवाद है।

अतएव यह तो स्पष्ट ही है कि क्षेत्रवाद की परिभाषा मे विद्वानो का एकमत नही है। यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो मे अभी तक पारिभाषिक शब्द नही बना है, जिसे सार्वदेशिक मान्यता प्राप्त हो गई हो। लेकिन तो भी, हम कह सकते हैं कि क्षेत्रीय सगठन में निम्नलिखित विशेषताएँ अवश्य ही होनी चाहिएँ, (१) इसमें दो से अधिक प्रभुसत्ता-सम्पन्न राष्ट्र अवश्य ही होने चाहिएँ, (२) यह ठोस समान प्रयास में सलग्न होना चाहिए, (३) यह सुरक्षा उद्देश्यो के लिए ही होना चाहिए, ताकि यह सयुक्त राष्ट्रसघ घोषणा-पत्र के अतर्गत आ जाय, (४) इसके सदस्य राष्ट्रो में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एव आत्मिक समानताएँ हो, (५) इसमे क्षेत्रीय सम्बद्धता का तत्व होना चाहिए अर्थात् उसके सदस्य राष्ट्रो का सम्बन्ध एक ही क्षेत्र से होना चाहिए, (६) इसमें (अ) क्षेत्र के अन्दर ही अन्दर अन्तर्राष्ट्रीय विवादो के शातिपूर्ण समाधान तथा (ब) सदस्य राष्ट्रो की आर्थिक, सास्कृतिक तथा सामाजिक सहकार्यता के हेतु एक तत्र की व्यवस्था होनी चाहिए। किसी एक विशेष बडे क्षेत्र मे कई क्षेत्रीय सगठन हो सकते हैं और यह आवश्यक नही कि उस क्षेत्र के सभी देश उस क्षेत्रीय संगठन में शामिल हो। एक देश राजनैतिक अथवा सैद्धान्तिक कारणो से इस सगठन से पृथक रखा जा सकता है, उदाहरण के तौर पर फ्रैको का स्पेन। दूसरे, कोई भी राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय जाल में फंसने के भय से तथा अधिकाश स्थितियो में अपनी तटस्थता भंग की सम्भावना से इस सगठन से बाहर रह सकता है जैसे आस्ट्रिया और स्विटजरलैंड।

क्षेत्रीय संगठन तथा क्षेत्रीय गठबन्धन

'क्षेत्रीय समझौता' समान नीतियो को लागू करने के लिए नितात ही किसी तंत्र के बिना ही सम्भव हो सकता है, जबकि 'क्षेत्रीय व्यवस्था' में यह आवश्यक है। इस प्रकार, समझौते में किसी पूर्ण एव निश्चित कार्य की अपेक्षा आम दृष्टि-कोण को अधिक अपनाया जाता है। 'क्षेत्रीय व्यवस्था' तथा 'गठ-बन्धन' के बीच भी भेद करना आवश्यक है। डा. वान क्लेफेंस ने उल्लेख किया है: "ऐसा प्रतीत होता है कि क्षेत्रीय व्यवस्था तथा गठबन्धन में त्रिपक्षीय भेद है, जो अस्पष्ट पारिभाषिक

शब्दावली से दुर्बोध हो गया है। सर्वप्रथम गठबन्धन में संकीर्ण भौगोलिक उद्देश्य की अपेक्षा (क्षेत्रीय व्यवस्था के विपरीत) जोर हर समय निश्चित कार्य तथा नीति पर रहता है। दूसरे, गठबन्धन आक्रमणात्मक भी हो सकता है, जबकि क्षेत्रीय व्यवस्था का लक्ष्य, यदि वास्तव मे वह अपने नाम को सार्थक करती है, आवश्यक तौर पर शांतिपूर्ण अथवा सुरक्षात्मक होता है। यदि ऐसा न होता तो घोषणा-पत्र उसे घोषित न करता। तीसरे, एक गठबन्धन में दो सहयोगियो से ही काम चल सकता है, जबकि क्षेत्रीय व्यवस्था के लिये इससे अधिक सदस्यो की आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दो में, गठबन्धन से तुलना करने में क्षेत्रीय व्यवस्था में सामूहिक भावना का तत्व अधिक प्रभावशाली होता है।"

एक क्षेत्रीय सगठन या तो सैन्य गठबन्धन हो सकता है या गैर-सैन्य व्यवस्था। एक क्षेत्रीय सगठन का अर्थ एक गुट या क्षेत्र-विशेष जैसे शब्दो को नही समझ लेना चाहिए, जो अस्पष्ट एव लचीले है। इन शब्दो का तो सीधा सादा अर्थ ही प्रभुत्व जमाना है। उदाहरण स्वरूप रूसी प्रभाव के अन्तर्गत क्षेत्र में बने कामिनफार्म तथा पूर्वी यूरोपीय गुट वास्तव में क्षेत्रीय सगठन नही कहे जा सकते।

द्वितीय महायुद्ध से पूर्व क्षेत्रवाद का इतिहास—डा० वान क्लेफेंस के अनुसार आधुनिक क्षेत्रीय सगठनो का मूल प्राचीन यूनान के सघो तथा सह सघो में खोजा जा सकता है। ये हैं—स्टेट्टिन की सधि जो १५७० में हुई थी और जिस पर उन समस्त यूरोपीय देशो ने हस्ताक्षर किये थे जिनके हित बाल्टिक सागर में थे। इसमें केवल रूस ही शामिल नही हुआ था। १८५६ की सधि जिसमें आलैंड द्वीप कहे जाने वाले द्वीप को तटस्थता का स्तर दिया गया था, १८६३ की सधि जिसका सम्बन्ध इओनियन द्वीपों से है तथा १८८५ का कोगो अधिनियम। लेकिन यह नितान्त सन्देहास्पद है कि इनमें से कोई भी उदाहरण स्वय डा० वान क्लेफेन्स द्वारा की गयी क्षेत्रीय व्यवस्था की परिभाषा के आवश्यक तत्वो की पूर्ति करता हो।

१९१४ से पूर्व—१९१५ की वियना-कांग्रेस के पश्चात् जर्मनी सघ, अन्तर अमेरिकी सीमित क्षेत्र, बाल्कन तथा बाल्टिक क्षेत्र ऐसे सगठन थे, जिन्हे क्षेत्रीय सगठनो की श्रेणी मे रखा जा सकता था। आर्थिक क्षेत्रवाद के भी बहुत-से उदाहरण थे। जर्मन-जोल्लवरीन (१८१९) ने जर्मनी का राजनैतिक एकीकरण, स्विटजरलैंड, इटली आस्ट्रिया, हंगरी, स्कैंडिनेविया क्षेत्र (नार्वे तथा स्वीडन) तथा स्पेन और पुर्तगाल में आर्थिक व्यवस्थाओं के लिये मार्ग प्रशस्त किया। ये सब आगामी राजनैतिक एकता के पूर्व संकेत थे। बाल्कन-राज्यो में भी आटोमन साम्राज्य के विभाजन के पश्चात् वहाँ भी आर्थिक मेल-जोल पुनर्जीवित हुआ। एक आलोचक ने ठीक ही कहा है कि १९१४ से पूर्व विश्व-एकीकरण क्षेत्रीय नीतियो द्वारा स्थिरता-

पूर्वक अग्रसर हो रहा था। ये नीतियाँ जिन माध्यमो से प्रकट की गयी वे हैं—कर-व्यवस्था संघ, अधिक आदरपूर्ण सम्बन्ध, 'बन्धन-हीन उदार' (Open Door) व्यवस्थाएँ तथा दीर्घकालीन व्यापार संधियाँ। ये सवियाँ सर्वाधिक मान्य-राष्ट्र धारा (Clause), मुद्रा संघ तथा स्वर्ण-प्रतिमान (Gold Standard) की विश्व-व्यापी स्वीकृति द्वारा परस्पर सम्बन्धित थी। इसके साथ ही बडी सख्या में १९१४ से पूर्व के अन्तर्राष्ट्रीय समझौतो ने कल्पित क्षेत्रो को जन्म दिया। उदाहरण स्वरूप ये क्षेत्र आवागमन, सचार, गैर-भौतिक सम्पत्ति अधिकारो तथा व्यापार-विधि एवं अधिकार-क्षेत्र में विकसित हुए। कुछ मामलो मे आर्थिक क्षेत्रवाद की ओर बढती प्रवृत्तियो का परिणाम वास्तविक क्षेत्रीय व्यवस्थाओ के निर्माण के रूप में हुआ, जिनमे से अधिकाश, निस्सन्देह, महत्वहीन तथा अस्पष्ट थी और इनका परिणाम नगण्य ही रहा।

१९१४ से १९३९ तक—युद्ध काल के मध्य के समय मे कई क्षेत्रीय व्यवस्थाओ का प्रादुर्भाव हुआ, यद्यपि उनमें से कुछ अपरिपक्व रूप में रही तथा वे कभी भी पुनर्संगठित नही हो सकी। इनमे से एक, उदाहरण के तौर पर, छोटा मित्र देशीय मण्डल था जिसे लिटिल एन्टीटी (Little Entete) कहते थे जिसमें चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया तथा रूमानिया सम्मिलित थे और प्रथम महायुद्ध के अवसान-काल के एकदम पश्चात् इन तीन देशो के मध्य द्विपक्षीय पारस्परिक सहायता सधियो की शृंखला ने इसे जन्म दिया था। शनै शनै यह बृहद् राजनीतिक सगठन के रूप में विकसित हो गया तथा १९३३ के पश्चात् निश्चित सगठनात्मक ढाँचे से सम्पन्न राजनैतिक सघ के समीप आ गया। समझौतो द्वारा पूर्वी यूरोप तथा बाल्कन क्षेत्र मे राष्ट्र-समूह निर्माण करने के कई प्रयत्न किये गए। लेकिन १९३४ के सम्भावित बाल्कन मित्र देशीय मडल के सिवाय और सब प्रयत्न असफल रहे। १९२५ के लोकार्नो सधियो द्वारा पश्चिमी यूरोप के कई राष्ट्रो ने एक सघ का रूप ले लिया। इस सघ का उद्देश्य था जर्मनी की सीमाओ की सुरक्षा की गारटी करना तथा सघ मे सम्मिलित राष्ट्र उन सीमाओ पर शक्ति प्रयोग का खतरा हो जाने पर, सामूहिक कार्यवाही के लिये वचनबद्ध थे। जर्मनी की पश्चिमी सीमाओ के सम्बन्ध मे पाँच राष्ट्रो की जिस सधि पर बेल्जियम, इगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी तथा इटली ने हस्ताक्षर किये, वह लोकार्नो सवियो में सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस सधि ने विशिष्ट उद्देश्य के लिए क्षेत्रीय सहकार्यता की आधार-शिला रखी। लेकिन इसे उस सीमा तक लागू नहीं किया गया जिस सीमा तक क्षेत्रीय व्यवस्था को प्रभाव-पूर्ण ढग से कार्य करने की स्थिति में लाने की आवश्यकता थी।

अन्तर अमेरिकी प्रणाली—१८८९ में अपने औपचारिक प्रारम्भ काल से

कतिपय अन्तर-अमेरिकी प्रणाली ने अपने उद्देश्य तथा तत्र दोनो दृष्टियो से द्वितीय महायुद्ध तक विस्तार पकडा। लेकिन इसने प्रकट रूप में समान सुरक्षा अथवा आर्थिक सहकारिता के सिद्धान्तो को स्वीकार नही किया। इसमें हमेशा ही लेटिन अमेरिकी गणराज्य तथा सयुक्त-राज्य अमेरिका सम्मिलित रहे। कनाडा तथा अमेरिका के अन्तर्गत कई यूरोपीय राज्य इससे बाहर रहे। १९३९ से पूर्व यह अन्तर अमेरिकी महकार्यता सघ हित-लाभ के अनेक क्षेत्र में उपस्थित रहा था। ये हित-लाभ हैं—अन्तर्राष्ट्रीय विधि, वाणिज्य, सफाई व्यवस्था, लोक-स्वास्थ्य, सार्वजनिक मार्ग, कृषि, शिक्षा, भूमि-सुरक्षा-कार्य, रेडियो तथा शिशु-कल्याण। क्योकि इन समान हितो की वृद्धि के लिए एक तत्र विद्यमान था, इसलिये कोई भी व्यक्ति अन्तर-अमेरिकी प्रणाली को यह समझ सकता है कि द्वितीय महायुद्ध से पूर्व ही वह क्षेत्रीय व्यवस्था थी। तो भी, पर्लहार्बर के पश्चात् इस सगठन को अधिक सुव्यवस्थित रूप देने, इसके हित लाभो को विस्तृत करने के लिये कई परिवर्तन किये गये हैं। अब अन्तर-अमेरिकी प्रणाली अपने सर्वाधिक प्रगतिशील रूप में अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रवाद है। इसी हेतु से हम क्षेत्रीय व्यवस्थाओ के वर्तमान उदाहरणो में से सर्वप्रथम इसी पर विचार करेंगे।

अमेरिकी राज्यो का सगठन

सर्व-अमेरिकी उपक्रम—वाशिंगटन में हुए १८८९-९० के प्रथम अन्तर-अमेरिकी सम्मेलन में जिस आधुनिक सर्व-अमेरिकी आन्दोलन का जन्म हुआ, उसके मूल में आर्थिक कारणो की प्रेरणा थी, जबकि उसका रूप राजनीतिक था। लेटिन अमेरिका को सयुक्त राज्य अमेरिका से पूंजी-विनियोग तथा औद्योगिक पदार्थों की आवश्यकता थी। दोनो अमेरिकी देशो का दो खतरो का सामना करने के लिए समान हित था। एक तो उनके स्वय के आपसी झगडो का खतरा और दूसरा ठोस खतरा था ज्वार-भाटे के समान उठते हुए यूरोप के नये साम्राज्यवाद का। अत प्रारम्भ मे तो शांति तथा व्यापार को बढावा देना, कुछ सांस्कृतिक विचार-विनिमय तथा अन्तर-अमेरिकी सचार-साधनो को सुधारना और लेटिन अमेरिका के निवासियो के रहन-सहन का स्तर ऊंचा करना—ये इस आन्दोलन के प्रधान मुद्दे थे। सर्व-अमेरिकी सघ की स्थापना १८९० में हुई तथा प्रथम महायुद्ध तक पूरी सजधज के साथ चार सर्व-अमेरिकी सम्मेलन हुए। उस समय सर्व-अमेरिकी कार्य दो विषयो तक ही सीमित था, और किसी सीमित हद तक अन्तर्राष्ट्रीय विवादो के शांति-पूर्ण समाधान तक भी। अन्तर अमेरिकी राज्यो की वास्तविक सुरक्षा-प्रणाली का श्रीगणेश तो १९३६ में ब्यूनस आयर्स में हुए सम्मेलन में दो समझौतो के रूप में हुआ, जिनके अनुसार एक राज्य की सुरक्षा को खतरा सभी राज्यो की सुरक्षा को खतरा समझा गया तथा

आपसी परामर्श द्वारा यह सामूहिक निर्णय हो कि खतरे का मुकाबला किस प्रकार किया जाय। ब्यूनस एयरेस में किसी परामर्श दात्री सस्था की स्थापना नही हुई। लेकिन १९३८ मे लिमा में हुए आठवें नियमित सम्मेलन द्वारा इस दोष को सुधार लिया गया, जिसके द्वारा अमेरिकी देशो के विदेश-मन्त्रियो की बैठको की व्यवस्था की गयी। शीघ्र ही इस नई सस्था का उपयोग द्वितीय महायुद्ध के सकटो का सामना करने के हेतु किया गया। विदेश-मन्त्रियो की तीन बैठकें हुई, पहली १९३९ में पनामा में, दूसरी १९४० में हवाना में तथा तीसरी रियो-डि जैनीरियो में १९४२ मे हुई। इन बैठको ने पारस्परिक सुरक्षा-प्रणाली को मजबूत बना दिया तथा वित्तीय और आर्थिक सहयोग के लिए नयी अन्तर-अमेरिकी सस्थाओ को जन्म दिया। इनमें ही वित्तीय तथा आर्थिक सलाहाकार समिति भी सम्मिलित है, जिसका निर्माण १९३९ मे हुआ और जिसने कई नवीन सस्थाओ को जन्म दिया, जैसे, अन्तर-अमेरिकी कॉफी-मडल, अन्तर-अमेरिकी विकास आयोग, तथा एक तटस्थता-आयोग (१९३९), जो कालान्तर में वैचारिक समिति मे परिवर्तित हो गया। इनके अतिरिक्त एक प्रति रक्षा-मंडल एव एक राजनीतिक सुरक्षा समिति (१९४२) भी अस्तित्व में आई। अमेरिकी देशो (१९४०) में यूरोपीय उपनिवेशो एव बस्तियो के प्रशासन पर भी एक समिति थी, यद्यपि इसको कार्य करने की कभी आवश्यकता नही पड़ी। तथापि इसका प्रादुर्भाव इस ओर सकेत करता है कि किस प्रकार यह मडल अभिनव क्षेत्रीय प्रणाली की पूर्व-भूमिका थी।

चापुल्टेपेक का अधिनियम—१९४५ के प्रारम्भ मे चापुल्टेपेक (मेक्सिको नगर) मे युद्ध एव शांति की समस्याओ पर विचारार्थ एक अन्तर-अमेरिकी सम्मेलन हुआ। इसने जो उपाय अगीकार किये, वे हैं—(१) युद्ध के समय के लिए एक सुरक्षात्मक सधि (चापुल्टेपेक का अधिनियम), जिसका प्रयोग केवल गोलार्द्ध के बाहर के आक्रमणो के विरुद्ध ही नही अपितु आन्तरिक आक्रमणो के लिये भी किया जाता था। इसके साथ इस बात की व्यवस्था की भी योजना थी कि युद्धावसान के पश्चात् इसी प्रकार की एक स्थायी-सधि करने के हेतु विचार विमर्श किया जाय। यह सब रियो-डी जैनीरियो में १९४७ में हुआ। (२) युद्ध की समाप्ति पर एक अधि-पत्र अथवा स्थायी सविधान के अन्तर्गत अन्तर-अमेरिकी प्रणाली को मान्यता दी जाय, उसका एकीकरण किया जाय तथा उसे संपुष्ट किया जाय। यह व्यवस्था १९४८ में बोगोटा में की गयी। (३) एक ऐसा समझौता जो वर्तमान अन्तर-अमेरिकी शांति-साधनो के लिये इसी प्रकार की व्यवस्था करे। (४) अर्जेनटाइना सरकार को अन्तर-अमेरिकी सदस्यता पुनः ग्रहण करने का आमत्रण, क्योंकि उस पर नाजी-फासिस्ट सहयोग का आरोप लगाकर उसे इस सम्मेलन से पृथक कर दिया गया

था। सान फ्रांसिस्को (२६ जून १९४७) में क्षेत्र-वादियो जिनमें लेटिन अमेरिकी देश सम्मिलित थे, की विजय हुई तथा सयुक्त राष्ट्रसघ अधिपत्र के अनुच्छेद ५१-५३ के अन्तर्गत क्षेत्रीय योजना की व्यवस्था कर दी गयी।

रियो-सधि (१९४७)—१९४७ के अगस्त सितम्बर के महीनो में २१ मे से १९ अमेरिकी गण-राज्यों (इक्वेडर तथा निकारगुआ को छोडकर) की एक बैठक रियो-डी जैनीरियो में हुई। उन्होने पारस्परिक सहायता की अन्तर-अमेरिकी सधि को जन्म दिया, जिसे साधारणतया रियो-सधि के नाम से सबोधित किया जाता है। इस सधि पर हस्ताक्षर २ सितम्बर, १९४७ को हुए। सीनेट में इसको लाने वाले सीनेटर वाडेन्वर्ग ने 'इस सधि को सामूहिक सधि के कार्य में अब तक की सर्वाधिक महान प्रगति' बताते हुये कहा, कि "रियो सधि ने एक स्थायी प्रतिरक्षा-सधि को जन्म दिया है।" अनुच्छेद ३ इस सधि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिन्दु है। ब्रुसेल्स सधि के अनुच्छेद ४ तथा उत्तर अतलातक सधि के अनुच्छेद ५ से इसका निकट का साम्य है। "सधि में सम्मिलित उच्च पक्ष इस बात पर सहमत हैं कि किसी देश द्वारा एक अमेरिकी राज्य पर सशस्त्र आक्रमण समस्त अमेरिकी राज्यो पर आक्रमण समझा जायगा तथा परिणाम स्वरूप सधि मे साझी पक्षो में से हरेक आक्रमण का प्रतिरोध करने में सहायता करेगा। ऐसा करते समय वह सयुक्त राष्ट्रसघ अधिपत्र के अनुच्छेद ५१ द्वारा मान्य व्यक्तिगत तथा सामूहिक आत्म-प्रतिरक्षा के प्रदत्त अधिकार का उपयोग करेगा। अनुच्छेद ८ में राजदूतो को वापस बुलाने से लेकर सशस्त्र सैन्य प्रयोग तक वे सभी साधन दिये गए, जो ऐसे समय में काम मे लाये जा सकते हैं। अनुच्छेद २० में यह दिया गया कि इन साधनो को कार्यान्वित करने के निर्णय सभी हस्ताक्षर-कर्त्ता राज्यो पर लागू होगे। इसका एकमात्र अपवाद यह रखा गया कि बिना किसी देश की राय लिए उसे सशस्त्र सैन्य प्रयोग के हेतु नही चाहा जायगा। सधि में जो क्षेत्र सन्निहित थे, उसमें ग्रीनलैंड, अल्फटियन्स, अन्तार्तिक एव आर्कतिक क्षेत्रो का पर्याप्त भाग तथा कनाडा को छोडकर विस्तृत महासागरीय क्षेत्र सम्मिलित हैं। रियो सधि को सयुक्त राष्ट्रसघ अधिपत्र के अनुच्छेद ५१ के अन्तर्गत एक सामूहिक सुरक्षा-व्यवस्था समझा जाता है। इसने एक क्षेत्रीय प्रतिरक्षा व्यवस्था को भी जन्म दिया।

बोगोटा सधि (अमेरिकी राज्यो का सगठन)

रियो सधि पर हस्ताक्षर करने के छ महीने पश्चात् अमेरिकी राज्यो का नवा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन कोलम्बिया की राजधानी बोगोटा में मार्च-अप्रैल १९४८ मे हुआ। इस सम्मेलन को साधारणतया बोगोटा सम्मेलन के नाम से पुकारा जाता है समस्त २१ सदस्य राष्ट्रों का इसमें प्रतिनिधित्व था। इसने दो मूलभूत महत्व के

समझौतो को प्रस्तुत किया। एक था अमेरिकी राज्यो के संगठन (OAS) का अधिपत्र, जो अन्तर-अमेरिकी-प्रणाली का नया नाम तथा इसका सर्वप्रथम सविधान था। दूसरी प्रशात सागरीय व्यवस्था की अमेरिकी सधि थी। साधारणतया इसे बोगोटा-सधि के नाम से पुकारा जाता है, जिसने अन्तर्राष्ट्रीय विवादो के लिए विद्यमान अमेरिकी समझौतो को सदस्य राष्ट्रो तक फैला दिया। कुछ महत्व के दूसरे समझौतो में एक आर्थिक समझौता, समाजिक प्रतिश्रुतियो (गारण्टी) का एक अधिपत्र तथा मानव-अधिकारो एवं कर्तव्यो की अभिघोषणा सम्मिलित हैं। इन समझौतो में कई अभिनव मुद्दे सम्मलित हैं, जैसे कि सयुक्त राष्ट्रसंघ के अधिकारत्व की मान्यता, साम्यवाद तथा दूसरी जनतन्त्र-विरोधी विचार-धाराओ से खतरा, अमेरिका के हस्तगत प्रदेश तथा उपनिवेश तथा रियो-सधि को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए एक पूरक तंत्र। साथ-ही-साथ 'अमेरिकी गणराज्यो' के स्थान पर 'अमेरिकी राज्यों' शब्द के प्रयोग द्वारा कनाडा के लिए इसमें सम्मिलित होने को द्वार खोल दिए गए। ऐसा ही उन नए राज्यो के लिए भी किया गया, जो पश्चिमी गोलार्द्ध में बाद मे प्रस्थापित हो सकें।

अमेरिकी राज्यों के संगठन (OAS) का अधिपत्र—अमेरिकी राज्यो के संगठन (OAS) का अधिपत्र एक विस्तृत दस्तावेज है, जिसमे १८ परिच्छेद तथा ११२ अनुच्छेद हैं। प्रथम अनुच्छेद मे उल्लिखित है, "अमेरिकी राज्यो का सङ्गठन सयुक्त राष्ट्रसघ के अन्दर एक क्षेत्रीय सस्था है," तथा इसके अधिपत्र की कोई भी व्यवस्था ऐसी नही हैं जिसने सदस्य राष्ट्रो के वे कर्त्तव्य और अधिकार कम होते हो जो उन्हे सयुक्त राष्ट्रसघ के अधिपत्र के अन्तर्गत प्राप्त हैं। प्रमुख आलोचक श्री जार्जाइन ऑडन के अनुसार, "यह उस व्यवस्था को, जो ढीली, नियम-विरुद्ध तथा असगठित है, किसी निश्चित प्रणाली में आबद्ध करता है एव सम्पूर्णता प्रदान करता है। ……… .. यह पिछली अर्द्ध-सदी से ऊपर समय में अमेरिकी राज्यो के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो द्वारा अगीकृत बहुत से प्रस्तावो, अधिनियमो, परम्पराओ तथा आम घोषणाओ को गोलार्द्ध सम्मान के एकीकृत ढाँचे में ठोस रूप प्रदान करता है।" ३२ से १०१ तक के अनुच्छेदो मे इसकी (अमेरिकी राज्यो के सगठन की) छ बडी सस्थाओ के कार्यो का विशेष वर्णन है। ये छः संस्थाएँ हैं: (१) अन्तर-अमेरिकी सम्मेलन, (२) विदेश मन्त्रियो की सलाह के लिये बैठक, (३) परिषद्, (४) सर्व-अमेरिकी सघ, (५) विशिष्ट सम्मेलन (Specialised Conferences); (६) विशिष्ट सगठन (Specialised Organisations)।

अमेरिकी राज्यों के संगठन का ढांचा—अन्तर-अमेरिकी सम्मेलन, जिसकी बैठक प्राय. हर पाँच वर्ष बाद होती है, अधिपत्र के अनुसार सगठन की सर्वोच्च

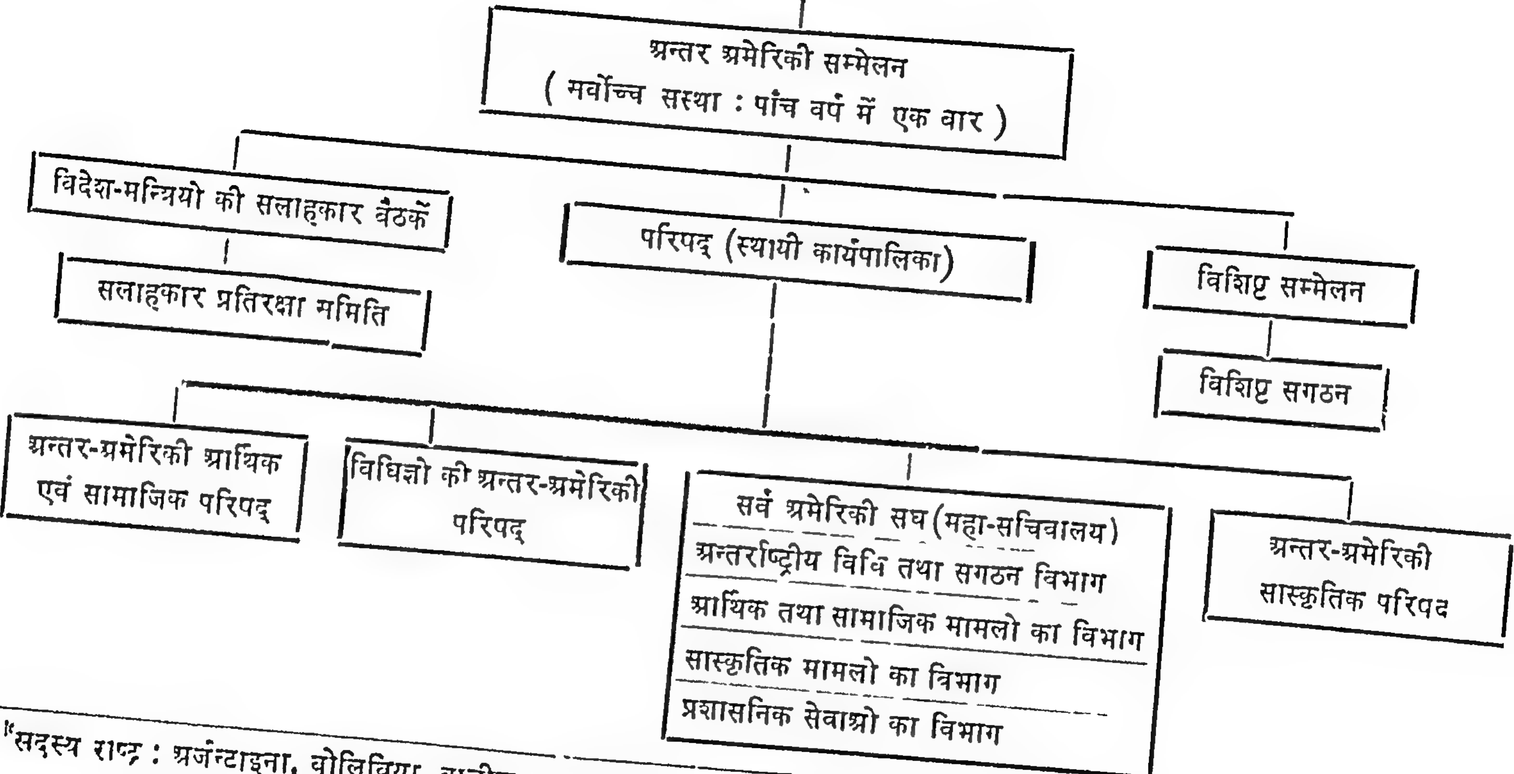
सस्था है। यह इससे स्पष्ट होता है कि, "यह सगठन के आम कार्य एव नीति का निर्धारण करता है और इसकी सस्थाओ के कार्यो एव ढांचे को निश्चित करता है तथा इसे यह भी अधिकार है कि यह किसी भी उस मामले पर विचार करे, जिसका सम्बन्ध अमेरिकी राज्यो के आपसी सम्बन्धो से हो।" इसमें यह व्यवस्था भी की गई थी कि सशोधनो को केवल इसी उद्देश्य से बुलाए गए अन्तर अमेरिकी सम्मेलन में ही अगीकार किया जा सकेगा तथा सदस्य-राष्ट्रो के दो-तिहाई बहुमत से इसकी अभिपुष्टि की जानी चाहिए। जब अधिपत्र या सविधान नही था तब पिछले सम्मेलनों मे इस प्रकार की कोई बाधा नही होती थी। पश्चिमी गोलार्द्ध पर सशस्त्र आक्रमण की स्थिति मे विदेश मन्त्रियो की बैठक अनिवार्य है। विदेश-मन्त्रियो की ऐसी बैठक अन्य समय भी बुलाई जा सकेगी अगर कोई सदस्य-राष्ट्र ऐसी प्रार्थना करे, लेकिन इसके साथ शर्त यह है कि सगठन की परिषद् का स्पष्ट बहुमत इसे स्वीकार करे। सैनिक कार्यवाहियो पर विचार करने के लिए समय-समय पर होने वाली विदेश-मन्त्रियो की बैठको में सलाह देने के लिए एक सलाहकार-प्रतिरक्षा-समिति की स्थापना की गई जिसमें "अमेरिकी राज्यो के उच्च सैनिक अधिकारी सम्मिलित थे।" इस सलाहकार प्रतिरक्षा-समिति की बैठकें भी विदेश-मन्त्रियो की बैठको के साथ-ही-साथ होनी चाहिएँ, यदि उनकी बैठकें किसी आक्रमण से रक्षा के प्रश्न पर विचार कर रही हो। विदेश मन्त्रियो की बैठको एव सम्मेलनो की सहायक, लेकिन अमेरिकी राज्यों के सगठन (OAS) के नित्य-प्रति के जीवन में अत्यधिक महत्वपूर्ण सस्था है सगठन की परिषद्। जहां तक इसके गठन एव अधिकारो का सम्बन्ध है यह सस्था सर्व अमेरिकी सघ के पुराने प्रशासनिक मण्डल के सनतक्रम में ही है। लेकिन इसके राजनीतिक कार्य अधिक विस्तृत हैं। अमेरिकी राज्यो के सगठन में सम्मिलित प्रत्येक राज्य का एक प्रतिनिधि इसका सदस्य है तथा इस प्रकार इसकी सदस्य-सख्या २१ है। सगठन के लिए यह एक केन्द्रीय प्रशासनिक तथा नियामक सस्था है। यह सर्व-अमेरिकी सघ के कार्य की देख-रेख करती है तथा इसके प्रत्यक्ष नियन्त्रण में महत्वपूर्ण सस्थाएँ ये हैं — (१) अन्तर-अमेरिकी आर्थिक तथा सामाजिक परिषद्, (२) विधिज्ञो की अन्तर-अमेरिकी परिषद्, (३) अन्तर-अमेरिकी सांस्कृतिक परिषद्। जैसा कि रियो-सन्धि में सामने आया, यह परिषद् सलाहकार-सस्था के रूप में कार्य करती है। पुनर्सगठित अन्तर-अमेरिकी प्रणाली में सर्व-अमेरिकी सघ को नया महत्त्व प्रदान किया गया है। अधिपत्र के शब्दो में, यह "अमेरिकी राज्यो के सगठन तथा सगठन के महा सचिवालय की केन्द्रीय तथा स्थायी सस्था" है। सर्व-अमेरिकी सघ का निदेशक ही इसका महा-सचिव है। इसका चुनाव अन्तर-अमेरिकी सम्मेलन द्वारा दस वर्षों के लिए होना है तथा पुनर्चुनाव की अर्हता (eligibility)

इसे प्राप्त नही है अर्थात् एक वार महासचिव चुने जाने पर दुवारा वही व्यक्ति उस पद पर नही चुना जा सकता। सम्मेलन एक उप-महासचिव का भी चुनाव दस वर्ष की अवधि के लिए करता है, लेकिन यह एक वार चुने जाने पर दुवारा भी चुना जा सकता है। यह परिषद् के सचिव के रूप में भी कार्य करता है। अन्तर-अमेरिकी आर्थिक एव सामाजिक परिषद् में वे ही सदस्य सम्मिलित हैं जिन्हें प्रत्येक सदस्य-राष्ट्र विशेषज्ञ प्रतिनिधि के नाते नियुक्त करता है। विधिज्ञो की अन्तर-अमेरिकी परिषद् मे नौ सदस्य हैं। इस परिषद् की वैठक सगठन की परिषद् द्वारा वुलाए जाने पर ही होती है। पृथक अन्तर-अमेरिकी सांस्कृतिक परिषद् अमेरिकी राज्यो की जनता के पारस्परिक सद्भाव तथा मित्रतापूर्ण सम्वन्धो को वढावा देने मे सांस्कृतिक क्रिया-कलापों के महत्व को परिलक्षित करती है। सांस्कृतिक कार्य के लिए निर्मित समिति जिसमें अन्तर-अमेरिकी सम्मेलन द्वारा चुने हुये पाँच राज्य सम्मिलित हैं, सांस्कृतिक परिषद् की स्थायी समिति है। इसके साथ-ही-साथ अमेरिकी राज्यो के संगठन (OAS) से सम्वन्धित अनेक विशिष्ट संगठन हैं। ये सगठन हैं—सर्व-अमेरिकी-सफाई व्यवस्था-विभाग, कृषि विज्ञानो की अन्तर-अमेरिकी सस्था, भूगोल तथा इतिहास की सर्व-अमेरिकी सस्था तथा अन्तर-अमेरिकी टेली कम्यूनिकेशन कार्यालय। इन सस्थाओ की वैठकें विशेप प्राविधिक मामलो को हल करने के लिये अथवा अन्तर-अमेरिकी सहयोग के विशिष्ट पहलुओ को विकसित करने के लिये वुलाई जाती हैं।

अमेरिकी राज्यो के सगठन की प्रस्थापना के साथ ही वोगोटा-सम्मेलन का एक और परिणाम निकला कि विवादो के शांतिपूर्ण हल के लिए सर्व-सम्मत सधि—वोगोटा-सधि—अस्तित्व में आई तथा इसी सम्मेलन ने वोगोटा के आर्थिक समझौते को जन्म दिया। रियो-सधि तथा अमेरिकी राज्यो के सगठन (OAS) के अधिपत्र के परिणाम-स्वरूप क्षेत्रीय सस्थाओ एव व्यवस्थाओ का विशद् तथा निधामक ढाँचा अस्तित्व में आया और यही ढाँचा पश्चिमी गोलार्द्ध में तत्परता मे कार्यरत है। रियो-सधि की अभिपुष्टि के पश्चात दिसम्वर १९४८ मे प्रथम वार ऐसा मामला परिषद् के सामने आया, जिसके द्वारा वह कसौटी पर कसा जा सके। कोस्टारिका ने परिषद् से प्रार्थना की कि वह अनुच्छेद छः का प्रयोग निकारागुआ के विरुद्ध करे। उसकी प्रार्थना का आधार यह था कि एक सशस्त्र सेना निकारागुआ के इशारे पर कोस्टारिका पर आक्रमण कर रही थी। परिषद् ने एक आयोग छान-वीन के लिए भेजा, जो दोनो देशो में जाकर आवश्यक तथ्य इकट्ठे करे। दस दिन के अन्दर-अन्दर आयोग ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया। इसके आधार पर परिषद् ने दोनो देशो के मध्य एक समझौते की व्यवस्था की, जो २१ फरवरी १९४९ को पूर्ण हुआ। १९५० में परिषद् ने, हैटी के विरुद्ध डॉमिनिकन के आरोपो की घटना-स्थल पर

जांच करके हैटी तथा डॉमिनिकन के मध्य विवाद को सुलझाने के लिए तुरन्त कार्यवाही की। इस विवाद में क्यूबा तथा ग्वेटामाला तक सम्मिलित हो गए थे। अमेरिका राज्यो के सगठन (OAS) की शांति परिषद् डॉमिनिकन गणराज्य तथा क्यूबा के मध्य एक ऐसा समझौता कराने में सफल रही, जैसा अच्छे पडोसी राज्यो के मध्य अपेक्षित है।

इस प्रकार अमेरिकी राज्यो का यह सगठन अमेरिकी गण-राज्यो के मध्य राजनीतिक, सैनिक, आर्थिक, कानूनी, सामाजिक, वौद्धिक तथा सांस्कृतिक मामलो में सहयोग वनाए रखने के लिए एक वडी शक्ति सिद्ध हुआ है। यह सगठन सयुक्त राष्ट्र-सघ के ढांचे के अन्तर्गत क्षेत्रीय सहयोग की सम्भावनाओ को प्रदर्शित करता है। सामूहिक सुरक्षा के क्षेत्र में अमेरिकी राज्यो का सगठन (OAS) सयुक्त राष्ट्रसघ के मुकावले छोटे राष्ट्रो को अधिक समानता का स्तर प्रदान करता है, क्योकि यहां किसी भी वडे राष्ट्र को निषेधाधिकार प्राप्त नही है। हरेक अमेरिकी राज्य हर समय इस सगठन (OAS) की प्रत्येक सस्था का सदस्य होता है। हरेक राज्य का एक मत होता है। तमाम निर्णय वहुमत द्वारा किए जाते हैं (कुछ मामलो में दो-तिहाई वहुमत से तथा शेष में पूर्ण वहुमत से)। इसके अलावा गैर-हस्तक्षेप-नियम, जो निर्वल राज्यो के लिये वहुमूल्य है, अमेरिकी राज्यो के सगठन (OAS) में सयुक्त राष्ट्रसघ के मुकावले अधिक सवल है, क्योकि यह सगठन सव रूपो में हस्तक्षेप को रोकता है, चाहे वह आन्तरिक हो अथवा वाह्य। आक्रमण के विरुद्ध प्रतिरक्षा से सम्वन्धित रियो-सधि के अन्तर्गत कार्यकारी उपाय इसके अपवाद हैं।



*सदस्य राष्ट्र : अर्जेन्टाइना, बोलिविया, ब्राजील, चाइल, कोलंबिया, कोस्टारिका, क्यूबा, डॉमिनिकन गणराज्य, इक्वेडर, ग्वेटमाला, हैटी, हॉन्डुरास, मैक्सिको, निकारागुआ, पनामा, पैराग्वे, पेरू, एल सल्वाडर, संयुक्तराज्य, उरुग्वे, वेनेज्यूला।

यूरोपीय एकीकरण

सदियो से लोगो ने सयुक्त यूरोप के स्वप्न लिये हैं। चार्ल्स से लेकर हिटलर तक कुछेक ऐसे लोगो की शृंखला है, जिन्होने विजय की भावना से प्रेरित होकर शक्ति द्वारा यूरोप के एकीकरण का प्रयास किया है लेकिन उनके साम्राज्य अस्थायी थे। दूसरे कुछेक लोगो ने शांतिपूर्ण उपायो द्वारा सयुक्त यूरोप को प्राप्त करने की आशा की। १३०५ जितने पहले पीर्रे डुवोइस ने एक पुस्तिका ("De Recuperatione Tarrae Sanctae) प्रकाशित की, जिसमें उसने तुर्कों के बढते हुए खतरे से ईसाइयत के रक्षार्थ यूरोपीय राजाओ को एकत्रित होने का आह्वान किया था। एक सदी पश्चात् बोहेमिया के राजा के एक फ्रासीसी सलाहकार एन्डोआइन मरिनि ने एक 'साधिक समझौता' का मसौदा तैयार किया, जिसके अनुसार राज्यो को अपनी प्रभु-सत्ताओ के कुछ भाग का त्याग कर एक भण्डार बना लेने का परामर्श दिया था।

एक यूरोपीय सघ के पहले का सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रस्तावकर्ता ड्यूक-डी-सुल्ली था, जो फ्रास के हेनरी चतुर्थ का मत्री और 'हेनरी चतुर्थ की भव्य मनो-योजना' (le grand dessein d' Henri IV) का लेखक था। शांति-प्रचारक-मडल के सदस्य विलियम पेन्न ने १६६३ मे 'राज्यो की एक यूरोपीय ससद की प्रस्थापना द्वारा यूरोप की वर्तमान तथा भविष्य की शांति की ओर प्रयास' लेख लिखा, जिसमें उसने सामूहिक सुरक्षा की वास्तविक प्रणाली का खाका खीचा था। १७१२ में ला-एबे-डी सेंट पीर्रे ने (l' Abbe' de Saint Pierre) यूरोप में स्थायी शांति के लिए एक योजना प्रकाशित की ("Project de Traite' pour rendre la paix perpetuelle en Europe") जिसमें स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय पच निर्णय की व्यवस्था थी। ये तथा वहुत-सी दूसरी इसी प्रकार की योजनाए विचारमात्र बन कर ही रह गई। इन्हें केवल मात्र कल्पना की उडानें समझा गया तथा तत्कालीन राजनीतिक नेताओं ने कभी भी इस पर गभीरता से विचार नही किया।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात, व्यक्तिगत आन्दोलनो ने जनता का समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इसी प्रकार के एक आन्दोलन का श्री गणेश काउन्ट कोडेन्होव कालेर्गी द्वारा हुआ था तथा इसके सर्व-यूरोपीय आन्दोलन द्वारा सगठित सम्मेलनो में यूरोप के प्रमुख राजनीतिज्ञो ने भाग लिया। एडुअर्ड हेरियट प्रथम विदेश मत्री था जिसने यूरोप के सयुक्त राज्यों को जन्म देने की सिफारिश २५ जनवरी, १६२५ को प्रतिनिधियो के सदन में भाषण करते हुए की। चार वर्ष बाद अरिस्टाइड ब्रायन्ट ने अपने पूर्व-वर्ती की सम्मति को अपने हाथ में लिया तथा राष्ट्रसघ (लीग आव नेशन्स) की छठी महासभा में इसे उठाया, जहां इसे महोत्साह समर्थन प्राप्त नही हुआ। अन्त में सदस्य राष्ट्रों के ब्रायन्ट के स्मृति पत्र के नकारात्मक उत्तरो तथा महा सचिव

सर एरिक ड्रमन्ड की अध्यक्षता में कमीशन की निष्फल चर्चाओं के पश्चात तमाम विचार को ही समाप्त कर दिया गया। लेकिन द्वितीय महायुद्ध में जब हिटलर ने पश्चिमी यूरोप पर अधिकार जमा लिया उसके पश्चात इस विचार को पुनर्जीवन प्राप्त हुआ। युद्धोत्तर काल में यूरोपीय सघ को वढावा देने के लिए कई क्षेत्रीय सस्थाए स्थापित की गई। इस विभाग में हम उन सघो की विवेचना करेंगे जिन्होंने आर्थिक पहलू से अधिक राजनीतिक पहलू पर जोर दिया। दो आर्थिक सस्थाए —वेनेलक्स तथा यूरोपीय कोयला तथा इस्पात समुदाय—इसका अपवाद हैं। मार्शल योजना, आर्थिक सहकारिता-प्रशासन (ECA), यूरोपीय आर्थिक सहयोग-सगठन (OEEC), यूरोपीय अदायगी सघ (EPU) तथा पारस्परिक सुरक्षा सस्था (MSA) पर यहाँ चर्चा नही की जायगी, क्योंकि इनका जन्म यूरोप की इस दिशा में पहल करने से नही हुआ था। अतएव हम केवल (१) वेनेलक्स, (२) ब्रुसेल्स-संधि-सगठन (३) उत्तर अतलातक सधि सगठन, (४) यूरोप की परिषद (५) यूरोपीय कोयला एव इस्ताप समुदाय तथा (६) पूर्वी यूरोप के रूसी क्षेत्र में क्षेत्रीय सगठन का विश्लेषण करेंगे।

हमें यह भली प्रकार ध्यान में रखना चाहिए कि आज यूरोप दो क्षेत्रो में विभाजित है —एक है पश्चिमी क्षेत्र तथा दूसरा रूसी क्षेत्र। पश्चिमी यूरोप मे वीस देश[1] हैं जबकि रूसी क्षेत्र मे आठ देश[2] हैं। इनमे से प्रत्येक के प्रादुर्भाव का वीज इसके भूत में अन्तर्निहित है, जिसके साथ इसका अपना राष्ट्रीय गौरव है, अपनी सस्थाए हैं, अपनी सास्कृतिक विरासत है और कई स्थितियो में अपनी भाषाए हैं। इन राष्ट्रो में गणनातीत युद्ध हुए हैं। इस प्रकार अभी तक यूरोपीय सघ के लिए आन्दोलन के मार्ग में कई विरोधी प्रवृत्तियाँ हैं। ये हैं ब्रिटिश राष्ट्रमडल, फ्रास सघ, स्केन्डिनेविया की अविभाज्यता, ब्रिटिश सरकार की महाद्वीप सवन्धी किसी भी उलझन में पडने की नीति के प्रति हिचक, फ्रांस के समुद्र पार के वायदे, पश्चिमी जर्मनी की पुन शस्त्रीकरण की समस्या। पश्चिमी यूरोप में यूगोस्लाविया, स्विटजरलैंड, आस्ट्रिया तथा स्वीडन की प्रथकतावाद की नीति तथा पूर्वी यूरोप में फिनलैंड में इसी प्रकार की प्रवृत्ति। कम्युनिस्ट आक्रमण का भय, आर्थिक आवश्यकता, अमरीकी सहायता तथा

---

१. आस्ट्रिया, वेल्जियम, डेनमार्क, फिनलैंड, फ्रांस, पश्चिम जर्मनी, ग्रीस, आइसलैंड, आयरलैंड, इटली, लक्समवर्ग, नीदरलैंड्स, नारवे, पुर्तगाल, स्पेन, स्वीडन, स्विट्जरलैंड, तुर्की, ब्रिटिश-साम्राज्य तथा यूगोस्लाविया।

२. अल्वेनिया, वलगेरिया, जेकोस्लोवाकिया, फिनलैंड, हगरी, पौलैंड, रूमानिया, रूस।

उसका दबाव तथा पश्चिमी सभ्यता के विभिन्न बुनियादी मान्यताओं के प्रति झुकाव (जैसे सोचने व भाषण की स्वतन्त्रता तथा व्यक्ति का सम्मान) ये हैं चार कारण जो पश्चिमी यूरोपीय एकीकरण के लिये उत्तरदायी हैं।

१ बेनेलक्स संघ

बेनेलक्स (Benelux) शब्द तीन देशों—बेल्जियम, नीदरलैंड और लक्समबर्ग—के नामो को मिलाकर बनाया गया है। बेनेलक्स संघ तीनो देशो की एकता का सूचक है। विभिन्न यूरोपीय समस्याओं पर यह संघ तीनो देशो का प्रतिनिधित्व करता है। २१ अक्तूबर १९४३ को जब उक्त संघ के क्षेत्र जर्मनो के अधीन थे बेल्जियम, हालैंड और लक्समबर्ग की बंदी सरकारो में एक मुद्रा समझौता हुआ जिसके द्वारा 'बेल्जियम फ्रैंक' और 'डच फ्लोरिन' की मूल्यानुपात कीमतें निर्धारित की गई। ५ सितम्बर १९४४ को लंदन में हुए कर सम्मेलन की दिशा में यह पहला कदम था। उक्त समझौते की शर्तों का प्रलेख १४ मार्च १९४७ के हेग सम्मेलन में पूरा किया गया। समझौते के अन्य देशो से आयात होने वाली वस्तुओं पर एकसम तटकर की व्यवस्था की गई तथा हालैंड से बेल्जियम-लक्समबर्ग आर्थिक संघ के देशो में से होकर गुजरने वाले मालो पर वर्तमान करो को रद्द कर दिया गया।

बेनेलक्स कर संघ सम्मेलन के द्वारा स्थापित स्थायी संगठन में निम्नलिखित व्यवस्था की गई

(१) योजना तथा कार्यवाहियो सम्बन्धी बडी समस्याओं पर विचार करने के लिये साल में लगभग दो बार सरकारो के मन्त्रियो का सम्मेलन,

(२) तीनो देशो में पूर्ण आर्थिक एकता के लिये योजनाये तैयार करने के लिये आर्थिक संघ की परिषद्,

(३) प्रवेश्यकर सम्बन्धी एक आयोग की सहयोग प्राप्त प्रवेश्यकर सम्बन्धी प्रशासक परिषद्,

(४) तीनो देशो में स्थापित सम्बन्धों को कायम रखने के लिये परस्पर कार्यवाहियो में समन्वय के लिये व्यापारिक समझौता परिषद्, और

(५) आम सचिवालय जिसका प्रधान कार्यालय बेल्जियम की राजधानी ब्रुसेल्स मे होगा।

मार्च १९४९ में मन्त्रियो के सम्मेलन में निम्नलिखित मामलो सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करने के लिये ६ समितियां स्थापित की गई निःशुल्क गमन तथा आर्थिक सहायता में कटौती, विनियोग योजनाओं का समन्वय, राष्ट्रीय नीति, सामाजिक नीति, मुद्रा तथा व्यापारिक नीति और कृषि नीति। लेकिन अक्तूबर १९५० का सम्मेलन आंतरिक नीतियो में एकरूपता कायम करने

मे असफल रहा। इसका मुख्य कारण नीदरलैंड और बेल्जियम तथा लक्समबर्ग में वेतन स्तर में ३० प्रतिशत का अंतर था। डच सरकार ने अपने यहा के वेतन स्तर में वृद्धि करने से इसलिये इन्कार कर दिया कि इससे उनके निर्यात कम हो जायेगे और बेल्जियम वेतन स्तर इसलिये घटाने को तैयार नही हुआ क्योंकि उससे बेल्जियम का जीवन स्तर गिर जायेगा।

जान गुरमाघटिग के अनुसार यह नही कहा जा सकता, "बेनेलक्स सफल रहा" लेकिन यह भी कहना उचित नही होगा कि उक्त प्रयास नितात असफल रहा। यह तो मानना ही पडेगा कि बेनेलक्स से कुछ तरक्की हुई और विदेश नीति की दिशा मे कुछ सीमा तक सुदृढता कायम हुई और इससे जो रास्ता कायम हुआ वह अच्छा रहा। वास्तव मे इसकी सफलता के रास्ते में बुनियादी बाधायें निम्नलिखित थी: बेनेलक्स के सदस्य देशो में आर्थिक कार्यवाही के क्षेत्रो में होड, एटवर्प और राटर्डम बन्दरगाहो मे प्रतिद्वन्दिता का प्रश्न, दोनो पडोसियो में उत्साह का न होना। इसके सीमित क्षेत्र तथा कई प्रकार की कमियो के बावजूद प्रादेशिक व्यवस्था के रूप में बेनेलक्स सघ का निर्माण बडे महत्व का है।

ब्रुसेल्स सधि सगठन

४ मार्च १९४७ को फ्रान्स और ब्रिटेन के विदेश मन्त्रियो ने डकर्क सधि पर हस्ताक्षर किये जिसके अनुसार यह तय हुआ कि दोनो में किसी देश पर बाहरी आक्रमण हुआ तो दोनो मिलकर उसका मुकाबला करेंगे। इस सधि की अवधि १५ वर्ष रखी गई। २२ जनवरी १९४८ को ब्रिटिश विदेश मन्त्री अर्नेस्ट बेविन ने ब्रिटिश लोक सभा में अपने एक सामयिक भाषण में स्पष्ट रूप से कहा कि सोवियत द्वारा अपने क्षेत्र का विस्तार करने में भारी खतरा पैदा हो गया है और हमें उसका मुकाबला करने के लिये शीघ्र ठोस कार्यवाही करनी चाहिये। आपने कहा, "आज प्रत्येक देश में कम्युनिस्ट बे रोक टोक प्रवेश करते जा रहे हैं। पूर्वी यूरोप में सोवियत रूस की सीमायें बढकर स्टेटिन, ट्रिस्ट और आल्प्स तक पहुँच गई हैं। आश्चर्य की बात है कि इतना विस्तार होने पर भी अभी रूस को संतोष नही हुआ।" आपने आगे कहा कि कम्युनिस्ट प्रसार को रोकने के लिये आज यह जरूरी है कि हम फ्रांसीसी मित्रो के साथ मिलकर बेनेलक्स देशो से सम्पर्क बढायें। हम पश्चिमी यूरोप की एक पृथक इकाई बनाने पर विचार कर रहे है। यदि हम शांति और अपनी प्रभुसत्ता कायम रखना चाहते हैं तो हमें ऐसी नैतिक और भौतिक ताक्तो का सगठन करना होगा जिसके प्रति पश्चिमी देशो में विश्वास तथा बाहर के लोगो में सम्मान पैदा हो। इसका मतलब यह होगा कि ब्रिटेन यूरोप से अलग खडा

नही होगा और अपने पडोसी यूरोपीय देशो की समस्याएँ अपनी समस्याएँ समझेगा।

बेनेलक्स देशो ने बेविन योजना का हृदय से समर्थन किया। ब्रिटेन, फ्रास और बेनेलक्स देशो के प्रतिनिधि मण्डलो में एक सधि हुई जिस पर १७ मार्च १९४८ को ब्रुसेल्स मे सम्मलित देशो के विदेश मत्रियो के हस्ताक्षर हुए। सामूहिक सुरक्षा के लिए उक्त समझौता आवश्यक बताया गया। अनुच्छेद ४ के अनुसार किसी भी सम्बन्धित देश पर बाहरी हमला होने पर उसे अविलम्ब सैनिक सहायता दी जायेगी। सधि के अनुसार सदस्य राज्यो में आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक सहयोग कायम किया जायेगा तथा परामर्शदातृ परिषद् नामक एक राजनैतिक-सस्था द्वारा सभी कार्यवाहियो का समन्वय किया जायगा जिसमें सयुक्त सुरक्षा योजना तथा कार्यवाहिया शामिल होगी।

परामर्शदातृ परिषद—ब्रुसेल्स सधि सगठन की यह सबसे प्रभावशाली तथा शक्तिशाली सस्था है। इसमें सधि मे सम्मिलित पाँच राज्यो के विदेश मत्री शामिल हैं। इसकी बैठक प्रत्येक देश की राजधानियो मे बारी-बारी से तीन महीने मे कम से कम एक बार होती है। प्रारम्भिक बैठको मे परिषद ने ब्रुसेल्स सधि के एक सम्पर्क स्थापित करने तथा परामर्श देने के लिये स्थायी आयोग की स्थापना की। परामर्शदातृ परिषद् तथा स्थायी आयोग को सहयोग देने के लिये एक छोटा किन्तु योग्य सचिवालय भी है।

सुरक्षा सगठन—चूँकि ब्रुसेल्स सधि एक प्रारम्भिक सुरक्षा व्यवस्था है इसके केवल दो प्रमुख भाग हैं—उच्च निर्देशन विभाग तथा कमान सगठन। इसकी पाँच प्रमुख समितियाँ हैं (१) सुरक्षा समिति (२) सेनाध्यक्ष समिति (३) सैनिक समिति (४) सैनिक रसद बोर्ड (५) रसद कार्य कारिणी समिति। अमरीका और कनाडा के प्रतिनिधियो ने भी पिछली चार समितियो की बैठको मे विशेष निमत्रण पर गैर सदस्य के रूप मे भाग लिया।

आर्थिक तथा सामाजिक सगठन—जुलाई १९४८ को परामर्शदातृ समिति ने निश्चय किया कि निकट आर्थिक तथा वित्तीय सहयोग कायम करने के लिये पाँच देशो के वित्त प्रतिनिधियो की बैठक हुआ करेगी। समिति ने निम्नलिखित समितियां स्थापित की, (१) पांच देशो में निकट सांस्कृतिक सम्बन्धो की स्थापना के लिये सांस्कृतिक विशेषज्ञो की एक समिति, (२) सामाजिक नियमो विशेषकर सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी नियमो का अध्ययन तथा उनमें सुधार के लिए सामाजिक विशेषज्ञो की समिति (३) सार्वजनिक स्वास्थ्य सम्बन्धी विशेषज्ञो की एक समिति, (४) माइग्रेशन (एक देश से दूसरे देश में जाकर बसने) उपसमिति। पांच देशो में एक दूसरे देश में प्रवेश के लिये पहले जो पारपत्र व्यवस्था थी वह समाप्त कर दी

गई। यात्रा सुविधा के लिये एक सांस्कृतिक प्रमाण पत्र चालू किया गया। उक्त देशो में परस्पर विद्यार्थियो, युवक कार्य-कर्ताओं तथा विश्व-विद्यालय के शिक्षको का आदान प्रदान चालू किया गया।

यूरोपीय एकता की दिशा में जिसके सम्बन्ध में वर्षों से बातचीत की जा रही थी यह बडा महत्वपूर्ण तथा प्रथम कानूनी कदम बताया गया है। पश्चिमी यूरोप के देशो में निकट आर्थिक, राजनैतिक, सैनिक तथा सांस्कृतिक एकीकरण की दिशा में पश्चिमी संघ के रूप मे यह प्रथम जोरदार कदम बताया गया है।

यूरोपीय परिषद

१० मई १९४८ को हेग यूरोपीय कांग्रेस ने एक प्रस्ताव स्वीकार कर एक यूरोपीय असेम्बली की स्थापना का समर्थन किया। दो मास बाद ब्रूसेल्स सन्धि की परामर्शदातृ परिषद की बैठक में जार्ज बिदो ने सुझाव रखा कि एक ऐसी असेम्बली की अविलम्ब स्थापना पर विचार करना चाहिये जिसमें न केवल ब्रूसेल्स समझौता के सदस्य पांच राष्ट्रो के संसदीय प्रतिनिधि शामिल हो बल्कि उन तमाम यूरोपीय देशो के जो उसमें भाग लेना चाहते हो। यूरोपीय आन्दोलन ने उक्त निमन्त्रण को स्वीकार किया और १८ अगस्त को पाल रामादियर के नेतृत्व मे थोडे से देशो के प्रतिनिधियो द्वारा संयुक्त रूप से तैयार किया गया एक स्मरण पत्र प्रस्तुत किया। इस छोटे-से ९ सूत्री स्मरण पत्र को फ्रांसीसी सरकार का समर्थन प्राप्त हुआ। ब्रूसेल्स संधि संगठन की परामर्शदातृ परिषद ने उक्त सिलसिले में ठोस प्रस्ताव पर तैयार करने के लिये एडवर्ड हेरियट की अध्यक्षता मे १८ सदस्यो की एक विशेष अध्ययन समिति की स्थापना की। इस समिति की बैठक नवम्बर-दिसम्बर १९४८ मे हुई। जनवरी १९४९ मे अध्ययन समिति के ब्रिटिश तथा अन्य सदस्यो में मतभेद पैदा हो गया। ब्रिटिश सदस्यो को छोडकर अन्य सदस्यो का सुझाव मन्त्रियो की एक असेम्बली की स्थापना का था जबकि ब्रिटिश सदस्यो का सुझाव मन्त्रियो की एक समिति बनाने का था। अन्त में मन्त्रि-मण्डलीय स्तर पर यह तय हुआ कि उक्त दोनो संस्थायें स्थापित की जांय।

७ मार्च १९४९ को स्थायी समिति में लन्दन स्थित डेन्मार्क, इटली, नार्वे, स्वीडन के राजदूत तथा आयरलेंड के हाई कमिश्नर शामिल हो गये। इस तरह यूरोपीय परिषद के निर्माण के लिये प्रारम्भिक सम्मेलन का अस्तित्व पड़ा। सर ग्लाडविन जेब की अध्यक्षता मे उक्त सम्मेलन में एक समझौता हुआ जिसे ३ मई को १० मन्त्रियों के समक्ष पेश किया गया जिस पर ५ मई १९४९ को उन्होंने हस्ताक्षर किये। यूरोपीय परिषद की विधान संहिता हस्ताक्षरकर्ता ७ देशों द्वारा सम्पुष्टि के बाद ३ अगस्त १९४९ को लागू हो गयी।

नियम संहिता के अनुच्छेद १ के अनुसार यूरोपीय परिपद का उद्देश्य इन सदस्य राष्ट्रो के आदर्शों और सिद्धान्तो की रक्षा तथा पूर्ति के लिये उनमें अधिक से अधिक एकता पैदा करना तथा उनकी आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति के लिये आवश्यक सुविधाओ की व्यवस्था करना होगा। उक्त उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये परिपद की विभिन्न सस्थाओ के जरिये प्रयत्न किया जायेगा। यह प्रयास पारस्परिक हित के प्रश्नो पर बहस तथा आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक, वैज्ञानिक, कानूनी तथा प्रशासनिक मामलो पर समझौता तथा सयुक्त कार्यवाही द्वारा होगा। जहाँ तक राष्ट्रीय सुरक्षा सम्बन्धी प्रश्नो का सम्बन्ध है उक्त अनुच्छेद में उसका उल्लेख नही है।

उक्त उद्देश्यो को क्रियान्वित करने के लिये नियम सहिता में निम्नलिखित दो समितियो की व्यवस्था की गई (१) मन्त्रियो की समिति और (२) परामर्श-दातृ सभा।

१ मन्त्रियों की समिति—इस समिति मे परिपद से सम्बन्धित देशो के विदेश मन्त्री शामिल होगे। इसका काम यूरोपीय परिपद के उद्देश्य को सफल बनाने सम्बन्धी कार्यवाहियो पर विचार करना होगा जिसमें सम्बन्धित सम्मेलनो तथा समझौतो के निर्णयो तथा विशेष मामलो पर सरकारो द्वारा एक आम नीति अपनाने पर विचार होगा। इस समिति की बैठक परामर्शदातृ सभा के प्रत्येक अधिवेशन के पहले और शुरू में अथवा जब निश्चित किया जाय गुप्त रूप से होगी। सदस्य राज्यो सम्बन्धी इसकी सिफारिशें सर्व सम्मति से होगी (अनुच्छेद २०); कोई भी सिफारिश जब तक सम्बन्धित सरकारो द्वारा स्वीकृत नही हो जाती लागू नही होगी। मन्त्रियो की समिति आन्तरिक सगठन तथा यूरोपीय परिपद की व्यवस्था सम्बन्धी मामलो पर उक्त सिफारिशो को ध्यान में रख कर निर्णय करेगी।

२ परामर्शदातृ सभा—यह सभा यूरोपीय परिपद की मन्त्रणात्मक समिति है जिसकी बैठक वर्ष में एक बार होती है। इसमें सम्बन्धित प्रत्येक सरकारो के प्रतिनिधि शामिल हैं। अपने प्रतिनिधियो की सख्या सम्बन्धित सरकारें स्वय निर्णय करती हैं (अनुच्छेद २५)। दिसम्बर १९५१ में किये गये सशोधन के अनुसार इस सभा में सदस्यों की कुल सख्या १३२ निर्धारित की गई, जिसमे ३ (आइसलैंड, लक्सम्बर्ग और सार) से १८ (फ्रास, प० जर्मनी, इटली और ब्रिटेन) तक प्रतिनिधि भेजने की व्यवस्था है। सभा में किसी भी मामले पर मन्त्रणा खुले तौर पर होती है और अत्यधिक महत्वपूर्ण मामलो पर प्रस्ताव दो-तिहाई मतो से स्वीकार किये जाते हैं (अनुच्छेद २९)। सभा की एक स्थायी समिति है जिसमें २८ सदस्य हैं। इसके अतिरिक्त आम मामलो, आर्थिक प्रश्नो, कानूनी तथा प्रशासनीय मामलो पर विचार के लिए अलग-अलग समितियां हैं। मन्त्रियो की समिति तथा परामर्शदातृ सभा को सहयोग देने के लिये

एक सेक्रेटरी जनरल और एक उप-सेक्रेटरी जनरल के अधीन एक सचिवालय है जिसका प्रधान कार्यालय स्ट्रासवर्ग में है (परिच्छेद ६)। इस समय यूरोपीय परिषद में १४ नियमित सदस्य हैं जिनमें ब्रुसेल्स संधि से सम्बन्धित देश, डेनमार्क, यूनान, आइसलैंड, आयरलैंड, इटली, नार्वे, स्वीडन, तुर्की, प० जर्मनी और सार सम्मिलित हैं।

यूरोपीय परिषद अपने प्रारम्भिक ७ वर्षों की उम्र में अपने उद्देश्यों की प्राप्ति मे कहाँ तक सफल हुयी है इसका अनुमान लगाना वास्तव में अत्यन्त कठिन है। परिषद को वास्तविक सफलता वास्तव मे बहुत कम मिली। परामर्शदातृ सभा की बैठकें यूरोपीय जनता के विचारो का निर्देशन करने तथा उनमें विवेक पैदा करने मे कहाँ तक सफल हुई तथा परिषद् के प्रस्तावो से सम्बन्धित सरकारें कहाँ तक प्रभावित हुई इस सम्बन्ध में अपनी-अपनी अलग-अलग राय हो सकती है। यह तो कोई भी अस्वीकार नही कर सकता कि यह प्रयास निकट यूरोपीय एकीकरण की दिशा में काफी उपयोगी सिद्ध हुआ। १९५० में परिषद् में मानव अधिकारो सम्बन्धी एक यूरोपीय समझौता पर हस्ताक्षर हुए।

यह कहना गलत न होगा कि परिषद् की अधिकाश निष्फल तथा निरर्थक बहस के कारण परिषद् के कई उत्साही समर्थको को निराश होना पडा। यहा तक कि पाल हेनरी स्पाक ने १९५१ में अध्यक्ष पद से इस्तीफा तक दे दिया। इस परिषद् की असफलताओ के लिये कुछ हद तक जिम्मेदार विधान संहिता की वास्तविक धाराएँ भी हैं जैसे परामर्शदातृ सभा के पास अधिकार का अभाव, मंत्रियो की समिति को निषेधाधिकार तथा परिषद् के प्रतिनिधियो पर अन्य देशो के प्रति जिम्मेवारी न होना जैसा कि मैक्स सारेनसन ने 'Year Book of World Affairs 1952' नामक पुस्तक में प्रकाशित अपने 'यूरोपीय परिषद' लेख मे लिखा है। लेकिन वास्तव में असफलताओ का बुनियादी कारण सदस्य सरकारो द्वारा अनिवार्य उत्तरदायित्वो को पूरी तरह पालन न करना था।

उत्तरी अतलांतिक सन्धि सङ्गठन (नाटो)

पश्चिमी यूरोप मे बेनेलक्स से लेकर यूरोपीय परिषद तक की गई विभिन्न प्रकार की, प्रादेशिक व्यवस्था के अनुभव ने यहाँ तक कि निकट एकीकरण के सच्चे समर्थको तक मे विश्वास पैदा कर दिया कि वर्तमान व्यवस्था अतर्राष्ट्रीय साम्यवाद के बढ़ते हुए खतरे का सामना करने के लिये पर्याप्त नही। अनुभव किया गया कि सुरक्षा और प्रगति को अलग-अलग नही रखा जा सकता। यदि सुरक्षा नहीं तो तरक्की असम्भव है।

वाल्टर लिप्पमान के अनुसार वास्तव के अतलांतिक समुदाय कायम करने की बात ३० वर्ष से भी अधिक काल से सोची जा रही थी। इस आन्दोलन

सुरक्षा और उत्थान के लिये दो महायुद्ध लड़ने पड़े। विश्व इतिहास में वास्तव में ४ अप्रैल १९४९ एक महत्वपूर्ण तिथि है न केवल इसलिये कि इस दिन विश्व के राष्ट्रों ने नयी जिम्मेदारियाँ ग्रहण की बल्कि इसलिए भी कि उस दिन एक ऐसे नये राजनैतिक तथ्य को औपचारिक मान्यता प्राप्त हुई जिसका विश्व इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण कदम होगा। वह तथ्य है पारस्परिक हित की भावना जो पहले केवल एक यथार्थ थी लेकिन अब कानूनी तौर पर स्वीकार कर ली गई है।

४ अप्रैल १९४९ को वाशिंगटन में १२ राष्ट्रो के प्रतिनिधियो ने उत्तरी अतलातिक सधि पर हस्ताक्षर किये। हस्ताक्षर करने वाले देश थे अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, कनाडा, इटली पुर्तगाल, नार्वे, डेनमार्क, आइसलैंड, बेनेलक्स देश (नीदरलैंड, बेल्जियम और लक्सम्बर्ग)। इस सधि की अवधि २० वर्ष रखी गई (अनुच्छेद १३)। कोई भी सदस्य राष्ट्र जो सधि से अलग होना चाहे अमरीका को एक वर्ष का नोटिस देकर अलग हो सकता है। सधि की प्रस्तावना मे कहा गया है कि सधि से सम्बन्धित तमाम देश अपनी स्वतन्त्रता, सामान्य परम्परा, तथा अपने यहाँ की जनता की सभ्यता की जो जनतन्त्री सिद्धान्तो, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा नियम विधान पर आधारित है, रक्षा करेंगे। वे उत्तर अतलातिक क्षेत्र में सुदृढता कायम करने में योग देंगे। सधि में निर्णय किया गया है कि तमाम सदस्य राष्ट्र सामूहिक सुरक्षा तथा शांति व सुरक्षा कायम करने के लिये परस्पर मिलकर काम करेंगे। फरवरी १९५२ में लिस्बन में हुए सम्मेलन के अवसर पर यूनान और टर्की भी सधि सगठन मे शामिल कर लिये गये (अनुच्छेद १०)। ५ मई १९५५ को पश्चिमी जर्मनी को सधि सगठन का सदस्य बना लिया गया। इस तरह सगठन में कुल १५ सदस्य हो गये।

सधि के अनुच्छेद ४ के अनुसार किसी भी सदस्य राष्ट्र की प्रादेशिक एकता, राजनैतिक स्वतन्त्रता अथवा सुरक्षा को खतरा पैदा होने की हालत में सधि सगठन के सभी सदस्य राष्ट्र उसका सामना करने के लिये मिलकर परामर्श करेंगे। लेकिन अनुच्छेद ५ और अधिक महत्वपूर्ण है। इसके अनुसार यूरोप अथवा उत्तरी अमरीका में कहीं भी एक अथवा अधिक सदस्य राष्ट्रो पर सशस्त्र आक्रमण सभी सदस्य राष्ट्रो पर आक्रमण समझा जायेगा। इस तरह सदस्य राष्ट्र सयुक्त राष्ट्रसघ के घोषणापत्र के अनुच्छेद ५१ के अतर्गत व्यक्तिगत अथवा सामूहिक सुरक्षा के अधिकार का प्रयोग करेंगे और उत्तर अतलांतिक क्षेत्र में सुरक्षा कायम करने में एक दूसरे को सहयोग देंगे। सशस्त्र हमले तथा उनके सम्बन्ध में की गई कार्यवाहियो की सूचना तत्काल सुरक्षा परिषद् के पास पहुँचा देनी होगी। अनुच्छेद ३ में सशस्त्र हमले का सामना करने के लिये व्यक्तिगत तथा सामूहिक शक्ति के विकास के लिये सक्रिय व्यक्तिगत सहायता तथा पारस्परिक सहायता की व्यवस्था की गई है। अनुच्छेद १०

के अनुसार सधि सगठन के राष्ट्र सर्व सम्मति से निर्णय करके किसी भी अन्य यूरोपीय देश को सधि में शामिल होने के लिये आमन्त्रित कर सकते हैं। सधि के १० वर्ष पूरे हो जाने के बाद सदस्य राष्ट्र मिलकर सधि पर पुर्नविचार करेंगे। (अनुच्छेद १२)।

दूसरे पृष्ठ पर दिये गए मानचित्र में नाटो के वर्तमान ढाँचे में नई अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियो के अनुसार निम्नलिखित आवश्यक परिवर्तन किये गए हैं :—

उत्तर अतलातिक परिषद् तथा स्थायी परिषद्—उत्तरी अतलातिक सधि को समुचित ढग से लागू करने सम्बन्धी मामलो पर विचार के लिए एक परिषद् होगी जिसका सगठन इस प्रकार से किया जायगा कि वह किसी भी समय तत्काल सुदृढ कार्यवाही कर सके (अनु० ९)। आरम्भ में इस परिषद् में सदस्य राष्ट्रो के विदेश मन्त्री शामिल किये गये लेकिन १९५१ में नोटो की गति-विधियो के क्षेत्र में विस्तार किये जाने पर परिषद् के अन्तर्गत सुरक्षा, आर्थिक तथा वित्तीय सम्बन्धी समस्याओ पर विचार करने के लिए परिषद् के अन्तर्गत सुरक्षा, अर्थ तथा वित्त मन्त्रियो की सहायक सस्थाएँ भी स्थापित करने की व्यवस्था की गई। यह भी निर्णय हुआ कि परिषद की बैठको के बीच अतरकाल में विभिन्न कार्यों को सम्भालने के लिए प्रतिनिधियो की एक स्थायी समिति होगी जिसका कार्यालय लदन में होगा। स्थायी समिति निम्नलिखित कार्यो के प्रति उत्तरदायी होगी (१) उत्तरी अतलातिक सन्धि की सुरक्षा एजेन्सियो के कार्यों में समन्वय पैदा करना (२) समन्वयात्मक सुरक्षा योजनाओ के क्रियान्वय के लिये आवश्यक कदम उठाने की सिफारिश करना (३) सामान्य हित सम्बन्धी राजनैतिक मामलो पर विचार (४) सन्धि के उद्देश्यो की प्रगति के लिए सार्वजनिक सूचनाएँ प्राप्त करना (५) सन्धि के अनुच्छेद २ के अन्तर्गत राजनैतिक तथा आर्थिक सहयोग के लिए कार्यवाहियो पर विचार करना। उत्तरी अतलातिक परिषद् की फरवरी १९५२ में लिस्बन में हुई बैठक मे प्रतिनिधियो की परिषद् के स्थान पर एक स्थायी परिषद् की स्थापना की गई जिसका प्रधान कार्यालय पेरिस मे रखा गया। इस परिषद् में सभी सदस्य देशो के मन्त्रिमण्डलीय स्तर पर प्रतिनिधि शामिल किए गए हैं। यह परिषद् उत्तरी अतलातिक सन्धि सगठन की केन्द्रीय सस्था है। अन्य सस्थाए इससे सम्बन्धित हैं।

सैनिक समिति—स्थायी परिषद् के अतर्गत एक सैनिक समिति है जिसमे केवल आइसलैण्ड को छोड कर जिसके पास सशस्त्र सेनाएँ नहीं हैं सभी सदस्य राष्ट्रो के सेनाध्यक्ष शामिल हैं। समिति की बैठक वार्षिक होती है। इस समिति को सहयोग देने के लिए सैनिक प्रतिनिधियो का एक स्थायी दल (Standing Group) है जिसमें ब्रिटेन, फ्रान्स और अमरीका के सेनाध्यक्ष अथवा प्रतिनिधि शामिल हैं। यह दल समस्त उत्तरी अतलातिक-ढाचे की प्रधान सैनिक इकाई है। इस दल का प्रधान कार्यालय

राष्ट्र खर्चे का निम्न लिखित भाग बर्दाश्त करेंगे —बेल्जियम ५ ०६, कनाडा ७'१३, डेन्मार्क ३ ०५, फ्रांस १३'७५, यूनान १ ०१, इटली ६'५०, लक्समबर्ग, ०'२०, नीदरलैंड ४ ०७, नार्वे २ ५४, पुर्तगाल ० ३२, तुर्की २ ०३, ब्रिटेन ११ ४५, अमरीका ४२ ८६ प्रतिशत । नाटो के समर्थकों का दावा है कि केवल वे ही सैनिक शक्ति पर सतुलन कायम किये हुए हैं । इस सतुलन के मुख्य कारण ये हैं —(१) यूरोप में शक्तिशाली सैनिक ताकत की ढाल जिसके पास बी-४७ बममारक विमान हैं, (२) नाटो राष्ट्रों की सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था जिसका मतलब यह है कि बिना सोवियत सघ की सहायता लिये कोई राष्ट्र अकेला यूरोप में किसी भी राष्ट्र पर हमला नहीं कर सकता । और (३) अमरीकी आर्थिक सहयोग जो नाटो को पर्याप्त माल सप्लाई कर सकता है ।

नाटो की प्रथम महत्वपूर्ण सफलता इसका उत्तर अतलातिक क्षेत्र के पूर्वी भूमध्य क्षेत्र तक विस्तार होना है जिसमें यूनान और तुर्की भी शामिल हो गये हैं । दूसरे पश्चिमी जर्मनी जिसके पास ५ लाख सैनिकों की सेनायें हैं उसके पुन शस्त्रीकरण और उसके नाटो का सदस्य बन जाने से नाटो की सैनिक ताकत और सुदृढ बन गई है । तीसरे इसके पास आधुनिक युद्ध कौशल में प्रवीण दल तथा नौ सेनायें भी हैं । इसके अतिरिक्त नाटो के पास हवाई सेना है और उसके पास ऐसे साधन हैं जिनके द्वारा मध्यरूस में अणुबम पहुँचाया जा सकता है । नाटो की सेनाओं के पास आधुनिक ढग के अणुबम, तीव्रगामी लडाकू बम मारक विमान, बिना चालक के मैटेडर रेडियो नियंत्रित बम वर्षक विमान, २८०-एम० एम० अणुबम तोप (जिसकी तीन टुकडियाँ जर्मनी में हैं), Guided Missiles, नाटो के सबसे महत्वपूर्ण यूरोपीय केन्द्रीय मोर्चे में ५ लाख सैनिक (१९५३) हैं जबकि पूर्वी जर्मनी में लाल सेना के सैनिकों की सख्या लगभग ४ लाख है । इसके अतिरिक्त नाटो के पास ४८ सक्रिय सैनिक डिवीजन हैं जिनमें लगभग ३८०० जेट विमान और ३५० जेट विमान अड्डे हैं । एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि नाटो से सम्बन्धित १५ सदस्य राष्ट्र यूरोप के महत्वपूर्ण गैर सदस्य राष्ट्रों से भी सम्बन्धित हैं जैसे यूगोस्लाविया जो स्वतन्त्र बालकान मैत्री समझौते से सम्बन्धित है और स्पेन जो स्वतन्त्र संधि द्वारा अमरीका से सम्बन्धित है । इस तरह नाटो की इस गुथी हुई व्यवस्था के मातहत व्यावहारिक तौर पर पश्चिमी यूरोप के समस्त क्षेत्र और उत्तरी अमरीका शामिल हो गये हैं । नाटो का अपना एक अलग प्रतिरक्षा कार्यालय है जिसकी स्थापना १९५२ में की गई । इसमें १५ सदस्य राष्ट्रों के अफसरों तथा अन्य कर्मचारियों को एक दूसरे के निकट लाने के लिये पेरिस में एक प्रतिरक्षा कालिज खोला गया है जिसमें उनके लिये आम समस्याओं के संयुक्त रूप से अध्ययन की व्यवस्था की गई है । इसका उद्देश्य सदस्य राष्ट्रों में सद्भावना पैदा करना और नाटो की विभिन्न समस्याओं जैसे स्थायी

सचिवालय तथा विभिन्न सैनिक प्रशिक्षण कार्यालयो में नियुक्ति के लिये प्रशिक्षण की व्यवस्था करना है। यूरोप में सर्वोच्च मित्र राष्ट्र सेनापति जनरल ग्रथर के शब्दो में हम अभी भी इतने शक्तिशाली नही बन पाये हैं कि सोवियत आक्रमण का खुलकर मुकाबला कर सकें लेकिन इतना अवश्य है कि हमने एक ऐसी ढाल तैयार कर ली है जो तथा कथित आकस्मिक युद्ध तथा सैनिक आक्रमण को रोक सकेगी। तो भी नाटो इतना मजबूत हो गया है कि आक्रमणकारी को दोबारा हमला करने का जल्दी साहस नही होगा। अमरीका के भूतपूर्व विदेश मत्री डीन एचेसन का कहना है कि इस सधि का वास्तविक उद्देश्य सदस्य राष्ट्रो के विशाल परिवार में विश्वास तथा एकता की भावना स्थापित करना है जो वास्तव में शताब्दियो के अथक प्रयास का परिणाम है। ब्रिटेन के भूतपूर्व विदेश मत्री स्वर्गीय अर्नेस्ट बेविन के शब्दो में पृथक इकाइयो की कडी ही जनतन्त्र नही वरन् इसके पीछे एक बहुत बडा उद्देश्य है।

आलोचना—उत्तरी अतलातिक सधि के आलोचको ने प्रादेशिक व्यवस्था की व्याख्या पर आपत्ति उठाते हुए उसे सयुक्त राष्ट्रसघ के घोषणापत्र के विरुद्ध बताया है क्योकि भौगोलिक दृष्टि से यूनान और तुर्की को उत्तरी अतलातिक घेरे में शामिल नही किया जा सकता जिससे विशेष तथा उलझनपूर्ण समस्याएँ पैदा हो गई हैं। गोआ सम्बन्धी भारत-पुर्तगाली विवाद के ऊपर, पुर्तगाल ने उत्तरी अतलातिक सधि के अनुच्छेद ४ की ओर सकेत किया है। इसके अतिरिक्त नाटो के सदस्य यह जानने के लिये प्रयत्नशील हैं कि परस्पर विरोधी हितो सम्बन्धी उठने वाले विवादो का कैसे निबटारा किया जाये और समान नीतियां कैसे कायम की जायें। निम्नलिखित तीन विवादास्पद मामले उक्त विषय को पूरी तरह स्पष्ट कर देंगे। ये हैं (१) सार के प्रश्न पर फ्रेंको-जर्मन मतभेद (२) साइप्रस समस्या पर यूनान ब्रिटिश मतभेद (३) स्वेज नहर विवाद पर आग्ल-अमेरीकी मतभेद जिसके परिणाम स्वरूप अक्तूबर १९५६ में मिस्र पर आंग्ल फ्रासीसी आक्रमण हुआ। लेकिन नाटो की सबसे तीखी आलोचना सोवियत सघ की ओर से की गई जिसने नाटो को विश्व पर शक्ति द्वारा आग्ल अमरीकी शासन कायम करने का एक आक्रमणकारी समझौता बताया है। उसने कहा है कि उस प्रकार का समझौता सयुक्त राष्ट्रसघ की बुनियाद का क्षति पहुँचा रहा है। सोवियत संघ का कहना है कि उत्तरी अतलातिक सधि को आमतौर पर एक प्रादेशिक व्यवस्था नही कहा जा सकता क्योकि इसमें विश्व के दोनो गोलार्द्ध के देशो को शामिल किया गया है जिसका उद्देश्य विभिन्न प्रादेशिक समस्याओ का निबटारा न करके अमरीका तथा ब्रिटेन जैसे देशो की विदेश नीतियो की पुष्टि करना है जो विश्व के प्रत्येक राज्यो के आतरिक मामलो में

हस्तक्षेप करते आ रहे हैं। यह दावा करना केवल विडम्बना मात्र है कि उत्तरी अतलातिक सधि एक प्रादेशिक व्यवस्था है। वे लोग जो सयुक्त राष्ट्रसघ के घोषणा पत्र के अनुच्छेद ५२ का सम्मान करते हैं वे कभी भी उक्त दावा स्वीकार करने को तैयार नही होगे क्योकि उत्तरी अतलातिक सधि अनुच्छेद ५२ के आधार पर स्थापित न होकर सयुक्त राष्ट्रसघ के घोषणापत्र तथा बुनियादी सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। लेकिन नाटो के सदस्यो ने सोवियत सघ के उक्त आरोपो का जोरदार शब्दो में विरोध किया है। नाटो के समस्त सदस्य राष्ट्र इस बात के लिये दृढ सकल्प हैं कि अतलांतिक सेना को आधुनिक शस्त्रो से सशस्त्र करके उसे काफी मजबूत बनाया जाय जिससे नाटो की स्थिति इतनी मजबूत हो जाय कि उसका कोई भी सदस्य राष्ट्र, कम्युनिस्ट गुट जैसे निरकुश व तानाशाह दलो का शिकार न हो सके।

यूरोपीय कोयला तथा इस्पात समुदाय

विदेशी मामलो के क्षेत्र में कुछ योजनायें शूमा योजना की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय सिद्ध हुई। इसका अन्दाज इन बातो से लगता है जैसे राजनैतिक दृष्टि से फ्रैंको-जर्मन सम्बन्धो के निबटारे के लिये उपयोग किये गये साधनों की प्रशसा, यूरोपीय आर्थिक व्यवस्था में एक सर्वोच्च राष्ट्रीय अधिकार की व्यवस्था तथा सम्बन्धित देशो में कोयला तथा इस्पात उत्पादन का महत्व।

६ मई १६५० को फ्रांसीसी विदेश मत्री राबर्ट शूमा (Robert Schuman) ने एक महत्वपूर्ण घोषणा की जिसमें उन्होने यूरोपीय कोयला तथा इस्पात उद्योगो में समन्वय की मांग की। उन्होने सुझाव दिया कि तमाम फ्रैंको जर्मन कोयला तथा इस्पात उत्पादन को एक सयुक्त उच्चाधिकार प्राप्त सस्था के मातहत किया जाय जिसका द्वार अन्य देशो के लिये खुला हो। शूमा के अनुसार इस सस्था में स्वतन्त्र विचार के लोगो को सम्मिलित किया जाय जिनका चुनाव सम्बधित सरकारो द्वारा समानता के आधार पर किया जाय और इसमें सयुक्त राष्ट्रसघ का भी एक और प्रतिनिधि हो जो नयी सस्था के कार्यों तथा विशेषकर इसके शांतिपूर्ण उद्देश्यो की रक्षा सम्बन्धी कार्यों की रिपोर्ट वर्ष में दो बार प्रस्तुत करे। उच्चाधिकार प्राप्त सस्था के निर्णयो को सभी सदस्य देशो को मानना होगा। शूमा के अनुसार जर्मनी और फ्रास में युद्ध न केवल अविचारणीय है बल्कि असम्भव भी है। उनका कहना है कि इस समय हमारे सामने अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य सदस्य राष्ट्रो के सहयोग से एक ऐसा सगठित बाजार कायम करना है जिसमें सम्बन्धित देशो के मालो का व्यापार तटकर अथवा अन्य नियत्रणो से सुरक्षित रहकर स्वतन्त्र रूप से चलता रहे।

बेल्जियम, जर्मनी, इटली, लक्समबर्ग और नीदरलैंड ने बिना किसी हिच-

किचाहट के शूमाँ की अपील का समर्थन किया। इस सम्बन्ध में सम्बन्धित देशो के मालिक, श्रमिक तथा सरकारी प्रतिनिधियो से वार्ता २० जून १९५० को आरम्भ हुई और १९ मार्च १९५१ को समाप्त हो गई। इस वार्ता मे एक सधि मसविदे पर सम्बन्धित देशो के प्रतिनिधियो के हस्ताक्षर हुए। यूरोपीय कोयला तथा इस्पात समुदाय के सधि मसविदे पर १८ अप्रैल १९५१ को हस्ताक्षर हुये जिसमें एक सघीय ढग की सस्था की स्थापना की व्यवस्था की गई। सधि के प्रलेखो में १०० अनुच्छेद हैं जिनमे कोयला तथा इस्पात यूरोपीय समुदाय के अधिकारो तथा सुविधाओ सम्बन्धी मसविदा, न्यायिक अदालत का कानून सहिता सम्बन्धी मसविदा, यूरोपीय परिषद् के साथ सम्बन्धो का एक मसविदा, जर्मन और फ्रांस सरकारो में सार क्षेत्र सम्बन्धी पत्रो का आदान प्रदान तथा समय-समय पर की जाने वाली कार्यधाहियो पर विस्तृत सम्मेलन से ऐसी पेचीदी स्थिति पैदा हो गई कि वह राजनैतिक आर्थिक, तथा न्यायिक दृष्टियो से भारी आलोचना का विषय वन गया।

अनुच्छेद २ के अनुसार यूरोपीय समुदाय का काम सम्मिलित देशो में एक वाजार कायम करने, आर्थिक विस्तार तथा वेकारी दूर करने की पर्याप्त व्यवस्था तथा लोगो के जीवन स्तर मे सुधार करना है।

कोयला और इस्पात के व्यापार के लिये एक वाजार कायम करने के लिये (क) कोयला तथा इस्पात की आयात और निर्यात चुगी तथा यात्रा सम्बन्धी नियन्त्रण को समाप्त करना होगा, (ख) उत्पादको, खरीदारो और उपभोक्ताओ के वीच भेद-भाव को रोकना होगा, (ग) सरकारी सहायता तथा (घ) ऐसे नियन्त्रणो को समाप्त करना जिनसे वाजारो में भेद रहे अथवा उपभोक्ताओ का शोषण होता हो (अनु० ४)।

सधियो में निम्नलिखित ५ समितियो की व्यवस्था की गई है— उच्चाधिकार प्राप्त समिति (High Authority) जो एक परामर्शदातृ समिति की सलाह से कार्य करे, साधारण सभा (Common Assembly), मन्त्रियो की विशेष परिषद् (Special Council of Ministers) तथा एक न्यायिक अदालत (Court of Justice) (अनु० ७)।

उच्चाधिकार प्राप्त समिति—उक्त समितियो मे उच्चाधिकार प्राप्त समिति सवसे महत्वपूर्ण तथा शक्ति सम्पन्न है जो कि सन्धि के विभिन्न उद्देश्यो की पूर्ति के लिये उत्तरदायी है। इसके ९ सदस्य हैं जो साधारण योग्यता पर चुने जाते हैं। इसमें से ८ की नियुक्ति सरकारो की सर्वसम्मति से होती है और नवां सदस्य इन आठो निर्वाचित सदस्यो द्वारा शामिल किया जाता है। इन सदस्यो में किसी भी एक देश के दो से अधिक नागरिक नही होने चाहिएँ। इनका कार्यकाल ६ वर्ष का

होता है और वे अपने प्रशासन कार्यों के लिए समुदाय के प्रति उत्तरदायी होते हैं। उच्चाधिकार प्राप्त समिति के निर्णय सर्वसम्मति से होने आवश्यक नही (अनु० १३)। उच्चाधिकार प्राप्त समिति की स्थापना ६ सदस्य राज्यो, फ्रास, पश्चिमी जर्मनी, इटली, लक्सम्बर्ग, बेल्जियम तथा नीदरलैंड द्वारा सन्धि की सम्पुष्टि कर देने के बाद अगस्त १९५२ में हुई। उच्चाधिकार प्राप्त समिति के सदस्य समुदाय के हित के लिए स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करते हैं। उन्हे न तो किसी सरकार अथवा सस्था से निर्देश लेने की आवश्यकता होती है और न उन्हें रिपोर्ट देने की। ६ सदस्य राज्यो ने सधि स्वीकार करते समय अपने-अपने प्रभु-सत्ता अधिकार (Sovereign Powers) में से कुछ ऐसे अधिकारो को जो पूँजी लगाने, भाव निर्धारित करने, उत्पादन, वेतन तथा श्रमिको के पुनर्वास से सम्बन्धित हैं उच्चाधिकार प्राप्त समिति को सौप दिये हैं। अत उच्चाधिकार प्राप्त समिति को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं—(क) निर्णय देना जो पूर्ण विवरण सहित हो, (ख) सिफारिशे, जो केवल उद्देश्यो के सम्बन्ध में हो, (ग) सलाह देना जिनका सब पर लागू होना आवश्यक न हो (अनु० १४)। उच्चाधिकार प्राप्त समिति को प्राप्त विभिन्न अधिकारो में निजी कोयला तथा इस्पात उत्पादको पर कर लगाने, सम्बन्धित आज्ञा का उल्लघन करने वालो पर जुर्माना करने और धन उधार लेने तथा देने के अधिकार शामिल हैं। सदस्य राज्य, उच्चाधिकार प्राप्त समिति के आदेशो को लागू करने के लिये, यदि आवश्यकता पडे तो अपनी पुलिस सेना का उपयोग कर सकते हैं।

परामर्शदातृ समिति—इस समिति में सदस्यो की सख्या ३० से ५१ तक है। इन सदस्यो की नियुक्ति परिषद् के द्वारा की जाती है। इस समिति में उत्पादको, श्रमिको और उपभोक्ताओं का बराबर प्रतिनिधित्व होता है। इसकी अवधि दो वर्ष की होती है और इसका कार्य उच्चाधिकार प्राप्त समिति को सलाह देना है। कई मामलो में सन्धि इस बात की भी आज्ञा देती है कि उच्चाधिकार प्राप्त समिति परामर्श दातृ समिति से सलाह मागे। शेष अन्य मामलो में यह समिति आवश्यकतानुसार ऐसा कर सकती है (अनु० १८,१९)।

साधारण सभा—साधारण सभा में ७८ प्रतिनिधि शामिल हैं जो राष्ट्रीय ससदों द्वारा अथवा सीधे चुनावों द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। इन प्रतिनिधियों का अनुपात निम्नलिखित होता है—फ्रास, पश्चिमी जर्मनी और इटली प्रत्येक के १८ प्रतिनिधि, बेल्जियम तथा नीदरलैंड के १०-१० प्रतिनिधि और लक्सम्बर्ग के ४। अपने साधारण अधिवेशन में सभा उच्चाधिकार प्राप्त समिति की वार्षिक रिपोर्ट तथा सदस्यो के प्रश्नो पर विचार करती है। सभा के दो-तिहाई सदस्यों द्वारा प्रस्ताव या विरोध किये जाने पर उच्चाधिकार प्राप्त समिति को त्याग-पत्र

देने के लिये वाध्य होना पडेगा। ऐसी हालत मे जब तक कि उच्चाधिकार प्राप्त समिति के सदस्यो के स्थान पर नये सदस्य नियुक्त नही कर दिये जाते हैं तबतक जो मामले इस समिति के सामने होते हैं उन्हें वे निबटायेंगे। इसकी प्रथम बैठक सितम्बर १९५२ में हुई।

मन्त्रियों की परिषद्—एक सस्था जिसका शूमा योजना में उल्लेख नही है वह मन्त्रियो की परिषद् है जिसमे कि सदस्य राष्ट्रो के एक-एक मन्त्री शामिल हैं। यह सस्था सदस्य सरकारो और उच्चाधिकार प्राप्त समिति के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित करती है। मन्त्रियो की परिषद् का मुख्य काम उच्चाधिकार प्राप्त समिति के तथा सम्बन्धित सरकारो के मध्य समन्वय स्थापित करना है। सधि के अनुसार कई मामलो में उच्चाधिकार प्राप्त समिति के महत्वपूर्ण निर्णयो पर मन्त्रियो की परिषद् की स्वीकृति लेनी होती है जो या तो साधारण बहुमत से हो अथवा निर्धारित बहुमत से हो। बहुमत में उन देशो के प्रतिनिधियो मे से एक का मत आवश्यक है जो समुदाय के कुल उत्पादन के २० प्रतिशत भाग का प्रतिनिधित्व करते हो अर्थात् फ्रास और जर्मनी (अनु० २८)। ऐसी सभी स्थितियो में जिनका उल्लेख सधियो में नही है उन पर वे निर्णय अथवा सिफारिशें जो उच्चाधिकार प्राप्त समिति द्वारा दी गई हो तभी लागू होगी जब कि परिषद् उन्हें सर्व सम्मति से स्वीकार कर ले।

न्यायिक अदालत—न्यायिक अदालत को पर्याप्त अधिकार प्राप्त हैं। इसमे सात न्यायाधीश हैं जो सदस्य सरकारो की सम्मति से ६ वर्ष के लिये नियुक्त किये जाते हैं। इनकी पुनर्नियुक्ति भी हो सकती है। उसके अध्यक्ष का कार्यकाल तीन वर्ष होता है। उच्चाधिकार प्राप्त समिति के निर्णयो अथवा सिफारिशो के विरुद्ध मन्त्री-परिषद, सदस्य राज्य अथवा निजी कोयला तथा इस्पात एसोशियेशनो की अपीलें न्यायिक अदालत मे सुनी जायेंगी। ये अपीलें नियमो तथा सन्धि की धाराओ के उल्लघन आदि के सम्बन्ध में होगी। न्यायिक अदालत को साधारण सभा अथवा मन्त्री परिषद् की कार्यवाहियो को रद्द कर देने का अधिकार है। असाधारण स्थितियो में अदालत उच्चाधिकार प्राप्त समिति के नियमो पर पुनर्विचार करती है। ध्यान देने योग्य एक महत्व पूर्ण बात, जो पुन इस सस्था के सर्वोच्च राष्ट्रीय गुण को प्रमाणित करती है, वह यह है कि अदालत के निर्णय बिना किसी अन्य विधि के "सभी सदस्य राष्ट्रो के क्षेत्र मे लागू होते हैं।" (अनुच्छेद ४४)। इसका प्रधान कार्यालय लक्सम्बर्ग मे है।

मूल्यांकन—आलोचकों ने यूरोपीय कोयला तथा इस्पात समुदाय के ढाँचे और संगठन मे कई प्रकार की त्रुटियो की ओर सकेत किया है। कहा गया है कि—परामर्शदातृ समिति, साधारण सभा (असेम्बली), मत्री परिषद् तथा न्यायिक अदालत

द्वारा उच्च अधिकार प्राप्त समिति पर प्रयोग किये जाने वाले नियन्त्रणो के कारण इस सर्वोच्च राष्ट्रीय सस्था का महत्व कुछ कम हो गया है क्योकि उक्त नियन्त्रणो को कुछ सदस्य राज्यो की सरकारें प्रत्यक्ष रूप से प्रयोग करती हैं।

राजनीतिक वैज्ञानिको के अनुसार प्रभुसत्ता (Sovereignity) अविभाज्य तथा असीमित है इसलिए सदस्य-राज्यो के लिए यह सम्भव नही कि वे अपनी प्रभुसत्ता को मूल तथा इस्पात के मामले पर समर्पण कर दें और शेप प्रभुसत्ता के अधिकारो को अपने पास कायम रखें। तो भी यह कहा जा सकता है कि यह प्रथम प्रादेशिक व्यवस्था है जो सर्वोच्च राष्ट्रीय गुणो से सम्पन्न है। इसकी सफलता से इसी प्रकार की अन्य एकीकरण सम्बन्धी योजनाओ को प्रोत्साहन मिला जैसे यूरोपीय प्रतिरक्षा समुदाय जो कि एक सैनिक सगठन है। यह उल्लेखनीय होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय कोयला तथा कच्चा लोहा पर सीमा-कर में १ मई १९५६ में एक तिहाई कटौती कर दी गई है। इस्पात पर भी सीमा-कर १ मई १९५७ को समाप्त कर दिया जायगा। इसके साथ हा यूरोपीय कोयना तथा इस्पात समुदाय ने १९५४ में इससे पहले की अपेक्षा अधिक इस्पात का उत्पादन किया है।

१९५३ में उत्पादन में १० प्रतिशत वृद्धि का परिणाम और १९५२ में ४ प्रतिशत वृद्धि का परिणाम था कि १९५४ में ४ करोड ३७ लाख टन का उत्पादन हुआ। इसी प्रकार कोयले का उत्पादन १९५३ के उत्पादन में २ प्रतिशत वृद्धि से २४ करोड १६ लाख टन तक पहुँचा जो १९३९ के वाद से सर्वाधिक है।

दूसरी महत्वपूर्ण प्रगति थी २१ दिसम्वर १९५५ को लदन में ब्रिटेन और यूरोपीय कोयला तथा इस्पात समुदाय के वीच एक समझौते पर हस्ताक्षर। इसके अनुसार एसोशियेशन की एक स्थायी परिपद् की स्थापना की गई जिसमें उच्चाधिकार प्राप्त समिति के ४ प्रतिनिधि और ब्रिटेन के ४ प्रतिनिधि शामिल किए गए जिनमें से एक सदस्य राष्ट्रीय कोयला वोर्ड और एक लोहा तथा इस्पात वोर्ड के थे। परिपद् का कार्य यह है कि वह ऐसे साधनों की व्यवस्था करे जिससे कि कोयला तथा इस्पात से सम्बन्धित सर्वसाधारण के लाभ के लिए निरन्तर सलाह की जा सके। इसका काम दोनों क्षेत्रों में पारस्परिक व्यापार सम्बन्धी नियन्त्रणो और प्रस्तावो पर विचार करना है।

वालकान समझौता

दूसरी प्रादेशिक सस्था जो हाल में पश्चिमी यूरोप में स्थापित हुई वह वालकान समझौता है। १९५३ में यूनान और टर्की के साथ वालकान मैत्री सधि पर हस्ताक्षर हुए। ९ अगस्त १९५४ को युगोस्लाविया एक समझौते के अनुसार जिसे सरकारी तौर पर राजनैतिक और सैनिक सहयोग के रूप में समझा जाता है,

टर्की और यूनान के समझौते मे शामिल हो गया। यह समझौता २० वर्ष के लिए हुआ। समझौते की शर्तों के अनुसार समझौते के किसी भी हस्ताक्षर कर्त्ता देश पर अथवा उसके किसी भाग पर आक्रमण को तीनो देशो पर आक्रमण समझा जायगा। जिस देश पर हमला हुआ हो उसकी सहायता वाकी सम्बन्धित देश अलग अलग अथवा सामूहिक रूप से करेंगे। उक्त सिलसिले मे कार्यवाहियो के सम्बन्ध में वे पारस्परिक मिलकर विचार करेंगे। इन कार्यवाहियो पर विचार करते समय यह ध्यान रखना होगा कि ये कार्यवाहिया नाटो के प्रति यूनान और टर्की के उत्तरदायित्व पर आघात न करें।

इसके तीन अग हैं . (१) स्थायी परिषद् (२) एक ससदीय परिषद् (३) एक स्थायी सचिवालय।

स्थायी परिषद् में सम्बन्धित देशो के विदेश मत्री शामिल होगे और आवश्यकता पडने पर विषय-विवाद से सम्बन्धित सरकार का अन्य सदस्य भी शामिल हो सकेगा। स्थायी परिषद् की बैठक न होने पर इसका कार्य स्थायी सचिवालय के द्वारा होगा। परिषद् के समस्त निर्णय सर्वसम्मति से होने आवश्यक हैं।

चीफ ऑफ स्टाफ (सेना के प्रमुख अधिकारी) सधि के अनु० २ और ३ को क्रियान्वित करने के लिए एक साथ कार्य करते हैं। सैनिक विशेषज्ञो ने अनुमान लगाया है कि पूर्ण सैनिक सगठन के लिये यूगोस्लाविया और टर्की ३५-३५ डिवीजन और यूनान २५ सैनिक डिवीजन देगा।

३ मार्च १९५५ के एक उप समझौते के अनुसार टर्की, यूनान और यूगोस्लाविया के विदेश मन्त्रियो ने तीनो देशो के २०-२० प्रतिनिधियो की एक स्थायी ससदीय परिषद की स्थापना की। इस परिषद की बैठक वर्ष में एक वार होती है जिसमें निर्णय परिषद के बहुमत से नही होते वरन् प्रतिनिधियो के बहुमत से होते हैं।

यद्यपि अभी इस वात पर विचार करने की आवश्यकता नही तथापि यह कहना ही होगा कि साइप्रस के प्रश्न को लेकर यूनान और टर्की के मध्य सघर्ष उत्पन्न हो गया है। हाल ही मे ऐथेन्स मे रहने वाले तुर्कियो पर यूनानी राष्ट्रवादी आक्रमण हुए और फलस्वरूप तुर्की और यूनानियो में जो साम्प्रदायिक-दगे कुस्तुनतुनिया मे हुए उनके कारण दोनो देशो के मैत्री सवन्धो को आघात पहुँचा है। अभी यह कहना कठिन है कि विना साइप्रस-प्रश्न का स्थायी हल हुए यह स्थिति किस प्रकार सुधरेगी।

यूरोपीय सुरक्षा समुदाय
(European Defence Community)

जब सितम्बर १९५० में न्यूयार्क मे नाटो परिषद की बैठक हुई तो अमरीकन

राज्य सचिव डीन ऐचेसन ने सुझाव दिया कि जर्मन डिवीजनो को पश्चिमी सुरक्षा में सम्मिलित कर लेना चाहिए। यह विचार उस समय के फ्रेंच प्रधान मत्री रेनेप्लेवन ने उठाया और अक्तूबर मे राष्ट्रीय सभा में घोषणा की कि एक सुरक्षा परिषद की सहायता से एक अकेले मन्त्रालय के अन्तर्गत एक ऐसी यूरोपीय सेना का निर्माण होना चाहिए जिसमें छोटे जर्मन-यूनिटो को शामिल किया जाए। प्लेवन-योजना फ्रेंच-असेम्बली द्वारा स्वीकार करली गई, यद्यपि उसमे इस बात का भी उल्लेख कर दिया गया कि एक जर्मन सेना और सामान्य सेना के पुन निर्माण के उद्देश्य पर विरोध रहा।

फरवरी १९५१ मे फ्रास, पश्चिमी जर्मनी, इटली, नीदरलैंड्स, बेल्जियम और लक्सम्बर्ग देशो की एक यूरोपीय परिषद मे एक यूरोपीय सेना बनाने की समस्या पर विचार विमर्श हुए। फिर पर्याप्त महत्वपूर्ण पत्र व्यवहार और हिचकिचाहट के बाद इन छ हो देशो ने ९ मई १९५२ को यूरोपीय सुरक्षा समुदाय के निर्माण के लिए एक सधि के मसविदे पर हस्ताक्षर किए। लेकिन फ्रेच ससद ने इस सन्धि को मान्यता नही दी। जर्मनी सेना के पुनर्जन्म से फ्रास को नए आक्रमण की सम्भावना का भय हो गया। जर्मन द्वारा अपनी प्रभुसत्ता पुन प्राप्त करने के दावे और सैन्य-विशेषज्ञो की उस रिपोर्ट मे इसे बल मिला, जिसमे उनका कहना है कि ब्रिटेन द्वारा असहयोग होने के कारण छोटी जर्मन यूनिटो को यूरोपीय सेना में मिला लेने का विचार क्रियान्वित करने योग्य नही है।

जुलाई १९५४ मे फ्रेंच असेम्बली ने यूरोपीय सुरक्षा समुदाय के विचार को अस्वीकार कर दिया, जो मान्यता प्राप्त न होने के कारण समाप्त हो गया।

पश्चिमी यूरोपीय सघ
(Western European Union)

महत्वपूर्ण कूटनीतिक वार्ताओं के बाद ब्रिटिश प्रधान मत्री सर ऐन्थोनी ईडन के नेतृत्व में पश्चिमी शक्तियों मे जर्मनी के पुन शस्त्रीकरण पर एक नया समझौता हुआ। ८ अक्तूबर १९५४ को ९ पश्चिमी शक्तियो ने—ब्रिटेन, फ्रास, अमरीका, कनाडा, पश्चिमी जर्मनी, इटली, बेल्जियम, नीदरलैंड्स और लक्सम्बर्ग—एक ऐतिहासिक समझौते पर हस्ताक्षर किये, जिनमे पश्चिमी जर्मनी को एक नयी सुरक्षा-योजना मे शामिल कर लिया। इस सन्धि के अनुसार पश्चिमी जर्मनी को पुन शस्त्रीकरण करने के अधिकार प्राप्त हो गए, जो १२ डिवीज़नो, कुल मिलाकर ५००,००० ट्रूप्स (९६००० सन् १९५६ के अन्त तक, २७०००० सन् १९५७ के अन्त तक और ५ लाख १९५८ मे) तक सीमित है। लेकिन पश्चिमी जर्मनी को अणुअस्त्रो के निर्माण करने के

अधिकारो से वंचित कर दिया गया है। ब्रिटेन, जब तक कठिनतम समुद्री आवश्यकताओं से सुरक्षा प्राप्त न करले तब तक यूरोपीय महाद्वीप पर अपने चार डिवीजन जिनमे १,२०००० सैनिक होगे और हथियार तथा हवाई बेडा भी होगा, रख सकेगा। इस नये समझौते को "पश्चिमी यूरोपीय संघ" का नाम दिया गया था। इसके अन्दर ९ कमिश्नरो का एक बोर्ड, एक मन्त्रियो की परिषद्, एक ९०सदस्यो की सभा, और एक यूरोपीय कोयला तथा इस्पात समुदाय की न्यायिक अदालत शामिल हैं। पश्चिमी यूरोपीय संघ की सेना को नाटो में मिला देने के सम्बन्ध में २४ अक्तूबर १९५५ को पश्चिमी यूरोपीय संघ की उस असेम्बली में निर्णय किया गया था जो स्ट्रेसबर्ग में हुई थी जिसमे ब्रिटेन, फ्रास, इटली और पूर्वी जर्मनी के अठारह-अठारह प्रतिनिधि और बेल्जियम और नीदरलेंड्स के सात-सात प्रतिनिधि और लक्सम्बर्ग के तीन प्रतिनिधि अर्थात् कुल मिलाकर ८९ प्रतिनिधि शामिल थे, केवल सार के तीन प्रतिनिधि उपस्थित नही थे। १९५६ के अन्त तक जर्मनी (पश्चिमी जर्मनी का संघीय गणतन्त्र—Federal Republic of Western Germany) निश्शस्त्र और असंगठित ही रहा, क्योंकि अभी तक ६०,००० की ही नई भर्ती हो सकी है। इस कारण पश्चिमी यूरोपीय संघ संतोषजनक प्रगति नहीं कर पाया है।

पूर्वी यूरोप मे क्षेत्रीय व्यवस्था

(Regional Arrangements in Eastern Europe)

पूर्वी यूरोप में क्षेत्रवाद की उत्पत्ति १९२० और १९३० की है (पृष्ठ ७३—७५ देखें)। यद्यपि प्रारम्भ में क्षेत्रीय व्यवस्था का विचार केवल प्रतिरक्षा समझौता के रूप में था लेकिन बाद में वह अन्य क्षेत्रो मे संगठित सहयोग के रूप मे फैल गया। यद्यपि अमरीकी-यूगोस्लाव दृष्टिकोण अस्पष्ट था लेकिन निकट क्षेत्रीय सम्बन्ध कायम करने में यह बड़ा शक्तिशाली सिद्ध हुआ। बल्गेरिया मे दिमित्रोव और यूगोस्लाविया मे मार्शल टीटो ने बालकान संघ का प्रकट रूप से समर्थन किया। यद्यपि उक्त प्रस्ताव को स्टालिन का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ लेकिन युद्धोत्तर काल मे रूस ने पूर्वी यूरोप मे क्षेत्रीय व्यवस्था को प्रोत्साहन देने मे सहयोग दिया। १९४४ मे सोवियत संघ की लाल सेना की सफलतापूर्ण प्रगति और १९४५ मे जर्मनी की राजनैतिक तथा सैनिक शक्ति के विनाश के साथ ही पूर्वी यूरोप के राज्य जो रूस के अनुयायी कहे जाने लगे थे सोवियत क्षेत्र में शामिल हो गये। उनकी आर्थिक तथा कमजोरियो के कारण उनके लिये रूस का सक्रिय विरोध करना व्यावहारिक तौर पर असम्भव हो गया। १९४९ तक पश्चिमी यूरोपीय गुट में जिसमे रूस, पोलैंड, रूमानिया, बल्गेरिया, हंगरी, चेकोस्लोवाकिया, अल्बानिया और कुछ हद तक फिनलैंड शामिल थे, परस्पर सहयोग

सम्बन्धी २० उभयपक्षी संधियो का जाल बिछ गया ।

कॉमिन फॉर्म (Cominform)—१९४७ के सितम्बर मास के अन्त में बल्गेरिया, यूगोस्लाविया, रुमानिया, हंगरी, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, सोवियत संघ, फ्रांस, और इटली की कम्युनिस्ट पार्टियो का एक सम्मेलन वारसा मे हुआ । इस सम्मेलन से सम्बन्धित देशो की कार्यवाहियो में समन्वय पैदा करने तथा एक दूसरे के अनुभवो के आपस में आदान-प्रदान सम्बन्धी एक प्रस्ताव स्वीकार किया गया । प्रस्ताव के अनुसार यूगोस्लाविया की राजधानी बेलग्रेड में एक सूचना कार्यालय अथवा कॉमिनफॉर्म स्थापित करने का निश्चय किया गया । इसका उद्देश्य ट्रूमैन के सिद्धान्त और मार्शल योजना का जो पूंजीवाद के विस्तार तथा आक्रमण के लिये औजार के रूप मे प्रयोग किये जा रहे थे, विरोध करना था । कॉमिनफॉर्म का मुख्य काम पूर्वी यूरोप मे कम्युनिस्ट नीतियो में समन्वय पैदा करना तथा उनको क्रियान्वित करना था । वैसे इसकी कार्यवाहियों का क्षेत्र काफी विस्तृत था जो लगभग तमाम विश्व में फैला हुआ था । चूंकि इस संस्था में सोवियत संघ के बाहर के देशो के प्रतिनिधि शामिल थे और इसका निर्माण दबाव द्वारा किया गया था, यह सच्चे ढंग की क्षेत्रीय संस्था नही कही जा सकती थी । १८ अप्रैल १९५६ को यह घोषणा करके कि कामिनफॉर्म का उद्देश्य पूरा हो गया, उसे सरकारी तौर पर भंग कर दिया गया । पूर्वी यूरोप में मार्शल योजना के विरुद्ध मोलोतोव योजना, जिसे पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद का सहयोग प्राप्त था, पूर्वी यूरोप के देशो को आर्थिक दृष्टि से मास्को के निकट लाने का सोवियत संघ का एक दूसरा प्रयास था । यह अनिच्छापूर्ण संगठन का एक दूसरा उदाहरण था ।

वारसा सन्धि अथवा पूर्वी यूरोपीय सन्धि संगठन

दिसम्बर १९५४ में ८ पूर्वी यूरोपीय राष्ट्रों का एक सम्मेलन मास्को में हुआ । इसमें चीन का एक प्रेक्षक भी शामिल हुआ । इस सम्मेलन का उद्देश्य पश्चिमी

जर्मनी और पश्चिमी यूरोपीय सघ के शस्त्रीकरण के विषय मे उक्त देशो की राय जानना था। मास्को सम्मेलन ने १६५४ की पेरिस सधियो की सम्पुष्टि का विरोध किया और घोषणा की कि यदि उक्त सधियो की सम्पुष्टि की गई तो सम्मेलन में भाग लेने वाले देश उक्त सधियो के विरुद्ध सयुक्त प्रतिरक्षा कार्यवाही करेगे। तदनुसार पेरिस शाति सधियो की सपुष्टि हो जाने पर ८ देशो—अल्बानिया, बल्गेरिया, चेकोस्लोवाकिया, पूर्वी जर्मनी, पोलैंड, रूमानिया, हगरी, और सोवियत सघ का एक सम्मेलन ११ मई १९५५ को पोलैंड की राजधानी वारसा मे हुआ। यह सम्मेलन लगातार ४ दिन तक होता रहा। सोवियत सघ की ओर से आयोजित इस सम्मेलन मे उक्त देशो के प्रधानमन्त्रियो और प्रतिरक्षा मन्त्रियो ने भाग लिया।

सोवियत प्रधान मन्त्री मार्शल बुलगानिन ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि सोवियत सघ की विदेश नीति विश्व की विभिन्न प्रकार की सामाजिक व्यवस्था के सहअस्तित्व के सिद्धान्त पर आधारित है। आपने पश्चिमी देशो की नीति की कटु आलोचना करते हुए उन पर विभिन्न आरोप लगाये। आपने कहा कि पश्चिमी राष्ट्र आक्रमण के लिए पश्चिमी जर्मनी को सैनिक अड्डा बना रहे हैं, निकट तथा मध्य पूर्व के राज्यो को जिसमे सीरिया, मिस्र, अफगानिस्तान तथा फारस शामिल हैं, आक्रमणकारी गुट्टो में शामिल होने के लिए उनपर दबाव डाला जा रहा है; अमरीका अपने सैनिक अड्डो का विशेष रूप से सोवियत सघ तथा गणतन्त्र देशो की सीमाओ के पास तक विस्तार कर रहा है। आपने कहा कि पश्चिमी जर्मनी के पुन सैनिकीकरण और उसके नाटो मे शामिल हो जाने से शान्तिपूर्ण गणतन्त्री बुनियाद पर जर्मनी एकीकरण के रास्ते मे भारी बाधा खडी हो गई है। मार्शल बुलगानिन ने यूरोपीय सुरक्षा के प्रश्न पर बोलते हुए इस बात को पुन दोहराया कि सोवियत सरकार एक ऐसी सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था की समर्थक है जिसमे सभी यूरोपीय राज्य शामिल हो सकें। लेकिन आपने कहा कि पेरिस समझौते की सपुष्टि के कारण उक्त समस्या का हल अधिक कठिन हो गया है। आपने कहा कि नयी परिस्थिति में उभयपक्षी सधिया पर्याप्त नहीं होगी। पश्चिमी राष्ट्रो की आक्रमणकारी कार्यवाहियो को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि सयुक्त प्रयास द्वारा नयी सुरक्षात्मक कार्यवाहियाँ की जाएँ। मार्शल बुलगानिन ने उपस्थित प्रतिनिधियो से कहा कि उक्त बातो को ध्यान मे रखकर मैत्री, सहयोग तथा पारस्परिक सहायता की एक सधि करने के लिए आप लोगो को आमन्त्रित किया गया है। उत्तर अतलान्तिक सधि की तरह यह सधि केवल कुछ ही राज्यो तक सीमित नही होगी बल्कि इसका द्वार अन्य राज्यो के लिए भी खुला होगा चाहे उनके शासन अथवा सरकार का ढाँचा कैसा भी हो वे इस सधि में शामिल हो सकेंगे और इस तरह यह सधि पूर्णरूप से सयुक्तराष्ट्र सघ के घोषणा पत्र के अनुसार होगी।

१४ मई १९५५ को ८ देशो के प्रतिनिधियो ने मैत्री तथा सहयोग की एक २० वर्षीय सधि पर हस्ताक्षर किये। सधि के अनुसार (१) किसी प्रकार की धमकी अथवा हिंसा का प्रयोग नही किया जायगा और सभी अन्तर्राष्ट्रीय विवादो को शान्तिपूर्ण तरीको से हल किया जायगा, (२) शान्ति तथा सुरक्षा के लिए की गई तमाम अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाहियो में सहयोग देने के लिए तैयार रहना होगा। उक्त दिशा मे सहयोग देने के इच्छुक राज्यो से निकट सम्पर्क कायम किया जायेगा और शस्त्रीकरण कम करने तथा अणु व उद्जन बमो जैसे विनाशकारी शस्त्रो पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए कार्यवाही की जायेगी, (३) सभी महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ पर पारस्परिक परामर्श से विचार किया जायेगा और हस्ताक्षरकर्त्ता एक राज्य अथवा इससे अधिक राज्यो पर सशस्त्र आक्रमण के खतरे की दशा में अविलम्ब परामर्श किया जायेगा, (४) यूरोप में एक अथवा अधिक हस्ताक्षर कर्त्ता देशो पर सशस्त्र आक्रमण की हालत में उनकी सहायता के लिए अविलम्ब व्यवस्था की जायेगी जिसमे सशस्त्र सैनिक सहायता भी शामिल होगी और प्रत्येक हस्ताक्षरकर्त्ता देश को उसमें हाथ बटाना होगा। (५) सशस्त्र सेनाओ की एक सयुक्त कमान की स्थापना तथा अन्य सुरक्षात्मक कार्यवाहियाँ करना, (६) एक राजनैतिक परामर्शदातृ समिति की स्थापना, (७) सधि की शर्तों के विरुद्ध किसी प्रकार का समझौता अथवा सधि न करने का वायदा करना, (८) मैत्री तथा सहयोग की भावना से काम करना तथा एक दूसरे के आतरिक मामलो मे हस्तक्षेप न करने का वायदा करना, (९) सामाजिक अथवा सरकारी प्रशासन के भेद के बावजूद अन्य राज्यो से निकट सपर्क कायम करना, (१०) यूरोप के लिए सामूहिक सुरक्षा-व्यवस्था कायम हो जाने और इस सम्बन्ध में आवश्यक समझौता पत्र पर हस्ताक्षर हो जाने पर सामूहिक सुरक्षा सधि भग हो जायेगी।

सयुक्त कमान की एक विज्ञप्ति में कहा गया कि सोवियत सघ के मार्शल कोनिव सयुक्त सेनाओ के प्रधान सेनापति नियुक्त किये गये हैं और कमान का प्रधान कार्यालय मास्को में होगा। पूर्वी जर्मन गणतत्र को शामिल करने के प्रश्न पर बाद में विचार होगा। सधि पर हस्ताक्षर होने के बाद मार्शल बुलगानिन ने ऐलान किया कि उक्त सधि विशुद्ध सुरक्षात्मक तथा शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के सिद्धान्त पर आधारित है।

८ जून १९५५ को उक्त सधि की सम्पुष्टि हुई। सधि पर हस्ताक्षर होने के साथ ही यूरोप दो सशस्त्र शिविरो में विभाजित हो गया। ये दो शिविर हैं—नाटो गुट और वारसा गुट। हाल मे २३ अक्तूबर १९५६ को हगरी की सरकार ने वारसा समझौते की शर्तों के अन्तर्गत हगरी में प्रतिक्रियावादी तत्त्वो के नेतृत्व मे शुरू हुई क्रान्ति को दबाने के लिए सोवियत सघ से सैनिक सहायता मागी। अभी इतनी

जल्दी यह अनुमान लगाना कठिन है कि वारसा समझौता कहाँ तक सफल रहा लेकिन यह स्वीकार करना पड़ेगा कि पश्चिमी जर्मनी के पुन. शस्त्रीकरण तथा उक्त समझौते के कारण सोवियत गुट और पश्चिमी राष्ट्रो के बीच अन्तर्राष्ट्रीय तनाव काफी बढ गया है। जबतक उक्त क्षेत्रीय गुट एक दूसरे की निन्दा और परस्पर आरोप लगाते रहेंगे और सशस्त्र आक्रमण के भय से अपनी सैनिक ताकत बढाते रहेंगे निकट भविष्य मे महत्वपूर्ण यूरोपीय समस्याओ का सन्तोषजनक हल निकलना असम्भव दिखाई दे रहा है। अमरीकी आलोचको की दलील है कि सोवियत सघ द्वारा सचालित क्षेत्रीय सस्थाएँ वास्तव मे क्षेत्रीय सस्थाएँ नही है क्योंकि वे सस्थाएँ अनिच्छा पूर्ण तरीके अथवा बाहरी दबाव से बनी हैं।

एशिया मे क्षेत्रवाद

युद्धोत्तर काल से ही एशिया मे समान समस्याओ के हल के लिए भौगोलिक तथा राजनैतिक क्षेत्रो मे निकट सहयोग द्वारा एशियाई एकता का प्रयास किया जा रहा है। द्वितीय विश्व युद्ध के समय जापानी साम्राज्यवादियो ने वृहत्तर पूर्वी एशिया सह-समृद्धि क्षेत्र की स्थापना का स्वाग रचकर पूर्वी एशिया पर अधिकार जमाने की कोशिश की। सोवियत सघ और चीन भी पूर्वी एशिया की विशाल भूमि के आर्थिक साधनो के विकास के लिए प्रयत्नशील हैं। लेकिन पश्चिमी एशिया, दक्षिण पूर्वी एशिया और प्रशान्त क्षेत्र मे अरब लीग, बगदाद समझौता, दक्षिण पूर्वी एशिया सधि सगठन (सीटो) तथा आजस अथवा प्रस्तावित प्रशान्त संघ की स्थापना करके काफी सफल प्रयास किया गया है।

एशियाई क्षेत्रवाद के रास्ते में कई बाधायें हैं जिसमे दृष्टिकोण से मतभेद, निरक्षरता, कई भाषाये अथवा एक आम भाषा का अभाव. गरीबी अथवा गिरा हुआ जीवन स्तर, सकीर्ण देशभक्ति, प्राकृतिक बाधाये आदि शामिल हैं। लेकिन एशिया के देशो मे भी निम्न कारणो से सहयोग कायम होने में काफी मदद मिली है। जैसे राष्ट्रीयता का विकास, उपनिवेशवाद तथा पश्चिमी शासन तथा शोषण के प्रति घृणा, आर्थिक विकास तथा टैक्निकल सहायता की माग, सामान्य इतिहास, सस्कृति तथा परम्परा और परस्पर मिली हुई सीमायें और एक शक्तिशाली शासक का अभाव विशेष रूप से पश्चिम और दक्षिण पूर्व एशिया में।

अरब लीग— मध्य पूर्व के देशो में एकता का प्रयास कई हजार वर्ष पहले से चालू है। बी०वार्ड० दुबोस-पाशी के अनुसार मिस्र के टुथमोसिस (1450 B.C) प्रथम फैरो (प्रथम राजा) थे जिन्होंने मध्यपूर्व मे विभिन्न एशियाई सरकारो में सैनिक समझौते के लिए एक औपचारिक तथा सुदृढ नीति अपनाई। प्रथम एशियाई-मिस्री 'लीग एक सौ वर्ष से भी अधिक समय तक कायम रही। उत्तर से हिटिजो और पूर्वी रेगिस्तानी

इलाको से कबुई लोगो द्वारा सीरिया पर हमला करने पर यह लीग भग हो गई। बाद में १२८० बी०सी० में रामसेज द्वितीय के प्रयास से यह पुनर्जीवित हुई। लिबियनो तथा अन्य भूमध्य क्षेत्र के लोगो के आक्रमणो तथा फैरो राजाओ की बढती कमजोरी तथा उनके पतन के कारण मिस्री-एशियाई समझौता क्षीण होता चला गया। सातवी शताब्दी तक यही हालत रही। उसके बाद इस्लाम का उदय हुआ और वह तमाम मध्य पूर्व को अरब साम्राज्य के मातहत सगठित करने में सफल हुआ। अरब साम्राज्य १६ वी शताब्दी तक, जब तक ओटमन साम्राज्य का उदय नही हुआ, कायम रहा।

अरबो में वास्तविक जागरण १९ वी शताब्दी के अन्त में पैदा हुआ जब लेबनान में सास्कृतिक पुनरुत्थान हुआ। ५० वर्ष बाद आन्दोलन तमाम क्षेत्र में फैल गया। अरब-एशियाई प्रान्तो के लिए राजनैतिक स्वतन्त्रता की आवश्यकता के आधार पर ड्रूजेज, क्रिश्चियन और मुस्लिम जनता एक हो गई। प्रथम विश्वयुद्ध के शुरु होने के बाद अरब विश्व के प्रति ब्रिटेन की नीति में अचानक भारी परिवर्तन हुआ। ब्रिटेन ने तुर्की साम्राज्य की एकता कायम करने की अपनी नीति को त्याग कर अरब साम्राज्य बनाने की एक योजना तैयार की। नये साम्राज्य की एकता तथा विकास के लिये अरबो में राष्ट्रीयता का सचार किया गया। लेकिन यह योजना भी अरबो में प्रादेशिक, खानदानी तथा व्यक्तिगत शत्रुता के कारण तथा फ्रांसीसी और जियोनिस्टो के हस्तक्षेपो के कारण असफल रही। परिणामस्वरूप अरबो की एकता और स्वतन्त्रता की जगह अरब विश्व टुकडे-टुकडे मे विभाजित हो गया और उन सबकी आजादी सीमित हो गई।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय ब्रिटेन ने पुन हाशमी राज खानदान के नेतृत्व मे अरबो की एकता को सुदृढ बनाने का प्रयास किया। अरबो की ओर से एकता का प्रथम कदम ईराक के प्रधान मत्री नूरेल सईद ने उठाया। उन्होने अरब प्राय द्वीप और मिस्र को छोडकर अरब-एशियाई देशो का सघ बनाने का प्रस्ताव रखा। मिस्र द्वारा विरोध किये जाने पर योजना असफल हो गई। दो अन्य कारण जो उक्त प्रस्ताव को असफल बनाने मे सहायक हुए उनमें इब्न साऊद द्वारा विरोधी हाशमी खानदान के नेतृत्व मे अरबो की एकता के प्रति उदासीनता प्रकट करना और दूसरे सीरिया तथा लेबनान का यह भय कि उक्त प्रस्ताव से उनकी नव प्राप्त स्वतन्त्रता विशाल सघ में मिल कर विलीन हो जायगी। इसके बाद मिस्र ने अरब विश्व की एकता के लिए कदम उठाया।

लगभग दो वर्ष तक विचार विमर्श के पश्चात् २५ सितम्बर १९४४ को एक अरब सम्मेलन सिकन्दरिया में हुआ। इसकी अध्यक्षता मिस्र के प्रधान मत्री नहस पाशा ने की। सम्मेलन मे ईराक, जार्डन (जो पहले ट्रान्सजोर्डन बोला जाता था)

लेवनान, सऊदी अरब, सीरिया और यमन के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। यद्यपि अरब एकता की आवश्यकता भी काफी प्रबल अनुभव की जा रही थी लेकिन इसके साथ ही अरब शासको को यह भय था कि यहा एकता का ढाचा उनके हितो के विरुद्ध न सिद्ध हो। अन्त मे ब्रिटेन के प्रयास पर अरब देश एक ऐसी सस्था बनाने के सिद्धान्त पर राजी हो गये जिसकी सदस्यता से कोई भी अरब शासक कभी भी अलग हो सकता है। सिकन्दरिया मे हुए सम्मेलन में एक अरब लीग के प्रस्तावित सविधान तथा उद्देश्यो का एक मसविदा तैयार किया गया। छ माम बाद २२ मार्च १९४५ को सिकन्दरिया मसविदे पर आधारित, अरब लीग के समझौते पर काहिरा में हस्ताक्षर हो गये।

अरब लीग का ढांचा—अनुच्छेद २ के अनुसार अरब लीग का उद्देश्य सदस्य राज्यो में (उन्हें सुदृढ बनाने के लिये) निकट सम्बन्ध कायम करना, उनकी राजनैतिक कार्यवाहियो में समन्वय पैदा करना, उनकी आजादी और प्रभुसत्ता की रक्षा करना और अरब देशो के हितो तथा अन्य सम्बन्धित मामलो पर विचार करना है। लीग ने यह भी वायदा किया है कि वह उन अरबो को जो अभी तक गुलाम हैं, आजाद होने के लिए हर तरह से सहयोग देगी। अरब लीग फिलिस्तीन पर अरबो के दावे को स्वीकार करती है और उसे यहूदियो से मुक्त कराने के लिये दृढ है। समझौते मे अरब देशो के परस्पर विवादो तथा अरब देशो और अन्य देशो के बीच के विवादो की शाति-पूर्ण ढग से निवटारे की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त सामूहिक सुरक्षा की भी व्यवस्था है। आक्रमण अथवा आक्रमण के खतरे की दशा मे सदस्य राज्य अरब लीग परिषद् की अविलम्ब बैठक बुलाने की माँग कर सकते हैं। परिषद् को आदेश है कि वह आक्रमणकारी के विरुद्ध कोई भी कार्यवाही सवसम्मति से निर्णय करे। इस कार्यवाही का रूप क्या होगा इसका स्पष्ट उल्लेख नही किया गया है लेकिन समझौते मे केवल यह कहा गया है कि आक्रमणकारी को लीग से निकाल दिया जायेगा।

अरब लीग का मुख्य अग एक परिषद् है जिसे मजलिस कहा जाता है। इसमे सदस्य राज्यों के प्रतिनिधि शामिल हैं। परिषद् की बैठक वर्ष मे दो बार मार्च और अक्टूबर मे होती है। आवश्यकता पडने पर दो सदस्य राज्यो के अनुरोध पर परिषद् का विशेष अधिवेशन भी बुलाया जा सकता है। परिषद् का काम लीग के उद्देश्यो को पूरा करना और सदस्य राज्यो मे हुए समझौतो के क्रियान्वय की देखभाल करना है। परिषद् शाति व सुरक्षा तथा आर्थिक व सामाजिक सम्बन्धो के लिए स्थापित अतर्राष्ट्रीय सस्थाओ से लीग का सम्पर्क कायम करने के साधनो की व्यवस्था करेगी। परिषद् दो सदस्य राज्यो अथवा सदस्य राज्य और किसी अन्य देश

वाहियो का प्रयोग करेंगे जिसमें आक्रमण का विरोध करने के लिये सशस्त्र सेनाओ का प्रयोग भी शामिल होगा। सधि में एक सयुक्त सुरक्षा परिषद की स्थापना करने की भी व्यवस्था की गई जिसमे सदस्य राज्य के विदेश मत्री तथा प्रतिरक्षा मत्री शामिल होगे। इसके अतिरिक्त एक स्थायी सैनिक आयोग होगा जो सदस्य राज्यो की सेनाओ के जनरल स्टाफो का प्रतिनिधित्व करेगा। लीग की एक आर्थिक परिषद है जिसमे सदस्य राज्यो के आर्थिक मामलो के मत्री शामिल हैं। इसका काम अरब राज्यो की आर्थिक व्यवस्थाओ में समन्वय कायम करना है। सधि के अनुसार कोई भी सदस्य राज्य ऐसा कोई अन्तर्राष्ट्रीय समझौता नही कर सकता जो सधि की धाराओ के प्रतिकूल हो। साथ ही वह ऐसा कोई कदम नही उठा सकता जो सधि के उद्देश्यो के विरुद्ध हो। उक्त सधि २३ अगस्त १९५२ को लागू की गई। इसकी अवधि १० वर्ष निश्चित की गई।

सयुक्त सुरक्षा परिषद की बैठक उसकी स्थापना के बाद दो बार हो चुकी है—जिसमें पहली बैठक ४ सितम्बर १९५३ को और दूसरी ७ जनवरी १९५४ को हुई। इन बैठको में कई गुप्त प्रस्ताव स्वीकार किये गये। आर्थिक परिषद की बैठक १९५३-५४ में तीन बार हुई जिसमें कई सिफारिशें स्वीकार की गई किन्तु वे अब तक गुप्त हैं। इसके बावजूद सधि का सच्चे ढग से क्रियान्वय नही हुआ। इसका बहुत कुछ कारण स्थायी सैनिक आयोग की कमान के अधीन एक सेना कायम करने के रास्ते में उत्पन्न कई कठिनाइयां थी। एक तरफ जब सयुक्त सुरक्षा परिषद उक्त समस्या को हल करने मे व्यस्त थी, ईराक को पाक और टर्की में २ अप्रैल १९५४ को हुए मैत्री सहयोग सम्बन्धी समझौते में शामिल होने के लिये आमन्त्रित किया गया। अरब लीग की राजनैतिक समिति ने उक्त कदम का जोरो से विरोध किया। लीग की सभी सदस्य सरकारो ने एक स्वर से ऐलान किया कि उन्हें समझौते में शामिल होने के लिये आमन्त्रित नहीं किया गया और उन्होने शामिल होने की इच्छा भी नहीं प्रकट की। उन राज्यो ने यह भी घोषणा की कि वे अरब लीग के समझौते के अन्तर्गत तथा सयुक्त सुरक्षा तथा आर्थिक सहयोग के अनुसार अपने कर्तव्यो को निभाने के लिये सदैव तैयार हैं। १९ अक्टूबर १९५४ को आंग्ल-मिस्र समझौते के बाद ईराक, मिस्र और सऊदी अरब के भारी विरोध के बावजूद, २४ फरवरी १९५५ को टर्की के साथ एक सुरक्षा समझौता में शामिल हो गया। इस तरह बगदाद समझौते के पक्ष मे ईराक के अलग हो जाने से अरब लीग को काफी कमजोर बना दिया। यही कारण है कि अक्तूबर-नवम्बर १९५६ में जब स्वेज नहर पर आंग्ल-फ्रांसीसी-इजराइली हमला हुआ तो अरब राज्य उक्त आक्रमण के विरुद्ध सगठित सैनिक कार्यवाही करने में असफल रहे।

अरब लीग की प्रगति

अरब लीग का शुरू से ही यह मुख्य उद्देश्य रहा है कि उन सदस्य राज्यो को जो अब तक पूरी तरह आजाद नही हुए उन्हे विदेशी शासन से मुक्त कराया जाय। इसलिए लीग ने सीरिया, लेबनान, यमन, लिबिया, मिस्र, ट्यूनीसिया, मोरक्को और अल्जीरिया को विदेशी नियत्रण से मुक्त कराने मे सहायता की।

(1) सीरिया-लेबनान—४ जून १९४५ की हुई लीग परिषद की पहली बैठक में ही सीरिया, लेबनान और फ्रास के बीच एक विवाद प्रस्तुत किया गया (पृष्ठ १२६ देखें)। परिषद ने उक्त विवाद से अपने को सम्बन्धित बताया। इसने अपनी एक घोषणा में कहा कि सीरिया, लेबनान और फ्रास के बीच विवाद के निबटारे के लिये किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय बैठक मे अरब लीग को जरूर शामिल करना होगा। विवाद सम्बन्धी किसी भी प्रश्न पर विचार उक्त दोनो देशो की स्वतन्त्रता तथा प्रभुसत्ता की मान्यता के आधार पर ही करना होगा (प्रस्ताव १)। फ्रास पर हत्या तथा अन्य अपराधो का आरोप लगाया गया। इस प्रथम हस्तक्षेप का राजनैतिक तथा मनोवैज्ञानिक परिणाम यह हुआ कि अरब लीग के सदस्यो मे एकता पैदा हो गई। इससे नये अतर्अरब सगठन की वास्तविक स्थिति भी स्पष्ट हो गई। ब्रिटेन का समर्थन प्राप्त लीग को अपनी विजय से काफी प्रोत्साहन मिला।

(ii) यमन—लीग ने यमन के आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप किया। १७ फरवरी १९४८ को यमन के राजा इमाम याहीया की हत्या के बाद कट्टरपथी इस्लामी तत्वो तथा उदारदली प्रगतिशील राष्ट्रवादियो में गृहयुद्ध शुरू हो गया जिससे तमाम देश को खतरा पैदा हो गया। अरब लीग ने युद्ध रोकने के प्रयास में एक सेक्रेट्री जनरल के नेतृत्व मे एक कमीशन (आयोग) भेजा। कमीशन मे प्रत्येक अरब राज्य का एक-एक प्रतिनिधि शामिल था। इस एतदर्थ (Adhoc) कमीशन ने सिफारिश की कि इमाम का सबसे बडा लडका यमन का वास्तविक शासक माना जाय। लीग के नैतिक समर्थन से गृहयुद्ध पर काफी असर पडा और १७ मार्च १९४८ को लीग की राजनैतिक समिति ने बेरुत की एक बैठक मे सदस्यो को सलाह दी कि वे नये इमाम को स्वीकार कर लें। बैठक में आशा प्रकट की गई कि यमन मे सामाजिक सुधार किये जायेंगे। साथ ही सचिवालय तथा सदस्य राज्यो को नयी सरकार की सहायता करने के लिये आमन्त्रित किया गया।

अदन रक्षित देश के सिलसिले में आग्ल यमन विवाद पर दूसरी बार अरब लीग का हस्तक्षेप हुआ। यमन का दावा है कि ब्रिटेन ने इस रक्षित देश पर अवैध अधिकार कर लिया था। जून १९४६ में यमन ने अरब लीग की परिषद् के चतुर्थ

सम्मेलन से इस विवाद का निर्देश किया। परिषद् ने यमन (सकल्प सख्या ६४) का समर्थन किया और सिफारिश की कि दोनो देश ११ फरवरी १९३४ में सम्पन्न अपनी मित्रता सधि और परस्पर सहयोग के अनुसरण मे इस विवाद का हल ढूंढे। इस सधि के अनुसार ब्रिटेन ने यमन की पूर्ण स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली थी और उसने यह वायदा कर लिया था कि सधि द्वारा निर्धारित सीमा का वह बलपूर्वक उल्लघन नही करेगा। यह असफल रहा और अगस्त १९४९ में आग्ल-यमन सीमा पर एक नई भिडन्त हुई। लीग परिषद से इस घटना का निर्देश किया गया जिसने १ अप्रैल १९५० को सकल्प सख्या २८९ स्वीकार किया जिसके अनुसार दोनो दलो में प्रत्यक्ष वार्ता को प्रोत्साहन दिया जाकर यह इच्छा अभिव्यक्त की गई थी कि ऐसा कोई हल ढूंढा जाये जिससे यमन के वैध अधिकारो का सरक्षण किया जा सके।

लन्दन मे वार्ता आरम्भ हुई थी और १२ अक्तूबर, १९५० को एक समझौते पर हस्ताक्षर किए गये जिसके अनुसार १९५१ के पूर्व दोनो देशो में राजनीतिक सम्बन्धो की स्थापना और दोनो सरकारो के समान सख्या के प्रतिनिधियो से बना हुआ एक सयुक्त आयोग, सीमा निर्धारण और पिछले विवादो के हल के लिये, बनाने का आह्वान किया गया।

किन्तु यह समझौता क्रियान्वित नही हो सका और विवाद के नये स्रोत उत्पन्न हो गये। ब्रिटेन ने एक पुरानी परियोजना को व्यवहृत किया, जिसके अनुसार यमन को अमान्य राष्ट्रीयता की भावना को जगाने के लिए रक्षित देशो के विभिन्न शेख राज्यो का एक फेडरेशन स्थापित किया। यमन के इमाम ने यमन को समर्थन प्रदान करने का आमन्त्रण दिया। यह आमन्त्रण उक्त प्रदेश पर यमन के दावे को लेकर निर्देशित किया गया था और इसका आधार अरबो की परस्पर भ्रातृ-भावना पर आधारित था। अरब लीग के महासचिव को जनवरी, १९५४ में प्रेषित किये गये पत्र के अनुसार ब्रिटेन के आक्रमण और साम्राज्यवाद का अन्त करने के लिये यमन ने अन्य अरब सरकारो से सहायता की माँग की। अरब लीग की राजनीतिक समिति ने १८ जनवरी, १९५४ को अपनी विशेष बैठक में यमन के दावे की पुष्टि की और तीन अवस्थाओं मे सामूहिक अरब हस्तक्षेप का प्रस्ताव रखा। तीन अवस्थायें इस प्रकार है—प्रथम, अरब लीग स्थानीय शासको से इस बात का आग्रह करेगी कि वे ब्रिटेन द्वारा प्रस्तुत फेडरेशन की योजना का प्रतिरोध करें और सामूहिक रूप में लन्दन मे विरोध करेंगी। यदि यह असफल रहा तो, अफ्रीकी और एशियाई देशो से ब्रिटेन के विरुद्ध सामूहिक विरोध प्राप्त करेगी। इसमें आग्ल-यमन विवाद के पूरे रेकार्ड को प्रस्तुत करना भी सम्मिलित है और यदि यह भी असफल रहा तो तीसरी अवस्था यह होगी कि सम्पूर्ण मामला सयुक्तराष्ट्र सघ की महासभा में रखा जाये। लीग

परिषद् ने इन उपायो का अनुमोदन कर दिया और इमाम के पास एक मिशन भेजा गया जिसमें "अरब भ्रातृ-सघ की लीग के समझौते के अन्तर्गत स्वीकृत किये गये दायित्वो के अनुसार उसके साम्राज्य का समर्थन करने के लिए लीग की तत्परता" अभिव्यक्त की गई (प्रस्ताव सख्या ५६६)।

लीग के विशेष मिशन द्वारा स्थानीय शासकों से स्थापित व्यक्तिगत सम्पर्क और उनको दी गई आवश्यक सहायता के परिणामस्वरूप तथा "अरबो की आवाज" (वायस आफ दी अरब्स) के मिस्री रेडियो द्वारा किये गये सक्रिय प्रोपैगेण्डा के परिणामस्वरूप ऐसा प्रतीत होता है कि यमन की नीति अपने तत्वर लक्ष्य मे सफल हो गई है। फेडरेशन विषयक ब्रिटेन की योजना स्थगित कर दी गई और इस प्रकार यमन के पक्ष में एक नये समझौते के लिये मार्ग प्रशस्त हो गया।

(iii) लीबिया—लीबिया के सम्बन्ध में, लीग ने अपने आरम्भ से अत्यन्त प्रभावशाली कार्य किया। लदन में विदेश मन्त्रियो के सम्मेलन मे २८ सितम्बर १९४५ को प्रेषित टिप्पण मे, अरब लीग ने अपना लक्ष्य स्पष्ट कर दिया था : लीबिया की स्वतन्त्रता और एकता तथा अरब लीग मे उसकी सदस्यता।

तदनन्तर आठ वर्षों में इन लक्ष्यो का लीग के सम्पूर्ण राजनैतिक टिप्पण और सकल्पो में दृढ रूप से पालन किया गया। जब राज्य क्षेत्र के भविष्य के बारे में जनमत का निश्चय जानने के लिए चार बडे विदेश मन्त्रियो ने लीबिया में एक जाच मिशन (१९४७-४८) भेजा तो सामान्य उद्देश्यों के आधार पर विविध राजनैतिक दलों में समझौता करने के प्रयत्न की दिशा मे लीग ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की। यह बहुत अंशो मे सयुक्तराष्ट्र सघ में रहते हुए लीग के प्रयत्न ही थे कि २१ नवम्बर, १९४९ (सकल्प २८९ (४)) की महासभा ने अपने चतुर्थ अधिवेशन मे यह निर्णय किया कि लीबिया—जिनमे साइरेनैका, ट्रिपोलिटेनिया और फेजान सम्मिलित हैं—१ जनवरी १९५२ से स्वतत्र तथा सार्वभौम राज्य मे परिणत हो जायगा। लीग ने ही अमीर सईद मुहम्मद इद्रिस अल-सनुस्सी के नेतृत्व मे राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का समर्थन किया था जिसने स्वतन्त्रता, एकता और लीग में लीबिया की सदस्यता की माग की थी। ८ मार्च, १९५३ को लीबिया अरब लीग का आठवा सदस्य बना लिया गया।

फिलिस्तीन के मामले में अरब लीग के रिकार्ड ने उसकी जन्मजात कमजोरियां प्रकट कर दीं। १९४४ की अलेक्जेन्ड्रियां सन्धि ने निश्चित रूप से यह अभिव्यक्त कर दिया था कि "फिलिस्तीन अरब राज्यों का महत्वपूर्ण अग है तथा उस देश में अरब सम्बन्धी अधिकारो को प्रभावित करने वाली कोई कार्यवाही अरब जगत की स्थिरता और शान्ति को प्रभावित करेगी।" फिलिस्तीन मे अरब भूमि के परित्राण के लिए

एक अरब राष्ट्र निधि आरम्भ की गई। अरब समझौते के परिशिष्ट १ के उपसहार में बताया गया है कि फिलिस्तीन स्वतन्त्र होना चाहिए। परिशिष्ट में घोषणा की गई है कि "बहुमत की शक्ति के द्वारा उसकी स्वतन्त्रता व्यवहृत नही हो सकी, यह उचित नही था कि लीग के कार्य में फिलिस्तीन द्वारा भाग लेने पर बाधा उत्पन्न की जाये।" तदनुसार फिलिस्तीन से एक अरब प्रतिनिधि के निर्धारण का प्रबन्ध किया गया।

इस समय अरब लीग के उद्देश्य ये थे—फिलिस्तीन में विशाल सख्या में यहूदियो के आप्रवास को रोकना, कृषि का विकास और फिलिस्तीन की भूमि का सरक्षण, जियोनिवादी उत्पाद का बहिष्कार, और अन्त मे फिलिस्तीन को अरब लीग के पूर्ण अधिकार प्राप्त सदस्य के रूप मे भरती तथा उसके राजनैतिक स्वातन्त्र्य की प्राप्ति। ब्लडान सम्मेलन, जून, १९४६ मे इन उद्देश्यो की विशद व्याख्या कर दी गई। इस सम्मेलन में यह योजना थी—फिलिस्तीन समिति की रचना जिसमें उन सब अरब राज्यो के प्रतिनिधि थे जो फिलिस्तीन से सम्बधित कार्य का सचालन करने के लिए उत्तरदायी थे। सर्व फिलिस्तीन अरबो का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक उच्चतम विकास की स्थापना, जियोनिवादी सेनाओ के विकेन्द्रीकरण का आग्रह और फिलस्तीन के आतकवादियों का निश्शस्त्रीकरण। अन्य देशो के समक्ष इस सुझाव को प्रस्तुत करना कि वह यहूदियो के अवैध आप्रवास मे सहायता करने वाले सगठनो की भर्त्सना करें, फिलिस्तीन के लिए एक विशेष निधि की स्थापना करना जिसमें सब अरब अनुदान देंगे, अरब विवाद के पक्ष में प्रोपैगेंडा को सशक्त करना तथा उसका पुनगठन करना और समस्त यहूदी उत्पाद के विरुद्ध बहिष्कार को व्यापक एव बलशाली रूप देना।

इन लक्ष्यो की पूर्ति कठिन सिद्ध हुई। लीग के पास जो भी साधन थे अथवा लीग ने जिन साधनो का उपयोग किया, वह अन्तर्राष्ट्रीय जियोनवाद की तुलना में क्षीण थे। यहूदियो के आप्रवास का विरोध दूतालय के स्तर तक ही सीमित था, इसका प्रतीक उदाहरण वह है जो मार्च, १९४६ के इन्शास सम्मेलन के पश्चात् जारी किये गये वक्तव्य से प्रकट होता है "अरब राज्यो के लिए यह सम्भव नही है कि वह किसी भी रूप में नवीन आप्रवास मे सहमत हो जो कि स्पष्ट रूप से सरकारी घोषणा (व्हाइट बुक) के विरोध में है, जिसका सम्मान करना ब्रिटेन के लिए एक अनिवार्य कार्य है।" (विस्तृत जानकारी के लिए देखिये—फिलिस्तीन प्रश्न)।

२८ मार्च, १९४६ में कृषि विकास और फिलिस्तीनीयन भूमि के सरक्षण के लिए एक कार्यक्रम आरम्भ किया गया। अरब लीग ने ऋण देने और सस्ती दरो पर किसानो को जमीन बेचने के लिये एक वित्तीय और विकास सगठन स्थापित किया। सगठन ने सगठित पूंजीवादी कम्पनी का रूप

धारण कर लिया जिसमें दस लाख मिस्री पौंड की राशि थी। इसमें यह उपबन्ध भी था कि आवश्यकता होने पर इस राशि को बढ़ाया जा सकता है। किन्तु फिलस्तीन अरबों के भारी संख्या में प्रवास से इस नवीन कृषि सम्बन्धी योजना का, उस कम्पनी का कोई लाभदायक परिणाम निकलने से पूर्व ही, एक दम अन्त हो गया।

१९४६ के प्रारम्भ मे, लीग ने जियोनवादी उत्पाद के विरुद्ध बहिष्कार आन्दोलन का सूत्रपात किया। परिषद् के २ फरवरी के संकल्प के अन्तर्गत एक स्थायी बहिष्कार समिति स्थापित की गई और घोषणा की गई कि अरब देशों में फिलस्तीन के यहूदियों द्वारा उत्पादित सामग्री अवाञ्छनीय समझी जायेगी। जब तक फिलस्तीन मे उत्पादित इन वस्तुओं का उद्देश्य जियोनवादी राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक है उस सीमा तक उन्हे प्रतिबन्धित कर इन्कार कर दिया जाना चाहिए (संकल्प संख्या १६)। लगभग चार महीने पश्चात् परिषद् ने प्रत्येक देश मे बहिष्कार कार्यालय खोले और निश्चय किया कि फिलस्तीन के अरबों के लिये आवश्यक कच्चे माल तथा बनी हुई वस्तुओं की सूची तैयार करना जो वहाँ अरब देशों से भेजी जा सकें, सीमा शुल्क जब्त किये गये सामान के मूल्य का पचास प्रतिशत चुंगी अधिकारियों को दे दिया जाय, फिलस्तीन मे बहिष्कार के प्रयोजन से स्थापित किये जाने वाले प्रस्तावित निकाय द्वारा जारी किये गये प्रमाण पत्रों को मान्यता, विभिन्न अरब राज्यों के सीमा शुल्क विभागों द्वारा, आयात वस्तुओं का राष्ट्रीय उद्गम निर्धारण करने के लिये किये जाने वाले उपाय, बैंक, बीमा समवाय, परिवहन आदि जियोनवादी सेवाओं का बहिष्कार। बहिष्कार सुप्त नही प्रत्युत प्रभाव पूर्ण था तथा अरब जियोनवादी उद्योगों को प्रति-स्थापना के लिये दृढ आर्थिक आधार पर उद्योगों की स्थापना करेंगे ताकि अरब जियोनवादी वस्तुओं के बहिष्कार के परिणामस्वरूप स्थितियों मे किसी प्रकार की हानि उठाये बिना फिलस्तीन के अरब उनके उत्पादनों पर ही निर्भर रह सकें। जनता का प्रभाव पूर्ण समर्थन प्राप्त करने के लिए प्रोपैगेंडा किया गया (संकल्प संख्या ६८)।

लीग को पूर्ण अधिकार सम्पन्न सदस्य के रूप मे फिलस्तीन में लाने के लिए और उसकी राजनीतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए अरब लीग ने फिलस्तीन के प्रतिनिधियों को चुनने का निर्णय किया (संकल्प २९)। उन्होंने यह भी निर्णय किया कि ग्राड मुफ्ती (फिलस्तीन में अरब मुसलमानों का अधिकृत सर्वोच्च धार्मिक पुरुष) के नेतृत्व में एक संगठित फ्रंट की सृष्टि की जाये। ग्राट मुफ्ती फ्रांस में नजर बंदी से बचकर भागने के पश्चात् १९४६ मे मिस्र आये थे।

लीग द्वारा एक अरब उच्चतर कार्यपालिका (जून, १९४६ में) बनाई गई। अरब राज्यों ने आंग्ल अमेरीकी जाच समिति के प्रतिवेदन (८ जुलाई, १९४६) का

विरोध किया। यह समिति ब्रिटेन तथा अमेरिका द्वारा फिलस्तीन समस्या की जाच करने के लिये स्थापित की गई थी। अगस्त १९४६ में अरब लीग की राजनीतिक समिति की बैठक अलेक्जेन्ड्रिया में हुई। इसने फिलस्तीन की भावी सरकार के लिये एक प्रारूप तैयार किया। इस योजना में यह उपबध थे—अस्थायी सरकार की रचना जिसमें सात अरब और तीन यहूदी मत्री हो। साठ सदस्यो वाली सविधान सभा का निर्वाचन, और प्रारूप सविधान तैयार करना। सविधान निम्नलिखित सिद्धान्तो पर आधारित था—फिलस्तीन अखडित रहेगा कुछ वर्षो के निवास के पश्चात् फिलस्तीन की नागरिकता प्रदान की जायेगी, 'धार्मिक स्थानो' की सुरक्षा की गारन्टी दी जायगी, यहूदियो का आप्रवास सर्वथा समाप्त हो जायेगा, और धार्मिक स्वतत्रता की गारटी रहेगी। ब्रिटेन द्वारा यह योजना अस्वीकृत कर दी गई जो लीग आफ नेशन्स से परमादेश प्राप्त द्वारा फिलस्तीन का शासक था। फरवरी, १९४७ में ब्रिटेन ने घोषणा की कि वह फिलस्तीन का मामला सयुक्त राष्ट्र सघ के सुपर्द कर रहा है। जब अप्रैल, १९४७ में सभा का विशेष अधिवेशन हुआ तो अरब राज्यो ने अपना प्रथम युद्ध लडा और महासभा से आग्रह किया कि अरब उच्चतर कार्यवाही तथा यहूदी अभिकरण के प्रतिनिधियो को आमत्रित किया जाये। अन्त में, २९ नवम्बर, १९४७ को महासभा ने फिलस्तीन सम्बन्धी विशेष समिति के बहुमत सदस्यो द्वारा की गई सिफारिश के अनुसार फिलस्तीन के विभाजन के पक्ष मे मत दिया। इस समिति ने फिलस्तीन के भविष्य के बारे में तत्स्थानी जांच की। इसी बीच ब्रिटेन ने घोषणा की कि इसका परमादेश १५ मई, १९४८ में समाप्त हो जायेगा। दिसम्बर १९४७ के प्रारम्भ में अरब और यहूदियो के बीच खुले रूप से लडाई आरम्भ हुई।

एक अरब मुक्ति सेना का निर्माण किया गया। १५ मई, १९४८ को अरब लीग के महासचिव ने सुरक्षा परिषद् को तार द्वारा सवाद भेजा जिसमें यह घोषणा की गई की शान्ति एव व्यवस्था की स्थापना और फिलस्तीन के अरबो को भू-प्रदेश वापस सौंपने की दृष्टि से लीग ने फिलस्तीन में हस्तक्षेप किया है।

क्षणिक वाक् कौशल्य के बावजूद भी लीग कभी भी वचनबद्ध भूमि को मुक्त करने में सफल नही हुई और सुसगठित यहूदियो ने इसके राजनीतिक और सैन्य सम्बन्धी प्रयत्नो को करारी शिकस्त दी। अरब लीग पांच अरब सेनाओ का समन्वय एव नियत्रण करने में असफल रही। जब अरब सेनाओ के प्रधान सेनापति का प्रश्न उत्पन्न हुआ तो प्रत्येक राज्य ने इस सम्मान को प्राप्त करने के लिये अपना दावा प्रस्तुत किया। लीग की अनेक बार बैठकें हुई किन्तु वह कोई निर्णय नही कर सकी। ईराक ने मिस्री सेनापति को स्वीकार करने से मना कर दिया। मिस्र ने यह अमान्य कर दिया कि ईरानी सेनापति हो। जोर्डन सेना का मुख्य सेनापति जन्म से

अंग्रेज होने के नाते स्वीकार नहीं किया जा सका। परिणाम यह हुआ कि जो भी अरब सेना फिलस्तीन में घुसी वह अपने ही आधार पर लडी।

इसी बीच भावी फिलस्तीन राज्य की स्थिति के बारे मे मत-विभिन्नता उत्पन्न हुई। ईराक द्वारा समर्थन प्राप्त जोर्डन ने फिलस्तीन पर अधिकार का पक्ष लिया ताकि 'वृहत्तर सीरिया' योजना मूतरूप धारण कर सके। इसके विपरीत, मिस्र और सऊदी अरब एक ऐसे स्वतन्त्र फिलस्तीन गणतंत्र की स्थापना चाहते थे जिसका अध्यक्ष यरूसलम का 'ग्राड मुफ्ती' हो। ८ जुलाई, १९४८ को लीग ने फिलस्तीन को "अस्थायी असैनिक प्रशासन" प्रदान करना स्वीकार किया और २३ सितम्बर को सर्व फिलस्तीन की एक "अरब सरकार" की गाजा मे बैठक हुई। इसके विरोध मे जोर्डन की सरकार ने २ अक्टूबर को सम्राट अब्दुल्लाह के नेतृत्व मे अम्मन मे एक फिलस्तीन कांग्रेस आमंत्रित की। इस कांग्रेस ने गाजा सरकार मे अविश्वास प्रस्ताव पारित किया जबकि जेरिचो मे आयोजित १ दिसम्बर की अन्य कांग्रेस ने जोर्डन का प्रस्ताव स्वीकार किया। किन्तु २२ दिसम्बर, १९४८ को इजरायल की सेनाओ ने द्वितीय समझौते को भंग कर दिया और नजीब क्षेत्र पर आक्रमण कर दिया। अन्य अरब सेनायें सर्वथा निष्क्रिय रहीं। मिस्री सेना को वापस लौटना पडा क्योंकि यहूदियो की सेना उसके पीछे पड गई थी। ११ मई, १९४९ को इजरायल संयुक्त-राष्ट्र-संघ का सदस्य बन गया। अरब लीग को एक बार और मुँह की खानी पडी।

फिलस्तीन में हुई हार का एक परिणाम यह हुआ कि जोर्डन और मिस्र मे समझौता हो गया। लीग परिषद की एक उत्तेजनापूर्ण मीटिंग मे, जो २५ मार्च से १७ जुलाई, १९५० तक जारी रही, कुछ मुफ्ती समर्थक उग्रवादियो ने जोर्डन को लीग से वहिष्कृत करने का प्रयत्न किया। इसके लिए उन्होंने यह दलील दी कि अरब फिलस्तीन का अधिकार १९४५ के समझौते के लक्ष्य तथा सिद्धान्तो के विपरीत है। गाजा की मनोकल्पित सरकार के प्रतिनिधि की उपस्थिति ने इस समस्या को और भी जटिल बना दिया। जून मे एक समझौता किया गया जिसके अनुसार पूर्वी फिलस्तीन जोर्डन के प्रशासन के सुपुर्द कर दिया गया जबकि गाजा में सर्व फिलस्तीन सरकार ने लीग परिषद में अपना स्थान कायम रखा।

१९४८ के पश्चात अरब लीग ने तीन बातो की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया—अरब शरणार्थियो की समस्या (दस लाख बेघर लोग), सामूहिक सुरक्षा और इजरायल के विरुद्ध तीव्र वहिष्कार आन्दोलन।

अरब विस्थापितो को सहायता देने के लिए, खास तौर पर विस्थापितों के बच्चो को शिक्षित करने के लिए अरब लीग ने संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ कार्य किया। संघ ने वहिष्कार के अपने कार्यों को तीव्र कर दिया। वहिष्कार के कार्यों को निर्देश देने के लिए दमिश्क में एक प्रधान कार्यालय की स्थापना हुई और अरब

सभी अरब राज्यो में ये राष्ट्रीय कार्यालय कार्य कर रहे हैं। इथोपिया तुर्की, क्यूवेट (Quwait) तथा क्ताटार (अरब प्रायद्वीप में स्थित ब्रिटिश रक्षित-राज्य) से सबध स्थापित किए गए। इस सबध स्थापना के पीछे इस बात का प्रयत्न था कि इन राष्ट्रो को इसके लिए राजी कर लिया जाय कि ये इजरायल से उन आर्थिक लाभो के हेतु विनिमय-व्यापार न करें, जो लाभ अरब-लीग के सदस्यो की ओर से उनके (उपयुक्त राष्ट्रो) लिए प्रस्तुत हैं। सघ ने इजरायल के राजनीतिक पृथक्-करण को मजबूत किया। ऐसा करने के लिए उसने सभी सदस्य राष्ट्रो को मना किया कि "कोई भी सदस्य राष्ट्र इजरायल के साथ एक पक्षीय शांति-सधि अथवा दूसरा कोई राजनीतिक, सैनिक या आर्थिक समझौता करने के लिए बातचीत न करे। कोई भी राज्य, जो इस प्रकार के समझौते के लिए बातचीत प्रारभ करेगा, उसे लीग-सधि की धारा १८ के अनुसार, सघ की सदस्यता के लिए अयोग्य करार कर दिया जायगा।" (प्रस्ताव २५०, १ अप्रैल, १६५०)।

दो सप्ताह बाद सघ ने एक प्रस्ताव द्वारा इस दिशा मे और भी दृढ कदम उठाए। इस प्रस्ताव मे यह उल्लेख किया गया था कि यदि कोई राष्ट्र, सघ की घोषणा की अवहेलना करेगा तो, "उस देश से राजनीतिक एव राजनयिक सबध विच्छेद कर लिया जायगा। उस राष्ट्र तथा दूसरे अरब राष्ट्र के मध्य की सीमाओ को बद कर दिया जायगा, तथा उनके बीच आर्थिक, व्यापारिक तथा वित्तीय सबधो को तोड दिया जायगा।" सघ के अनुसार इजरायल के इस प्रकार से बहिष्कार का यह परिणाम होगा कि इजरायल का आर्थिक पतन अन्तत हो ही जायगा। बहिष्कार का तरीका ही सर्वाधिक प्रभावशाली तरीका रहा है जिसे अरब राष्ट्रो ने इजरायल के विरुद्ध 'शीत युद्ध' के लिए अपनाया है।

जैसे कि पहले ही देख चुके है कि अरब-सघ के सदस्य-राष्ट्रो ने सामूहिक प्रतिरक्षा तथा आर्थिक सहकारिता के एक समझौते का मसविदा १६५० मे तैयार किया। मिस्र, लेबनान, साऊदी अरब, सीरिया तथा यमन ने इस समझौते पर हस्ताक्षर किए, ईराक फरवरी १९५१ तक बाहर रहा तथा जोर्डन उसके और एक वर्ष बाद तक। २८ मार्च १९५२ तक सात मे से चार राष्ट्रो द्वारा समझौते की अभिपुष्टि कर दी गई। ये चार राष्ट्र थे सीरिया, मिस्र, जोर्डन और ईराक, लेकिन इनके द्वारा उठाए गए अपवादो तथा सशोधनो के कारण इसके लागू होने में विलम्ब हुआ।

उपनिवेशवाद-विरोधी

इस्लाम सम्मेलन (११ जून, १६८६) में सघ ने यह सिफारिश की कि सदस्य अरब देशों की सरकारों को "उन अरब देशों के स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के हेतु सचेष्ट रहना चाहिए, जो अभी तक सघ से बाहर हैं, जिससे कि वे स्वाधीन हो सकें

अथवा उस अरब देश में विलीन हो जाए, जिसका वे एक भाग हैं।" (प्रस्ताव न० ६३)

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संघ ने ट्यूनिसिया, अल्जीरिया तथा मोरक्को मे अरब-राष्ट्रीय आन्दोलन को सक्रिय प्रोत्साहन दिया तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा मे फ्रांस के विरोध के बावजूद भी १९५२ मे इन प्रश्नो को उठाने का अनवरत प्रयत्न किया। १९५६ तक ट्यूनिसिया तथा मोरक्को की समस्या हल हो गई। लेकिन अल्जीरिया का प्रश्न अभी तक उलझा हुआ ही है। अल्जीरिया का प्रशासन फ्रांसीसी उपनिवेश के रक्षित-राज्य की हैसियत से न होकर वस्तुत. फ्रांस के अविभाज्य अंग के नाते एक विभाग की हैसियत से होता है। अरब-संघ के हस्तक्षेप का भी अभी कुछ परिणाम नही निकला।

गैर-राजनीतिक प्रवृत्तिया

१. आर्थिक—अरब लीग का अधिकांशत रचनात्मक कार्य आर्थिक, विधि, सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रो में हुआ है। आर्थिक क्षेत्र मे संघ ने अरब राज्यो ने अनेक सिफारिशें आर्थिक सहयोग के संबध में की। ये सिफारिशे इस प्रकार की थीं—प्रचलित मुद्रा का एकीकरण (प्रस्ताव न० २०५); सब अरब राष्ट्रो के बीच एक अधिमानित व्यापार प्रणाली (प्रस्ताव न० ३५९), सदस्य-राष्ट्रो के बीच थल, जल तथा हवाई यातायात तथा संचार साधनो को दृढ करना तथा नियामकता प्रदान करना, लेकिन इसमे थोडी ही सफलता मिली है। कई योजनाओ का अध्ययन सावधानी से किया गया, लेकिन बहुत थोडी ही ऐसी स्थिति में पहुँच पाई हैं कि उन्हे व्यावहारिक स्तर से लागू किया जाय। उदाहरणार्थ, टेलीफोन-संचरण को सुनिश्चित करने, नागरिक उड्डयन संबधी संधि संमविदे पर किसी समझौते पर पहुँचने, लेबनान द्वारा प्रस्तावित अरब-जहाजरानी-कपनी की स्थापना करने, हेजाज रेलवे लाइन को चालू करने, तथा अन्तर-अरब-नदी-नौतरण को बढावा देने के प्रयास हुए हैं। ६ अप्रैल, १९५३ को संघ ने एक अरब-डाक-संघ, एक अरब तार-संचार-साधनों तथा रेडियो-संचार साधनो के संघ की भी स्थापना की। इनमें हर एक का स्थायी कार्यालय सचिवालय मे है, जो संघो के विभिन्न सदस्यो को सूचना तथा सलाह-मशविरा देने के केन्द्र के रूप मे कार्य करता है। ७ सितम्बर, १९५३ को दो समझौते हुए—एक सीमा-शुल्क तथा व्यापार-प्रतिबधो को कम करने के संबध में था तथा दूसरे का उद्देश्य था चालू मुद्रा के विनिमय तथा पूंजी के हस्तातरण को सुलभ करना। ये प्रयास यद्यपि प्रशंसनीय हैं, तो भी अपर्याप्त हैं तथा विभिन्न अरब-राष्ट्रो का आर्थिक एकीकरण मुश्किल से प्रारम्भ हुआ माना जाएगा।

२ विधि (न्यायिक प्रवृत्ति)—अरब राष्ट्रो में विधायक तथा न्यायिक सहयोग को बढाने के लिए, विधि-विभाग ने अन्तर-अरब-पारस्परिक अन्तर्राष्ट्रीय विधि के

लिए विधान का मसविदा तैयार किया जो सघ की परिषद द्वारा स्वीकृत हो गया। और जो समझौते हुए वे हैं—अरब राज्यों के विदेशों में रहने वाले नागरिकों की राष्ट्रीयता के संबंध में समझौता (२७ अक्तूबर, १९४९), अपराधियों के समर्पण के लिए समझौता (१४ अक्तूबर, १९५२), एक सदस्य-राष्ट्र के राष्ट्रीय द्वारा दूसरे सदस्य राष्ट्र में राष्ट्रीयता-प्राप्ति का समझौता (५ मई, १९५४)। अन्तर-अरब-विधि पारित करने की सघ की गति धीमी थी।

३ सामाजिक—अरब-सघ में सामाजिक सहयोग को चार विचार-गोष्ठियों में प्रकट किया गया। ये विचार गोष्ठियाँ सयुक्त राष्ट्र सघ ने अरब-सघ से मिलकर चार विभिन्न स्थानों पर आयोजित की थी। बेरूत में १९४९ में, काहिरा में १९५० में, दमिश्क में १९५२ मे, बगदाद में १९५४ में विचार गोष्ठिया आयोजित की गई थी। विचार-गोष्ठी में अरब राज्यों की आर्थिक प्रगति में समाज-कल्याणकारी-प्रश्नों का समाधान निकालने के तरीकों के विकास पर विचार हुआ।

४ सास्कृतिक—सघ ने अरब-राष्ट्रों के बीच सास्कृतिक एकता को बढावा दिया। २७ नवम्बर, १९४५ में एक सास्कृतिक समझौता अगीकार किया गया, जिसमें अन्तर-अरब सास्कृतिक सहयोग के सिद्धान्तों तथा लक्ष्यों की परिभाषा की गई थी। इस क्षेत्र मे सघ के दो महत्वपूर्ण उद्देश्य थे—(१) विभिन्न शिक्षा-प्रणालियों का स्तर-निर्धारित करना, (२) अरब-सस्कृति को समृद्ध करना। सघ की सास्कृतिक समिति साल में एक बार विभिन्न अरब देशों में बैठती है, एक स्थायी विभाग, जिसकी मासिक बैठक होती है, सास्कृतिक विभाग की प्रवृत्तियों पर नियत्रण रखता है। अरबी भाषा की पाण्डुलिपियों के पुनरूज्जीवन के लिए एक सस्था का निर्माण किया गया तथा लगभग आठ हजार पाण्डुलिपियों के चित्र लिये गए। मध्यपूर्व के विशेषज्ञों को प्रशिक्षित करने के लिए १९५३ में अरबी के उच्चतर अध्ययन की सस्था स्थापित की गई। विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के आदान-प्रदान, अरब-विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियों की स्वीकृति, तथा अरब ज्ञान-कोष को तैयार करने की व्यवस्थाएँ की गई।

निष्कर्ष—अरब-सघ के कार्य का मूल्यांकन करते समय किसी को भी यह स्वीकार करना चाहिए कि इसकी असफलताओं के समक्ष सफलताएँ गौण हो जाती हैं। सघ १९४८-४९ में फिलस्तीन में तथा १९५६ मे स्वेज सकट में असफल रहा तथा आर्थिक एव सामाजिक एकीकरण की आधार शिला रखने मे इसे सफलता नही मिली। तो भी, इसने विदेशी दासता से मुक्त रहने की अरब-राष्ट्रों की दृढ़-सकल्पता को प्रदर्शित किया है तथा अनादि से आज तक वे लोगों के लिए अरब-एकता के प्रतीक के रूप अपने आपको प्रकट किया है। सगठन की दृष्टि से अत्यन्त ढीली,

राजनीतिक तथा व्यक्तिगत प्रतिद्वन्दिता के कारण विभाजित, इजरायल के विरुद्ध अत्यधिक शत्रुतापूर्ण सगठन होने के कारण यह अरब-सघ मध्य पूर्व में स्थिरता तथा शांति-निर्माण के लिए प्रभावक सत्ता के रूप मे असफल प्रमाणित हुआ है। तो भी इतना तो है ही कि यह अरब-विश्व के राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन का प्रतीक है तथा प्रथम गैर-पश्चिमी अन्तर्राष्ट्रीय सगठन है।

बगदाद-सधि

बगदाद-सधि का मूल अगर खोजना हो तो वह हमे प्रस्तावित मध्य-पूर्व-प्रतिरक्षा-सगठन मे प्राप्त हो सकेगा, जिसकी मूल योजना १९५१ में प्रकाशित कर दी गई थी। यह आग्ल-अमेरीकी गुट द्वारा ऐसी प्रतिरक्षा-सधि का रूप लेने को था, जिस सधि में अरब तथा मध्यपूर्व के राष्ट्र सम्मिलित हो। इस सधि में एक सयुक्त प्रतिरक्षा एव सहायता की उस समय के लिए व्यवस्था की गई जब किसी भी सदस्य-राष्ट्र पर बाहरी आक्रमण हो। परन्तु इसका वास्तविक उद्देश्य तो साम्यवादी-देशो की घेरा बन्दी करने का था और विशेष रूप से रूस की।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आंग्ल-अमेरीकी गुट तुर्की को इसके लिए राजी करने में सफल हो गया कि वह (तुर्की) मध्य-पूर्व-प्रतिरक्षा-सगठन के निर्माण में पहल करे। साथ ही हर प्रकार की सहायता—सैनिक सहायता तथा आर्थिक ऋण भी जिसमें शामिल हैं—देने का वचन दिया। ६ जनवरी, १९५५ को एक प्रतिनिधि-मडल ने, जिसका नेतृत्व तुर्की के प्रधान मत्री श्री मेंडरेस कर रहे थे, ईराक की आठ दिवसीय सद्भावना-यात्रा पर बगदाद गए। तुर्की प्रतिनिधि मडल से हुई चर्चा के परिणाम स्वरूप छ दिन बाद एक सयुक्त घोषणा प्रकाशित हुई, जिसमें मध्य-पूर्व की सुरक्षा एव स्थिरता के लिए तुर्की तथा ईराक के मध्य वर्तमान सहयोग को लागू करने तथा उसे विस्तृत करने के लिए, शीघ्रातिशीघ्र जहां तक सभव हो एक तुर्की-ईराकी-सधि सम्पूर्ण हो जाने के निर्णय की घोषणा की गई। मिस्री विदेश मत्री श्री फौजी ने घोषणा की कि शुद्ध अर्थ में प्रस्तावित ईराकी-तुर्की-संधि अरब-सघ-सामूहिक सुरक्षा सधि की विरोधी है। ईराक को चाहिए था कि इतने महत्वपूर्ण मामले में वह दूसरे सदस्य-राष्ट्रो की भी सलाह लेता। उन्होने फिर कहा कि मिस्र इसके लिए कृत-सकल्प है कि वह किसी भी सधि में शामिल नही होगा और नाही दो पक्षो द्वारा किए गए किन्ही समझौतो को स्वीकार करेगा। अरब-एकता को स्थाई रूप बनाए रखने के लिए मिस्र के प्रधान मंत्री कर्नल-नासिर, ने २२ जनवरी को काहिरा में अरब-सघ की एक बैठक का प्रस्ताव रखा, जो प्रस्तावित तुर्की-ईराकी-समझौते से उत्पन्न स्थिति पर विचार करे।

१८ जनवरी १९५५ को ईराक ने अपनी विदेश-नीति पर एक वक्तव्य प्रकाशित

किया, जिसमें इस नीति के दो प्रमुख सिद्धातो की व्याख्या की गई थी। वे सिद्धात थे—(१) अरबो के महत्वपूर्ण ध्येयो की पूर्ति करना, (२) ईराक की सुरक्षा को सुनिश्चित करना। अपनी विदेश-नीति के प्रथम सिद्धात के अन्तर्गत ईराक के प्रयास ऐसे मामलो में प्रत्यक्ष साक्षी हैं जोकि लेवेंट (भूमध्य सागरीय प्रदेश) राज्य, उत्तरी अफ्रीका, फिलस्तीन तथा अरब-लीग की नीव रखना। दूसरे सिद्धात के अन्तर्गत ईराक ने यह प्रयत्न किया था कि वह अपने पडोसी राष्ट्रो तथा उन बडी शक्तियो से अपने सबधो को व्यवस्थित तथा दृढ करे, जिनके हित ईराक के हितो मे मेल खाते हैं। तुर्की, फारस तथा अफगानिस्तान के साथ सधियां तथा इगलिस्तान के सधि-गठबधन इसके उदाहरण रूप मे उद्धृत किए गए थे। ईराक का विचार था कि इन दोनो सिद्धातो को सयुक्त रूप मे लागू करना ही केवल मात्र तर्क-सगत तरीका है, जिससे अरबो के आम हितो को प्राप्त किया जा सकता है।

ईराक ने १६ अक्तूबर, १९५४ के आग्ल-मिस्री-समझौते का जोरदार स्वागत किया। ईराक ने इस समझौते को अरब-तुर्की-इगलिस्तानी सबधो के लिए एक शुभ शकुन माना। उसके विचार से यह निर्णय मिस्र का विशेष अधिकार था, उस समय तक जब तक यह मिस्र की सुरक्षा को सुनिश्चित करता, जो (मिस्र की सुरक्षा) अरब-विश्व की सुरक्षा का अनिवार्यत आवश्यक अग है। मिस्र की तुर्की-अरब सबन्ध के प्रयास के पूरक के रूप मे ईराक ने तुर्की से सधि के लिए आपसी विचार प्रारभ किया, जो अरब-राष्ट्रो के साथ उन राष्ट्रो के लिए भी खुली होगी, जिनका सबध मध्य-पूर्व की सुरक्षा मे है। ईराक का तुर्की के साथ एक लबा तथा आम सीमान्त था, और साथ ही आम प्राकृतिक साधन भी। साथ-ही साथ ईराक पिछली सधियो की शृखला द्वारा तुर्की मे बधा हुआ था, जैसे कि १९२६, १९३७ तथा १९४६ की सधियां। वक्तव्य इस टिप्पणी के साथ समाप्त किया गया था कि प्रस्तावित सधि का टकराव नाही राष्ट्र-सघ के अधि-पत्र से होता है और नाही सामूहिक अरब सुरक्षा-समझौते मे। ईराकी प्रधान मत्री नूरी-अस-सैद ने अपने डाक्टरो की सलाह पर २२ जनवरी, १९५५ में काहिरा में होने वाले अरब सघ के प्रधान-मत्रियो की बैठक में भाग नही लिया। काहिरा-सम्मेलन में मिस्री प्रतिनिधि-मडल सीरियाई, लेबनानी तथा ईराकी प्रतिनिधि मडलो (डा० फादिलजमाली) का यह अनुमोदन प्राप्त करने में असफल रहा कि वे ईराकी-तुर्की-सधि मे अपने-आपको अलग रखेंगे। सम्मेलन को भग करने का निश्चय कर लिया गया तथा यह निश्चय किया गया कि एक प्रतिनिधि-मडल जिसमें मिस्र के राष्ट्रीय-मार्ग-दर्शन मत्री मेजर सलेम, लेबनान के प्रधानमत्री तथा सीरिया और जोर्डन के विदेश-मत्री शामिल हो, बगदाद ईराकी प्रधानमत्री नूरी-अस-सैद से बातचीत करने जाए। ईराकी प्रतिनिधियो तथा अरब सघ के प्रतिनिधि-

मडल के बीच हुई त्रिदिवसीय वार्ता के पश्चात् २ फरवरी, १९५५ को एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ, जिसमें कहा गया था कि ईराक ने तुर्की के साथ अपनी सधि पर हस्ताक्षर विलबित करने का प्रस्ताव ठुकरा दिया।

२४ जनवरी, १९५५ को बगदाद में तुर्की-ईराकी-सधि पर हस्ताक्षर हो गए। पाँच वर्ष तक इसकी वैधता की अवधि रखी गई तथा इसके बाद आगामी पाँच पाँच वर्ष की अवधि के लिए नवीकरण की व्यवस्था की गई। सधि से अलग होने के लिए इस प्रकार की किसी भी अवधि के समाप्त होने से छः माह पूर्व अग्रिम सूचना दी जा सकती थी। सधि में यह कहा गया कि यह सयुक्त राष्ट्रसघ के अधिपत्र के अनुच्छेद ५१ पर आधारित है तथा इसके द्वार ऐसे हरेक राष्ट्र के लिए खुले हैं, जो मध्यपूर्व की सुरक्षा के लिए सक्रिय रूप से चिंतित है। इसमें आन्तरिक सुरक्षा-सबधी सूचना के विनिमय, और उसके साथ ही प्राविधिक सूचना साधनों के भी विनिमय तथा ईराक के रास्ते बिना सीमा शुल्क के तुर्की को शस्त्रास्त्रों की निकासी और इसी प्रकार तुर्की से अन्य राष्ट्रों को शस्त्रास्त्रों की निकासी की व्यवस्था थी। सधि के अनुच्छेद छ में कहा गया था कि कम-से-कम छ राष्ट्रों के सधि में शामिल हो जाने पर एक स्थायी परिषद् की स्थापना की जाएगी, जिसमें सदस्य-राष्ट्रों के प्रतिनिधि उन देशों के मत्रिमडलों के सदस्य ही हो सकेंगे। इससे कम स्तर के प्रतिनिधि किसी भी देश का प्रतिनिधित्व नही कर सकेंगे। सधि में यह छूट भी दी गई कि सधि में सम्मिलित होने वाला कोई भी देश अन्य किसी एक देश से अथवा अधिक से विशेष पारस्परिक प्रतिरक्षा-समझौते कर सकता है।

नूरी-अस सैद ने ईराकी प्रतिनिधि-सभा मे घोषणा की कि सधि पर हस्ताक्षर करने वाले दूसरे सदस्य राष्ट्रों—पाकिस्तान, फारस, तथा इगलिस्तान से—ईराक के सहयोग का आधार ये तीन सिद्धात होगे : (१) ईराक ऐसे किसी भी उत्तरदायित्व को स्वीकार नही करेगा, जो उसे अपनी सीमाओं के बाहर निबाहने हों अथवा अरब-राष्ट्रों की सीमाओं के बाहर जैसाकि अरब-सुरक्षा-सधि में उल्लिखित है, (२) ईराक-सरकार केवल मात्र ईराक की प्रतिरक्षा के लिए उत्तरदायी है तथा कोई भी राष्ट्र ईराक से सहयोग के लिए किन्ही भी शर्तों की उसे आज्ञा नही दे सकता, (३) ईराक की विदेश-नीति सपूर्ण प्रभुसत्ता तथा सधि में शामिल राष्ट्रों के बीच समान अधिकारों पर आधारित होगी, जैसाकि सधि के अनुच्छेद ५ से स्पष्ट है, जिसमें उल्लेख किया गया है कि कोई भी वह देश, जिसे सधि में शामिल कम-से-कम दो प्रमुख राष्ट्रों ने मान्य न ठहराया हो, सधि में शामिल नहीं किया जाएगा, ईराक ने अरब राष्ट्रों से पूर्णरूपेण सहयोग की प्रतिज्ञा की। यह बात इजरायल पर लागू होती थी, जिसे ईराक से मान्यता प्राप्त नहीं थी। ईराक तथा तुर्की दोनों की ससदों ने स्पष्ट बहुमत से इस सधि की अभिपुष्टि कर दी।

४ अप्रैल, १९५५ को इगलिस्तान ने १९३२ की सधि के स्थान पर ईराक के साथ नए समझौते पर हस्ताक्षर किए तथा वह (इगलिस्तान) २४ फरवरी के तुर्की-ईराकी सधि में शामिल हो गया। इस नए समझौते के अन्तर्गत इगलिस्तान सैनिक भडारो तथा साधनो को ईराक मे युद्ध के समय प्रयोग के लिए एकत्रित कर सकेगा। जिन हवाई-क्षत्रो पर इगलिस्तान का अधिकार था अब ईराक के नियन्त्रण में चले जाएगे लेकिन इगलिस्तानी सेना के अधिकारी ईराक मे ही रहेगे जो ब्रिटिश हवाई-जहाजो का सचालन करेगे, तथा तत्सम्बन्धी सुविधाओ को बनाए रखेगे और साथ ही ईराकी सैनिको के सैनिक प्रशिक्षण मे सहायक होगे। ईराक पर सशस्त्र आक्रमण होने की स्थिति में अथवा आक्रमण की धमकी पर—अगर दोनो सरकारें यह समझें कि यह ईराक की सुरक्षा को खतरे में डाल देगा—इगलिस्तानी सरकार प्राप्य सहायता का कार्य अपने हाथ में ले लेगी। ऐसा वह ईराक-सरकार की प्रार्थना पर ही करेगी तथा इस सहायता में अनिवार्य सशस्त्र सेनाएँ भी शामिल होगी, जो ईराक की रक्षा करेंगी। ब्रिटेन तथा ईराक में हुए इस नए समझौते में ईराकी सशस्त्र सेनाओ को कार्य-कुशलता तथा तत्परता की स्थिति में बनाए रखने को इगलिस्तान तथा ईराक के बीच घनिष्ठ सैनिक सहयोग की व्यवस्था की गई।

२३ सितम्बर, १९५५ में पाकिस्तान बगदाद-सधि में शामिल हो गया, जो तुर्की तथा ईराक के बीच हुई थी तथा ब्रिटेन का भी जिससे लगाव हो गया था। ११ अक्तूबर, १९५५ में ईरान ने भी पाकिस्तान तथा इगलिस्तान का अनुकरण करते हुए, ईराक-तुर्की के बीच हुई सधि में शामिल होने की घोषणा कर दी।

दिसम्बर में इगलिस्तान ने जोर्डन पर भी बगदाद-सधि में शामिल होने को जोर डाला। इसका परिणाम यह हुआ कि जोर्डन के दो प्रधान-मन्त्रियो—सैद मुफ्ती तथा हाजल मजली—ने क्रमश इस्तीफा दे दिया तथा बड़े पैमाने पर दगे हुए जिन्होंने यह स्पष्ट सकेत कर दिया कि जोर्डन की जनता बगदाद-सधि की शक्तियो के साथ किसी भी गठबन्धन के पक्ष में नही है। जोर्डन के शाह हुसैन को जनरल ग्लब पाशा को बर्खास्त करने को विवश किया, जो अरब सैन्य-दल का प्रवर्तक माना जाता है। इस प्रकार अरब सैन्य-दल विदेशी प्रभाव से मुक्त हो गया तथा जोर्डन को बगदाद सधि में जबर्दस्ती घसीटने का इगलिस्तानी प्रयास असफल रहा।

बगदाद-सधि की प्रवृत्तियाँ

बगदाद-सधि के राष्ट्रो—ईरान, ईराक, पाकिस्तान, तुर्की तथा इगलिस्तान—की उद्घाटन बैठक (प्रारम्भिक बैठक) बगदाद में २१-२२ नवम्बर को ईराकी प्रधान मन्त्री अल सैयद नूरी-अल-सैद के सभापतित्व में हुई। अमेरीकी सरकार को प्रेक्षक के नाते बैठक की कार्यवाही मे भाग लेने को बगदाद सधि के राष्ट्रो ने निमन्त्रित

किया, जिसे स्वीकार करके अमेरीकी सरकार की ओर से बगदाद-स्थित अमेरीकी राजदूत ने परिषद् में अपनी सरकार का प्रतिनिधित्व किया।

प्रारंभिक भाषणो में तीन मुद्दो पर बार-बार जोर दिया गया : अमेरिका की इस सधि से पूर्ण लगाव की इच्छा, आर्थिक सहयोग का महत्व, तथा फिलस्तीन की समस्या के समाधान को प्राप्त करने की आवश्यकता। परिषद् ने अमेरीकी सरकार के स्थायी राजनीतिक एव सैनिक सम्बन्धो को प्रस्थापित करने तथा आर्थिक समिति मे प्रेक्षक नियुक्त करने की इच्छा का स्वागत किया। परिषद् ने यह माना कि बगदाद-सधि के अन्तर्गत जो उत्तरदायित्व ईराक के हैं, वे उन उत्तरदायित्वो से पूर्ण मेल खाते हैं, जो अरब-सघ, राष्ट्रो के बीच आर्थिक सहयोग तथा सयुक्त प्रतिरक्षा-सधि के अन्तर्गत उस पर हैं।

परिषद् में पाच सरकारो ने मध्य-पूर्व में शाति एव सुरक्षा के सयुक्त उद्देश्य, अपने-अपने क्षेत्रो की आक्रमण तथा विध्वस से रक्षा करने तथा इस सम्पूर्ण क्षेत्र के लोगो की खुशहाली तथा कल्याण की वृद्धि के लिए पूर्ण सहयोग के साथ कार्य करने के अपने इरादे की पुन पुष्टि की, जैसा कि सधि मे उल्लिखित है तथा सयुक्त राष्ट्रसघ अधिपत्र के अनुच्छेद ५१ के भी अनुसार है।

पांचो सरकारो ने एक स्थायी परिषद् की स्थापना की जिसका सत्र हमेशा ही रखने का निश्चय किया गया। मन्त्रि स्तर पर होने वाली बैठकें वर्ष में एक बार होगी। मेजबान देश के नाते ईराक सन् १९५६ तक अध्यक्ष-पद पर रहेगा, इसके बाद अध्यक्ष-पद पर एक-एक वर्ष के लिए सधि के शेष राष्ट्र अकारादि क्रम से कार्य करते रहेंगे। बगदाद सधि तथा इसकी आश्रित सस्थाओ का स्थायी स्थान बगदाद में ही रहेगा। हर सदस्य को परिषद् के लिए एक उप-प्रतिनिधि नियुक्त करना चाहिए। बगदाद स्थित अपने स्थायी प्रतिनिधियो द्वारा परिषद् किसी भी समय पांचो सरकारो के राजनीतिक, आर्थिक तथा सैनिक हितो के किसी भी मामले पर चर्चा करने को बैठक बुला सकेगी। परिषद् इस बात पर भी राजी हो गई कि बगदाद-सधि सगठन के लिए एक स्थायी सचिवालय बगदाद मे स्थापित किया जाना चाहिए।

परिषद् ने एक स्थायी सैनिक समिति की स्थापना की, जो परिषद् के प्रति उत्तर-दायी है तथा उसी के अधीन है, तथा जो भी निर्देश उसे दिये जायं, उनको पूरा करने की उसे जिम्मेदारी भी दी गई। सैनिक समिति में पाँचो सरकारो के प्रतिनिधि उन सरकारो के प्रधान-सेनापति अथवा उनके सहायक होंगे। सैनिक समिति ने अपनी प्रारभिक बैठको मे क्षेत्र की सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए एक सैनिक सगठन की नीव डाली। परिषद् ने अमेरिका द्वारा सधि में सम्मिलित प्रत्येक राष्ट्र को मूल्य-वान् तथा खुलकर सहायता देने के लिए उसकी (अमेरिका की) सराहना की। यह सहायता अमेरिका ने सैन्य शक्ति के रूप में तथा शस्त्रास्त्रो तथा दूसरे सैनिक

साधनो के रूप मे इसलिए दी कि वे राष्ट्र अपनी-अपनी प्रतिरक्षा-व्यवस्था को किसी भी आक्रमण का सामना करने के लिए सबल बना सकें।

क्षेत्र के आर्थिक एव वित्तीय साधनो के विकास तथा उन्हें दृढ करने के लिए एक आर्थिक समिति की स्थापना हुई। आगामी दो वर्षों में पाँच लाख पौंड का रक्षित-कोष निर्माण करने के लिए सोना सुलभ करने तथा वित्तीय सहयोग के दूसरे प्रकारो द्वारा इगलिस्तान ने ईराक को सहायता देने का निर्णय किया। यह आर्थिक समिति प्रमुख रूप से क्षेत्रीय विकास के क्षेत्र में अनुभव प्राप्त करने के तौर-तरीको पर विचार करेगी। इसमें क्षेत्रीय आधार पर विश्व-बैंक, विश्व-स्वास्थ्य-सगठन तथा विशेषता-प्राप्त सस्थाओ से चर्चा करना भी सम्मिलित है। इगलिस्तान के प्रतिनिधि ने इस बात के लिए अपनी सरकार की तत्परता प्रकट की कि वह विज्ञान के शातिपूर्ण प्रयोग के लिए बनी अपनी स्वय की अणु-शक्ति योजनाओ द्वारा सधि में सम्मिलित दूसरे देशो को मदद करने में अणु-शक्ति के क्षेत्र में अपने अनुभवो का उपयोग करेगी। विशेष रूप से इगलिस्तान इस बात के लिए तैयार था कि वह स्थानीय एव क्षेत्रीय समस्याओ को हल करने के लिए अणु-साधनो को लागू करने में बगदाद-सधि के देशो की सहायता करेगा। जनवरी, १९५६ में आर्थिक समिति ने एक प्रशिक्षण-केन्द्र इस उद्देश्य से स्थापित किया कि सदस्य-राष्ट्रो के वैज्ञानिक अणु-शक्ति के शातिपूर्ण-प्रयोगो का अध्ययन करे। इस प्रकार व्यावहारिक आर्थिक सहयोग की आधार-शिला रखदी गई तथा सदस्य देशो के विकास-सबधी सूचनाओ का आदान-प्रदान होने लगा जिससे सभी सदस्य राष्ट्र एक दूसरे के अनुभवो से लाभ उठा सकें।

बगदाद सधि परिषद् ने अपनी दूसरी मत्रियो की बैठक तेहरान में १६ से १९ अप्रैल तक रखी। इस बैठक के अध्यक्ष थे ईरान के प्रधान-मत्री, हुसैन-अल। परिषद् ने यह आशा व्यक्त की कि बगदाद-सधि "क्षेत्र की जनता के बीच एकता स्थापित करने का साधन है ऐसी जनता के बीच जो स्वतत्र तथा जनतात्रिक जीवन-प्रणाली में आस्था रखती है।" परिषद् ने तटस्थ राष्ट्रो द्वारा सधि के विरुद्ध किए जाने वाले 'आरोपो तथा आलोचनाओ' का 'तत्परता तथा दृढता' से उत्तर देने का निर्णय किया।

परिषद् का विचार था कि अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद के मूल मनसूबो में अभी कोई परिवर्तन नही हुआ। इस क्षेत्र में 'विध्वस' की आशका को रोकने के लिए परिषद् ने महासचिव के नियत्रणाधीन एक स्थायी सगठन स्थापित करने का निर्णय किया। परिषद् ने यह भी माना कि 'विध्वस के प्रतिवाद के लिए मूल आवश्यकता इस बात की है कि उन स्थितियो का ही मूलोच्छेदन कर दिया जाय जिनमें यह पनपता है—जैसे कि आर्थिक अल्प-विकास तथा दुर्बल प्रतिरक्षा-व्यवस्था।"

परिषद् के निमन्त्रण पर अमेरिका भी आर्थिक समिति तथा विध्वंस-विरोधी समिति का सक्रिय सदस्य बन गया। अमेरिका ने आश्वासन दिया कि वह सदस्य-राष्ट्रो के राजनीतिक, प्रतिरक्षा-सबधी तथा सामाजिक उद्देश्यो—जो सधि मे उल्लिखित है—को प्राप्त करने के सामूहिक अथवा एकाकी प्रयत्नो मे सहयोग देता रहेगा।

परिषद् ने आर्थिक समिति के प्रतिवेदन को अगीकार किया, जिसमें कृषि-यत्र के प्रयोग के लिए प्रशिक्षण केन्द्र, मलेरिया-निरोधक कार्यो के लिए सयुक्त प्रशिक्षण केन्द्रो तथा स्वास्थ्य-शिक्षा की स्थापना की व्यवस्था की गई। इसमे टिड्डी तथा महामारी पीडित क्षेत्र मे सयुक्त पर्यवेक्षण, विशेषज्ञो के आदान-प्रदान तथा वैज्ञानिक विषयो पर सूचना के आदान-प्रदान की भी व्यवस्था की गई। जनवरी १९५७ में बगदाद में अणु-शक्ति केन्द्र खुल जाने की सभावना की गयी है। अकारा में होने वाली प्राविधिक समिति की बैठक टिगरिस तथा यूफ्रेट्स-तराई के जल साधनो, ईरान के खनिज-साधनो तथा कैस्पियन प्रदेशो की लकडी के भडारो के सयुक्त विकास की सभावनाओ का अध्ययन करने को थी। बगदाद मे एक सैनिक-सबध-दल की स्थापना हुई। परिषद् की आगामी बैठक जनवरी, १९५७ मे कराची में होगी। इस बीच प्रतिनिधि-परिषद् प्रतिनिधि-स्तर पर ही नियमित रूप मे बैठके करती रही।

बगदाद-संधि का भविष्य—अभी से यह आकना समय से पूर्व होगा कि बगदाद-सधि का उद्देश्य सफल होगा या असफल। पर यह तो निश्चित ही है कि अरब-जगत की जिस एकता को अरब-सघ ने बढाया था उसमे इसने विशृखलता उत्पन्न कर दी है। मिस्र ने यह सोचा कि यह (बगदाद-सधि) उसके (मिस्र के) विरुद्ध कार्य करने को बना है तथा खुले रूप मे सधि का विरोध किया। मिस्र के राष्ट्र निर्देशन-मत्री, मेजर सलेम ने २६ जनवरी,१९५५ में दमिश्क मे घोषणा की कि, "तुर्की के साथ ईराक द्वारा सधि पर हस्ताक्षर करने के साथ ही अब अरब-सुरक्षा-सधि का कोई अस्तित्व नही रहता।" मिस्र की यही भावना सीरिया, लेबनान, साउदी अरब तथा जोर्डन के सधि में शामिल न होने के निर्णय मे प्रतिध्वनित होती है।

मिस्री प्रतिरक्षा-सधिया

इसलिए मिस्र ने एक नवीन अरब सैनिक, राजनीतिक तथा आर्थिक सधि का आह्वान किया है, जिसमें वे राष्ट्र सम्मिलित हो जो बगदाद-सधि में शामिल नही हुए। २० अक्तूबर १९५५ को दमिश्क में मिस्र तथा सीरिया ने एक नई अरब-प्रतिरक्षा-सधि के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर किये, जिसमे अन्य अरब-राष्ट्रो को शामिल होने का निमत्रण दिया गया। उसकी रूप-रेखा इन मुद्दो में प्रकट की गयी : (१) तुर्की

ईरानी तथा अन्य किसी सधि में शामिल न हुआ जाय, (२) सयुक्त सैनिक कमान के अतर्गत एक सगठन स्थापित किया जाय, (३) अरब-आर्थिक एकता के लिए एक सस्था स्थापित की जाय, (४) सदस्य-राष्ट्रो पर होने वाले किसी आक्रमण को रोकने में हाथ बटाने की प्रतिज्ञा, (५) सदस्यो द्वारा, बिना अन्य सदस्यों की सम्मति के, कोई अतर्राष्ट्रीय, सैनिक अथवा राजनीतिक समझौता न करने की प्रतिज्ञा, (६) यह पाँच वर्ष तक चालू रहेगा। मिस्र के प्रधान-सेनापति जनरल अब्दल हाकिम अमीर सीरिया-मिस्र के सर्वोच्च सेनापति नियुक्ति किये गये। ब्रिटेन द्वारा जोर्डन पर बगदाद सधि में शामिल होने के लिए जोर डालने के कारण वहाँ जो बडे पैमाने पर झगडे हुए तथा जिसके परिणाम स्वरूप जनरल ग्लब पाशा को बर्खास्त कर दिया गया, जो ब्रिटिश राष्ट्रीय और जोर्डानी सेना का प्रधान सेनापति था—इन सब के पश्चात २७ दिसबर, १९५५ को जोर्डन के विदेश-मत्री सामिरी रिफटी ने घोषणा की कि "जोर्डन का सधि में शामिल होना एक वर्ष के लिए नही, वर्षो के लिए स्थगित हो गया है।" २५ अप्रैल, १९५६ को दोनो देशो की सेनाओ को एक सूत्र में सगठित करने तथा उन्हे नियामकता प्रदान करने के लिए मिस्र तथा जोर्डन ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। २१ अप्रैल, १९५६ में मिस्र, साऊदी अरब, तथा यमन ने एक अन्य प्रतिरक्षा-सधि पर हस्ताक्षर किये, जिसमें यह व्यवस्थाए रखी गई (१) किसी भी सदस्य-राष्ट्र पर किया गया सशस्त्र आक्रमण तीनो राष्ट्रो पर भी हुआ माना जायगा, (२) तीनो राष्ट्रो के विदेश तथा प्रतिरक्षा मत्रियो से बनी एक सर्वोच्च परिषद को यह अधिकार दिया गया कि वह सयुक्त कमान को निर्देश दे, (३) सयुक्त कमान में एक प्रधान-सेनापति होगा, जो प्रतिरक्षा-आयोजनो के प्रशिक्षण, सगठन तथा अपनी कमान के अन्तर्गत सेनाओ को सवारने आदि की व्यवस्थाओ को लागू करेगा, (४) तीनो सेनाओ के प्रधान सेनापतियो की सैन्य परिषद् सर्वोच्च परिषद् को सलाह देगी, (५) सदस्य-राष्ट्र सैन्य परिषद् के अन्तर्गत अपनी सेनायें रखेंगे, तथा वित्तीय सहायता भी प्रदान करेंगे, (६) किसी आक्रमणकारी के साथ कोई भी सदस्य राष्ट्र अलग से शाति समझौता नही करेगा, (७) सधि का काल पांच वर्ष तक रहेगा तथा कोई भी सदस्य सधि से पृथक हो सकता है, अगर वह एक वर्ष की अग्रिम सूचना दे देता है।

जब ३१ अक्तूबर, १९५६ को स्वेज पर आग्ल-फ्रासीसी आक्रमण हुआ तो बगदाद-सधि में ईराक की सदस्यता का वहां की जनता ने तीव्र विरोध किया। ७ नवम्बर, १९५६ को बगदाद-सधि के मुस्लिम देशो के प्रतिनिधियो (ईरान, ईराक, पाकिस्तान, तुर्की) की एक आपातकालीन बैठक तेहरान में हुई। यह बैठक इसलिए हुई थी कि ब्रिटेन पर मिस्र के विरुद्ध युद्ध बद करने को जोर डाला जाय। मिस्र ने घोषणा की कि युद्ध-बदी सधि के सदस्यो की इच्छाओ के कारण हुई है। जनवरी

१९५७ (१९ से २२ तक) इन सदस्यों की अकारा में फिर एक बैठक अमेरिका से यह प्रार्थना करने के लिए कि वह संधि का पूर्ण सदस्य हो जाय तथा प्रे०आइजनहावर की मध्य-पूर्व-योजना पर विचार करने के लिए हुई।

रूस ने बगदाद-संधि की भर्त्सना केवल 'आक्रमक सैनिक तथा राजनीतिक गटबंधन' के ही रूप में नहीं की अपितु 'गुलाम बनाने के साधनों में से एक साधन तथा उपनिवेशवाद जैसे ही एक नए प्रकार के शोषण-साधन' के रूप में की। १० नवम्बर, १९५६ को प्रधान-मन्त्री श्री नेहरू ने कलकत्ता में कहा था, "बगदाद-संधि के एक महत्वपूर्ण सदस्य ब्रिटेन द्वारा मिस्र पर आक्रमण से, बगदाद-संधि समाप्त हो जायगी, यह कल्पना सहज ही की जा सकती है।"

दक्षिण तथा पूर्व एशिया प्रतिरक्षा-सुरक्षा-संधियां

प्रशांतसागरीय संधियाँ—प्रशांत महासागरीय संधियों की सम्मति सर्व प्रथम फिलीपीन के राष्ट्रपति एलपीडियो क्वाइरिनो ने अगस्त, १९४९ में दी "आज फिलीपीन तथा अन्य एशियाई राष्ट्रों के समक्ष सर्वाधिक आवश्यक समस्या सुरक्षा की समस्या है··· अब जब उत्तर अतलांतक संधि पूरी शक्ति पर क्रियाशील है, तब कोई भी व्यक्ति जो इस बात को अनुभव करता है कि एशिया को किस हद तक खतरे का सामना करना है, चैन से बैठना गवारा नहीं कर सकता। अनगिनत साधन-सपन्न तथा अपनी इतनी बड़ी जनसंख्या होते हुए एशिया को गलती से साम्यवाद के चंगुल में नहीं फसने दिया जा सकता और नाही फसने दिया जाना चाहिए।" यह साम्यवाद के बढ़ते हुए खतरे का सामना करने के लिए एक संयुक्त मोर्चा प्रस्तुत करने तथा अमेरिका, इंगलिस्तान तथा फ्रांस के सहयोग से एक संयुक्त प्रतिरक्षा संगठन स्थापित करने का प्रयास था। फारमूसा (राष्ट्रवादी चीन) के मार्शल च्यांग-काई शेक तथा दक्षिण कोरिया के सिंगमनरी ने क्रमशः अपने-अपने स्वार्थ के कारण इस विचार को दोहराया तथा उत्साहपूर्वक समर्थन किया। जापान, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड ने भी किसी प्रकार के प्रशांत महासागरीय प्रतिरक्षा संगठन का समर्थन किया। जुलाई, १९५० में संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रतिनिधि-सभा (हाउस आफ रिप्रेजेंटेटिव)—अमेरीकी कांग्रेस के आम सदन—की विदेश मामलों की समिति ने उत्तर अतलांतक संधि की तरह प्रशांत महासागरीय प्रदेश के लिए पारस्परिक प्रतिरक्षा संधि—जिसमें अमेरिका भी भाग लेगा—के प्रस्ताव पर सव-सम्मति से स्वीकृति की मुहर लगा दी।

पूर्वी एशिया : आस्ट्रेलिया-न्यूजीलैंड-अमेरिका (ANZUS)

१ सितम्बर, १९५१ को आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड तथा संयुक्त राज्य अमेरिका (ANZUS) ने अनिश्चितकाल के लिए प्रशांत महासागरीय सुरक्षा-संधि पर हस्ताक्षर किये। तीनों राष्ट्रों ने घोषणा की कि "किसी सदस्य-राष्ट्र पर प्रशांत महासागरीय

क्षेत्र मे कोई सशस्त्र आक्रमण हुआ तो वह सभी सदस्यो पर आक्रमण हुआ समझा जायेगा। इस आक्रमण मे उनके केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रो (Metropolitan territories), प्रशात महासागरीय क्षेत्र में उनके अधिकार-क्षेत्र में आने वाले द्वीपो, अथवा उनकी सशस्त्र सेना, जल-पोतो तथा हवाई जहाजो पर हुए आक्रमण भी शामिल हैं।" ऐसी स्थिति मे हरेक सदस्य-राष्ट्रो को 'समान खतरे का मुकाबला' अपने-अपने सविधानिक कार्यविधि के अनुसार करना होगा। इस सधि में एक परिषद् है, जिसके सदस्य सधि मे सम्मिलित राष्ट्रो के विदेश-मत्री अथवा उनके प्रतिनिधि हैं। इस परिषद् की वार्षिक बैठक प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र में अतर्राष्ट्रीय स्थिति कैसी रही, इसका पर्यालोचन करने के लिए होती है। आपातकालीन स्थिति में सयुक्त कार्यवाही के लिए सैनिक योजनाओ को नियामक बनाने के लिए प्रधान-सेनापतियो की एक सयुक्त कमान स्थापित की गई है। इसी प्रकार, अमेरिका ने मित्रता, गठबधन तथा पारस्परिक प्रतिरक्षा की सधियाँ फिलीपीन तथा जापान से १९५१ में तथा दक्षिण कोरिया और फारमूसा से १९५३ की।

दक्षिण-पूर्व-एशिया

जनवरी १९४९ में हिन्देशिया में हुए एशियाई सम्मेलन में १९ राष्ट्रो के प्रतिनिधियो ने "अपने-अपने क्षेत्रो मे क्षेत्रीय व्यवस्थाओं" की सभावनाओ को ढूँढ निकालने के लिए एक प्रस्ताव सर्व-सम्मति से अगीकार किया तथा इस प्रकार की योजना को कार्यान्वित करने के लिए यथेष्ठ ढाँचा स्थापित किया। लेकिन यह अत्यन्त अनिश्चित प्रकार का था तथा भारत ने एक बधनहीन क्षेत्रीय सस्था का समर्थन किया, जो सयुक्तराष्ट्र अधिपत्र के अधिकार-क्षेत्र तथा भावना के अन्दर-अन्दर हो और जिसका उद्देश्य पारम्परिक सलाह-मशविरा एव सहयोग तक ही सीमित हो, वह कोई बन्धनीय समझौता न हो।

मई १९५० को फिलीपीन के राष्ट्रपति क्वाइरिनो ने बेग्यू में एशियाई राष्ट्रो को एक मत बनाने के लिए आमत्रित किया। बेग्यू सम्मेलन के परिणाम निराशा-जनक रहे। एकत्रित प्रतिनिधियो में से केवल सात देशो के प्रतिनिधि आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक कार्यक्रम में क्षेत्रीय सहयोग के लिए सहमत हुए। ये देश थे—आस्ट्रेलिया, भारत, लका, पाकिस्तान, हिंदेशिया, फिलीपीन तथा थाइलैंड। लेकिन लका तथा हिन्देशिया के जोर देने से राजनीतिक मामले में किसी प्रकार की घोषणा नहीं की गई। सम्मेलन ने फिलीपीन के एक स्थाई क्षेत्रीय सगठन के प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

दक्षिण-पूर्व-एशिया प्रतिरक्षा-सगठन (SEADO)

पृष्ठभूमि—द्वितीय महायुद्ध में जब जापान ने हिंदचीन, बर्मा, मलाया, हिन्दे-

शिया तथा फिलीपीन को विजित कर लिया तब इगलिस्तान तथा अमेरिका के नेतृत्व में मित्र राष्ट्रो ने इस आशा से एक दक्षिण-पूर्व-एशिया कमान की स्थापना की कि वे उस समय तक भी उनके अधीनस्थ क्षेत्र के दूरस्थ भागों की रक्षा कर सकें। अपना मुख्य कार्यालय लका में बनाकर इस कमान ने वर्मा की स्वतन्त्रता का सचालन एव निर्देशन किया तथा १९४५ में जापान के पराभव के पश्चात् उपर्युक्त समस्त देशो पर पुन कब्जा कर लिया।

जैसा हम पहले ही देख चुके हैं कि इस क्षेत्र के लिए किसी भी प्रकार के सुरक्षा-सगठन के सुझाव फिलीपीन, दक्षिण कोरिया तथा फारमूसा जैसे देशो से आए। इन सम्मतियो का कोई भी परिणाम नही हुआ कि इतने में फ्रास ने, हिंदचीन में निरतर होने वाले युद्ध के कारण, १९५० में सिगापुर में इगलिस्तान, फ्रास तथा अमेरिका की सुदूरपूर्व की सैनिक कमानो के सम्मेलन का सयोजन किया। अगले वर्ष एक दूसरा सम्मेलन वाशिगटन में हुआ, जिसमे सिगापुर सम्मेलन में भाग लेने वाले राष्ट्रो के अतिरिक्त आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड तथा कनाडा ने भी भाग लिया। इन राष्ट्रो ने दक्षिण-पूर्व एशिया में साम्यवाद के विस्तार को रोकने के तौर-तरीको पर चर्चा की। इन वार्ताओ से कोई भी परिणाम नही निकला।

१९५३ में इंगलिस्तान के तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री चर्चिल ने राष्ट्रपति आइजनहावर के समक्ष एक सुझाव रखा कि नाटो (NATO) की ही तरह का एक क्षेत्रीय प्रतिरक्षा-सगठन दक्षिण पूर्व-एशिया में प्रस्थापित किया जाना चाहिये। इसका उद्देश्य था अतर्राष्ट्रीय साम्यवाद के खतरे से इस क्षेत्र की रक्षा करने के लिए प्रशात-महासागरीय संधि जिसे एनजुस (ANZUS) कहते हैं, को विस्तार देना, जिस में इगलिस्तान शामिल नहीं किया गया था। इस प्रकार के सगठन के लिए उपयुक्त समय नही था, क्योंकि कोलम्बो-राष्ट्र इसके निर्माण के विरोधी थे। उनकी दृष्टि से एशिया में आग्ल-फ्रासीसी उपनिवेशवादी हितो की रक्षा करने तथा उनको बनाए रखने का यह एक साधन था।

१९५४ में स्थिति तोभी कुछ बदली। पीकिंग-सरकार (साम्यवादी चीन) के प्रति अमेरिका की शत्रुता बढने से तथा वियतनाम में फ्रास की स्थिति के शीघ्र परिवर्तन के कारण अमेरिकी नीति में परिवर्तन आया। अप्रैल में अमेरिका के विदेश-मत्री जॉन फास्टर डलेस दक्षिण-पूर्व एशिया के लिए एक सामूहिक-प्रतिरक्षा-सधि की स्थापना की संभावना पर चर्चा करने लदन गए। डलेस कोलम्बो शक्तियो की उपेक्षा करना चाहते थे, जबकि तत्कालीन इगलिस्तानी विदेश मन्त्री एन्थनी ईडन उन्हे (कोलम्बो शक्तियो को) सधि में शामिल करने पर दृढ थे, क्योंकि "बिना उनके (कोलम्बो-शक्तियों के) समर्थन-बूझ तथा समर्थन के दक्षिण-पूर्व-एशिया में कोई भी स्थायी सगठन पूर्णरूपेण प्रभावशाली नहीं हो सकता।"

जिनेवा-समझौते के छ सप्ताह पश्चात हिंदचीन की समस्या (अलग अध्याय में देखें) पर विचार करने के लिए वेग्यू (फिलीपीन) में ६ सितम्बर १९५४ को एक सम्मेलन बुलाया गया। अमेरिकी विदेशमन्त्री डलेस एक ऐसी सीमा निर्धारित कर देना चाहते थे, जिसके आगे हिन्दचीन में युद्ध-विराम के पश्चात, साम्यवादियो की प्रगति को प्रभावपूर्ण ढग से रोका जा सके। सर एन्थनी ईडन ने एक क्षेत्रीय सुरक्षा-सगठन पर विचार करने के लिए तमाम कोलम्बो शक्तियो को निमन्त्रण दिया। जैसाकि पूर्वापेक्षित था, पाकिस्तान को छोडकर तमाम कोलम्बो-शक्तियो ने इन्कार कर दिया। भारत का कहना था कि दक्षिण-पूर्व एशिया सगठन की स्थापना के पूर्व चीन (साम्यवादी) को, हिन्दचीन के समझौते में अपनी सद्-इच्छा प्रमाणित करने का अवसर दिया जाना चाहिए। बर्मा, लका तथा हिन्देशिया भी इसी दृष्टिकोण से सहमत थे। काश्मीर के प्रश्न पर भारत के विरुद्ध द्वेष के कारण तथा अपनी साधारण भ्रान्त भावना के कारण पाकिस्तान ने आमन्त्रण स्वीकार कर लिया। केवल साम्य-वादी आक्रमण के ही नही, किसी भी शक्ति के आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा की गारटी प्राप्त करने की पाकिस्तान की उत्कट चाह थी।

दक्षिण-पूर्व-एशिया-प्रतिरक्षा-सङ्गठन-सन्धि—सीडो-सन्धि (SEADO Treaty) (८ सितम्बर १९५४)

आठ राष्ट्रो अमेरिका, फ्रास, इगलिस्तान, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, पाकिस्तान, श्याम तथा फिलीपीन के दक्षिण-पूर्व-एशिया प्रतिरक्षा-सगठन-सम्मेलन का परिणाम यह हुआ कि छोटे-मोटे परिवर्तनो के बाद अमेरिकी मसौदा स्वीकार कर लिया गया। फिलीपीन की राजधानी मनीला में ८ सितम्बर १९५४ को सधि पर हस्ताक्षर हो गये।

अपने अन्तिम स्वरूप में, दक्षिण-पूर्व-एशिया के अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रो द्वारा उसे स्वीकार करने की व्यवस्था की गई (अनुच्छेद ७)। सधि पर हस्ताक्षर करने वाले देशो ने प्राक्कथन में जो शर्ते स्वीकार की वे इस प्रकार हैं—(क) तमाम सदस्य राष्ट्रो की समान प्रभु-सत्ता को मान्यता दी, (ख) सयुक्तराष्ट्र सघ अधिपत्र के अनुसार आचरण करने की घोषणा की, (ग) जनता के आत्म-निर्णय के सिद्धात को समर्थन देने की इच्छा प्रकट की, (घ) वे प्रत्येक शातिपूर्ण साधन द्वारा, उन देशो को स्वायत्त शासन तथा स्वाधीनता प्राप्त कराने का 'प्रमाणिक प्रयास' करेंगे, जिन देशो के लोग उसके इच्छुक हैं तथा इसके उत्तरदायित्वो को निबाहने योग्य हैं।

वे सब इस पर सहमत हो गये कि उन अन्तर्राष्ट्रीय विवादो को, जिनमें वे '(सीटो' के सदस्य-राष्ट्र) शामिल हो, 'शातिपूर्ण ढग' से हल किया जाय तथा 'शक्ति-प्रयोग या उसकी धमकी से काम न लिया जाय (अनुच्छेद १)।' उन्होंने

संयुक्त रूप से और पृथक रूप से यह भी तय किया कि अनवरत तथा प्रभावपूर्ण आत्म-सहायता तथा पारस्परिक सहयोग के द्वारा अपनी पृथक्-पृथक् तथा सामूहिक सुरक्षा को बनाए रखा जाय तथा उसका विकास किया जाय, सशस्त्र आक्रमण का प्रतिरोध किया जाय तथा उनकी क्षेत्रीय अखण्डता तथा राजनीतिक स्थायित्व के विरुद्ध बाहर से होने वाले विध्वंसक कार्यों को रोका जाय तथा उनका विरोध किया जाय (अनुच्छेद २)। यह उपलब्ध करने के लिए अपनी स्वतन्त्र संस्थाओं को सुदृढ करने की प्रतिज्ञा सभी सम्बन्धित देशों ने की। उन्होंने इस बात का भी वचन लिया कि वे आर्थिक साधनों के विकास में पारस्परिक सहयोग करेंगे। इसमें प्राविधिक सहायता भी शामिल है, जिसके दो लक्ष्य होंगे—आर्थिक उन्नति तथा सामाजिक कल्याण-कार्य को आगे बढाना तथा इन लक्ष्यों की ओर सदस्य-राष्ट्रों की सरकारों के सामूहिक तथा पृथक्-पृथक् प्रयासों को बढावा दिया जाना" (अनुच्छेद ३)।

संधि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अनुच्छेद है चौथा अनुच्छेद, जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि आक्रमण की स्थिति में किस कार्य-विधि को अपनाया जायगा। अगर संधि में शामिल किसी भी सदस्य-राष्ट्र पर सशस्त्र आक्रमण होता है, तो ऐसी स्थिति में हरेक सदस्य 'अपनी-अपनी वैधानिक प्रक्रियाओं के अनुसार' समान खतरे का मुकाबला करने के लिए कार्यवाही करेगा। यदि संधि-क्षेत्र के किसी सदस्य-राष्ट्र की प्रभु-सत्ता या राजनीतिक स्वतन्त्रता पर "सशस्त्र आक्रमण के अलावा अन्य किसी प्रकार से आँच आती है अथवा किसी ऐसे तथ्य या स्थिति से, जो इस क्षेत्र की शांति के लिए खतरा बन सकता है किसी सदस्य राष्ट्र की प्रभुसत्ता या राजनीतिक स्वतन्त्रता पर प्रभाव पडता हो या किसी प्रकार का खतरा उत्पन्न हो सकता हो", तो सभी सदस्य-राष्ट्र, समान प्रतिरक्षा के लिए कौन-से पग उठाए जाय, इस पर सहमत होने के लिए शीघ्र ही एक-दूसरे से सलाह-मशविरा करेंगे।" लेकिन किसी भी सदस्य राष्ट्र के सीमा-क्षेत्र में कोई भी कार्यवाही नही की जा सकती, "सिवाय उस स्थिति में जब सम्बन्धित सरकार की राय हो अथवा उसने इसके लिए आमन्त्रण दिया हो।" (अनुच्छेद ४)

इस संधि को लागू करने के लिए अनुच्छेद ५ के द्वारा एक परिषद् की स्थापना की गई, जिसमें हरेक सदस्य-राष्ट्र का प्रतिनिधि होगा। इस परिषद् का काम होगा कि वह किसी भी समय 'सैनिक तथा किसी दूसरी योजना के लिए सलाह दे'। हरेक सदस्य ने यह घोषणा की कि वे ऐसी किसी संधि में शामिल नही होंगे, न ही किसी ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय समझौते को अपनायेंगे जो इस संधि से मेल न खाते हों; तथा किसी भी दूसरी संधि का, जो सदस्य-राष्ट्रों में अथवा एक सदस्य-राष्ट्र और किसी तीसरे देश (जो संधि में शामिल नहीं है) में विद्यमान है, इस संधि (सीटो) से टकराव नहीं है। (अनुच्छेद ६)।

अनुच्छेद ८ में दक्षिण-पूर्व-एशिया का आमक्षेत्र "सधि का क्षेत्र" माना गया है, जिसमें सधि के एशियाई देशो के सीमा-क्षेत्र शामिल हैं, लेकिन जिसमें २१ डिगरी ३० मिनट उत्तरी अक्षाश का उत्तर-प्रशात महासागरीय-क्षेत्र सम्मिलित नही है। नए क्षेत्र को सधि-क्षेत्र मे शामिल करने के लिए सभी देशों के सर्व-सम्मत समझौते द्वारा इस अनुच्छेद मे सशोधन किया जा सकता है। यह सधि अनिश्चितकाल तक कार्य करेगी, लेकिन फिलीपीन को एक वर्ष की अधिसूचना (नोटिस) देने के पश्चात्, कोई भी सदस्य सधि की सदस्यता से पृथक् हो सकता है (अनुच्छेद १०)।

अमेरिका ने यह स्पष्ट कर दिया कि इसके कार्य केवल 'साम्यवादी आक्रमण' के विरुद्ध होगे, लेकिन साथ ही यह भी कहा कि अन्य किसी प्रकार के आक्रमण या सशस्त्र आक्रमण की स्थिति में यह (अमेरिका) दूसरे पक्षो से सलाह-मशविरा करेगा।

एक मसविदे द्वारा कम्बोडिया, लाओस तथा दक्षिणी वीतनाम को ऐसा क्षेत्र माना गया है जिनमें यह सधि बचाव के तौर पर भी लागू होगी तथा आर्थिक सहयोगो के लिए भी।

सीडो (दक्षिणी-पूर्व-एशिया-प्रतिरक्षा सगठन) की प्रवृत्तियाँ

दक्षिण-पूर्व एशिया-प्रतिरक्षा-सगठन में सम्मिलित आठ राष्ट्रो के परराष्ट्र-मत्रियो का प्रथम सम्मेलन बैकाक में प्रारम्भ हुआ।[1] यह सम्मेलन २३ फरवरी से २५ फरवरी, १९५५ तक रहा।

यह सधि, इसकी अभिपुष्टि के पश्चात् १९ फरवरी, १९५५ से लागू हुई। परिषद् के सदस्यो ने अपना यह सकल्प प्रकट किया कि, "हमारे सयुक्त प्रयास क्षेत्र की शाति एव सुरक्षा में वस्तुत सहायक हो रहे हैं, इतना ही नही, क्षेत्र के दूसरे 'स्वतंत्र राष्ट्रों' के लिए भी हमारे ऐसे ही प्रयास हैं।" परिषद् ने पुन दोहराया कि इसका उद्देश्य विशुद्ध 'प्रतिरक्षात्मक' है तथा 'इसका प्रयोग कभी भी आक्रमक उद्देश्यो के लिए नही होगा।' इसने प्रशात महासागरीय सधि-अधिपत्र के प्रति अपनी आस्था की पुनर्पुष्टि की। यही नही परिषद् ने (अ) जनता के आत्म-निर्णय तथा समान अधिकारो तथा (ब) दूसरे राष्ट्रो के घरेलू मामलो में हस्तक्षेप न करने के सिद्धान्तो के प्रति अपने विश्वास को भी दोहराया, तथा स्वतन्त्रतापूर्वक निर्मित सरकारो के अधि-

[1] जिन परराष्ट्र-मत्रियो ने इस सम्मेलन में भाग लिया उनके नाम हैं सर एथनी ईडन (इगलिस्तान), जान फास्टर डलेस (अमेरिका), आर० जी० केसी (आस्ट्रेलिया), सर वाननन्द (न्यूजीलैंड), गैरिया (फिलीपीन्स), राजकुमार वान वैथयाकन (थाईलैंड), मुहम्मद अली (प्रधान मंत्री, पाकिस्तान), एम० ब्रुनेट (वाशिगटन में पूर्व फ्रांसीसी राजदूत)।

कार को दृढ करने की आवश्यकता पर बल दिया। इसीलिये इसने केवल "लड़ाकू कार्यवाही की ही निन्दा नही की अपितु आक्रमण के उन विलक्षण ढगो की भी की, जिनके द्वारा स्वायत्त शासन तथा स्वातंत्र्य के महत्त्व को कम कर दिया जाता है तथा लोगो के मस्तिष्को को अवनत कर दिया जाता है।" "अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद की विध्वंसक प्रवृत्तियो से लोहा लेने के लिए," सभी सदस्य एक दूसरे की सहायता देने को सहमत हो गए।

यह निर्णय हुआ कि सदस्य-सरकारो द्वारा पदासीन अर्थशास्त्रियो को निश्चित् समय के उपरान्त विशेष आर्थिक प्रश्नो पर चर्चा करने के लिए एकत्रित होना चाहिए। व्यापार, विनियोजन, अन्तर्राष्ट्रीय अदायगियाँ तथा ठोस आर्थिक प्रगति, आदि, विशेष आर्थिक प्रश्नो के उदाहरण हैं तथा इसी में प्राविधिक सहायता भी सम्मिलित है। वे इस प्रकार के उपायो पर परिषद् को सलाह देगे।

परिषद् ने सदस्य-सरकारो के इस निश्चय को दोहराया कि वे कम्बोडिया, लाओस तथा दक्षिण वीतनाम की, अपनी-अपनी स्वतत्रता एव स्वावलम्बन को बनाये रखने के लिए मदद करेगे। परिषद् ने यह निश्चय किया कि सदस्य-सरकारो का प्रतिनिधित्व या तो उन देशो के परराष्ट्र-मन्त्रियो को करना चाहिए अथवा उनके द्वारा नियुक्त प्रतिनिधियो को करना चाहिए, तथा परिषद् की बैठक वर्ष में कम-से-कम एक बार अवश्य ही होनी चाहिए। यह बैठक प्रायः सधि-क्षेत्र में ही होनी चाहिए तथा निर्णय सर्व-सम्मत होने चाहिएं। जब अधिवेशन न हो रहा हो, उस समय भी घनिष्ठ तथा अनवरत सहयोग बना रहे। एतदर्थ परिषद् प्रतिनिधियो को पदासीन करेगी, जिनका कार्यालय बैकाक में रहेगा। वे ऐसा विशिष्ट कार्य करेगे, जिसका निदेशन समय-समय पर परिषद् करे। ये प्रतिनिधि सम्मत सिफारिशो को परिषद् या सदस्य-सरकारो के लिए उपस्थित कर सकेंगे। वे सूचना के विनिमय तथा आयोजना की घनिष्ठ नियामकता को सुनिश्चित करेंगे तथा उनकी सहायता करने के लिए एक सचिवालय की व्यवस्था करेंगे। उनके प्राथमिक कार्यो में से एक कार्य होगा विध्वंस तथा उपद्रव का मुकाबिला करने के लिए सहयोग को सुदृढ करने के साधनो पर विचार करना। विभिन्न सदस्य-राष्ट्रो के बीच सास्कृतिक तथा प्राविधिक सहयोग में वृद्धि करने की सभावनाओ के बारे में भी वे पता लगाएंगे। सभी सदस्य इस बात पर भी सहमत हो गए कि परिषद् मे अपने-अपने प्रतिनिधि के साथ वे अपना-अपना सैनिक सलाहकार भी रखेंगे, जिससे समय-समय पर होने वाली बैठकों द्वारा सैन्य-सहयोग सुनिश्चित कर सकें। अप्रैल, १९५५ में सधि के सैन्य-सम्बन्धी-पहलुओ को लागू करने के लिए सैनिक सलाहकारो की बैठक हुई।

परिषद् की द्वितीय बैठक मार्च ६ से मार्च ८, १९५६ तक कराची में हुई, जिसका

अनुच्छेद ८ में दक्षिण-पूर्व-एशिया का आमक्षेत्र "सधि का क्षेत्र" माना गया है, जिसमें सधि के एशियाई देशो के सीमा-क्षेत्र शामिल हैं, लेकिन जिसमें २१ डिगरी ३० मिनट उत्तरी अक्षाश का उत्तर-प्रशात महासागरीय-क्षेत्र सम्मिलित नही है। नए क्षेत्र को सधि-क्षेत्र मे शामिल करने के लिए सभी देशो के सर्व-सम्मत समझौते द्वारा इस अनुच्छेद मे सशोधन किया जा सकता है। यह सधि अनिश्चितकाल तक कार्य करेगी, लेकिन फिलीपीन को एक वर्ष की असूचना (नोटिस) देने के पश्चात्, कोई भी सदस्य सधि की सदस्यता से पृथक् हो सकता है (अनुच्छेद १०)।

अमेरिका ने यह स्पष्ट कर दिया कि इसके कार्य केवल 'साम्यवादी आक्रमण' के विरुद्ध होगे, लेकिन साथ ही यह भी कहा कि अन्य किसी प्रकार के आक्रमण या सशस्त्र आक्रमण की स्थिति में यह (अमेरिका) दूसरे पक्षो से सलाह-मशविरा करेगा।

एक मसविदे द्वारा कम्बोडिया, लाओस तथा दक्षिणी वीतनाम को ऐसा क्षेत्र माना गया है जिनमें यह सधि बचाव के तौर पर भी लागू होगी तथा आर्थिक सहयोगो के लिए भी।

सीडो (दक्षिणी-पूर्व-एशिया-प्रतिरक्षा सगठन) की प्रवृत्तियाँ

दक्षिण-पूर्व एशिया-प्रतिरक्षा-सगठन में सम्मिलित आठ राष्ट्रो के परराष्ट्र-मन्त्रियो का प्रथम सम्मेलन बैंकाक में प्रारम्भ हुआ।[1] यह सम्मेलन २३ फरवरी से २५ फरवरी, १९५५ तक रहा।

यह सधि, इसकी अभिपुष्टि के पश्चात् १९ फरवरी, १९५५ से लागू हुई। परिषद् के सदस्यों ने अपना यह सकल्प प्रकट किया कि, "हमारे सयुक्त प्रयास क्षेत्र की शाति एव सुरक्षा में वस्तुत सहायक हो रहे हैं, इतना ही नही, क्षेत्र के दूसरे 'स्वतत्र राष्ट्रो' के लिए भी हमारे ऐसे ही प्रयास हैं।" परिषद् ने पुन दोहराया कि इसका उद्देश्य विशुद्ध 'प्रतिरक्षात्मक' है तथा 'इसका प्रयोग कभी भी आक्रमक उद्देश्यो के लिए नही होगा।' इसने प्रशात महासागरीय सधि-अधिपत्र के प्रति अपनी आस्था की पुनर्पुष्टि की। यही नही परिषद् ने (अ) जनता के आत्म-निर्णय तथा समान अधिकारो तथा (ब) दूसरे राष्ट्रो के घरेलू मामलो में हस्तक्षेप न करने के सिद्धान्तो के प्रति अपने विश्वास को भी दोहराया, तथा स्वतन्त्रतापूर्वक निर्मित सरकारो के अधि-

[1] जिन परराष्ट्र-मन्त्रियो ने इस सम्मेलन में भाग लिया उनके नाम हैं सर एथनी ईडन (इगलिस्तान), जान फास्टर डलेस (अमेरिका), आर० जी० केसी (आस्ट्रेलिया), मैकडानल्ड (न्यूजीलैंड), गैरिया (फिलीपीन्स), राजकुमार वान वैथयाकन (थाईलैंड), मुहम्मद अली (प्रधान मंत्री, पाकिस्तान), एम० ब्रुनेट (वाशिगटन में पूर्व फ्रांसीसी राजदूत)।

कार को दृढ करने की आवश्यकता पर बल दिया । इसीलिये इसने केवल "लडाकू कार्य-वाही की ही निन्दा नही की अपितु आक्रमण के उन विलक्षण ढगो की भी की, जिनके द्वारा स्वायत्त शासन तथा स्वातत्र्य के महत्त्व को कम कर दिया जाता है तथा लोगो के मस्तिष्कों को अवनत कर दिया जाता है ।" "अन्तर्राष्ट्रीय साम्य-वाद की विध्वसक प्रवृत्तियो से लोहा लेने के लिए," सभी सदस्य एक दूसरे को सहा-यता देने को सहमत हो गए ।

यह निर्णय हुआ कि सदस्य-सरकारो द्वारा पदासीन अर्थशास्त्रियो को निश्चित् समय के उपरान्त विशेष आर्थिक प्रश्नो पर चर्चा करने के लिए एकत्रित होना चाहिए । व्यापार, विनियोजन, अन्तर्राष्ट्रीय अदायगियाँ तथा ठोस आर्थिक प्रगति, आदि, विशेष आर्थिक प्रश्नो के उदाहरण हैं तथा इसी में प्राविधिक सहायता भी सम्मिलित है । वे इस प्रकार के उपायो पर परिषद् को सलाह देगे ।

परिषद् ने सदस्य-सरकारो के इस निश्चय को दोहराया कि वे कम्बोडिया, लाओस तथा दक्षिण वीतनाम की, अपनी-अपनी स्वतत्रता एव स्वावलम्बन को बनाये रखने के लिए मदद करेंगे। परिषद् ने यह निश्चय किया कि सदस्य-सरकारो का प्रतिनिधित्व या तो उन देशो के परराष्ट्र-मत्रियो को करना चाहिए अथवा उनके द्वारा नियुक्त प्रतिनिधियों को करना चाहिए , तथा परिषद् की बैठक वर्ष में कम-से-कम एक बार अवश्य ही होनी चाहिए। यह बैठक प्राय: सधि-क्षेत्र में ही होनी चाहिए तथा निर्णय सर्व-सम्मत होने चाहिएँ। जब अधिवेशन न हो रहा हो, उस समय भी घनिष्ठ तथा अनवरत सहयोग बना रहे । एतदर्थ परिषद् प्रतिनिधियो को पदासीन करेगी, जिनका कार्यालय बैंकाक में रहेगा । वे ऐसा विशिष्ट कार्य करे गे, जिसका निदेशन समय-समय पर परिषद् करे । ये प्रतिनिधि सम्मत सिफारिशो को परिषद् या सदस्य-सरकारो के लिए उपस्थित कर सकेंगे । वे सूचना के विनिमय तथा आयोजना की घनिष्ठ नियामकता को सुनिश्चित करेंगे तथा उनकी सहायता करने के लिए एक सचिवालय की व्यवस्था करेंगे । उनके प्राथमिक कार्यों में से एक कार्य होगा विध्वस तथा उपद्रव का मुकाबिला करने के लिए सहयोग को सुदृढ करने के साधनो पर विचार करना । विभिन्न सदस्य-राष्ट्रो के बीच सास्कृतिक तथा प्राविधिक सहयोग मे वृद्धि करने की सभावनाओ के बारे में भी वे पता लगाएँगे। सभी सदस्य इस बात पर भी सहमत हो गए कि परिषद् में अपने-अपने प्रतिनिधि के साथ वे अपना-अपना सैनिक सलाहकार भी रखेंगे, जिससे समय-समय पर होने वाली बैठकों द्वारा सैन्य-सहयोग सुनिश्चित कर सकें। अप्रैल, १९५५ में सधि के सैन्य-सम्बन्धी-पहलुओ को लागू करने के लिए सैनिक सलाहकारो की बैठक हुई ।

परिषद् की द्वितीय बैठक मार्च ६ से मार्च ८, १९५६ तक कराची में हुई, जिसका

अध्यक्षता पाकिस्तान के परराष्ट्र मन्त्री हमीदुल हक चौधरी ने की। परिषद् ने आक्रमण के विरुद्ध शक्तिशाली अवरोधकों को उत्पन्न करने तथा उनको स्थायी बनाए रखने की आवश्यकता को माना। राष्ट्रमंडल के अन्दर मलाया की स्वाधीनता तथा उसके लिए पूर्ण स्वायत्त-शासन स्थापित करने की दिशा में जो पग उठाए गए, उनके प्रतिवेदनों का उन्होंने स्वागत किया। कम्बोडिया, लाओस तथा वीतनाम-गणराज्य में 'स्वतन्त्र राजनीतिक संस्थाओं' के विकास में जो उन्नति हुई है, उस पर भी उन्होंने विचार किया।

परिषद् ने रूस के कुछ पूर्व के वक्तव्यों की भर्त्सना की, जिनका उद्देश्य एशियाई देशों में विभाजन को बढ़ावा देना तथा तनाव उत्पन्न करना था। 'पख्तूनिस्तान' के विषय में दिए गए वक्तव्यों का जहाँ तक संबंध है, सदस्य-राष्ट्रों ने डूरेंड-रेखा तक पाकिस्तान की प्रभु-सत्ता को मान्यता दी जो पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान के मध्य अंतर्राष्ट्रीय सीमा है तथा संधि-क्षेत्र में भी यह रेखा आ जाती है। परिषद के सदस्यों ने यह समझते हुए कि संयुक्त राष्ट्र संघीय प्रस्ताव अभी लागू है, काश्मीर-समस्या के, संयुक्त राष्ट्र संघ-द्वारा अथवा आपसी सीधी बातचीत के द्वारा हल किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया। इस क्षेत्र के राजनीतिक स्थायित्व एवं क्षेत्रीय एकता के लिए विध्वंसक प्रवृत्तियों द्वारा उत्पन्न खतरों को कम करने में गत वर्ष जो उन्नति हुई, उस पर परिषद् ने संतोष व्यक्त किया। जल, थल और हवाई सेनाओं की बैंकाक में संयुक्त कवायद (फरवरी १५-१८, १९५६), सदस्य-राष्ट्रों की प्रतिरक्षा-सेना में द्रुत गति से होने वाली वृद्धि, ज्यादा अच्छे साधन तथा उनकी सेनाओं का सुधरा हुआ प्रशिक्षण—इन सबने सीटो-राष्ट्रों के सामूहिक आत्म-प्रतिरक्षा-संगठन को दृढ़ कर दिया। सुरक्षा-विशेषज्ञों की समिति ने इस प्रकार की विध्वंसक प्रवृत्तियों के विरुद्ध प्रतिरक्षा में सहयोग के लिए अत्यधिक लाभदायक स्थल को प्रस्तुत किया।

अमेरिका द्वारा सीटो के एशियाई राष्ट्रों को आर्थिक सहायता देने के परिणाम-स्वरूप संधि क्षेत्र के समाज-कल्याण तथा स्थिर आर्थिक प्रगति पर भी परिषद् ने विचार किया। यह सहायता, जब से संधि पर हस्ताक्षर हुए, उसके बाद के दो वर्षों में, चौगुनी हो गयी है। आक्रमण का मुकाबला करने के लिए आवश्यक प्रतिरक्षा-सेना के सम्बन्ध में सैनिक सलाहकारों के निष्कर्षों पर परिषद् ने विचार किया तथा इस बात पर सहमत हुई कि सेना इतनी रखी जाय कि उसे आवश्यकतानुसार घटाया बढ़ाया जा सके तथा आक्रमण का मुकाबला करने को पूरी तरह समर्थ हो। विध्वंसक-प्रवृत्तियों का प्रतिरोध करने के लिए क्षेत्रीय सहयोग को उच्च प्राथमिकता दी गई।

परिषद् ने निम्नलिखित सगठनात्मक निर्णय किए :—

(क) हरेक परिषद के सदस्यो मे से एक अफसर को लेकर बैंकाक में एक स्थायी कार्यकारिणी समिति की स्थापना;

(ख) अस्थायी सचिवालय के स्थान पर पूरे पैमाने पर कार्यकारी सचिवालय की स्थापना;

(ग) बैंकाक में गवेषणा-सेवा की स्थापना की जाय, जिसका काम यह होगा कि वह दिन-प्रतिदिन बढने वाली चालू साम्यवादी प्रवृत्तियो के प्रतिवेदन प्रस्तुत करे,

(घ) सास्कृतिक-सम्बन्ध-कार्यालय की स्थापना तथा एक आर्थिक पदाधिकारी की नियुक्ति,

(ङ) सगठन के खर्चे की पूर्त्ति एक समान बजट द्वारा होगी।

विकास

इस प्रकार दक्षिण-पूर्व-एशिया-प्रतिरक्षा-सगठन नाटो (उत्तर अतलांतक-संधि-सगठन) अथवा एन्जुस (आस्ट्रेलिया-न्यूजीलेंड-अमेरिका-सधि) दोनो की अपेक्षा अधिक लचीला तथा परिवर्तनशील सगठन है। आन्तरिक तथा बाह्य दोनो प्रकार की विध्वसक कार्यवाही के विरुद्ध सधि के जिस भाग में व्यवस्था है, वह भाग ही सर्वाधिक विवादास्पद है। सुविज्ञ क्षेत्रो का कहना है कि किन्ही विशेष परिस्थितियो के अन्तर्गत यह सधि-क्षेत्र में आने वाले किसी देश मे किसी क्राति तथा सरकार परिवर्तन को मान्यता देने से इन्कार कर देगा, चाहे जनता उस सरकार-परिवर्तन एव क्राति की इच्छुक ही क्यो न हो और ऐसा केवल इसी कारण सभव होगा, क्योकि वर्तमान सरकारें अनिश्चित काल तक अपने शासन को बनाये रखने के लिये सहायता ले सकती हैं। इस आम तर्क का कि 'देशीय' तथा साम्यवादी क्रातियों मे अन्तर है यह उत्तर दिया जा सकता है कि पूर्व-एशियाई देशो में साम्यवाद तथा राष्ट्रवाद इतनी प्रगाढता से एक-दूसरे में मिल गये हैं कि उनको पृथक करना असभव है। इस प्रकार पश्चिमी सैनिक सहायता होने पर सधि 'उपनिवेशवाद' को कायम रख सकती है, जिससे बिना किसी अपवाद के, सभी एशिया-निवासी घृणा करते हैं।

इस प्रकार, सधि में शामिल देशो ने साम्यवादी आक्रमण के विरुद्ध राष्ट्रीय जन-तन्त्रो की रक्षा के लिये एक निश्चित सीमा डालने का प्रयास किया है। लेकिन भारत, इन्डोनेशिया, बर्मा, लका जैसे जनतान्त्रिक देशो के इसमे न होने से यह सधि कमजोर है। साथ ही यह मुश्किल से ही किसी देश की गुप्त साम्यवादी प्रवृत्तियो से रक्षा कर सकती है। यह सधि ऐसी सरकार, जो पश्चिमी राष्ट्रो के हाथ की कठपुतली

एशिया के बाहर अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में दिन-पर-दिन अधिक प्रभावशाली भाग ले रहे हैं। समय-समय पर होने वाली कोलम्बो राष्ट्रों की बैठकें भी क्षेत्रीय जागरूकता एवं पारस्परिक अवलम्बन में सहायक हैं। अप्रैल, १९५५ में बांडुंग में हुए एशियाई अफ्रीकी सम्मेलन ने क्षेत्रीय भेद तथा समानताओं के सिंहावलोकन के लिए अवसर प्रदान किया। लेकिन, यदि बगदाद संधि परिषद, सीटो-परिषद् तथा एन्जुस-परिषद को न गिना जाय, जिनका उल्लेख पहले ही हो चुका है, तो इस परिषद् द्वारा किसी भी स्थायी क्षेत्रीय संस्था की स्थापना नहीं हुई है।

इस प्रकार एशियाई क्षेत्रवाद ने कोई भी प्रभावशाली सफलता प्राप्त नहीं की है; लेकिन यह प्रतीत होता है कि निकट भविष्य में, कुछ तटस्थ राष्ट्रों में राष्ट्रवादी शक्तियाँ, संयुक्त तथा सहयोगात्मक कार्यवाही की दृष्टि से विवादास्पद क्षेत्रीय समस्याओं से संबंधित विचारों के विनिमय के लिए एक स्थाई अथवा अर्द्ध स्थाई सलाह-समिति की स्थापना कर सकती हैं। स्वाधीन देशों में ज्यों-ज्यों जनमत अधिकाधिक शिक्षित होता जायगा, आर्थिक विकास होगा, तथा साम्राज्यवादी आधिपत्य से अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने की आवश्यकता अनुभव की जायगी, त्यों-त्यों ही इस प्रवृत्ति का बढ़ना भी निश्चित है। इस प्रकार, राष्ट्रवाद अभिनव क्षेत्रीय सहयोग तथा अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा एशिया की सुरक्षा के लिए एकात्मकता के अभीष्ट तक ले जा सकता है।

संयुक्तराष्ट्र संघ तथा क्षेत्रवाद

जैसाकि हम देख चुके हैं, संयुक्त राष्ट्रसंघ अधिपत्र में क्षेत्रीय समझौतों के लिए व्यवस्था है (परिच्छेद अष्टम अनुच्छेद ५२-५४)। इस प्रकार की किसी व्यवस्था का उल्लेख राष्ट्रसंघ के प्रविधान में नहीं था। राष्ट्रपति विलसन का यह मत था कि क्षेत्रीय संगठन राष्ट्रसंघ के प्रभाव को कमजोर कर देंगे : "राष्ट्रसंघ के संयुक्त एवं समान कुटुंब के अन्दर कोई भी संघ अथवा गठ-बंधन अथवा विशिष्ट प्रविधान या समझौता नहीं रह सकता।"

सान-फ्रांसिस्को सम्मेलन में क्षेत्रीय संगठनों की समस्या तथा विश्व-संगठन से उनके संबंध के विषय में पूर्ण-रूपेण से चर्चा हुई। कुछ सदस्यों ने संयुक्त राष्ट्र-संघ के ढांचे के अन्दर क्षेत्रीय समझौतों के लिए अधिकार का समर्थन किया। जिन कारणों से इस दृष्टि को बल मिला वे ये हैं : अमेरिकी गणराज्यों की अन्तर-अमेरिकी प्रणाली को बचाने की अभिलाषा, अरब-संघ के सदस्यों की भी वैसी ही भावना, अधिपत्र के अन्दर पारस्परिक द्वि-पक्षीय सहायता-संधियों की रूस की अपनी प्रणाली को अपवाद रूप में प्राप्त करने की इच्छा, फिर से जर्मन आक्रमण का फ्रांस को भय तथा याल्टा समझौते में सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों को जो निषेधाधिकार प्रदान किया गया था, उसके कारण छोटे राष्ट्रों में असुरक्षा की आम भावना।

इस चर्चा का परिणाम यह निकला कि क्षेत्रीय व्यवस्थाओ से सम्बन्धित परिच्छेद आठ, अनुच्छेद ५२ ५४ का निर्माण किया गया (परिशिष्ट के पृष्ठ १५-१६ को देखिए)। विवादो के शातिपूर्ण हल के साधनो में से एक साधन यह है कि "क्षेत्रीय सस्थाओं अथवा व्यवस्थाओं को अपनाया जाय" जैसा कि अनुच्छेद ३३ में उल्लिखित है (परिशिष्ट—पृष्ठ ११)। अधिपत्र में "क्षेत्रीय व्यवस्थाओ' की परिभाषा नही की गई है तथा न ही उसमे यह बताया गया है कि उन व्यवस्थाओ का सयुक्त राष्ट्र सघ से क्या सम्बन्ध है। दूसरी ओर, अगर सयुक्त राष्ट्र सघ के किसी सदस्य के विरुद्ध सशस्त्र आक्रमण होता है, ऐसी स्थिति में आत्म-प्रतिरक्षण का पुस्तैनी अधिकार—चाहे व्यक्तिगत हो अथवा सामूहिक—को मान्यता दी गयी है "जब तक कि सुरक्षा परिषद् शाति स्थापना के लिए आवश्यक पग न उठाए।" (अनुच्छेद ५१ — परिशिष्ट पृष्ठ १५) इसका परिणाम यह हुआ है कि सयुक्त राष्ट्र सघ के प्रभावपूर्ण नियत्रण क्षेत्र से बाहर अनेक क्षेत्रीय सस्थाएँ स्थापित हो गई। साथ-ही-साथ, अधिपत्र में दक्षिण प्रशात-सागरीय आयोग तथा केरीबियन आयोग जैसी आर्थिक अथवा सामाजिक प्रादेशिक सगठनो की व्यवस्था नही रखी गई। ये सस्थाएँ सयुक्त-राष्ट्र-सघ की सस्थाएँ नही हैं।

यहाँ यह ध्यान मे रखना आवश्यक है कि जिन क्षेत्रीय समझौतो का उद्देश्य सामूहिक सुरक्षा है, वे सयुक्त राष्ट्र सघ-अधिपत्र की उच्च-स्थिति को अवश्य स्वीकार करेंगे। अधिपत्र के अनुच्छेद १०३ (परिशिष्ट पृष्ठ २६ देखिए) में यह उल्लिखित है कि अगर ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय कि सयुक्त-राष्ट्र-सघ के सदस्यों पर अधिपत्र के अन्तर्गत जो कर्त्तव्य हैं, उनका किसी दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय समझौतो के अन्तर्गत उन पर जो कर्त्तव्य हैं उनमें विरोध उत्पन्न हो जाय, तो ऐसी स्थिति में अधिपत्र के अन्तर्गत उन पर जो कर्त्तव्य है वे ही लागू होगे। अत क्षेत्रीय व्यवस्था सयुक्त राष्ट्र सघ का ही अग होना चाहिए, न कि वह अलग सस्था हो। सयुक्त राष्ट्र सघ के तत्कालीन महासचिव श्री त्रिग्वेली ने कहा कि सुरक्षा के लिए 'क्षेत्रीय साधन' ज्यादा-से-ज्यादा अन्तरिम साधन हो सकते हैं तथा उनके द्वारा युद्ध मे सुरक्षा की ऐसी व्यवस्था सभव नहीं जिस पर भरोसा किया जा सके। इसलिए यह स्वीकार किया जाना चाहिए, जैसा कि प्रो० गुडस्पिड ने कहा है कि "इन क्षेत्रीय व्यवस्थाओ के गठन तथा सख्या-वृद्धि के द्वारा विश्व-सगठन मजबूत नहीं हो रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय शाति एव सुरक्षा को स्थायी बनाने वाले सगठन के रूप में अगर सयुक्त राष्ट्र सघ प्रभावशाली बनता है तो इस प्रकार के क्षेत्रीय समझौतो का महत्त्व कम होना चाहिए तथा कार्य करने में इन्हें सयुक्त राष्ट्र सघ की उत्तरदायी सस्था के अधीनस्थ सहायक होना चाहिए।"

क्षेत्रीय समझौतों के हानि-लाभ अथवा अच्छाइयाँ-बुराइयाँ

युद्धोत्तर काल (१९४५-५७) मे राजनीतिक, सैनिक अथवा आर्थिक सभी प्रकार की क्षेत्रीय सधियाँ तथा गठबधन अन्तर्राष्ट्रीय दृश्य की आम विशेषता हो चुके हैं। इसके महत्त्व में अत्यधिक वृद्धि हुई है, क्योकि शक्ति-सतुलन के सिद्धात के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शाति एव सुरक्षा को स्थापित करने में इसने महत्त्वपूर्ण योग दिया है। अन्तर्राष्ट्रीय मामलो में क्षेत्रवाद के विच र के मह्त्व में उत्तरोत्तर वृद्धि के कारण, हमें इसकी अच्छाइयो तथा बुराइयो की विवेचना करनी चाहिए। प्रो० क्लाइड इगल्टन ने इसके पक्ष तथा विपक्ष में निम्नाकित तर्क प्रस्तुत किए हैं :

पक्ष में तर्क :

१. विश्व-सरकार के लिए एक ही पग भरने की अपेक्षा उस दिशा में उत्तरोतर विकास करने का प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार की विश्व-सरकार की स्थापना क्षेत्रीय प्रणालियो की ठोस नीव पर ज्यादा अच्छी तरह की जा सकती है।

२. पडोसी राष्ट्रो, क्षेत्र की जनता के बीच और उनके बीच जो ज्यादा प्रभावित हैं तथा परिणामस्वरूप उनके बीच,जो सुरक्षा साधनो को हाथ में लेने के ज्यादा इच्छुक हैं सुरक्षा को खतरा उत्पन्न होने की ज्यादा सभावना है। उन दूरस्थ झगडो को निवटाने में, जिनमें वाहरी देशो का निजी हित न हो, क्षेत्र से वाहर के राष्ट्र अपने सिपाहियो के प्रयोग के कम ही इच्छुक होंगे।

३. क्षेत्र के देशो द्वारा किसी आक्रमणकारी के विरुद्ध कार्यवाही न केवल ज्यादा इच्छापूर्वक की जायगी, वरन् समय पर तथा कुशलता-पूर्वक की जायगी। यदि कार्यवाही के लिए ऐसे राष्ट्रो की प्रतीक्षा करनी हो, जो आवागमन की दृष्टि से दूरस्थ हो, तो उसमें (कार्यवाही में) विलम्ब होगा तथा अनिश्चितता रहेगी।

४ आक्रमण के अतिरिक्त और वहुत-सी स्थानीय समस्याएँ होती हैं, जिन्हें क्षेत्र की जनता ही प्रभावपूर्ण ढग से तथा सफलतापूर्वक सम्हाल सकती है, क्योकि वाहर वालो को न ही उसमें रुचि होती है और न ही उन समस्याओ के निराकरण के लिये उनके पास आवश्यक ज्ञान होता है।

५. हरेक क्षेत्र में एक प्रभावपूर्ण वडी शक्ति होगी, इस प्रकार वडी शक्तियो के नेतृत्व में शक्ति-सतुलन वना रहेगा।

६. भाषा, संस्कृति तथा आर्थिक हितो में समान अभिरुचि क्षेत्रीय एकात्मकता की दिशा में स्वाभाविक प्रवृत्ति उत्पन्न करती है।

विरोध मे तर्क :

१. लेकिन विस्तार की दृष्टि से समस्याएँ विश्व-व्यापी होती हैं तथा उनका

हल सार्वभौमिक प्रणाली द्वारा ही हो सकता है। यह प्राविधिक उन्नति तथा आर्थिक और दूसरी प्रकार की स्वाधीनता में वृद्धि का परिणाम है।

२ यदि विकेंद्रीकरण की चाह हो, तो इसकी योजना भौगोलिक आधार की अपेक्षा वास्तव में कृत्यवाही आधार पर ज्यादा अच्छी होगी।

३ चाहे विवाद पडोसी राष्ट्रो के बीच ही उठ खडे हो, लेकिन वे विश्व-युद्ध का रूप ले सकते हैं। ऐसी स्थिति मे यह आवश्यक होगा कि राष्ट्रो का सार्वभौमिक समुदाय हरेक विवाद मे रुचि ले और यह निश्चित प्राय कर दे कि यह विवाद व्यापक युद्धाग्नि उत्पन्न नही करेगा।

४ क्षेत्रीय गठवधन केवल सैनिक गुटो की अभिवृद्धि करते हैं, जिनका परिणाम अन्ततोगत्वा ज्यादा वडे युद्धो तथा अन्तर्राष्ट्रीय तनाव के रूप में होता है।

५ क्षेत्रीय प्रणालियो में छोटे राष्ट्र वडी शक्तियो अथवा क्षेत्र की एक वडी शक्ति के प्रभाव मे रहेंगे तथा अनेक छोटे राष्ट्र मिलकर भी वडी शक्ति पर नियत्रण करने में असमर्थ रहेंगे। यह केवल वाहरी वडी शक्तियो द्वारा ही किया जा सकेगा, न कि क्षेत्र में के देशो द्वारा। अगर क्षेत्र में एक से अधिक वडी शक्तिया हैं, तो फिर समस्या और अधिक जटिल ही हो जायगी।

६ यह आशा रखने का कोई भी कारण नही है कि किसी क्षेत्र-विशेष के राष्ट्र एक सार्वभौमिक प्रणाली में सम्मिलित राष्ट्रो की अपेक्षा ज्यादा सहयोग तथा कुशलता से साथ-साथ कार्य कर सकेंगे।

७ औद्योगिक तथा सैनिक शक्ति की दृष्टि से विभिन्न क्षेत्रीय सगठनो में इतना अन्तर है कि यह अपेक्षा ही नही की जा सकती कि उनमे शक्ति-सतुलन होगा तथा कृत्रिम सतुलन को स्थापित करना कठिनता से सभव है।

८ यदि सुरक्षा-शक्ति के लिए क्षेत्रीय प्रणालियो द्वारा प्रयास किया जाय तो अधिकार तथा शक्ति विभाजित हो जायेगी तथा जिस ठोस शक्ति को आक्रात के विरुद्ध एकत्र किया जा सके, वह थोडी होगी। क्षेत्र के अन्दर आर्थिक अनुज्ञप्तियो का भी प्रयोग नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह तभी कारगर हो सकती हैं, जब ये सार्वभौमिक हों।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रवाद ने, जो आज अन्तर्राष्ट्रीय शाति एव सुरक्षा के लिए एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व बन गया, विश्व को दो शक्ति-गुटो, अथवा दो क्षेत्रो में बाट दिया है—एक का नेता है अमेरिका तथा दूसरे का रूस। शाति के उद्देश्य को आगे बढाने के स्थान पर ये अधिकाधिक 'शीत युद्ध' बढाने में प्रवृत्त हो रहे हैं, और

इसलिए शांति के लिए स्थायी खतरे का कारण बने हुए हैं। एक क्षेत्रीय संगठन द्वारा उठाया गया कदम विरोधियों को इस बात के लिए उत्तेजित करता है कि वे विरोधी पग उठाएँ। इससे नतीजा यह हो रहा है कि जिस बुराई को रोकने का उनका पूर्व-संकल्प था, वही बुराई बढ़ रही है। इस प्रकार, क्षेत्रीय सुरक्षा-समझौते वस्तुतः खतरनाक हैं अगर इनका नियंत्रण प्रभावपूर्ण ढंग से संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा नही होता तथा ये उसके अधीन नही रहते। क्षेत्रीय-समझौतों में वृद्धि वास्तव में विश्व-शांति पर बढ़ता हुआ खतरा है खास तौर पर तटस्थ राष्ट्रों के लिए। पंडित नेहरू ने इन क्षेत्रीय गठबंधनों को परस्पर सम्बद्ध समझौते बताते हुए भर्त्सना की है, जो विभिन्न राष्ट्रों में दरार उत्पन्न कर रहे हैं तथा जनता मे घृणा तथा संदेह। इनके द्वारा अस्थायी तथा अनिश्चित शक्ति-संतुलन उत्पन्न किया जा रहा है, जो एक दूसरे भयंकर विश्व-युद्ध के लिए रंग-मंच तैयार कर सकता है। वास्तव मे इंगलिस्तान, फ्रांस, तथा अमेरिका आदि के सहयोग से निर्मित पश्चिम यूरोप के आवश्यकता से अधिक विस्तृत सुरक्षा प्रणाली के बचाव में, प्रसिद्ध फ्रांसीसी अधिकारी प्रो० जार्जसेल ने एक सिद्धांत प्रतिपादित किया है। वह इस प्रकार है कि जितना अधिक एक राष्ट्र क्षेत्रीय समझौते में सम्मिलित होता है, उतना ही अधिक वह सुरक्षित होता है तथा शांतिपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की संभावनाएँ ज्यादा निश्चित स्थिति में आ जाती हैं। "इस पारस्परिक संबद्धता तथा ‥ ‥गठबन्धन में शांति की गारंटी होती है‥‥‥अगर एक देश बहुत से विभिन्न क्षेत्रीय प्रणालियों से संबद्ध हो, तो उसी तथ्य के कारण उसकी लड़ाकू प्रवृत्तियों पर उन गुटों मे से हरेक गुट की ओर से अंकुश लगा दिया जायगा जिन गुटों मे वह देश शामिल है। दूसरी ओर यह देश भी गठबंधनों के अपने साथियों की लड़ाकू प्रवृत्तियों को कम करने में सहायक होगा। ऐसा इसलिए संभव है कि वह अपने स्वयं के गठबंधनों को अक्षुण्ण रखने को सजग रहेगा।"

सरदार के. एम. पणिक्कर के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रवाद-संबंधी विचार शायद ज्यादा ठीक हैं: "इन तमाम संगठनों की एक विशेषता है कि क्षेत्रीय गठबंधन का कार्य उस सदस्य के साथ-साथ किया गया, जिसका पहले उस क्षेत्र पर आधिपत्य था। किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में एक बड़ी शक्ति की उच्चता की यह स्थापना है। वास्तव में अब तक क्षेत्रीय संगठन का अर्थ रहने के स्थान की विनम्र शब्दावली से अधिक कुछ नहीं रहा है।" (अर्थात क्षेत्र विशेष में कौन-कौन से देश शामिल हैं, इसको प्रकट करने के लिए शब्दावली)। यूनेस्को द्वारा प्रकाशित अपनी पुस्तक 'नए राज्य तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठन' में बेंजामिन एकिजन ने क्षेत्रवाद के कार्य का सारांश इस प्रकार दिया है :

"वास्तव में क्षेत्रीय तथा अन्य गैर-अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का विकास उस से भी आगे बढ़ गया है, जितने के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ अधिपत्र के निर्माताओं ने

प्रत्यक्ष रूप से विचार किया था। यह विकास राजनीतिक क्षेत्र की अपेक्षा गैर-राजनीतिक क्षेत्र में अधिक निश्चित हुआ है। · ··इस पर से प्राप्त विचार यह सकेत कर सकते हैं कि यह विकास अपरिहार्य है। अगर विश्व के राष्ट्रो को यह विश्वास होता कि सयुक्तराष्ट्र सघ शांति एव सुरक्षा को अक्षुण्ण रखने में समर्थ है तो उन्ही उद्देश्यों के लिए अन्य राजनीतिक सगठनो को जन्म देने की प्रेरणा ही न होती। ·· ··अधिपत्र के अनुच्छेद ५३ में ऐसे क्षेत्रीय सगठनो का सदर्भ है, जो सयुक्तराष्ट्र सघ से अधिकृत सबध रखकर विकसित हो · · परन्तु तो भी, अभी तक कोई भी क्षेत्रीय सगठन इस भावना से विकसित नही हुआ है तथा प्रत्येक व्यक्ति सदेह कर सकता हैं कि क्या अनुच्छेद ५४ में उल्लिखित आवश्यकता को पूर्ण किया गया है ?"

व्याख्यान ८

विश्व की गति-विधियों में मध्य पूर्व की स्थिति

विषय-प्रवेश :

संयुक्त राष्ट्र संघ सचिवालय के आर्थिक मामलो का विभाग इस निर्णय पर पहुँचा है : "मध्य पूर्व एक निश्चित भौगोलिक इकाई नही है, जो स्पष्ट रूप से पडोसी क्षेत्रो से पृथक हो।" क्षेत्र को निकटपूर्व और कभी कभी पूर्वी प्रश्न अथवा निकट तथा मध्यपूर्व के नाम से जाना गया है, जिसने इस भ्रांति मे वृद्धि ही हुई है। आम प्रयोग में 'मध्य पूर्व' के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए इसमें जो देश सम्मिलित हैं वे इस प्रकार हैं. अरब संघ के देश (मिस्र, ईराक, जोर्डन, साउदी अरब, सीरिया तथा यमन), साइप्रस, ईरान, इजराइल, सूडान, तुर्की, तथा अरब महाद्वीप के दक्षिणी तथा पूर्वी भाग के राय वाले देश, जैसे अदन का रक्षित-राज्य, मस्कत, ओमान, ट्रसियल ओमान, कातार, बहरीन, कुवैत। इस प्रकार की यदि परिभाषा की जाय तो मध्य पूर्व एक निश्चित क्षेत्र है, न केवल भौगोलिक दृष्टि से, अपितु राजनीतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक तथा युद्ध-योजना की दृष्टि से भी। यदि सूडान तथा मिस्र को अलग कर दे तो हम निर्विवाद रूप से इस क्षेत्र को दक्षिण पश्चिम एशिया कह सकते है। लेकिन मिस्र को नही छोडा जा सकता, क्योंकि यह अरब संघ का प्रमुख सदस्य है, उस अरब संघ का जिसने द्वितीय महायुद्ध के पश्चात अरब राज्यो के अन्तर्राष्ट्रीय मामलो मे प्रमुख भाग लिया है। क्षेत्र की दृष्टि से मध्य पूर्व का विस्तार ३७ लाख वर्गमील है, जिसकी जनसंख्या लगभग ८ करोड है, जो भारत की जनसंख्या का पांचवा हिस्सा है तथा हिन्देशिया, अथवा पाकिस्तान अथवा जापान के लगभग बराबर है। इस क्षेत्र की ९० प्रतिशत जनसंख्या मुसलमानो की है, जो ७ करोड़ ३० लाख है। लगभग ३० लाख ईसाई हैं, जिनमें से आधे लेबनान में तथा एक-तिहाई मिस्र में रहते हैं। यहूदियो की संख्या लगभग १६ लाख है, जो इजराइल में ही संगठित रूप से बसे हैं। २५ लाख मूर्ति-पूजक है. जो विशेष रूप से सूडान के ऊपरी हिस्से में बसे हैं। लेबनान तथा इजराइल को छोड कर मध्य-पूर्व के सभी देश इस्लाम मत के मानने वाले है, जो अरब भाषा के समान सूत्र में आबद्ध हैं, जिनके द्वारा सर्व-अरबवाद अथवा सभी अरब-क्षेत्रो को संगठित करने की प्रेरणा को प्रोत्साहन मिलता है। इस्लाम के अंदर मतमतान्तरवाद ने विशृंखलता को और भी बल मिला है। सुन्नी या कट्टरपंथी मुसलमानो की बहु-संख्या है, यद्यपि शियाओं अथवा

उदार इस्लाम ईरान, तथा यमन का राजकीय धर्म है। इस क्षेत्र मे विभिन्न प्रकार की सरकारें हैं। क्षेत्र के ग्यारह स्वाधीन देशो में से इजराइल, सूडान, सीरिया, लेबनान, मिस्र तथा तुर्की गणराज्य हैं, यमन तथा साउदी अरब इन दोनो में पूर्ण राजतत्र है, तथा तीन देशो ईरान, ईराक और जोर्डन में सांविधानिक राजतत्र है। आर्थिक दृष्टि से यह क्षेत्र पहले से कृषि प्रधान तथा पशु-पालन पर गुजारा करने वाला है। वहा उन देशो में प्राय प्रतिस्पर्धा है, उनके उत्पादन-पदार्थ पूरक नही हैं, कारण अधिकाश देश एक ही ढग के कृषि-पदार्थों के उत्पादन में प्रवृत्त हैं। जैसा कि सयुक्त राष्ट्र सघ के आर्थिक मामलो के विभाग ने पाया है, मध्य पूर्व की आर्थिक स्थिरता में प्रमुख रुकावटे केवल चालू-मुद्रा के अन्तर तथा सीमा शुल्क की ही नही हैं अपितु नीचा रहन-सहन का स्तर तथा जनता के बीच माल के सीमित अन्तर्विनिमय की भी हैं। मध्यपूर्व के सपूर्ण समाज में अल्प-सख्या जागिरदारी का बोलबाला है, जिनके साथ को धनाढ्य व्यापारी भी आ जाते हैं तथा कुल जन-सख्या की बहुसख्या या तो किराये पर खेतों में काम करने वाले कृषको की है या ऐसे लोगो की है, जिनके अधिकार में जमीन के बहुत ही छोटे-छोटे टुकडे हैं। इस सम्बन्ध मे जे सी हुरियूट्ज का कथन इस प्रकार है "शायद ससार में कोई भी ऐसी जगह नही होगी जहा पृथक सम्प्रदायो के रूप में धार्मिक, भाषाई, तथा जातीय अल्पसख्यक उस हद तक बच रहे हो, जिस हद तक मध्यपूर्व में हैं। लेबनान इसका ज्वलन्त उदाहरण है, जिसमें तीन मुसलिम सम्प्रदाय, नौ ईसाई सम्प्रदाय तथा यहूदी एक साथ रहते हैं। इनमें से किसी का पूर्ण बहुमत नही है तथा इनमें से हरेक सम्प्रदाय विधायिका में प्रतिनिधित्व पाने के लिए प्रतियोगिता करता है।"

१४५३ मे मध्य-पूर्व की स्थिति विश्व-इतिहास में अद्वितीय है, जब तुर्की ने कुस्तुन्तुनिया (इस्तम्बूल) पर विजय प्राप्त करके पूर्व और पश्चिम के व्यापार-मार्गों को छिन्न-विछिन्न कर दिया, अतत जिसका परिणाम भौगोलिक खोजो तथा पुनर्जागरण के रूप में हुआ क्योंकि विद्वानो ने भागकर इटली में शरण ली तथा शास्त्रीय ग्रन्थो के अध्ययन का फिर से अभिनवीकरण किया। १८वी और १९वी शताब्दी के बीच तुर्की, जिसे यूरोप का बीमार आदमी कह सकते है, का पतन होने लगा, वह क्षीण होने लगा। लेकिन, चाहे वास्तव में न हो कम-से-कम नामचारे को तो उसने ईरान को छोडकर इस क्षेत्र में अपनी प्रभुता को तब तक बनाए रखा जब वह जर्मन का साथी राष्ट्र होने के नाते प्रथम महायुद्ध में पराजित न हो गया तथा २० अगस्त १९२० को 'सेवर्स-सन्धि' पर हस्ताक्षर हुए।

तुर्की साम्राज्य के अन्तिम रूप से टूटने के पूर्व ही विभिन्न पश्चिमी राष्ट्रों के हित मध्यपूर्व में प्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित होने लगे थे। इंगलिस्तान की रुचि,

इसमें तब उत्पन्न हुई जब १७९८ मे नेपोलियन ने मिस्र पर आक्रमण किया, जिसने भारत पर फ्रांसीसी आक्रमण के खतरे को बढा दिया। १८३६ में भारत तथा सुदूर-पूर्व से डाक सचरण के लिए इंग्लैण्ड ने मिस्र में से मार्ग बनाया। स्वेज नहर के बनने के (१८६९) छः साल पश्चात् यानी १८७५ में इङ्गलैण्ड ने स्वेज नहर कपनी के हिस्से खरीद लिए। ऐसा उन्होंने भारत में अपने महत्वपूर्ण हितो की सुरक्षा के लिए किया। इसलिए उन्होंने तुर्की की क्षेत्रीय स्थिरता का पक्ष लिया, यद्यपि उन्होंने १८८२ से मिस्र पर पूर्ण नियत्रण कर लिया।

१६९६ में तुर्की से अजोव की ब्लैक-बन्दरगाह हस्तगत करने के उपरात रूसियो ने गरम पानी की बदरगाह पर अधिकार करना चाहा जो भूमध्यसागर मे जाने का मार्ग है। तुर्की पर लगातार विजय करते-करते रूस ने डार्डनेलीज के जलडमरूमध्य के व्यापारिक उपयोग करने का अधिकार प्राप्त कर लिया तथा एक सदी के काल (१७७४--१८७८) तक कुस्तुतुनिया की आर्थोडॉक्स ग्रीक चर्च का मान्य रक्षक बन गया। ब्रिटेन के विरोध के कारण, कुस्तुन्तुनिया पर अधिकार करने के तथा तुर्की को विभाजित करने के उसके अनवरत प्रयास विफल हो गये। जर्मनी के एक बडी शक्ति के रूप में प्रकट होने से तथा बालकन द्वीप पर आस्ट्रिया की प्रगति को समर्थन देने के कारण १९०७ मे आग्ल-रूसी सन्धि हुई, जिससे यह निश्चय हुआ कि ईरान मे आर्थिक दृष्टि से कौन-सा भाग किसका होगा तथा अफगानिस्तान पर से अपना प्रभाव हटाने पर रूस को विवश होना पडा।

जर्मनी का साम्राज्यवादी विलियम कैसर द्वितीय ही था, जिसने १८८९ मे कुस्तुन्तुनिया की अपनी ऐतिहासिक यात्रा के बाद सर्व-प्रथम 'इस्लाम के रक्षक' तथा तुर्की के हितचिंतक की पदवी ग्रहण की। जर्मनी जनरल वान डेर गोल्ज ने तुर्की की सेना को व्यवस्थित तथा अनुशासित किया तथा जर्मन बैंक ने तुर्की में जर्मनी के पूँजी विनियोजन को प्रोत्साहन दिया। १८८९ मे जर्मनी ने बर्लिन-बगदाद रेल लाइन बनाने की सहलियत प्राप्त कर ली, जिसका विश्वव्यापी विरोध हुआ। इस प्रकार यह योजना समाप्त होकर स्वप्नमात्र ही रह गई।

२० वी सदी के प्रारम्भ में यह आकस्मिक खोज होने पर कि इस क्षेत्र में बडे परिमाण में पेट्रोल तथा मिट्टी का तेल है, अमेरिका का भी ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ तथा वह व्यापार और लाभ के लिए इस क्षेत्र मे प्रविष्ट हुआ। इस क्षेत्र में अमेरिकी प्रभाव के विस्तार का कारण शान्तिपूर्ण आर्थिक हित था, लेकिन द्वितीय महायुद्ध के कारण इसने युद्ध-योजना के हित का रूप धारण कर लिया। फ्रांसीसियो ने, जिनका नेपोलियन के काल मे इस क्षेत्र पर प्रभुत्व था, क्रीमिया-युद्ध (१८५४-५६) के मध्य फिर से रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया, प्रमुख रूप मे आर्थिक तथा

सांस्कृतिक क्षेत्रों में, विशेषतया सीरिया और लेबनान में। १८६९ में फ्रांसीसी विशेषज्ञ द्वारा स्वेज नहर की खुदाई के कारण मिस्र में इनके (फ्रांसीसियों के) पैर जम गए, जहाँ वे १९०४ तक अपने प्रतिद्वंदी इङ्गलैंड से प्रतियोगिता करते रहे, जब कि वे अन्तिम रूप से इस क्षेत्र से हट न गए। १९०८-१९०९ के युवक-तुर्क आंदोलन के बावजूद भी तुर्की अपने पतन तथा विभाजन को नहीं रोक सका, जो प्रथम महा-युद्ध (१९१४ १८) के होने से और भी तेजी से हुआ।

१९१९ से १९५७ तक के मध्यपूर्व के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के जटिल क्रम को समझने के लिए हमें अपने आप को क्षेत्र की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्याओं के विश्लेषण तथा अध्ययन तक सीमित रखना होगा। वे समस्याएँ इस प्रकार हैं:

(१) अरब विश्व में राष्ट्रवाद, (२) फिलस्तीन की समस्या, (३) मध्य-पूर्व के सम्बन्धों में तेल का स्थान, (४) स्वेज-नहर-समस्या, (५) मध्य-पूर्व में बड़ी शक्तियों की प्रतिद्वन्दिता।

१ अरब विश्व में राष्ट्रवाद

जैसा कि हमने ऊपर विवेचना करने का प्रयास किया है, १९१९ तक मध्य-पूर्व तुर्की की नाम मात्र की प्रभुता में था। १९५७ में स्वाधीन अरब-राष्ट्रों की संख्या आठ है—मिस्र, सूडान, साऊदी अरब, यमन, जोर्डन, ईराक, सीरिया तथा लेबनान। इनमें से पांच ने तो अपनी स्वाधीनता द्वितीय महायुद्धोत्तर काल में प्राप्त की। साथ ही जोर्डन, साऊदी अरब, यमन तथा सूडान को छोड़कर सभी ने अपनी स्वाधीनता किसी न किसी यूरोपीय शक्ति के साथ संघर्ष करके प्राप्त की।

द्वितीय महायुद्ध के बीच (१९१४-१८) जब इङ्गलैंड जर्मनी, आस्ट्रिया तथा तुर्की से युद्ध कर रहा था, उस समय अंग्रेज जनरल मैकमोहन ने मक्का के शेरिफ हुसैन को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वह तुर्की आधिपत्य से मुक्ति के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन परिचालित करे। जैसा कि हमें १९१७ की बालफोर-घोषणा से पता चलता है, जिनका वर्णन हम फिलस्तीन समस्या के अन्तर्गत करेंगे, तुर्की नियंत्रण से अरबों के छुटकारे के भी वायदे किये गए। द्वितीय महायुद्ध (१९३९-४५) ने अरब-राष्ट्रवाद को प्रेरित किया, जब मिस्र तथा मध्यपूर्व के लिए नाजी खतरे ने मित्र राष्ट्रों को उलझा लिया तथा राष्ट्रवादी शक्तियों को अवसर दिया कि वे अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में अपने प्रभाव को जमाने के लिए आन्तरिक दृष्टि से अपने को सशक्त करें।

तुर्की—१९२० की सेवर्स-संधि (पृष्ठ २० पर देखिए) के परिणामस्वरूप तुर्की को अपने तमाम यूरोपीय क्षेत्रों को, जिनमें कुस्तुन्तुनिया भी शामिल है, तथा दक्षिण-पश्चिम एशिया के अपने उपनिवेशों को छोड़ना पड़ा। तुर्की के नये राष्ट्रवाद को

मुस्तफा कमालपाशा अर्थात् कमाल अतातुर्क (१८८१-१९३८) ने सगठित किया। मुस्तफा को नए तुर्की का जनक कहते हैं, जिसने देश को विदेशी नियत्रण से मुक्त करने तथा राष्ट्रीय पुनर्जन्म का आन्दोलन प्रारम्भ किया। उसने राष्ट्र विधान-मडल को आयोजित किया, राजतत्र का उन्मूलन किया, तुर्की की स्वाधीनता की घोषणा की तथा तुर्की को गणराज्य घोषित किया (१९२२)।

कमालपाशा ने आक्राता ग्रीकों के विरुद्ध बेरहमी से (१९१९-२२) युद्ध छेड दिया, जिसका सक्रिय समर्थन ब्रिटेन, फ्रांस तथा इटली ने किया। तुर्की भूमि पर से ग्रीकों को खदेडने में अन्तत वह सफल हुआ। २४ जुलाई, १९२३ को उसने मित्र-राष्ट्रों को लौजान-सधि पर हस्ताक्षर करने को विवश किया, जिसके द्वारा सेवर्स-सधि को दुहराया गया। उसी वर्ष सुलतान मोहम्मद षष्ठम को अपदस्थ कर दिया गया तथा आधुनिक तुर्की के जन्मदाता कमालपाशा प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। अँकारा को राजधानी बनाया गया। १९२४ में एक सविधान अगीकार किया गया, जिसमें एक सदनीय पार्लमेंट की व्यवस्था की गई, जिसका चुनाव पुरुष मताधिकार के आधार पर हुआ। कार्यकारी अधिकार मन्त्रिमडल तथा पार्लमेंट द्वारा चुने गए राष्ट्रपति के हाथ में रहे। बिना किसी जातीय तथा धार्मिक भेद-भाव के गणराज्य के समस्त नागरिक विधि के समक्ष समान हैं, यह घोषणा की गई।

मुस्तफा कमाल नए तुर्की के प्राण हो गए। यद्यपि वास्तविक दृष्टि से ताना-शाह होते हुए भी उसने अपने अधिकार का प्रयोग इस ढग से किया कि सर्वत्र उसकी प्रशसा हुई। उसका उद्देश्य था तुर्की को दृढ, आधुनिक तथा राष्ट्रीय राज्य का स्वरूप देना। उसने खलीफाशाही का उन्मूलन करके राज्य को धर्म से पृथक् किया। कुरान पर आधारित न्यायालयों तथा विधियों की प्रणाली का उन्मूलन किया गया तथा नवीन विधि सहिताओं को अगीकार किया गया। १९२५ में बहु-विवाह की प्रणाली का उन्मूलन किया गया तथा नागर-विवाह (civil marriage) को अनिवार्य कर दिया गया। बुर्का तथा तुर्की टोपी के पहनने का उत्सादन किया गया। १९३५ में शुक्रवार के स्थान पर रविवार को सरकारी अवकाश घोषित किया गया। लिपि-क्षेत्र में लेटिन-सोपान (Latin alphabet) का प्रयोग प्रारम्भ किया गया तथा अरबी में मुद्रित पुस्तकों पर रोक लगा दी गई। रेलवे, सडकों तथा सिंचाई-साधनों का निर्माण हुआ। सक्षेप में, कमालपाशा का उद्देश्य था 'तुर्की तुर्कों के लिए'। इसी उद्देश्य का अनुसरण उसके उत्तराधिकारियों—इस्मत, इनोनू तथा वर्त-मान राष्ट्रपति बेलाल बेयर—ने भी किया।

तुर्की की परराष्ट्र नीति पर राष्ट्रवाद का बडा प्रभाव पडा है। १९३४ में

यगोस्लाविया, रूमानिया तथा ग्रीस के साथ मिलकर बालकन-संधि का निर्माण किया, जिसके अनुसार एक दूसरे की सीमाओं की पारस्परिक गारंटी की गई। १९३६ में मोन्ट्रू-संधि द्वारा तुर्की ने डारडेनलेस की घेराबन्दी करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। उसके साथ शर्त यह रही कि शान्ति-काल में विदेशी राष्ट्रों के तमाम व्यापारिक जहाजों के लिए ये खुले रहेंगे। तुर्की ने अलक्जेंड्रेट्टा के सन्जाक को सीरिया से प्राप्त कर लिया। उस समय यह फ्रांसीसी-प्राधिकार-क्षेत्र था। तुर्की ने ईराक, ईरान तथा अफगानिस्तान से भी अनाक्रमण-संधि पर हस्ताक्षर किए।

द्वितीय महायुद्ध में तुर्की युद्ध के अंतिम दौर में तब तक तटस्थ ही रहा, जब तक अन्त में वह संयुक्त राज्य अमेरिका के पक्ष में शामिल नहीं हो गया। १९४७ में अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रूमैन ने तुर्की को महत्वपूर्ण सहायता दी, जिससे वह अपनी सशस्त्र सेनाओं का आधुनिकीकरण करके तथा उनको सुदृढ़ करके डारडेनलेस में आधिपत्यपूर्ण-स्थिति के लिए रूसी दबाव का प्रतिरोध कर सके। इसके बाद १९५२ में तुर्की उत्तर-अतलांतक-संधि-संगठन में शामिल हो गया तथा १९५५ में यह बगदाद-संधि का सदस्य हो गया। इस प्रकार राष्ट्रवाद का परिणाम यह हुआ कि राजनीतिक जागरूकता तथा तुर्की के आधुनिकीकरण में वृद्धि हुई।

ईरान (फारस)—फारस पहला पूर्वी राष्ट्र था, जिसने अपने राष्ट्रीय नेता रेजा खान के दृढ़ नेतृत्व में अपने-आपको यूरोपीय आधिपत्य से मुक्त किया। १९१९ में शाह ईरान ने ब्रिटेन के साथ एक संधि की, जिसके परिणामस्वरूप उसका देश ईरान ब्रिटेन का लगभग रक्षित राज्य बन गया।

जार निकोलस द्वारा ब्रिटेन से की गई १९०७ की विभाजन-संधि के अन्तर्गत, १९२१ में रूस ने ईरान में अपने स्वत्वों का परित्याग कर दिया। ईरान के राष्ट्रवादी क्रुद्ध हो गए तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध तीव्र संघर्ष छेड़ दिया। फरवरी १९२१ में रक्तहीन क्रान्ति के पश्चात रेजा खान ने राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की, जिसके प्रधान मंत्री वह स्वयं बने। उसने ब्रिटेन के साथ संधि की भर्त्सना की तथा पूर्ण स्वाधीनता को दृढ़तापूर्वक स्थापित किया। ब्रिटेन ने उस परिस्थिति को स्वीकार किया तथा ईरान को छोड़ दिया। १९२५ में राष्ट्रीय विधान-मंडल ने शाह के राजवंश को अपदस्थ कर दिया। १९२६ में रेजा खान जो एक राष्ट्रीय जनरल था, शाह रेजा पहलवी के नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ। १९३५ में अधिकृत रूप से फारस का नाम बदल कर ईरान हो गया।

मुस्तफा कमालपाशा के नेतृत्व में जिस प्रकार तुर्की में हुआ, उसी प्रकार रेजा खान के नेतृत्व में ईरान को पाश्चात्य आदर्श पर एक राष्ट्रीय राज्य के रूप में संगठित किया गया। उसने विदेशी राजनीतिक तथा आर्थिक प्रभाव को मिटा दिया। उसने

आंग्ल-ईरानी तेल कम्पनी को इस बात के लिए विवश किया कि अगर वह ईरान में कार्य करना चाहे तो उसकी शर्तें स्वीकार करे। इसने विदेशी पदाधिकारियों तथा सलाहकारों को अपनी फौज में से हटा दिया, विदेशी राष्ट्रों के साथ पूर्ण बराबरी के सम्बन्धों के लिए निश्चय प्रकट किया। राष्ट्रीय सेना, राष्ट्रीय स्कूल-प्रणाली तथा राष्ट्रीय राज-कर प्रणाली का उदय हुआ। एक प्रभुसत्ता-सम्पन्न राष्ट्र के नाते फारस में अब प्रखर राष्ट्रीय जीवन का प्रारम्भ हो गया।

द्वितीय महायुद्ध में अधिकृत रूप से यद्यपि ईरान तटस्थ था, तो भी ऐसा मालूम होता था कि शाह-ईरान जर्मनी-पक्षपाती है और जर्मनी के अधिकार को रोकने के लिए अंग्रेजों तथा रूसियों ने संयुक्त रूप से इस देश पर अगस्त, १९४१ में अधिकार कर लिया। उन्होंने शाह को अपदस्थ कर दिया तथा उसके स्थान पर उसके पुत्र मोहम्मद रेजा को शाह बनाया। २९ जनवरी १९४२ को ब्रिटेन तथा रूस ने ईरान के साथ एक संधि की, जिसके अनुसार ईरान की स्वाधीनता को मान्य ठहराया गया तथा यह प्रतिज्ञा की गई कि युद्ध की समाप्ति के छ महीनों के अन्दर-अन्दर उसके सीमा-क्षेत्र को खाली कर दिया जायगा। यद्यपि ब्रिटिश सेनाएं युद्ध के फौरन बाद ईरान से हट गईं, पर रूसी सेनाएं वहां मई १९४६ तक बनी रहीं। ये रूसी सेनाएं ईरान के अनवरत खुले आम प्रतिरोधों तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् के हस्तक्षेप के बावजूद भी ईरान में जमी रहीं। (पृष्ठ १२९ देखिए)।

१९५१ में एक बार पुनः ईरान के राष्ट्रवाद ने अपने स्वत्व को प्रकट किया, जब आंग्ल ईरानी तेल कम्पनी का राष्ट्रीयकरण किया गया। मार्च ७ को राष्ट्रीय धार्मिक बन्धुत्व संस्था 'फादियाने इस्लाम' के एक सदस्य ने प्रधान मंत्री अली रजमरा की हत्या कर दी। इस हत्या के आठ दिन बाद मजलिस (ईरानी पार्लमेंट) ने सर्व सम्मति से ईरान के तेल उद्योग के राष्ट्रीयकरण के लिए कानून पास किया तथा डा० मुसद्दिक को प्रधान-मंत्री बनाया। १९५३ में जनरल जेहदी ने, जिसे शाह ने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था, सेना के सहयोग से तेल-राष्ट्रीयकरण के अगुवा डा० मुसद्दिक को उखाड़ फेंका। डा० मुसद्दिक पर यह आरोप लगाया गया कि उनकी तुदेह अथवा कामगार दल से सांठ-गांठ है, जो एक साम्यवादी दल था तथा सैनिक न्यायालय के द्वारा उन्हें तीन वर्ष के कारावास की सजा दे दी गई। संयुक्त राज्य अमेरिका ने ३५ करोड़ रुपये की सहायता १९५४ में तथा ५० करोड़ रुपये की सहायता १९५५ में दी। ब्रिटेन ने १३ करोड़ रुपये का ऋण प्रदान किया। प्राचीन सामन्ती स्तरों को समाप्त कर दिया तथा किसानों को अधिकार प्रदान करने के लिए जमींदारों को पुनर्संगठित किया गया। तुदेह पार्टी यद्यपि लुप्त प्राय दिखाई देती है लेकिन अब भी यह पार्टी ईरान में एक शक्ति है। राष्ट्र-

वाद की शक्ति ईरान की एक बडी शक्ति है, यद्यपि अगस्त १९५३ में घोषित मारशल ला अभी तक वहां लागू है। वास्तविक दृष्टि से राजनीतिक दलो का अस्तित्व ही नही है। मतदाताओ को अपने शासको की निष्पक्षता में इतना थोडा विश्वास है कि १९५६ के निर्वाचनो में बहुमत ने अपना मत ही नही दिया। प्रधान मन्त्री हुसैन आला के नेतृत्व में वर्तमान सरकार ने अपनी प्रवृत्ति को जिन मुद्दो पर प्रधानतया सीमित कर रखा है, वे है—बगदाद सधि में सक्रिय सदस्यता तथा नागरिक सेवा में भ्रष्टाचार, निरक्षरता, अफीम तथा इन सबसे भी अधिक निराशावाद तथा मायूसी के विरुद्ध व्यवस्थित तथा योजनाबद्ध आन्दोलन। एडिनबरा-विश्वविद्यालय में फारसी के लेक्चरार एल पी एलवेल-सुट्टन के अनुसार "स्वेज सकट के पश्चात् ईरान मे जनमत का यह सदेह अधिकाधिक जोर पकडता जा रहा है कि अमेरिकी सहायता के पीछे जनता के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा करने के उद्देश्य की अपेक्षा ईरान को युद्ध रचना की दृष्टि से अड्डा बनाने का स्वार्थ अधिक है। ईरान में राष्ट्रवाद के दुबारा फैलने पर सबसे पहले हानि विदेशी सरकारो की होगी। ईरान दल, जो डा० मुसद्दिक के नेतृत्व को मानने वाला दल है (१९५६ में मुसद्दिक को मुक्त कर दिया गया) अभी जीवित है तथा सगठित है।"

मिस्र—१९१४ मे मिस्र ब्रिटिश रक्षित राज्य हो गया लेकिन जल्दी ही राष्ट्रवाद ने साम्राज्यवाद पर विजय प्राप्त की। जग्लुल पाशा के नेतृत्व में मिस्र के राष्ट्रवादियो ने यह मांग की कि ब्रिटेन उनके देश को छोड दे। उन्होने इसके लिए झगडो, षडयन्त्रो, हत्याओ तथा बहिष्कारो का सहारा लिया। यह सघर्ष इतना प्रचण्ड था कि इग्लैंड ने रक्षित राज्य का अपना अधिकार छोड दिया तथा मिस्र को एक स्वाधीन राष्ट्र के रूप में मान्यता दी, लेकिन १९२२ की सधि के द्वारा ब्रिटेन ने निम्नाकित अधिकारो को सुरक्षित रखा—

(१) स्वेज नहर के साथ-साथ तथा मिस्र में अन्य स्थानो पर सेनाएँ ठहराकर ब्रिटिश साम्राज्य के यातायात की सुरक्षा, (२) विदेशी शक्तियो द्वारा मिस्र पर आक्रमण होने की दशा में मिस्र की सुरक्षा तथा मिस्र की परराष्ट्र नीति का निदेशन, (३) विदेशी हितो तथा मिस्र में बसने वाले विदेशियो की रक्षा, (४) सूडान पर नियन्त्रण। नई सरकार का प्रादुर्भाव हुआ। यह सरकार वैधानिक राजशाही सरकार थी, जिसका बादशाह फौद प्रथम था। पार्लमेंट के चुनाव मे मत देने का अधिकार सपत्ति-शालियो को ही था।

इन ब्रिटिश सुविधाओ ने राष्ट्रवादियो को सतोष नहीं हुआ। सैन्यवादी वफद-दल इस बात के लिए आग्रहशील था कि मिस्र को ब्रिटिश आधिपत्य से पूरी

तरह मुक्त किया जाना चाहिए तथा सूडान को भी खाली किया जाना चाहिए। १६३६ में इथोपिया पर इटली की विजय के पश्चात् इगलैंड तथा मिस्र ने एक बीस-वर्षीय सधि पर हस्ताक्षर किये। इस सधि में जो बातें तय की गई वे ये हैं—युद्ध-स्थिति में पारम्परिक सहायता; सूडान पर सयुक्त शासन, स्वेज-नहर क्षेत्र मे ही ब्रिटिश फौजो को रहने की अनुमति, पोर्ट सईद व सिकन्दरिया का जहाजी बेड़े के लिए ब्रिटेन द्वारा उपयोग करने का अधिकार तथा यदि युद्ध हो जाय तो ब्रिटिश सेनाओ को मिस्र में से गुजरने का अधिकार। १६३६ की सधि द्वारा कई सदियो में प्रथम बार मिस्र को एक स्वाधीन राष्ट्र का दर्जा प्राप्त हुआ। १६४५ में मिस्र के राष्ट्रवादियो ने मिस्र से ब्रिटिश सेनाओ के हटाने की मांग की। ये सेनाएँ द्वितीय महायुद्ध में जर्मनो तथा इटालियनो से युद्ध करने के लिए मिस्र में गई थी। ब्रिटेन के समर्थन से मिस्र के राष्ट्रवादियो ने अरब-सघ को जन्म दिया। इस सघ को नवीन इजराइल राज्य के उदय को अवरुद्ध करने, फिलस्तीन में यहूदियो के अधिकार-दावो का विरोध करने तथा इसके साथ मे अरब-देशो के लिए स्वाधीनता प्राप्त कराने के लिए जन्म दिया गया। आग्ल-मिस्री-सम्बन्ध कटु ही रहे। १६५२ में नहश पाशा की वफद सरकार (१६५०-५२) को शाह फारूक ने बर्खास्त कर दिया। आंतरिक राजनीति में अव्यवस्था तथा विधि हीनता फैल गई। कोई भी सुदृढ सरकार सत्तारूढ न रह सकी। इसका कारण फारूक का हस्तक्षेप तथा उसकी बुरी सगत ही थी। अकस्मात जुलाई २६, १६५२ को मिस्र की राजधानी काहिरा में एक सैनिक क्रांति हो गई। यह क्रान्ति सेना के सुयोग सेना-नायको—जनरल नगीब तथा कर्नल नासर—के नेतृत्व में हुई। विद्रोही राष्ट्रवादियो ने शाह फारूक को अपदस्थ कर दिया तथा एक क्रांति-परिषद् की स्थापना की जो मिस्र-सरकार की बुराइयो को दूर करने, सामाजिक एव आर्थिक प्रणाली में सुधार करने तथा मिस्र को विदेशी नियन्त्रण से मुक्त करने को कृत-सकल्प हुई। बिना किसी रक्तपात के उन्होने शाह से छुटकारा पाया, बडी बडी तनख्वाहे पाने वाले राजनीतिक सलाहकारो को अपदस्थ किया तथा सभी राजनीतिक दलो को समाप्त कर दिया। भूमि सुधार को लागू किया गया कृषि-भूमि के दसवें भाग को बडे-बडे जमीदारो से छीनकर पांच वर्ष के अन्दर कृषको में बांटा। बडे-बडे जमीदारो के पास अधिक से अधिक जमीन तीन सौ एकड रखी गई तथा जो जमीन उनसे छीनी गई उनके लिए उन्हे क्षति पूर्ति दी गई। यह क्षति-पूर्ति स्वय जमींदारो के द्वारा अपने करो के नक्शो में दिखाए गए दरो के अनुसार दी गई। गरीबो पर कर के बोझ को हल्का किया गया। मिस्री राष्ट्रवाद के एक नेता के रूप में कर्नल नगीब ने सूडान की समस्याओ पर ब्रिटेन से एक समझौता कर लिया। मिस्र को विदेशी आधिपत्य से मुक्त करने के लिए राष्ट्रवादियो ने नहर-क्षेत्र से

ब्रिटिश सेनाओं को हटाने की माग की। अपने तोड-फोड तथा आतकवादी कार्यो से मिस्रियो ने यह स्पष्ट कर दिया कि अब ब्रिटेन मिस्रियो के समर्थन पर भरोसा नही रख सकेगा। आठ वर्षो की निष्फल बातचीत के पश्चात् ब्रिटेन को झुकना पडा।

जुलाई १९५४ में कर्नल नासर (नगीब को देशद्रोह के अभियोग मे बर्खास्त कर दिया गया था) ब्रिटेन को बीस महीनो के अन्दर स्वेज-क्षेत्र को खाली करने के लिए बाध्य करने में सफल रहा। सिचाई तथा जल-विद्युत-शक्ति के लिए आसवान-बांध के निर्माण के लिए २६ जुलाई, १९५६ को स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया, जिसके परिणाम स्वरूप ब्रिटेन फ्रांस तथा इज़राइल ने २९ अक्तूबर को मिस्र पर सयुक्त आक्रमण कर दिया, जो रूस तथा सयुक्त राष्ट्र सघ के हस्तक्षेप के कारण ७ नवम्बर को समाप्त हो गया। २३ जून, १९५६ को मिस्र ने एक नवीन सविधान अगीकार किया, जिसमें मिस्र को सर्व-प्रभुत्व-सम्पन्न स्वाधीन राष्ट्र घोषित किया गया। इस सरकार का स्वरूप गणतन्त्रीय रखा गया, जिसमें राजकीय धर्म इस्लाम को माना गया तथा सरकारी भाषा का स्थान अरबी को प्रदान किया गया। विधि के समक्ष समानता, सुदृढ राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था, भाषण तथा प्रेस की स्वतन्त्रता, व्यक्तिगत सम्पत्ति की सुरक्षा, जमीन की मिलकियत के आकार पर रोक—इन सब की स्थापना की घोषणा सविधान में की गई है। विधायक अधिकार राष्ट्रीय विधान-सभा का रहेगा, जो हर पाँच वर्ष बाद विशिष्ट विधि के आधार पर चुनी जायगी। गणराज्य का राष्ट्रपति, जिसे राष्ट्रीय विधान-सभा की सिफारिश पर आम जनता चुनती है, राज्य का प्रमुख होता है तथा सेना का प्रधान सेनापति भी होता है। वह छ वर्ष तक अपने पद पर रहता है। गमाल अब्दल नासर मिस्र के प्रथम राष्ट्रपति चुने गए। जुलाई, १९५६ मे यह प्रस्ताव किया जा रहा है कि मिस्र तथा सीरिया को मिलाकर एक सघीय राज्य बना दिया जाय, जो केवल परराष्ट्र, सैनिक तथा आर्थिक मामलो में एक ही नियन्त्रण में सहयोग करे। २६ फरवरी १९५७ को उच्च अधिकार प्राप्त सम्मेलन हुआ, जिसमें जोर्डन ने भी सीरिया तथा मिस्र के साथ प्रस्तावित सघ में शामिल होने की इच्छा व्यक्त की।

साऊदी अरब —अरब राष्ट्रवाद की एक अन्य उल्लेखनीय सफलता स्वतन्त्र साऊदी अरब राज्य को स्थापित करने की है। १९१६ में ब्रिटेन की सहायता से शेरिफ हुसैन ने तुर्की के विरुद्ध सफल क्रान्ति की तथा शाह हेजाज की उपाधि ग्रहण की। उसका एक बेटा अमीर अब्दुल्ला ट्रासजोर्डन का अमीर बन गया। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् उसे जोर्डन के हशमीत राज्य के स्वतन्त्र शाह की उपाधि प्रदान की गई।

१९५१ में उसका वध कर दिया गया। दूसरा लड़का फैसल, ईराक का शाह बन गया। १९२३ में शेरिफ हुसैन ने खलीफा (मुस्लिम जगत का आध्यात्मिक प्रमुख) की उपाधि धारण की। लेकिन नजद के अमीर इब्न साऊद ने उसके दावों को चुनौती दी तथा उसने हुसैन को अपने राजनीतिक तथा आध्यात्मिक पदों को छोड़ने को विवश करने में सफलता पाई। कूटनीति तथा युद्ध से इब्न साऊद अरब का प्रमुख नेता हो गया। १९२७ में इब्न साऊद ने ब्रिटेन के साथ मित्रता की सन्धि की जो "समानता के आधार पर ब्रिटेन द्वारा किसी भी आधुनिक राज्य को स्वीकृत यह प्रथम मित्रता सधि थी।" १९३४ में उसने अपने नए राज्य का नाम साऊदी अरब रख लिया। उसने अरब अमेरिकी तेल कम्पनी (ARAMCO) को तेल निकालने के सुविधाजनक अधिकार दिये। इनमें अमेरिका का व्यापारिक हित है तथा यही इब्न साऊद की आय का प्रमुख साधन है। १९४५ से उसने देश को शक्तिशाली बनाने तथा अन्तर्राष्ट्रीय जगत में शान्ति बनाए रखने की नीति का अनुसरण किया है। उसने सड़कें बनवाई हैं, रेलें चालू करवाई हैं, स्वास्थ्य कार्यक्रमों का श्रीगणेश किया है तथा अपनी राजधानी रियाद में बिजली तथा दूसरे सुधारों को प्रचलित किया है। उसने आधुनिक बंदरगाहों का निर्माण किया है। ८ फरवरी १९५७ में उसने अमेरिका से एक सधि की। इस सधि में साऊदी अरब की सेना के प्रशिक्षण एवं सुसज्जा तथा उसके आर्थिक विकास में सहायता देने का मूल मुद्दा है। साऊदी अरब स्वेज पर मिस्र की प्रभु-सत्ता को मान्यता देता है। अरब संघ का समर्थन करता है, अल्जीरिया की स्वतन्त्रता तथा अरब जनता में घनिष्ठ सहयोग चाहता है। बरैमी नखलिस्तान पर ब्रिटिश आधिपत्य तथा विदेशी आक्रमण के खतरे के विरुद्ध साऊदी अरब में राष्ट्रवाद जागरूक एवं सक्रिय है।

यमन—प्रथम महायुद्ध में यमन तुर्की के पक्ष में रहा। दोनों महायुद्धों के बीच के समय में ब्रिटेन के साथ यमन के सम्बन्ध शत्रुतापूर्ण हो गए। कारण यह था कि याहिया ने अदन के रक्षित प्रदेश से, जिस पर यमन ने अधिकार-दावा किया था, अपनी कबीली सेनाओं को हटाने से इन्कार कर दिया था। आंग्ल-यमनी सधि के नाम से प्रसिद्ध एक संधि फरवरी १९३४ में हुई, जिससे २२ वर्षों तक सीमा पर होने वाले आक्रमण बंद रहे। ये आक्रमण दिसम्बर १९५६ से फिर प्रारम्भ हो गए। १९५७ के प्रारम्भ की प्रेस-सूचनाएं इस बात की ओर संकेत करती हैं कि ब्रिटेन-प्रशासित अदन में यमन की ओर से होने वाले कबायली आक्रमणों को दबाने के लिए ब्रिटेन सैनिक-पग उठा रहा है। इसको यमन बड़े पैमाने पर आक्रमण कहता है। अस्तु, यमन में राष्ट्रवाद का समर्थक तत्त्व अदन पर अधिकार करना चाहता है। अतः सीमा-सम्बन्धी प्रश्न अभी तक लटका पड़ा है। यमन अरब-संघ में शामिल हो गया तथा

अरब राष्ट्रवाद को दृढ करने के लिए अपना भाग अदा किया। यमन कभी भी विदेशी दासता में नही रहा। लेकिन खानाबदोश जन सख्या तथा कबायली निरक्षर जातिया और बाह्य दुनिया से सपर्क न होना, ये सब बाते यमन के राष्ट्रवाद के विकास में बाधक हैं।

ईराक (मेसोपोटामिया)—प्रथम महायुद्ध में ईराक पर ब्रिटेन के आधिपत्य ने ईराकी राष्ट्रवाद को प्रेरित किया। १९२० मे पूर्ण तथा तुरन्त स्वाधीनता के लिए ब्रिटेन को गम्भीर क्राति का सामना करना पडा। इसका परिणाम यह हुआ कि इसे राष्ट्रसघ की देख-रेख में, ब्रिटिश प्रशासन के साथ आदिष्ट क्षेत्र बना दिया गया। काफी अशो मे स्वायत्त शासन स्वीकार कर लिया गया तथा हेजाज के शाह फैजल के अन्तर्गत राजवश की नीव पडी। १० अक्तूबर १९२२ को एक बीस वर्षीय सधि पर हस्ताक्षर हुए। इस सधि मे आग्ल ईराकी सम्बन्धो की परिभाषा की गई थी। १९२६-२७ में राजनीतिक सुविधाओ की माँग के परिणामस्वरूप सधि को फिर से दुहराया गया। अन्तत १९३२ मे स्थानीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने ब्रिटेन को इसके लिए विवश कर दिया कि वह आदिष्ट प्रणाली को समाप्त करके ईराक को पूर्ण स्वाधीनता की स्वीकृति दे दे तथा साथ ही उसे राष्ट्रसघ की सदस्यता प्रदान की जाय। लेकिन ३० जून १९३० को पच्चीस वर्षीय आग्ल ईराकी सधि ने ब्रिटेन को यह अधिकार दे दिया कि वह बाह्य आक्रमणो से ईराक की रक्षा करे। युद्ध की स्थिति मे ईराक इसके लिए वचन-बद्ध था कि "रेलवे, नदियो, बन्दरगाहो, हवाई अड्डो तथा यातायात के साधनो" के उपयोग की सुविधा तथा सहायता प्रदान करे। शीतयुद्ध के एक लक्षण के रूप मे साम्य-वादी प्रवृत्तियो ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि १६ जनवरी १९४८ को सधि की शर्तों के पुनरीक्षण पर हस्ताक्षर पोर्ट्स माउथ में हुए। ब्रिटेन की ओर से ब्रिटेन के परराष्ट्र सचिव अर्नेस्ट बेविन तथा ईराक की ओर से ईराकी प्रधानमन्त्री सलेह जाबर ने हस्ताक्षर किये। इस सधि के अन्तर्गत ब्रिटेन ने राजकीय रेलवे तथा बसरा बन्दरगाह का आशिक नियन्त्रण ईराक को सौंपा। साथ ही हब्बनिया तथा शुयाबा के हवाई अड्डे भी ईराक को वापस सौंप दिऐ गए, यद्यपि आर० ए० एफ० (रोयल एयर फोर्स) द्वारा इन हवाई अड्डो को निरन्तर क्रियाशील बनाए रखने की व्यवस्था हुई। इसके अलावा एक सयुक्त प्रतिरक्षा मण्डल बना जिसमें ब्रिटेन तथा ईराक को समान प्रतिनिधित्व दिया गया। इस मडल का कार्य प्रतिरक्षा नीति को नियामकता प्रदान करना था। ईराक को केवल ब्रिटिश सैनिक प्रशिक्षको को ही नियुक्त करना था। इस सधि के समाचार का स्वागत बगदाद में दगो से हुआ, जिसमें २० व्यक्ति मारे गए तथा २०० घायल हुए। पोर्ट्स माउथ सधि की अभिपुष्टि कभी नहीं हुई तथा तब तक ईराक ब्रिटेन के साथ हुई १९३० की सधि को ही अस्थिर मान्यता देता रहा, जब तक

कि अप्रैल १९५५ में एक अभिनव सन्धि की अभिपुष्टि नहीं हो गई। इस संधि के अनुसार ईराकी राष्ट्रवादियों को और अधिक सुविधाएँ दी गईं। इसके अनुसार हवाई अड्डे अब ईराक के हो गए तथा उनका सचालन रायल ईराकी एयर फोर्स द्वारा होने की व्यवस्था हो गई, यद्यपि सयुक्त प्रशिक्षण के उद्देश्य के लिए रायल एयर फोर्स के क्षेत्रीय कर्मचारी मण्डल को ठहरने की अनुमति मिली। ईराक बगदाद सधि में शामिल हो गया जिसका विरोध उत्साही राष्ट्रवादियों के एक वर्ग ने अक्तूबर १९५६ में किया जबकि मिस्र पर इङ्गलैंड, फ्रास और इजराइल ने सयुक्त आक्रमण किया। ईराक अब अरब सघ का सक्रिय सदस्य नहीं रहा है तथा इसने तुर्की, ईरान तथा पाकिस्तान से गठबन्धन कर लिया है।

सीरिया-लेबनानः—सीरिया-लेबनान में बेरुत, एलप्पो तथा दमिश्क के फ्रांसीसी स्कूलों के द्वारा फ्रासीसी क्रान्ति से उत्पन्न विचार फैलने लगे। १९१८ में शेरिफ हुसैन के पुत्र शाह फैजल ने ब्रिटिश धन तथा अस्त्रों की सहायता से इस क्षेत्र पर नियन्त्रण कर लिया। जुलाई १९२० में फ्रास ने, सर्वोच्च मित्र-राष्ट्रीय युद्ध-परिषद से इस क्षेत्र का अधिकार प्राप्त कर लेने पर दमिश्क पर कब्जा कर लिया और शाह फैजल की सेनाओं को मेसैलुन के स्थान पर कुचल दिया। इसने सीरियायी राष्ट्रवादियों को कटु तथा निडर बना दिया। १९२५-२७ के बीच इन्होंने विद्रोह किया तथा फ्रास को इसके लिए विवश कर दिया कि वह पूर्ण स्वाधीनता के सिद्धान्त को बतौर फ्रासीसी प्रशासन के उद्देश्य के रूप में स्वीकार करे। ९ सितम्बर १९३६ को एक २५ वर्षीय सधि पर हस्ताक्षर हुए। इस सधि में सीरिया और लेबनान का पृथक्करण, फ्रास को विशिष्ट सैनिक अधिकार तथा सीरिया को पूर्ण स्वाधीनता की व्यवस्था की गई। फ्रास द्वारा इस संधि की अभिपुष्टि कभी नहीं हुई। उन्होंने राष्ट्रसघ के समक्ष यह शिकायत रखी कि इकट्ठे रहने वाले तथा बिखरे हुए ईसाई अल्पसख्यकों को सुरक्षा की पर्याप्त गारन्टी नहीं दी गई है।

८ जून, १९४१ में फ्रास की पराजय के पश्चात् जनरल काटरू ने सीरिया तथा लेबनान की स्वाधीनता घोषित कर दी। लेकिन बाद में फ्रास ने विशेष आर्थिक तथा सामरिक सुविधाएं चाहीं। छ सौ जानें जाने के पश्चात् आग्ल-अमेरिकी हस्तक्षेप द्वारा १९४५ में फ्रास की पुलिस कार्यवाही को तुरन्त रोक दिया गया तथा अप्रैल १९४६ में सुरक्षा परिषद में यातना के पश्चात् फ्रासीसी सिपाहियों ने सीरिया-लेबनान खाली कर दिया (पृष्ठ १२६ देखिए)। इस प्रकार राष्ट्रीय आदोलन के परिणाम-स्वरूप द्वितीय महायुद्ध में जर्मनी के हाथों फ्रांस के पराभव पर सीरिया तथा लेबनान पूर्ण स्वाधीन हो गए।

जोर्डन —ट्रांस जोर्डन, जो ब्रिटिश आदिष्ट क्षेत्र के अन्तर्गत फिलस्तीन का भाग था, का एक पृथक क्षेत्र के रूप में प्रादुर्भाव हुआ। २५ मई १९२५ को अमीर अब्दुल्ला को अंग्रेजो द्वारा यह छूट दे दी गई कि वह ट्रांस जोर्डन की स्वाधीनता की घोषणा कर सके। लेकिन इस घोषणा के लिए राष्ट्रसंघ की स्वीकृति अपेक्षित होगी तथा ब्रिटेन को विशिष्ट वित्तीय तथा सैनिक अधिकार प्राप्त होंगे। २० फरवरी १९२८ की आँग्ल-जोर्डन संधि ने विशेष विधायक तथा प्रशासनिक अधिकार नाम मात्र को सौंप दिए तथा इस संधि के द्वारा ब्रिटिश सलाहकारों को जोर्डन में बने रहने की भी व्यवस्था की गई। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् २२ मार्च, १९४६ को जोर्डन पूर्णरूपेण स्वाधीन हो गया तथा १९४८ में ब्रिटेन के साथ गठबंधन में पूरी तरह शामिल हो गया। ब्रिटेन ने अकावा तथा माल्फाक के अड्डो पर अधिकार कर लिया तथा जोर्डन को इसके बदले में लगभग १६ करोड रुपये की वार्षिक सहायता देनी प्रारम्भ कर दी। १९५१ में अब्दुल्ला की हत्या कर दी गई। शाह हुसैन ने उत्तराधिकार ग्रहण किया। उग्र राष्ट्रीय दल ने शाह को इस बात के लिए विवश कर दिया कि वह अरब सेना के प्रवर्तक जनरल ग्लब पाशा को बर्खास्त कर दे तथा १८-२१ दिसम्बर १९५५ के बीच हिंसक दंगे करके बगदाद संधि मे शामिल होने के लिए अपनी अनिच्छा व्यक्त की। नये निर्वाचनो के पश्चात् सुलेमान नबुलसी के नेतृत्व मे बनी सरकार ने १९४८ की आँग्ल-जोर्डन संधि को समाप्त करने का निर्णय किया, जो पहली अप्रैल १९५७ से लागू होगा, जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश सेनाए छ महीने के अन्दर जोर्डन को खाली कर देंगी। मिस्र, साउदी अरब तथा सीरिया इसके लिए सहमत हो गए हैं कि वे १६ करोड रु० वार्षिक जोर्डन को उसके आंतरिक विकास तथा अरब शरणार्थियो के पुनर्वास के लिए दे।

३६ वर्ष तक अरब देशों में नौकरी कर चुकने के पश्चात जोन बागोट ग्लब्ब का कथन है कि अरब राष्ट्रवाद "पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा आधिपत्य की किसी भी कल्पना के विरोध में विशेष प्रकार से भावनाशील तथा प्रतिशोधात्मक है।" तो भी हाल ही का इतिहास यह बताता है कि अरब राष्ट्रों के बीच किस हद तक विभाजनकारी तथा विघटनकारी तत्त्व विद्यमान हैं तथा पश्चिमी राष्ट्रों के प्रति उनका रुख किस प्रकार असमान है। मिस्र, सीरिया, साऊदी अरब तथा जोर्डन फिलिस्तीन में इजरायली तथा यहूदी अधिकार के संयुक्त रूप से विरोध मे हैं, जबकि दूसरी ओर ईराक, तुर्की और ईरान ब्रिटेन के साथ बगदाद संधि के सक्रिय सदस्य हैं। इतने पर भी वे उपनिवेशवाद तथा पश्चिमी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संगठित हैं। वे ट्यूनीसिया तथा मोरक्को को फ्रांसीसी आधिपत्य से मुक्त करने मे सफल हुए हैं। उन्होंने १९५६ में उन्हें संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता भी प्राप्त करा दी है और केवल फ्रांस अधीनस्थ

अल्जीरिया, ब्रिटेन अधीनस्थ बुरैमी नखलिस्तान तथा अदन और यहूदी राज्य इज-राइल के साथ अन्तिम फैसले तथा स्वेज नहर प्रश्न आदि समस्याओं का हल होना अभी शेष है। १० फरवरी, १९५७ को राष्ट्रपति नासर ने ठीक कहा है : "अरब-राष्ट्रवाद जो स्वाधीनता की समान प्रेरणा है, अटलांटिक से फारस की खाड़ी तक फैल रहा है। राष्ट्रवाद उन साम्राज्यवादी षड्यन्त्रों के विरुद्ध एक सुरक्षात्मक कवच है, जिनका उद्देश्य हमारे देशों पर आधिपत्य स्थापित करना है। अरब राष्ट्रवाद जिस पर हमारा विश्वास है, आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा एवं प्रतिरक्षा के पारस्परिक समान हित का नाम है। हम अरब राष्ट्रवाद को स्थायी बनाने के लिए सतत संघर्षशील रहेंगे।" अरब-लीग, जिसका हमने अध्ययन किया है, एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्था है, जो अरब राष्ट्रों के राष्ट्रवाद को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है। २६ फरवरी, १९५७ में मिस्र के राष्ट्रपति नासर, साऊदी अरब के शाह इब्न सऊद, जोर्डन के शाह हुसैन तथा सीरिया के राष्ट्रपति शुक्री-एल-कुअतली ने काहिरा में इस पर चर्चा की कि पश्चिमी शक्तियों के प्रति हमारा क्या रुख रहे। इस उच्चस्तरीय वार्ता में मिस्र, सीरिया, तथा जोर्डन ने अरब-विश्व के संयुक्त राज्यों के संघ की स्थापना के लिए अपने विचार व्यक्त किये हैं।

२ फिलस्तीन समस्या

महासभा के दूसरे विशिष्ट सत्र के प्रधान अर्जेन्टाइना के जोस आर्क ने फिल-स्तीन समस्या पर टिप्पणी करते हुए कहा, "फिलस्तीन की समस्या उत्तराधिकार में राष्ट्रसंघ (League of Nations) से संयुक्त राष्ट्रसंघ (U N O) को प्राप्त हुई है, जिसका कारण-विवरण अप्राप्त रहा है तथा उपनिवेशवाद में अद्वितीय राष्ट्र ३० वर्ष में भी इसे हल करने में असफल रहा है।" इस समस्या में अरबों तथा यहूदियों के स्वार्थों के टकराव की ही समस्याएं सन्निहित नहीं है, अपितु ब्रिटेन तथा अमेरिका के सामरिक तथा आर्थिक हित भी है।

यह स्मरणीय है कि सिवाय कुछ क्षेत्रीय अपवादों के ब्रिटेन द्वारा अरबों को 'बिना शर्त स्वाधीनता' की प्रतिज्ञा के बावजूद २ नवम्बर, १९१७ को प्रसिद्ध बाल-फोर-घोषणा की गई जिसमें "फिलस्तीन में यहूदी जनता के लिए एक 'अपने राष्ट्र' की प्रस्थापना की प्रतिज्ञा की गई और साथ ही यह भी स्पष्ट रूप से आश्वासन दिया गया कि फिलस्तीन में रहने वाली गैर-यहूदी जातियों के नागरिक तथा धार्मिक अधिकारों पर किसी प्रकार का विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा।" इस घोषणा का उद्देश्य यह था कि आंग्ल-फ्रांसीसी शक्तियों के हित के लिए जर्मनी तथा आस्ट्रिया के विरुद्ध विश्व भर के यहूदियों का समर्थन प्राप्त हो सके, ताकि उनसे वित्तीय सहायता प्राप्त हो सके।

वीजमान ने कहा था कि फिलस्तीन मे यहूदी राज्य की स्थापना स्वेज नहर की सुरक्षा के लिए बहुत महत्वपूर्ण होगी। इस प्रकार फिलस्तीन मे यहूदी राष्ट्र का जन्म ब्रिटेन के साम्राज्यवादी सामरिक मनसूबो के पूरा होने का ही एक अंग था।

लार्ड बालफोर ने स्वयं ब्रिटिश-नीति तथा प्रतिश्रव के बीच विरोधाभास को स्वीकार किया, "मेरी समझ में यह कभी नही आया कि घोषणा तथा प्रतिश्रव (Covenant) मे सामञ्जस्य कैसे लाया जा सकता है। हम यहूदी राज्य की स्थापना के लिए प्रणबद्ध है, चाहे यह बात गलत हो या सही, चाहे इसका परिणाम बुरा हो या अच्छा।" राष्ट्रपति विल्सन इस नीति से पूर्णतया सहमत थे, यद्यपि एच० सी० किंग-सी० आर० क्रेन कमीशन (जुलाई, १९१९) के गोपनीय प्रतिवेदन में कहा गया था, "यहूदी राज्यवादियो को इस बात की आशा है कि फिलस्तीन मे रहने वाले गैर-यहूदियो को विभिन्न प्रलोभनो द्वारा वहाँ से हटा दिया जायगा ताकि फिलस्तीन 'पृथक यहूदी राज्य' बन सके।"

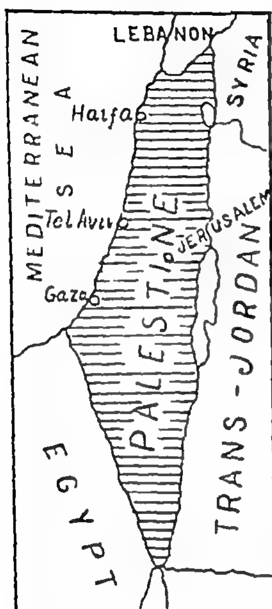
इसके बाद की ब्रिटिश-नीति उलझनपूर्ण थी। १९२२ मे तत्कालीन उपनिवेश मन्त्री चर्चिल ने कहा "ब्रिटिश सरकार ने अरब जनसख्या को आधीन करने या उनके समाप्त करने के लिए कभी नही सोचा।" साथ ही यहूदियो को यह आश्वासन दिलाया कि "वे फिलस्तीन में अपने अधिकार के बल पर रह रहे है न कि किसी की मेहरबानी के कारण।" यहूदी विस्थापितो के लगातार आने से अरबो ने विद्रोह कर दिया। इसके परिणामस्वरूप १९३० में शॉ-आयोग की नियुक्ति हुई। इस आयोग ने अरबी फिलस्तीन में आने वाले यहूदी विस्थापितो पर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता पर बल दिया। वाइजमान के नेतृत्व मे यहूदियो ने दृढता से इसका प्रतिकार किया तथा तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमन्त्री मैकडानॉल्ड ने घोषणा की कि "यहूदियो को दिये गये वायदो से ब्रिटेन का पीछे हटने का कोई इरादा नही है और यदि वे चाहे तो फिलस्तीन में जमीन खरीद सकते है।" अरबो की भूमि के यहूदियो के हाथो में चले जाने के नियन्त्रण के प्रश्न को ब्रिटेन ने कोई महत्त्व नही दिया। हिटलर द्वारा यहूदियो को त्रस्त किये जाने पर यहूदी विस्थापितो की संख्या ९००० वार्षिक से बढकर १९३५ में ६२००० वार्षिक हो गई। इस तेज बढोतरी ने अरबो को सावधान कर दिया तथा उन्होने ये मांगे रखीं (१) फिलस्तीन में जनतन्त्रीय सरकार, (२) यहूदियो के भूमि हस्तान्तरण पर निषेध, (३) यहूदी निष्क्रान्तो को फिलस्तीन में प्रवेश करने से तत्काल रोका जाय। ब्रिटेन ने इन मागो की अवहेलना की। परिणामस्वरूप १९३६ में दंगे हुए। इन गड़बड़ी के कारणो की जांच के लिए लार्ड पील के नेतृत्व में एक शाही आयोग की नियुक्ति हुई। जुलाई १९३७ मे पील-कमीशन ने यह प्रतिवेदन प्रस्तुत किया कि अरबो तथा यहूदियो की आकांक्षाओ में इतना मतभेद है कि इनमें

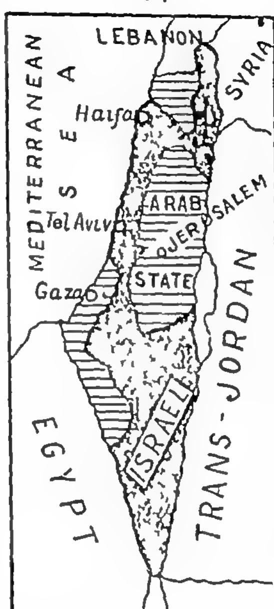
कोई समझौता नहीं हो सकता और इसलिये यह योजना प्रस्तुत की कि फिलस्तीन को अरब-राज्य तथा यहूदी-राज्य दो भागों में विभाजित कर दिया जाय। १९३८ में वुड-हैड-आयोग ने इस विभाजन-योजना को ठुकरा दिया क्योंकि यहूदी-राज्य की कुल जनसंख्या में ४९% अरब अल्प मत होता था तथा अरबों ने तो इस विभाजन योजना को स्वीकार ही नहीं किया। मई १९३९ में ब्रिटेन ने घोषणा की कि फिलस्तीन कभी भी यहूदी राष्ट्र नहीं बनना चाहिए, क्योंकि यह फिलस्तीन में अरबों के प्रति उनके उत्तरदायित्वों के विपरीत है। इसीलिए आगामी पाँच वर्षों में यहूदी निष्क्रान्तों की संख्या ७५००० तक ही सीमित रही। यहूदियों ने इस घोषणा को विश्वासघात बताकर भर्त्सना की।

युद्ध के बीच (१९३९-१९४५) यहूदी राज्यवादियों ने अपनी प्रमुख राजनीतिक प्रवृत्तियों को संयुक्त राज्य अमेरिका में चालू किया। मई १९४२ के अपने प्रसिद्ध बिल्टमोर-कार्यक्रम का उनका उद्देश्य अमेरिका में रहने वाले धनवान यहूदियों के सक्रिय सहयोग से फिलस्तीन में यहूदी राज्य स्थापित करना था। धीरे-धीरे, लेकिन स्थिरता से उन्होंने अमेरिकी राष्ट्रपतियों—रुजवेल्ट तथा ट्रूमैन—का सहयोग प्राप्त किया तथा फिलस्तीन में यहूदी-अभिकरण के अध्यक्ष बेन गुरियों के सक्रिय सहयोग से हगना, पालमच, इरगुन ज्वै ल्यूमी, स्टर्न गैंग आदि गुप्त संस्थाओं द्वारा आतंकवादी आन्दोलन प्रारम्भ किया। आँग्ल-अमेरिकी-पूछताछ-समिति, प्रांतीय स्वशासन की ग्रेडी-योजना तथा अस्थायी प्रन्यास-योजना आदि के रूप में जब सब प्रयास विफल हो गये तो ब्रिटेन द्वारा यह प्रश्न २ अप्रैल, १९४७ को महासभा को सौंप दिया गया।

१३ मई, १९४७ को महासभा के प्रथम विशेष अधिवेशन में फिलस्तीन पर संयुक्त राष्ट्रसंघ-विशिष्ट-समिति (UNSCOP) की स्थापना की गई। इस समिति में बड़ी शक्तियों को छोड़कर ग्यारह सदस्य राष्ट्र शामिल थे जिनके नाम हैं कनाडा, जेकोस्लोवाकिया, ग्वाटमाल, नीदरलैंड, पेरू स्वीडन, उरगुए, आस्ट्रेलिया, भारत, ईरान तथा यूगोस्लाविया। ३१ अगस्त को यून्स्कोप ने सर्वसम्मत निर्णय किया कि 'व्यावहारिक दृष्टि से सम्भव तिथि को' ब्रिटिश आदिष्ट प्रणाली को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। यून्स्कोप के प्रथम सात सदस्यों ने फिलस्तीन के विभाजन के पक्ष में अपना मत प्रकट किया। विभाजन इस प्रकार हो: (१) अरब राज्य, (२) यहूदी राज्य तथा (३) यरुसलम का शहर, जो अन्तर्राष्ट्रीय प्रन्यास प्रणाली के अन्तर्गत हो तथा यह व्यवस्था हो कि वह दोनों के साथ आर्थिक सहयोग कर सके। यून्स्कोप के अन्तिम तीन सदस्यों ने एक संघीय राज्य की प्रस्तावना की, जो तीन साल बाद बने, क्योंकि विभाजन-योजना, जिसका उद्देश्य "आवश्यक आर्थिक तथा सामाजिक एकता प्राप्त करना बताया जाता है, अव्यावहारिक तथा ऐसी है जिसे कार्यान्वित नहीं किया

जा सकता, विशेषकर ऐसी स्थिति में जब कि पहले राजनीतिक तथा भौगोलिक विघटन उत्पन्न कर दिया गया हो।"





ब्रिटेन तथा यहूदियों द्वारा विभाजन-योजना हिचकिचाहट के पश्चात् स्वीकार की गई, यद्यपि ब्रिटिश-उपनिवेश सचिव, क्रीच जोन्स, ने महासभा को स्पष्ट बता दिया कि "ब्रिटेन फिलस्तीन में शक्ति द्वारा कोई भी नीति लागू करने को तैयार नहीं है।" अरब उच्चतर समिति के हुसैनी ने, जिन्होंने यून्स्कोप का बहिष्कार किया था, घोषणा की कि १९१७ की बालफोर-घोषणा यहूदियों को दिये जाने वाले वायदे के रूप में एक 'अनैतिक, अनुचित तथा गैर कानूनी" वायदा था क्योंकि मित्र राष्ट्रों के नाम पर ब्रिटेन ने एक 'मुक्त-कर्ता' के रूप में फिलस्तीन पर अधिकार किया था, न कि 'एक विजेता' के रूप में। रूस तथा अमेरिका ने विभाजन-योजना का समर्थन किया। २९ नवम्बर, १९४७ को महासभा ने दो तिहाई के आवश्यक बहुमत पर बहुत ही थोड़े अन्तर से (२ मतों से) विभाजन योजना का अंगीकार कर लिया। साऊदी अरब के अमीर फैसल-अल-साउद ने कहा "हमने यह अनुभव किया कि कुछ बड़ी शक्तियों ने दबाव डाला है, जिससे विभाजन के पक्ष में मत आये।" ईराक के अलजमाली का कथन था 'यून्स्कोप द्वारा महासभा पर यह एक बड़ा दबाव तथा प्रभाव था, जिसने

मामले को इस तरह मोड़ा कि उनका अन्तिम परिणाम विभाजन-योजना को अंगीकार करने के रूप में हुआ।" सीरिया के अमीर अर्सलान ने, मौत की आशा प्राप्त व्यक्ति की-सी मायूस भावना से घोषणा की, "सज्जनो, संयुक्त राष्ट्र संघ अधिपत्र मर चुका है, लेकिन इसकी यह मृत्यु स्वभाविक नहीं हुई अपितु जान बूझकर इसकी हत्या की गई है और आप सब लोग जानते हैं कि इस पाप का भागी कौन है। मेरा देश इस निर्णय को कभी नहीं मानेगा।"

निश्चित रूप से अब यह पता-लगा है कि विभाजन की सफलता का निश्चय अन्तिम क्षण हुआ, जब लिबेरिया, फिलीपीन्स तथा हैटी के तीन मत पक्ष में चले गये (मतदान इस प्रकार था ३३ १३)। इन तीनों ने तदर्थ समिति में मत नहीं दिया था। तत्कालीन अमेरिकी प्रतिरक्षा सचिव जेम्स फोरेस्टल ने यह स्वीकार किया है कि "इन तीन मतों को प्राप्त करने के लिए अमेरिका की ओर से गैर-सरकारी रूप से पर्याप्त दबाव डाला गया था।" "सरकार की कार्यपालिका शाखा के बाहर के व्यक्ति, महासभा में दूसरे राष्ट्रों पर दबाव डालने के लिये जिन तरीकों को काम में लाये थे, वे तरीके अनियमितता की सीमा में आ गये।"

महासभा ने विभाजन-योजना को लागू करने का भार बोलिविया, जैकोस्लोवाकिया, डेनमार्क, पनामा तथा फिलीपीन्स के प्रतिनिधियों को सौंपा जिनको ब्रिटेन ने फिलस्तीन में प्रविष्ट नहीं होने दिया। ११ दिसम्बर, १९४७ को ब्रिटिश सरकार ने घोषित किया कि १५ मई, १९४८ को आदिष्ट प्रणाली समाप्त कर दी जायगी। घबड़ाये हुए अरबों ने यहूदियों के विरुद्ध मार-धाड़ तथा हिंसा का हथियार अपनाया। यहूदी इस सम्भावित आक्रमणों का मुकाबला करने के लिए पूरी तरह से तत्पर थे। इसी बीच अमेरिका तथा यूरोप में बसने वाले यहूदियों ने इन्हें गुप्त रूप से वित्तीय तथा शस्त्रीय सहायता प्राप्त हो गई। इधर अरबों को ब्रिटेन से खुले रूप से एक संविदा के अन्तर्गत हथियार प्राप्त हुए। ३० नवम्बर, १९४७ तथा १ अप्रैल, १९४८ के समय में ३००० अरब तथा २८०० यहूदी मारे गये। १० अप्रैल को फिलस्तीन के लिये नियुक्त आयोग ने अपना प्रतिवेदन महासभा को प्रस्तुत किया जिसमें कहा गया "फिलस्तीनी तथा गैर-फिलस्तीनी अरबों द्वारा सशस्त्र आक्रमण, ब्रिटेन की ओर से सहयोग की कमी, फिलस्तीन की विश्रृंखलित सुरक्षा-स्थिति तथा सुरक्षा परिषद् से आवश्यक शस्त्रों का न मिलना ये कुछ कारण हैं, जिन्होंने आयोग के लिये महासभा का प्रस्ताव लागू करवाना असाध्य बना दिया है।"

सुरक्षा परिषद् की प्रेरणा से महासभा के दूसरे विशेष अधिवेशन (१६ अप्रैल १९४८) की आयोजना की गई, जिसमें यहूदी अभिकरण के सचिव सिलवर ने कहा कि अन्तिम निर्णय के लिए शक्ति का प्रयोग करना पड़ेगा और यहूदियों के स्वतन्त्र

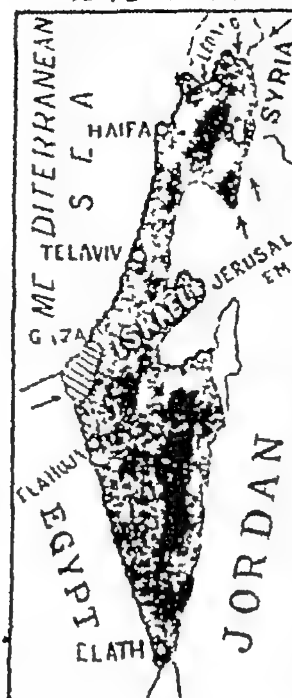
संघर्ष के बाद राज्य प्राप्त करने के उपरांत यहूदी अपनी स्वाधीनता का समर्पण नही कर सकते ''तथा विभाजन एक राजनीतिक तथा आर्थिक तथ्य बन चुका है। प्रतिरक्षा के मामले में ये (यहूदी) पूर्ण रूप से आत्म निर्भर है। साथ ही, देश के कुछ भागो में यहूदी सैनिक कमान प्रशासनिक कार्य कर रही है।"

१४ मई, १९४८ को १० बजे प्रात. (वाशिंगटन समय) राब्वी सिलवर ने महासभा में तेल अबीब शहर में 'इजराइल' की स्थापना की घोषणा की। यह स्थापना १४ मई, १९४८, यहूदी कलेण्डर के अनुसार इयार ५७०८ का पाचवां दिन सब्बाथ (रविवार) की साय ६ बजे हुई तथा दुस्तर प्रशासनिक समस्या के बीच ब्रिटेन ने आदिष्ट प्रणाली की समाप्ति कर दी जिसके कारण ब्रिटिश कर दाताओ को १३० करोड रुपये का खर्चा उठाना पडता था। दस मिनट के भीतर-भीतर ही अमेरिका ने इजराइल को सरकारी मान्यता की घोषणा की। इस घोषणा को महासभा मे एक घटे पश्चात् पढा गया। मिस्री प्रतिनिधि महमूद बे फौजी ने उसी समय घोषित किया "फिलस्तीन समस्या पर चर्चा जारी रखना एक विडम्बना है, जो महासभा तथा समस्त राष्ट्रसघ के लिए उचित नही है। जो भी कार्यविधि इस सम्बन्ध मे अपनाई गई, वह तो महज मजाक होकर रह गई। ५८ राष्ट्रो को जो इसके शिकार थे, यह पता ही नही लगा कि रंगमच के पीछे क्या घटना-चक्र चल रहा है। यह कार्य संयुक्त राष्ट्र सघ पर ही नही अपितु समस्त अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो पर भी एक प्रहार है। महासभा के सदस्यो को धोखे मे रखा गया है।"

इसी बीच इजराइल पर अरब आक्रमण प्रारम्भ हो गये। मिस्र, साऊदी अरब, सीरिया, लेबनान, ईराक और जोर्डन ने सभी तरफ से इजराइल (फिलस्तीन) पर हमला कर दिया। यह लडाई इतनी भयकर रही कि फिलस्तीन की आधी अरब आबादी को अपने घरो को छोड कर शरणार्थी बन जाना पडा। ये शरणार्थी विभिन्न पडोसी अरब राज्यो में जा बसे। अरबो को लगातार कई बार हार खानी पडी लेकिन अन्त में मिस्र के नेतृत्व में वे गाजा पट्टी पर अधिकार जमाने में सफल रहे। २९ मई को सुरक्षा परिषद् ने युद्ध विराम की आज्ञा जारी की और सयुक्त राष्ट्रसघ के मध्यस्थ के रूप में काउट बर्नडोट के निरीक्षण में अमेरिकी, बेल्जियम और फ्रास के प्रेक्षको की नियुक्ति की। इसके फलस्वरूप चार सप्ताह तक शान्ति रही और उसके बाद पुन. लडाई छिड गई। फिलस्तीन की उच्च-स्तरीय अरब समिति ने घोषणा की, "अरबी क्षेत्र में यहूदी राज्य कायम करने का यहूदियो का कोई भी प्रयास दमन की कार्यवाही समझी जायेगी और सुरक्षा के लिये पूरी ताकत से उसका मुकाबला किया जायेगा।" जुलाई में सुरक्षा परिषद् द्वारा एक अन्य युद्ध-विराम आज्ञा जारी की गई जो केवल अक्तूबर तक कायम रह

सकी। उसके बाद दक्षिणी फिलस्तीन के नजीब क्षेत्र में भयंकर लड़ाई शुरू हो गई। १८ सितम्बर १९४८ में संयुक्त राष्ट्रसंघ के मध्यस्थ काउंट बर्नडोट की यरुशलम में

WAR AND TRUCE AGREEMENT
1948-1949



हत्या कर दी गई। इनके स्थान पर उनके एक अमेरिकी सहकारी डा० राल्फ बुंच को स्थानापन्न मध्यस्थ नियुक्त किया गया। १ दिसम्बर, १९४८ को जोर्डन ने अरबी-फिलस्तीन पर अपने अधिकार की घोषणा की। १० दिन बाद जनरल असेम्बली ने टर्की, फ्रांस और अमेरिका को लेकर एक समझौता आयोग (कमीशन) की स्थापना की।

यह बात ध्यान में रखने की है कि इजराइल राष्ट्र के जन्म की घोषणा होने के कुछ मिनटों के भीतर ही प्रेसिडेण्ट ट्रूमैन ने इजराइली गणतन्त्र को वास्तविक मान्यता प्रदान की। तीन दिन बाद सोवियत संघ ने नए राज्य को कानूनी मान्यता की घोषणा की। यहूदी, इटली और जेकोस्लोवाकिया से चोरी छिपे युद्ध सामग्री लाने तथा अमरीकी यहूदियों से पर्याप्त मात्रा में वित्तीय सहायता पाने में सफल हुए। इस तरह उन्होंने अरबी आक्रमण का सफलतापूर्वक मुकाबला किया। अरब राज्यों द्वारा घोर विरोध किये जाने के बावजूद भी मई में इजराइल को संयुक्तराष्ट्र संघ में ५९ वें सदस्य के रूप में शामिल कर लिया गया। डा० बुंच द्वारा लगातार भारी प्रयास के बाद रोड्स द्वीप में २४ फरवरी से २० जुलाई १९४९ के बीच चार युद्धविराम

समझौतों पर हस्ताक्षर हुए। मिस्र, सीरिया लेबनान, जोर्डन और इजराइल ने वायदा किया कि वे सैनिक शक्ति का प्रयोग नही करेंगे। लेकिन लौसान में बाद की वार्ता असफल हो गई और शांति की अन्तिम शर्तों पर समझौता नही हो सका।

२५ मई १९५० को फ्रांस, ब्रिटेन तथा अमेरिका ने त्रिपक्षीय घोषणा जारी की। इन तीन राष्ट्रो की घोषणा में यह कहा गया कि तीनो सरकारें इस बात को स्वीकार करनी है कि अरब राज्यों और इजराइल को अपनी अपनी आन्तरिक सुरक्षा और प्रतिरक्षा के लिए कुछ सीमा तक सशस्त्र सेनाएँ रखनी चाहिएँ। उन्होने अरब राज्यो और इजराइल के बीच शस्त्रो की होड के विरुद्ध घोषणा की। उन्हें इस बात का आश्वासन दिया गया कि शस्त्रो को खरीद करने वाला राज्य किसी दूसरे राज्य के प्रति कोई भी आक्रमक कार्य नहीं करेगा। इस क्षेत्र मे अपने अपने महान् हित के कारण तीनो सरकारें सीमा अथवा युद्ध-विराम-रेखा उल्लघन के किसी भी कार्य को रोकने के लिये तत्क्षण कदम उठायेंगी।

अरब-इजराइली युद्ध के निम्नलिखित परिणाम हुए।

(१) **इजराइल का जन्म**—एक सशस्त्र शिविर के वातावरण में पैदा हुई लड़ाइयो में इस नये यहूदी राज्य का जन्म हुआ। इसके अस्तित्व में आने के प्रथम ५ वर्षों में बाहर से आये ७ लाख १८ हजार नये यहूदियो ने इजराइल की नागरिकता स्वीकार की। यह संख्या लगभग उतनी ही थी जितनी संख्या मे अरबियो को इजराइल मे खदेड़ दिया गया था। इन यहूदियो में से ४७ प्रतिशत यूरोप, ३४ प्रतिशत एशिया और १५ प्रतिशत अफ्रीका से आये। युद्ध से इजराइल को एक बहुत बडा फायदा यह हुआ कि उसके प्रदेश का क्षेत्रफल २।हजार वर्ग मील बढ गया और इस तरह इसका क्षेत्रफल सयुक्त राष्ट्रसघ द्वारा नियत ५६०० वर्ग मील से बढ कर ७६०० वर्ग मील हो गया।

इस राज्य का वर्तमान क्षेत्रफल ८०५० वर्ग मील और इसकी आबादी १५ लाख है। वास्तव में आज इस नये यहूदी राज्य की शक्ति के स्रोत जातीय एकता तथा विदेशी यहूदियो से प्राप्त होने वाली पर्याप्त आर्थिक सहायता है।

(२) **अरब को लाभ**—मिस्री सेना ने गाजा पट्टी पर जिसमें दो लाख अरबी शरणार्थी आकर बस गये हैं कब्जा कर लिया और जोर्डन के शाह अब्दुला ने अरबी फिलिस्तीन के शेष भागों पर अधिकार जमा लिया।

(३) **यरुसलम नगर का विभाजन**—युद्ध का एक अन्य महत्वपूर्ण परिणाम ३ अप्रैल १९४९ को हुआ, इजराइल-जोर्डन युद्ध-विराम समझौता था जिसके अनुसार यरुसलम नगर का विभाजन हो गया। विभाजन मे बने नये नगर जिसकी आबादी १ लाख है और जिसकी अधिकांश आबादी यहूदियों की है इजराइल के हाथ पड़ा और

जोर्डन के हाथ पुराना नगर पडा जिसकी आबादी ५० हजार है जिसमें अधिकाश अरबी है। कोई भी पक्ष दूसरे पक्ष को वहाँ से निकाल नही सका। नगर के घनी आबादी वाले क्षेत्रो मे एक ऐसा क्षेत्र बनाया जिसमे कोई आबादी नही है और जो अरबी व यहूदी क्षेत्रो के बीच सीमा का काम करता है। इजराइल यरूसलम को अपनी राजधानी बनाने की कोशिश कर रहा है। यही नही बल्कि उसने अपना विदेश विभाग तेलअबीव से हटाकर नये नगर में स्थापित कर दिया है।

(४) **अरब शरणार्थी समस्या**—युद्ध से लगभग ६ लाख अरबी बेघर हो गये जो समस्या अरबी लोगो के लिए एक राजनैतिक तथा आर्थिक चुनौती बन गई। यद्यपि सयुक्त राष्ट्र सघ ने कई बार सिफारिश की कि अरबी शरणार्थियो को इजराइल में लौटने की सुविधा दी जाय लेकिन इजराइल सरकार का कहना है कि अरबी शरणार्थियो को इजराइल से निकाला नही गया बल्कि उन्होने स्वेच्छा से अपने घरो का त्याग किया इसलिए नया राज्य उन्हे स्वीकार करने के लिये बाध्य नही। दलील दी गई है कि अरब राज्यो द्वारा इजराइल के साथ शाति-सन्धियाँ करने से इन्कार करने पर अधिक सख्या मे शरणार्थियो को इजराइल लौट आने से भयकर आन्तरिक उपद्रव पैदा हो सकते है। इसके अतिरिक्त इजराइल का उद्देश्य विश्व के पीडित यहूदियो को बसाने के लिए स्थान की व्यवस्था भी करना है। जबतक इस समस्या का हल नही निकलता अरब-इजराइली सम्बन्धो में सुधार नही हो सकता।

(५) जोर्डन और मिस्र तथा साऊदी अरब और जोर्डन में मतभेदो के कारण अरब लीग का आर्थिक विघटन।

(६) अरब राज्यो की सैनिक शक्ति के पुनर्गठन की आवश्यकता। (७) अरब राज्यों द्वारा इजराइल की आर्थिक नाकेबन्दी। (८) मिस्र द्वारा इजराइली जहाजों को स्वेज मे स्वतन्त्र जहाजरानी अधिकार न देना। (९) जोर्डन तथा यार्मुक नदियो पर अधिकार के विषय में इजराइल और जोर्डन मे तनाव तथा (१०) सीमाओं का निर्धारण न होने के कारण सीमा विवादो का पैदा होना।

३ मध्यपूर्व देशो के परस्पर सम्बन्ध मे तेल का स्थान

मध्यपूर्व में सब से महत्त्वपूर्ण घटना २ लाख वर्ग मील की ऊँची नीची भूमि की तह में विशाल तेल भण्डार की खोज थी। यह तेल भण्डार ईरान, ईराक, लाल-सागर और ईरान की खाडी के बीच अरबी प्रायद्वीप के देशो मे फैला हुआ है। किसी भी देश की सुरक्षा के लिए पेट्रोलियम तेल की पर्याप्त सप्लाई बहुत आवश्यक है. क्योकि थल, जल, तथा हवाई मार्गों का यातायात तेल पर ही निर्भर है। युद्ध काल में कारो, मोटर साइकिलो, ट्रको, टैंक, रेल इजिन, व्यापारी जहाज, तथा युद्ध-

पोत, विमान वाहक जहाज, पनडुब्बी जहाज तथा विभिन्न प्रकार के लडाकू तथा बम-मारक विमानो को चलाने में केवल तेल ही सहायक हो सकता है। यह ठीक है कि भविष्य में जैसी कि आशा है तेल का स्थान अणुशक्ति ले लेगी लेकिन सचालन शक्ति के प्रधान साधन के रूप में वह तेल के महत्व को मिटा नही सकती।

आज के विश्व में तेल एक बहुत बडी शक्ति है। शाति काल में बडे उद्योगो तथा यातात के तरीको के विकास के लिए तेल बडा महत्वपूर्ण साधन है। युद्ध काल में तेल सामरिक महत्व के क्षेत्रो में उद्योग के विस्तार तथा राष्ट्र को कई दृष्टियो से मजबूत बनाने में सहायक होता है। इसलिए लडाई की सहायक बातो में तेल का महत्व अतुलनीय है। तेल सप्लाई समस्याओ के पेचीदा बनने तथा राजनैतिक योजनाओ में अनिश्चितता पाये जाने का कारण भूमि में तेल भडारो का सामान्य वितरण न होना ही है।

जमीन में व्यापारिक महत्व के तेल भडार अपेक्षाकृत कम है। हाल के आंकडो के अनुसार विश्व के तेल साधनो का एक तिहाई भाग पश्चिमी गोलार्द्ध (उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका) में पडता है। इसमें आधा करीब २ अरब ९० करोड पीपे तेल अमेरिका के पास है। मैक्सिको सहित दक्षिण अमेरका के पास अमेरिका का ⅓ भाग तेल है। मध्यपूर्व में विश्व के कुल तेल भडार का आधे से भी अधिक भाग पडता है। १९५३ के आकडो के अनुसार मध्यपूर्व में लगभग ६ अरब २० करोड पीपे तेल है। १९५३ में विश्व में कुल तेल उत्पादन करीब ६० करोड टन हुआ जिसमें २० प्रतिशत मध्यपूर्व में हुआ। अन्य देशो में तेल उत्पादन इस प्रकार हुआ अमेरिका में कुल तेल उत्पादन का ५० प्रतिशत भाग, कैरेबियन क्षेत्र में १६.५ प्रतिशत, सोवियत सघ में ८.५ प्रतिशत तथा अन्य देशो में ५ प्रतिशत तेल का उत्पादन हुआ।

मध्यपूर्व मे तेल का इतिहास ईरान से शुरू होता है। १८७२ में एक ब्रिटिश नागरिक बैरन डी० रायटर ने ईरान के शाह से देश के प्राकृतिक साधनो की खोज की आज्ञा प्राप्त की। १९०१ में पूंजी लगाने वाले एक आस्ट्रेलियाई विलियम नोक्स डी० आर्सी को कुल लाभ की १६ प्रतिशत रायल्टी तथा प्रारम्भ में कुछ पैसा अदा करने पर पाइप लाइन डालने की सुविधा प्राप्त हुई। कुछ वर्षों तक काफी खोजबीन के बाद १९०८ मे शुस्तर के पास ११८० फीट नीचे मध्यपूर्व के प्रथम तेल भडार का पता लगा। १९०९ में आंग्ल-ईरानी तेल कम्पनी लिमिटेड ने तेल निकालने का काम शुरू किया। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान में ईरान का तेल भडार क्षेत्र जो ५ लाख वर्गमील में फैला हुआ है विश्व का सबसे बडा तेल उत्पादन केन्द्र बन गया। १९३३ में शाह रेजा ने आंग्ल-ईरानी तेल कम्पनी को ६० वर्ष तक तेल निकालने की नई सुविधा दी। लेकिन तेल निकालने का क्षेत्र घटाकर १ लाख वर्गमील कर दिया गया। १९५० तक

ईरानी तेल भंडारो से २४२,४७५,००० पीपे तेल जो विश्व के कुल तेल उत्पादन का एक पन्द्रहवाँ हिस्सा था निकाला गया। ईरानी तेल भडार और तेल शोधक कारखाने करुन नदी के मुहाने के पास अबादान के निकट स्थित है।

१९११ में तुर्की पेट्रोलियम कम्पनी ने जर्मन तथा ब्रिटिश पूंजी की सहायता से दजला फरात (Tigris-Euphrates) घाटी में पेट्रोल की खोज शुरू की। प्रथम विश्व युद्ध मे इस कम्पनी को मोसुल और बगदाद की घाटियो मे तेल निकालने की सुविधा प्राप्त हुई। इन घाटियो मे तेल भण्डार की नई खोज हुई थी। २४ अप्रैल १९२० को हुए सानरीमो समझौते के अनुसार कम्पनी का २५ प्रतिशत जर्मनी का शेयर फ्रांस को दे दिया गया इसके परिणामस्वरूप अमरीकी तेल कम्पनियो ने इस कदम का विरोध किया और सभी के लिए द्वार खुला रखने की नीति अपनाने की माग की। १९२८ में तुर्की पेट्रोलियम कम्पनी मे कई अमेरिकी तेल कम्पनिया शामिल हो गई और इसका नाम ईराक पेट्रोलियम कम्पनी हो गया। १९२९ में यह कम्पनी रायल डच शेल, साईफ्रांसेस डीस पेट्रोल्स, नियर ईस्ट डेवलपमेट कार्पोरेशन, स्टैण्डर्ड आयल कम्पनी और सोकोनी वैकम आयल कम्पनी के सहयोग से एक अन्तर्राष्ट्रीय तेल कम्पनी बन गई। १९५२ मे इसका वार्षिक उत्पादन लगभग १४ करोड पीपे हो गया।

१९२५ में बेहरिन मे तेल निकालने की प्रथम सुविधा एक ब्रिटिश कम्पनी को मिली। दो वर्ष बाद यह सुविधा केलिफोर्निया की स्टैण्डर्ड तेल कम्पनी को दे दी गई। ब्रिटेन द्वारा भारी विरोध के बावजूद अमेरिका ने स्टैंडर्ड आयल कम्पनी की सहायता से बेहरिन पेट्रोलियम कम्पनी की स्थापना कर दी। १९३४ में ५५ वर्ष के पट्टे पर इस कम्पनी को तेल निकालने की सुविधा मिली। १९३६ में टेक्सास कम्पनी बेहरीन पेट्रोलियम कम्पनी की हिस्सेदार बन गई।

१९३३ में केलिफोर्निया की स्टैंडर्ड आयल कम्पनी को शाह इब्न साऊद से साऊदी अरब के ६ लाख १७ हजार वर्ग मील क्षेत्र में तेल निकालने की स्वीकृति मिली। १९३६ में टेक्साम कम्पनी अरब में तेल के मुनाफे में आधे की साझीदार बन गई जिसके परिणाम-स्वरूप १९४४ में इसका नाम बदल कर अरबी अमरीकी आयल कम्पनी रख दिया गया जो अब 'आरामको' (ARAMCO) नाम से विख्यात है। १९५३ में साऊदी अरब में तेल का वार्षिक उत्पादन ३० करोड पीपे तक पहुँच गया जो ससार के कुल तेल उत्पादन का लगभग एक पन्द्रहवाँ भाग था और जो एशिया के किसी एक राजनीतिक एकाक के अन्दर सर्वाधिक उत्पादन था।

ईरान की खाडी के केन्द्रीय क्षेत्र में कुवेत शेख-राज्य (Shaikhdom of Kuwait) में तेल निकालने की सबसे पहले आशा १९१३ में ब्रिटेन को प्राप्त हुई।

बाद में यह सुविधा एक अमरीकी कम्पनी को ,जिसका नाम गल्फ आयल कम्पनी है, सौंप दी गई। १९३४ में कुवेत तेल कम्पनी की स्थापना की गई। इस कम्पनी में गल्फ आयल कम्पनी और आंगल-ईरानी कम्पनी का बराबर का हिस्सा है। १९५० वर्ग मील का छोटा सा कुवेत शेख-राज्य तेल भण्डार की दृष्टि से मध्य-पूर्व के राज्यों में सबसे धनी राज्य है। १९५४ में तेल विशेषज्ञो द्वारा लगाये गये अनुमान के अनुसार वहां २०० करोड पीपे तेल का भण्डार था जो विश्व उपलब्ध कुल तेल भंडार के एक सातवे भाग से कुछ अधिक था। १९५३ में कुवेत में ३१ करोड पीपे तेल का उत्पादन हुआ। इसमें से अधिकाश इसके प्रमुख बरगन तेल भण्डार क्षेत्र से निकाला गया। १९५१ में कम्पनी को तेल निकालने की जो स्वीकृति प्रारम्भ में ७५ वर्ष के लिए मिली थी उसकी अवधि शेख-अब्दुल्ला-अल-सलीम के साथ ५० प्रतिशत रायल्टी के समझौता के आधार पर १७ वर्ष के लिए बढा दी गई। १९५२ में उन्हें रायटी के रूप में ८० करोड रुपये (१६० मिलियन डालर) प्राप्त हुए। लेकिन दूसरी ओर सबसे बडी समस्या उन्हें अपने १,६०,००० निराश्रित प्रजा के कल्याण की थी।

१९३५ में ईरान की खाडी के पास कातार(Qatar) के शाह ने अपने राज्य के ५ हजार वर्ग मील क्षेत्र में आंग्ल-ईरानी तेल कम्पनी को २५ वर्ष तक तेल निकालने की स्वीकृति दी। १९५३ में कातार मे ३ करोड २० लाख पीपा तेल का उत्पादन हुआ। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस तेल भंडार में १५ करोड पीपे तेल है। कातर में तेल उत्पादन के विषय पर ईरान, साऊदी अरब, और कुवेत, बेहरीन तथा कातार के शेखो में बडा विवाद चलता रहा है। १९४९ तक यह समस्या केवल वाद-विवाद का ही विषय रही जब कि केलिफोर्निया की सुपीरियर आयल कम्पनी ने कुएं खोदने का अधिकार प्राप्त कर लिया।

अमेरिकी कम्पनी के निरीक्षण मे तुर्की में तेल उत्पादन बडा सीमिति रहा है। १९५० में रमन दाग तेल क्षेत्र मे तेल का पता लगा लेकिन वह तेल बडा घटिया किस्म का था। उसका उत्पादन प्रति वर्ष केवल १ लाख ७८ हजार पीपे था। १९४८ में मिस्र सरकार ने देश के तमाम प्राकृतिक साधनो पर अपना सीधा नियन्त्रण कायम कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि १९४९ में मिस्र की स्टैंडर्ड आयल कम्पनी द्वारा किए जा रहे तेल की खोज के कार्य स्थगित हो गये। यह कम्पनी न्यूजर्सी की स्टैंडर्ड आयल कम्पनी की शाख कम्पनी थी जो १२ वर्षो मे खोज का काम कर रही थी। तत्पश्चात् सरकार की सीधा देख-रेख मे मिस्र की नेशनल पैट्रोल कम्पनी की स्थापना हुई। १९५० तक मिश्र अपने देश के तेल भण्डार का पता लगाने के लिए विदेशी सहायता तथा टेक्निशियनो की खोज में भटकता रहा है। १९५३ में मिस्र केवल २० लाख पीपे कच्चा तेल निकाल सका।

इस तरह इस समय मध्य पूर्व मे तेल निकालने वाली निम्नलिखित ८ प्रमुख विदेशी कम्पनियाँ है जो निम्नलिखित अनुपात मे तेल उत्पादन करती है

अमेरिकन	१. स्टैंडर्ड आयल कम्पनी, केलिफोर्निया	इनसे ४० प्रतिशत उत्पादन होता है।
	२ स्टैंडर्ड आयल कम्पनी, न्यूजर्सी	
	३. मेकोनी-वेकम आयल कम्पनी	
	४. टेक्सास आयल कम्पनी	
	५. गल्फ आयल कम्पनी	
ब्रिटिश	६. आँग्ल-ईरानी आयल कम्पनी	—४० प्रतिशत
ब्रिटिश और डच	७. आँग्ल-सैक्सन पैट्रोलियम कम्पनी (रायल डच शैल)	—१४ प्रतिशत
फ्रांसीसी	८. साई फ्रांसेस डीस पैट्रोलेन (Cie Francaise Des Petroles)	—६ प्रतिशत

अरब प्राय द्वीप के प्रत्येक क्षेत्रो, अदन, यमन, मुस्कत, ओमान तथा ट्रुशियल शेख-राज्य (Trucial Sheikhdom) मे तेल भण्डार की खोज जारी है। १९५६ तक मध्यपूर्व के तेल क्षेत्रो से लगभग ८,९००,०००,००० पीपे तेल निकाला गया (१९५५ में विश्व में तेल के उत्पादन के लिए देखो परिशिष्ट ३)। अभी भी इन तेल क्षेत्रो में करीब १४४० करोड पीपे तेल और है, ऐसा अनुमान है।

इस प्रकार इन तेल क्षेत्रो से तेल निकालने के व्यापार में अधिकांश विदेशी शेयर ब्रिटिश, फ्रांसीसी, डच और अमेरिकी कम्पनियो के हाथ में है। इस तरह व्यापारिक दृष्टि से इन कम्पनियो का प्रभाव इन देशो की जनता के जीवन पर पर्याप्त है। पिछले कुछ वर्षो में प्रमुख तेल उत्पादक कम्पनियो ने बडे तेल निर्यातक देशो की सरकारो को प्रति वर्ष रायल्टी के रूप में साढे तीन अरब से भी अधिक रुपया दिया है। अन्य में लम्बी पाइप लाइनो के निर्माण पीने योग्य जल की व्यवस्था (आरामको द्वारा ११०० मील लम्बी पाइप लाइनो का निर्माण), विशाल शोधक कारखाने तथा वहाँ के मजदूरो को अच्छी तनख्वाह की व्यवस्था के बावजूद वहाँ की जनता को विशेष लाभ नही हुआ है। प्राप्त आकडो के अनुसार जबकि ईरान और ईराक मे प्रति व्यक्ति वार्षिक राष्ट्रीय आय ४२० रु० है, साऊदी अरब मे २८० रुपये है। वास्तव में वहाँ के तेल की आय का अधिकांश भाग आम जनता के कल्याण के लिए प्रयोग न कर शाही परिवारो तथा उनके विश्वास-प्राप्त सरदारो व अधिकारियो की फिजूल खर्चो में समाप्त हो जाता है। यही कारण है कि यहाँ तेल से भारी आय के बावजूद भी ये देश गरीबी से जकडे हुए रहते है।

मध्य-पूर्व में तेल समस्या कई कारणो से अत्यन्त पेचीदी बन गई है

प्रथम कारण पश्चिमी देशो—ब्रिटेन, फ्रास और डच के व्यापारिक हित है। हासकिन के अनुसार १९५२ में अमेरिका का तेल ढोने के जहाजो तथा यूरोपीय तेल शोधक कारखानो पर खर्च को छोड कर, तेल व्यापार में २ बिलियन डालर या १०० करोड रुपया लगा हुआ था। मध्यपूर्व मे यूरोपीयन देशो को अधिकांश तेल के निर्यात से वहाँ के उद्योगो और यातायात साधनो में बडा भारी विकास हुआ है। मध्य-पूर्व मे तेल की कम कीमत तथा सस्ते यातायात और स्थानीय तेल की माग के अभाव के कारण इसमें आश्चर्य नही कि पश्चिमी देश, मध्य-पूर्व पर अपना प्रभाव जमाये रखने के लिए बडे प्रयत्नशील रहेंगे।

दूसरा कारण है सामरिक तथा सुरक्षा सम्बन्धी समस्या। उत्तर अतलांतक सधि सगठन के निर्माताओ का विश्वास है कि यदि स्वतत्र विश्व को साम्यवाद के प्रभाव से बचाना है तो पश्चिमी यूरोप की सुरक्षा बहुत जरुरी है। इस दिशा में उनकी योजना पर्याप्त पुन शस्त्रीकरण और तीसरे विश्व युद्ध की दशा में सुरक्षा के लिए एक मजबूत मोर्चा तैयार करना है। सैनिक सुरक्षा को दृष्टि में रखते हुए यह स्पष्ट है कि पश्चिमी देशो की सुरक्षा मोर्चा के लिए मध्य पूर्व की तेल की सप्लाई पर पश्चिमी देशो का एकाधिकार रहना आवश्यक है। यह स्मरण रखने योग्य है कि शांतिकाल में भी अमेरिका में तेल की खपत विश्व की कुल खपत का दो तिहाई भाग है। इस प्रकार पश्चिमी यूरोप के उद्योगो तथा यातायात व्यवस्था के लिए अमेरिका पर्याप्त तेल सप्लाई नही कर सकता। नाटो राष्ट्रो का सब से पहला उद्देश्य सोवियत सघ को मध्य-पूर्व के तेल भण्डार से बिल्कुल वचित रखना है जो कि भौगोलिक दृष्टि से उसके निकटतम है, क्योंकि वह उनका सम्भावित शत्रु है।

तीसरे, सोवियत प्रभाव का सबसे अधिक खतरा यमन, सीरिया और मिस्र में है जहा १९५५ मे कम्युनिस्ट प्रभावो के परिणामस्वरूप सीमा मत-भेद तथा ब्रिटेन और इजराइल के साथ पुन झगडे शुरु हो गये है। अमेरिकी प्रेस के विचार में सोवियत सघ के लिए तेल एक बहुत जरुरी वस्तु है और हाल के वर्षो में तेल की कमी के कारण ही सोवियत सघ किसी भयकर लडाई का समर्थन नही कर सका है। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि मध्य पूर्व में काफी मात्रा में पैट्रोलियम का होना वहा के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के लिए एक बडा महत्वपूर्ण कारण बन गया है। १९४४ से १९४६ तक सोवियत सघ द्वारा ईरान में विश्व के सबसे सम्पन्न तेल क्षेत्रो में प्रवेश का प्रयास पूर्णतया असफल रहा। लगभग तमाम प्रमुख तेल क्षेत्र और तेल शोधक कारखाने सोवियत सघ के क्षेत्र से इतने पास है कि रूस आसानी से वहाँ बमबारी कर सकता है। रूस का मुकाबला करने के लिए यह क्षेत्र सामरिक दृष्टि से बहुत कमजोर

है। इस के दृष्टिकोण से मध्य-पूर्व के तेल क्षेत्र नाटो राष्ट्रों की औद्योगिक विकास के लिए बहुत बड़े साधन हैं। इसलिए इस यूरोपीय राष्ट्रों को तेल सप्लाई भंग करने के लिए भरसक प्रयत्नशील

मध्य-पूर्व के बड़े तेल उत्पादक देशों की आंतरिक अशांति तथा राष्ट्रपति नासर के नेतृत्व में अरब राष्ट्रीयता के आंदोलन ने आग में ईंधन का काम किया। उदाहरण के लिए आंग्ल-ईरानी तेल कम्पनी के राष्ट्रीयकरण से यह स्पष्ट है कि वहां की जनता अपने यहां के तेल के भारी मुनाफे द्वारा अपना जीवन स्तर उठाने के लिए पूरे जोर शोर से प्रयत्नशील है। इस तरह राष्ट्रीयता की भावना बड़ी बलवती हो गई है और अमेरिकी तथा ब्रिटिश तेल कम्पनियों पर अधिकार जमाने की हर प्रकार से प्रयत्न कर रही है। साऊदी-अरब, ईरान और ईराक के राजस्व के प्रमुख साधनों में तेल रायल्टी भी एक प्रमुख साधन है। अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद की विध्वंसात्मक कार्यवाहियों से उक्त क्षेत्र की रक्षा के लिए पश्चिमी राष्ट्र उक्त क्षेत्रों को प्राविधिक तथा आर्थिक सहायता पहुँचाने के लिए प्रयत्नशील हैं जिससे वहां गरीबी, निरक्षरता और बीमारियों को दूर किया जा सके। भौगोलिक दृष्टि से काफी निकट होने के बावजूद सोवियत संघ उक्त क्षेत्र पर अब तक अपना प्रभाव फैला नहीं सका है।

४ स्वेज नहर प्रश्न

उन्नीसवीं शताब्दी में स्वेज नहर का खुलना और भाप से चलने वाले जहाजों के आविष्कार ने समुद्री जहाजरानी में क्रांति पैदा कर दी। बहुत पहले आठवीं शताब्दी में रक्त-इस्थमस नहर खोदने की एक योजना बनाई गई थी किन्तु इस सिलसिले में वास्तविक प्रयास १९ वीं शताब्दी में ही शुरू हुआ। ऐसा देखा गया कि स्वेज नहर बन जाने से गुडहोप अन्तरीप से होकर पूरब की खतरनाक यात्रा लगभग ५ हजार मील कम हो जायगी। १८५४ में फर्डिनन्ड डी लेसेप्स नामक एक फ्रांसीसी इन्जीनियर ने, जो सिकन्दरिया में वाणिज्य दूत का काम कर रहा था, मिस्र के खादिव (तुर्की के वायसराय) को सुझाव दिया कि खारी झील (बिटर लेक) और तिमासनेक से होते हुए स्वेज की खाड़ी से भू-मध्यसागर तक एक सीधा नहरी रास्ता तैयार किया जाय। फ्रांसीसी इन्जीनियर लेसेप्स द्वारा संगठित एक मिस्री ज्वाइंट स्टाक कम्पनी 'कम्पनी यूनिवर्सेल दू कैनाल मेरी टाइम डी स्वेज' को टर्की के सुलतान से एक फर्मान द्वारा नहर बनाने की स्वीकृति प्राप्त हुई।

स्वेज मेरी टाइम नहर के निर्माण तथा व्यापार की स्वीकृति सम्बन्धी प्रारम्भिक कानून पर ३० नवम्बर १८५४ को काहिरा में हस्ताक्षर हुए। कानून के अनुसार उक्त कम्पनी को नहर पर ९९ वर्ष के लिए अधिकार स्वीकार किया गया।

तय हुआ कि नहर निर्माण का सारा खर्च कम्पनी बर्दाशित करेगी और मिस्र सरकार कम्पनी से प्रतिवर्ष कुल मुनाफे का १५ प्रतिशत तथा सरकार जितनी पूंजी लगायेगी उस पर ब्याज तथा लाभांश लेने की हकदार होगी। शेष मुनाफे का ७५ प्रतिशत कम्पनी के हिस्सेदारो को तथा १० प्रतिशत उन सदस्यो पर व्यय करना तय हुआ जो इसकी स्थापना के लिए उत्तरदायी थे। कम्पनी के डायरेक्टर की नियुक्ति मिस्र सरकार द्वारा शेयर होल्डरो (हिस्सेदारो) में से की जायेगी। स्वेज नहर में से गुजरने का व्यय सभी राष्ट्रो से एक दर से वसूल किया जायेगा और किसी भी देश को कोई विशेष सुविधा नही दी जायेगी। कम्पनी को प्राप्त स्वीकृति की अवधि समाप्त हो जाने के बाद मिस्र सरकार कम्पनी को अपने हाथ में ले लेगी और नहर पर उस का पूर्ण अधिकार कायम हो जायेगा लेकिन इसके साथ ही उसे कम्पनी की मशीनो तथा मूल सम्पत्ति के लिए मुआवजा अदा कर देना होगा।

उक्त कानून के बाद नहर के निर्माण सम्बन्धी स्वीकृति पत्र पर ५ जनवरी १८५६ को सिकन्दरिया में हस्ताक्षर हुए। मिस्र की ओर से वायसराय महमूद सइद पाशा ने और यूनिवर्सल कम्पनी की तरफ से लेसेप्स ने हस्ताक्षर किये। इस समझौते के अनुसार कम्पनी को मिस्र सरकार से नहर क्षेत्र के किनारे तमाम भूमि को बिना किसी किराये अथवा कर के उपयोग करने की स्वीकृति प्राप्त हो गई। इसके अतिरिक्त मिस्र में नहर निर्माण कार्यो के लिए विभिन्न प्रकार की मशीनो के आयात को आयात-कर से छूट दे दी गई। अनुच्छेद १४ में कहा गया है "हम अपनी ओर से तथा अपने उत्तराधिकारियो की ओर से शपथ लेकर घोषणा करते हैं कि ग्रैंड मेरीटाइम नहर का द्वार सभी व्यापारी जहाजो के लिए एक समुद्र से दूसरे समुद्र में प्रवेश करने के लिए एक तटस्थ मार्ग के रूप में, बिना किसी व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय भेदभाव के, कर अदा करने पर हमेशा खुला रहेगा।" कम्पनी की उक्त शर्त की मियाद ९९ वर्ष के लिए निर्धारित की गई। नहर निर्माण का कार्य १८५९ में शुरू किया गया और १० वर्ष बाद १७ नवम्बर १८६९ को पोर्ट सईद से स्वेज तक रेगिस्तान में से होती हुई १०३ मील लम्बी नहर यातायात के लिए चालू हो गई। ऐसा अनुमान लगाया गया कि इस नहर के कठोर निर्माण में १ लाख २० हजार मिस्त्रियों को अपने प्राणो से हाथ धोना पडा। ब्रिटेन ने नहर के महत्व का अनुभव कर ६ वर्ष बाद १८७५ में मिस्र के खादिव इस्माइल से नहर के १,७६,६०० शेयर ३ ९७६ ५८२ पौंड में खरीद लिए। इस समय ब्रिटिश सरकार के पास नहर कम्पनी के कुल ८०० ००० शेयरों में से ३५३,५०४ शेयर अर्थात् कुल के ४४% प्रतिशत लगभग हैं। कम्पनी का संचालन ३२ डायरेक्टरों द्वारा होना था जिनमें से १६ फ्रांसीसी, ९ ब्रिटिश ५ मिस्री एक अमरीकी और एक डच था। इस प्रकार नहर कम्पनी के

अधिकांश शेयर विदेशी सरकारों अथवा विदेशी प्रजाजनों के पास थे। नहर कम्पनी को प्राप्त सुविधा की अवधि १९६८ में समाप्त होने वाली थी जिसके बारे में मिस्र सरकार ने यह घोषणा कर दी थी कि उक्त सुविधा की अवधि बढ़ाई नहीं जायेगी।

२९ अक्टूबर १८८८ को ब्रिटेन, जर्मनी, आस्ट्रिया, स्पेन, फ्रांस, इटली, नीदरलैंड, रूस और तुर्की में (जिसके साम्राज्य में मिस्र भी शामिल था) कांस्टेंटिनोपल समझौते पर हस्ताक्षर हुए। समझौते के अनुच्छेद १ में कहा गया है : "स्वेज नहर का द्वार शांति और युद्धकाल में हमेशा सभी व्यापारी जहाजों अथवा युद्ध पोतों के लिए बिना किसी राष्ट्रीय भेदभाव के खुला रहेगा।" समझौते से सम्बन्धित देशों ने तय किया कि वे नहर के स्वतन्त्र रूप से प्रयोग पर किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेंगे और इस तरह से किसी प्रकार का गतिरोध पैदा नहीं होने देंगे। अनुच्छेद ४ में कहा गया है : "नहर क्षेत्र में तथा इसके प्रवेश की बन्दरगाहों में कोई भी राष्ट्र न तो लड़ाई छेड़ेगा और न ऐसा कोई कार्य करेगा जिससे कि नहर के स्वतन्त्र यातायात में बाधा उत्पन्न हो।" अनुच्छेद १० में कहा गया है कि "मिस्र के शासक मिस्र की रक्षा तथा शांति कायम रखने के लिए नहर में अपनी सेनाओं का प्रयोग कर सकेंगे।"

प्रारम्भ में स्वेज कैनाल कम्पनी का वास्तविक स्वरूप इसलिए जानबूझ कर स्पष्ट नहीं किया गया क्योंकि वह अन्तर्राष्ट्रीय घोषित होते हुए भी फ्रांसीसी अधिकार में अधिक थी। यद्यपि कम्पनी के प्रधान कार्यालय सिकन्दरिया में थे लेकिन इसके अन्य कार्यालय पेरिस में स्थापित किए गये। फरवरी १८६६ के एक समझौते के अनुसार कम्पनी ने मिस्र के इस अधिकार को मान्यता दी कि वह नहर में रक्षा सेना रख सकता है और आक्रमण होने पर उसकी रक्षा कर सकता है यदि वह नहर समस्त जहाजों के लिए खुली रहे। यह एक ऐसा पग था जिसने मिस्र के साथ कम्पनी के सम्बन्ध को स्पष्ट कर दिया। नहर क्षेत्र का मिस्र प्रदेश का एक भाग होने का प्रश्न कभी नहीं उठा। परन्तु मिस्र को १८५६ के समझौता के अनुसार निर्माण-कार्य में ⅘ आवश्यक श्रमिक सहायता न दे सकने के कारण ५६,०००,००० फ्रैंक कम्पनी को देने पड़े। इसके अतिरिक्त मिस्र पर नील नदी से काहिरा के निकट निकाली गई मीठे पानी की नहर (Sweet water canal) को चालू रखने के व्यय का भार भी बराबर बना रहा। १८८० में मिस्र ने कम्पनी के कुल मुनाफे का अपना १५ प्रतिशत हिस्सा फ्रांस को हमेशा के लिए हस्तान्तरित कर दिया। इस प्रकार मिस्र उस महान व्यापारिक लाभ के स्रोत से लगभग पूर्णतया वंचित हो गया जिसके निर्माण में मिस्री साधनों का इतना बड़ा हाथ था। इसके अतिरिक्त १८६९ से पहले जो व्यापार मिस्र के स्थल मार्ग द्वारा होता था वह भी नहर ने समाप्त कर दिया।

अरब के पाशा का विद्रोह असफल हो जाने के परिणामस्वरूप १८८२ में मिस्र पर ब्रिटेन का अधिकार हो गया। प्रथम विश्व युद्ध (१९१४-१८) शुरु होने पर मिस्र एक ब्रिटिश सरक्षित प्रदेश बन गया। ब्रिटिश शासन ने एक सैनिक आज्ञा जारी कर नहर में शत्रु देशो के जहाजो को गुजरने से मना कर दिया। १९२३ की लौजान सधि के अन्तर्गत तुर्की ने मिस्र पर अपने तमाम अधिकारो का परित्याग कर दिया। २८ फरवरी १९२२ को ब्रिटेन ने मिस्र की स्वतत्रता की घोषणा की लेकिन नहर की सुरक्षा के प्रश्न को भविष्य में वार्ता द्वारा तय करने के लिए सुरक्षित रखा। इस सन्धि में स्पष्ट तौर पर यह स्वीकार किया गया कि यद्यपि नहर ब्रिटिश साम्राज्य के विभिन्न भागो में सचार का एक प्रमुख साधन है तथापि वह मिस्र का एक अविभाज्य अग है।

१९३६ की आँग्ल-मिस्री सधि ने मिस्र को एक पूर्ण सत्ता प्राप्त राज्य घोषित कर दिया लेकिन साथ ही ब्रिटेन को अधिकार दिया गया कि वह नहर को २० वर्ष तक अपने अधिकार में रख सकता है। ९ अगस्त १९३७ को एक अन्य समझौता हुआ जिसके अनुसार नहर कम्पनी में मिस्र कर्मचारियो की सख्या ३३ प्रतिशत तक बढा दी गई। इसके अतिरिक्त कम्पनी की आय से मिस्र को वार्षिक ३ लाख पौंड रायल्टी देना तय हुआ और कम्पनी के डायरेक्टर बोर्ड में दो मिस्री शामिल कर लिये गये। इस प्रकार १८८० के बाद प्रथम बार १९३७ से मिस्र को नहर से सीधा लाभ प्राप्त होना शुरु हुआ।

द्वितीय विश्व युद्ध के समय मिस्र पर पुन ब्रिटेन का सैनिक अधिकार हो गया। युद्ध समाप्त होने के बाद मिस्र ने युद्ध के दौरान में जो धन ब्रिटेन की ओर से व्यय किया था उसके बदले में स्वेज नहर के शेयरो को लौटाने की माग की। ७ मार्च १९४९ को काहिरा में कम्पनी और मिस्र में एक नये समझौते पर हस्ताक्षर हुए। समझौते के अनुसार नहर के व्यापारिक नियत्रण तथा सचालन में मिस्र एक विशेष सुविधा प्राप्त हिस्सेदार बन गया। कम्पनी के मिस्रीकरण के लिए कम्पनी में मिस्रियो को नौकरी तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। समझौते के अनुसार तय हुआ कि कुल मुनाफे का ७ प्रतिशत जो ३५०,००० पौंड से कम न हो मिस्र को वार्षिक अदा किया जायेगा और कम्पनी के डायरेक्टर बोर्ड में स्थान रिक्त होने पर ५ मिस्री डायरेक्टर और शामिल किये जायेंगे। १९४८-४९ में जब अरब और इजराइल में लडाई शुरु हुई, मिस्र ने नहर क्षेत्र से ब्रिटिश सेनाओ के हटाने की माग की। मिस्र द्वारा इस सम्बन्ध में कई बार विरोध किये जाने के बावजूद ब्रिटेन ने कोई ध्यान नही दिया।

१९५० में मिस्र ने घोषणा की कि इजराइल जाने वाले तेल जहाजो को रोकने के लिए यदि आवश्यकता पडे तो सेना का प्रयोग किया जा सकता है। उसने

उन सब माल अथवा जनो को ले जाने वाले जहाजों को नहर से गुजरने मे रोक दिया जो इजराइली बन्दरगाह मे जाएँ अथवा आएँ। अकावा की खाड़ी के द्वार की रक्षा तथा इज़राइली बन्दरगाह इलाथ का रास्ता रोक देने के लिए सिनाई प्राय द्वीप के पास तोपें लगा दी गई। १९५२ में (२६ जुलाई) क्रान्तिकारी युवक सैनिक अधिकारियों के नेता महमूद नजीब ने शासन पर अधिकार कर लिया और शाह फारुक को गद्दी छोडने के लिए विवश किया। जून १९५३ मे देश में जनतन्त्र की स्थापना के लिए शाही शासन समाप्त कर दिया गया। १९ अक्टूबर १९५४ को नई मिस्री सरकार और ब्रिटिश सरकार में स्वेज नहर क्षेत्र से ब्रिटिश सेनाओ के निष्क्रमण के सम्बन्ध में एक बहुत ही मत्वपूर्ण समझौते पर हस्ताक्षर हुए। इस समझौते मे १३ अनुच्छेद और २ सयुक्तक (Annexures) हैं। अनुच्छेद १ में कहा गया है कि मिस्री प्रदेश मे ८० हजार ब्रिटिश सेनाओ को १९ जून १९५६ तक २० महीनो में किश्तो द्वारा पूर्ण रूप से हटा लिया जायेगा। इस समझौते से २६ अगस्त १९३६ को हुई आंग्ल मिस्री सधि समाप्त हो गई। अनुच्छेद ४ मे कहा गया है कि अरब लीग के किसी भी सदस्य अथवा तुर्की पर हमला होने की हालत में मिस्र नहर को सैनिक अड्डा बनाने के सम्बन्ध में ब्रिटन को आवश्यक सुविधायें देगा तथा खतरा समाप्त हो जाने के बाद इन सेनाओ को वापस बुला लिया जायेगा। किसी भी देश पर किसी भी बाहरी देश द्वारा सशस्त्र आक्रमण की धमकी देने की हालत मे मिस्र और ब्रिटेन में अविलम्ब परामर्श होगा (अनुच्छेद ६)। अनुच्छेद ८ में जो सन्धि का अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग है कहा गया है कि दोनो सरकारें इस बात को स्वीकार करती हैं कि स्वेज नहर जो मिस्र का एक अविभाज्य अग है आर्थिक, व्यापारिक तथा सामरिक दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का जलमार्ग है। निश्चय किया गया कि स्वेज नहर में जहाजरानी की स्वतन्त्रता की गारण्टी सम्बन्धी २९ अक्टूबर १८८८ को कुस्तुन्तुनिया मे हुए समझौते का दोनो देश समर्थन करते हैं। यह समझौता ७ वर्ष तक लागू होना था और इस अवधि के समाप्त होने से १२ मास पूर्व मिस्र और ब्रिटेन को नहर की भावी व्यवस्था के सम्बन्ध में आपस में विचार-विमर्श करना था (अनु० १२)।

स्वेज नहर कम्पनी का राष्ट्रीयकरण (२६ जुलाई १९५६)

उन घटनाओ को समझने के लिए जिनके कारण मिस्र द्वारा स्वेज नहर कम्पनी का राष्ट्रीयकरण हुआ हमें निम्नलिखित बातो का अध्ययन करना होगा. (१) प्रस्तावित मध्यपूर्व सुरक्षा सगठन, (२) मिस्र द्वारा चेकोस्लोवाकिया से शस्त्रो की खरीद, तथा (३) आसवान बाँध योजना।

(१) मेडो (Medo—मध्यपूर्व सुरक्षा सगठन)—फिलस्तीन में ब्रिटेन की आदिष्ट प्रणाली की समाप्ति तथा मिस्र।शांति समाप्त हो जाने के बाद ब्रिटेन और

अमेरिका ने मिस्र पर एक समझौते के लिए जोर दिया जिसका उद्देश्य प्रस्तावित मध्यपूर्व सुरक्षा सगठन (मेडो) के अन्तर्गत मिस्र में सैनिक अड्डे कायम करना था। जैसा कि जनरल नजीब ने अपनी 'इजिप्ट्स डेस्टीनी' पुस्तक में लिखा है "अमेरिका ने मिस्र के साथ एक सैनिक समझौते की वार्ता शुरू की तथा यह आश्वासन दिया कि ब्रिटिश सेनाओं के हटने से मिस्र में खाली हुए स्थानो पर रूस के प्रवेश को रोकने में अमेरिका को मिस्र द्वारा सहयोग देने के बदले अमेरिका मिस्र को आर्थिक सहायता देगा।" प्रेसिडेन्ट नासर के अनुसार यह समझौता मिस्र को स्वीकार नही था क्योकि एक बडी शक्ति के साथ एक छोटे देश के समझौते का मतलब छोटे देश का बडी शक्ति के मातहत हो जाना है। इसलिए मिस्र ने स्पष्ट शब्दो में घोषणा की कि वह किसी का पिट्ठू नही बनना चाहता।

१९५३ में जनरल राबर्टसन ने मिस्र से ब्रिटेन के साथ एक २५ वर्षीय समझौता करने के लिए वार्ता शुरू की लेकिन मिस्र ने वार्ता भग कर दी। मिस्रियो का कहना था कि एक क्षेत्रीय सुरक्षा समझौता से विस्फोटक स्थिति पैदा होगी जैसी कि आज मध्यपूर्व में कायम है।

(२) **शस्त्रो की खरीद**—मिस्र पश्चिमी देशो से शस्त्र क्रय करना चाहता था और उनका मूल्य नकद चुकाना चाहता था परन्तु पश्चिमी देशो ने पारस्परिक सुरक्षा समझौते पर बल दिया। वास्तव में मिस्र अपनी सेना को शक्तिशाली बनाना चाहता था जिससे वह इजराइल की बढती हुई ताकत का मुकाबला कर सके। प्रेसिडेंट नासर के अनुसार "पश्चिमी राष्ट्र मिस्र की उक्त भावना समझ कर यह निर्णय करने में हिचकिचाने लगे कि मिस्र को शस्त्र बेचे जाय अथवा नही। हमने शस्त्रो की खरीद के लिए पश्चिमी राष्ट्रो के पास एक शिष्टमण्डल भेजा लेकिन पश्चिमी राष्ट्रो ने शस्त्र बेचना अस्वीकार कर दिया।" इसी बीच पश्चिमी राष्ट्रो ने इजराइल को शस्त्र सप्लाई करना शुरू कर दिया और फ्रांस को नाटो सेनाओ की सहायता से अल्जीरियाईयो की हत्या करने मे सहायता दी।

इसलिए मिस्र को शस्त्रो की खरीद के लिए रूस से बात चीत शुरू करनी पडी। २७ सितम्बर १९५५ को एक मिस्र-चेकोस्लोवाकिया समझौते पर हस्ताक्षर हुए जिसमें तय हुआ कि मिस्र को कपास और चावल के बदले २५०० लाख पौंड (१२५ करोड रुपये) की कीमत के शस्त्र सप्लाई किये जायेगे। समझौते में हुए ठेके के अनुसार १०० से भी अधिक एम० आई० जी० जेट लडाकू विमान, २८ छोटे जेट बममारक विमान, १५०० लाख से भी अधिक टैंक, कुछ भारी सोवियत टैंक, तोप, विमानमारक तोप हथियार तथा करीब आधे दर्जन छोटे पनडुब्बी जहाज मिस्र को देना तय हुआ। मिस्र सरकार ने ३ अक्टूबर १९५५ को एक वक्तव्य जारी किया

जिसमें कहा गया कि मिस्र पर दबाव डाला जा रहा है कि वह सोवियत गुट के साथ शस्त्र खरीद का समझौता भंग कर दे। कर्नल नासर ने कहा कि मैंने फ्रांस से शस्त्र सप्लाई को कहा तो उसने शर्त रखी कि यदि मिस्र उत्तर अफ्रीका सम्बन्धी अपनी नीति में परिवर्तन करले तो फ्रांस उसे शस्त्र सप्लाई करेगा। अमेरिका ने कई राजनैतिक शर्तें रखी जिनमें एक शर्त यह भी थी कि मिस्र पारस्परिक सुरक्षा सन्धि में शामिल हो जाय। ब्रिटेन शस्त्र देने को तैयार हुआ लेकिन पर्याप्त मात्रा में सप्लाई करने में असमर्थ रहा। कर्नल नासर ने कहा कि मिस्र की नीति बिल्कुल स्वतन्त्र रहेगी इसीलिए रूसी शस्त्र हमारे अपने शस्त्र हो जायगे और हम उन्हें अपनी इच्छानुसार प्रयोग करेंगे। रूस द्वारा मिस्र को शस्त्र सप्लाई करना स्वीकार कर लेने पर भारी तूफान उठ खड़ा हुआ। इजराइल ने कहा कि मिस्र को शस्त्र सप्लाई करना आक्रमण को प्रोत्साहन देना है। अमेरिकी राजदूत जार्ज एलेन राष्ट्रपति आइजनहावर के एक सन्देश के साथ मिस्र रवाना हुए लेकिन नासर के इन विचारों को समझकर सदेश उन्हें नहीं दिया कि मिस्र अपनी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की रक्षा हर कीमत पर करेगा।

(२) आसवान बांध—१९५३ में मिस्र सरकार ने मिस्र की प्रतिवर्ष ५ लाख बढ़ती आबादी की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये राष्ट्रीय आय बढ़ाने के निमित्त १,०००००००,००० डालर की लागत से एक विशाल ऊंचा बांध बनाने की योजना तैयार की। योजना के अनुसार नील नदी पर बांध बनाना, भूमि सुधार तथा बिजली उत्पादन केन्द्र स्थापित करना था। मिस्र द्वारा ऋण का अनुरोध करने पर सबसे पहले ब्रिटेन ने ४५० लाख पौंड (लगभग ६३ करोड़ रुपये) पेशगी देने का वायदा किया जो बाद में घटाकर ५० लाख पौंड (लगभग ७ करोड़ रुपये) कर दिया गया। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक ने २००० लाख डालर अथवा १०० करोड़ रुपये ५ वर्ष में किश्तों में देने का प्रस्ताव रखा। लेकिन इस ऋण के साथ बैंक ने कई शर्तें भी रखी जो निम्नलिखित थी आंग्ल अमेरिकी ऋण, मिस्री आर्थिक योजना की स्वीकृति, राज्य के व्यय का नियन्त्रण तथा बैंक की अनुमति लिये बिना मिस्र कोई भी ऐसा भुगतान का समझौता नहीं कर सकता जैसे शस्त्रों की खरीद। अमेरिका ने ७०० लाख डालर (३५ करोड़ रुपये) का अनुदान देने का वायदा किया। मिस्र ने उक्त तमाम शर्तों को अस्वीकार कर दिया और कहा कि हम कुछ लाख डालरों के लिये अपने को बेच नहीं सकते क्योंकि ऐसा करना हमारी प्रभुसत्ता और स्वतन्त्रता के लिए अत्यन्त हानिकर है। राष्ट्रपति नासर ने कहा कि अमेरिका इजराइल को ३ करोड़ से ५ करोड़ डालर के बीच वित्तीय सहायता दे चुका है तथा इसके अतिरिक्त इजराइल के विभिन्न उद्योगों में २१४ मिलीयन डालर की पूंजी लगाई जा चुकी है। यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि अन्तर्राष्ट्रीय बैंक ने ब्रिटेन और अमेरिका के साथ मिलकर २७० मिलीयन डालर (१३२ करोड़ रुपये) की व्यवस्था करने का

वायदा किया और मिस्र की ७३० मिलीयन डालर (३६५ करोड रुपये) की लागत की उपेक्षा करते हुए नियन्त्रण लागू किये । १६ जुलाई १६५६ को अमेरिका ने घोषणा की कि वर्तमान परिस्थितियो में योजना में शामिल होना उसके लिये सम्भव नही । न्यूयार्क टाइम्स में एक सूचना प्रकाशित हुई जिसमें कहा गया था कि पाकिस्तान, ईराक और तुर्की ने मिस्र के आसवान बांध के लिये अमेरिकी ऋण का विरोध किया है क्योकि यदि ऐसा हुआ तो उन्हे प्राप्त होने वाला ऋण कम हो जायेगा । अन्तर्राष्ट्रीय बैंक तथा ब्रिटेन ने भी तत्काल अमेरिका की तरह वक्तव्य जारी किये । राष्ट्रपति नासर ने बैंक पर आरोप लगाया कि वह मिस्र पर शर्तें लागू करने में पश्चिमी राष्ट्रो का साथ दे रहा है और इस तरह वह मिस्र की आजादी और अखण्डता को क्षति पहुँचा रहा है । जून १६५६ में सोवियत विदेशमन्त्री शेपीलोव ने काहिरा के दौरे में कहा कि सोवियत सघ मिस्र को बिना किसी शर्त के लम्बी अवधि का ऋण दे सकता है । इसी बीच बैंक, ब्रिटेन और अमेरिका ने यह अडगा खडा कर दिया कि आसवान बाध का निर्माण उसी हालत में शुरू हो सकता है जब सूडान उसके लिये स्वीकृति दे दे । मिस्र नील नदी से सूडान से बारह गुना अधिक जल उपयोग करता है यद्यपि सूडान और मिस्र की जनसख्या का अनुपात १ २ है । इसलिये विशेषज्ञो की राय के अनुसार नील नदी के जल के वितरण के सम्बन्ध में इथोपिया उगाडा, बेल्जियम कागो और सूडान में समझौता आवश्यक समझा गया । पश्चिमी राष्ट्रों में ऐसी चर्चा फैली कि आसवान बाध योजना के लिये मिस्र ने शुरू में पर्याप्त साधनो की व्यवस्था का जो उल्लेख किया था वह अब अनिश्चित जान पडता है । यह घोषणा, उस समय हुई जिस समय कि ब्रियोनी में श्री नेहरू, टीटो और नासर में वार्ता चल रही थी । कर्नल नासर ने उक्त पश्चिमी राष्ट्रो की ओर सकेत करते हुए कहा 'तुम्हारी घृणा तुम्हारे लिये कब्र बनेगी, अब तुम हम पर शासन नही कर सकते क्योकि हम अब अपना रास्ता समझ चुके है ।'

राष्ट्रीयकरण कानून (२६ जुलाई १९५६)

२६ जुलाई १९५६ को सिकन्दरिया में राष्ट्रपति नासर ने मिस्त्रियो की एक विशाल सभा में भाषण देते हुए कहा, "स्वेज नहर के मामले में हम शीघ्र ही अपने खोये हुए अधिकारो को प्राप्त करने के लिये कदम उठायेंगे ।" उन्होंने अपने भाषण में आगे कहा, "मै यहाँ पर यह घोषणा करता हूँ कि भविष्य में मिस्र स्वेज नहर कम्पनी के वार्षिक ३६,०००,००० पौंड (लगभग ५० करोड रुपये) के मुनाफे का हकदार होगा । हम अब अपने पैरो पर खडे होने की कोशिश करेंगे और जगखोरो तथा साम्राज्यवादियों के दुश्मनो की बातो में नहीं आयेंगे ।"

राष्ट्रीयकरण कानून में ६ अनुच्छेद हैं। मिस्र नहर कम्पनी एक मिस्री ज्वाइंट स्टाक कम्पनी बन गई और इसके कोष और पूंजी मिस्र सरकार के अधिकार में आ गई। कम्पनी भंग कर दी गई लेकिन हिस्सेदारों (शेयर होल्डरों) को उस समय के शेयरों के भाव के अनुसार मुआवजा देने का वायदा किया गया। इस नयी कम्पनी को वाणिज्य मंत्रालय के अधीन कर दिया गया। कम्पनी की मिस्र में तथा मिस्र से बाहर की सारी सम्पत्ति को जब्त कर लिया गया। अनुच्छेद ४ में कहा गया है कि पुरानी कम्पनी के कर्मचारियों को इस्तीफा देने का अधिकार नहीं। इस प्रकार मिस्र ने स्वेज नहर के मुनाफे से वार्षिक १ करोड़ डालर (लगभग ५० करोड़ रुपये) लेकर आसवान बाँध योजना को पूरा करने का निश्चय किया। नहर के मुनाफे में मिस्र को ३० लाख डालर (डेढ़ करोड़ रुपये) और ब्रिटेन को ७ करोड़ डालर (३५ करोड़ रुपये) मिलते थे। जिस समय कर्नल नासर उपरोक्त घोषणा कर रहे थे उस समय काहिरा स्थित कम्पनी के प्रधान कार्यालयों तथा पोर्ट सईद, इस्माइलिया और स्वेज बन्दरगाह पर मिस्री सेना व पुलिस अधिकार जमा रही थी।

स्वेज नहर के राष्ट्रीयकरण के प्रति राष्ट्रों की प्रतिक्रिया

मिस्र ने स्वेज नहर कम्पनी का राष्ट्रीयकरण निर्धारित अवधि से १२ वर्ष पहले ही कर लिया। मिस्र सरकार के स्वेज नहर कम्पनी के राष्ट्रीयकरण के एक तरफा फैसले ने ब्रिटिश तथा फ्रांसीसी सरकारों में खलबली मच गई। ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर एन्थनी ईडन ने कामन्स सभा में घोषित किया कि अमेरिका, फ्रांस तथा दूसरे राष्ट्रमण्डलीय देशों से तत्सम्बन्धी विचार-विमर्श फौरन प्रारम्भ कर दिया गया है। उन्होंने यह भी कहा कि स्वेज नहर के सम्बन्ध में मिस्र द्वारा की गई स्वेच्छा-चारितापूर्ण कार्यवाही से जो स्थिति उत्पन्न हो गई है, उसमें ब्रिटेन सावधानी तथा दृढ़ता से पग उठाएगा। २७ जुलाई, १९५६ को ब्रिटेन ने मिस्र के पास एक अधिकृत विरोध-पत्र भेजा, जिसमें कहा गया था कि मिस्र के इस कार्य ने अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के एक जल-मार्ग पर जहाजरानी की स्वतन्त्रता के लिये गम्भीर खतरा उत्पन्न कर दिया है। 'तथा उसके जो भी परिणाम होंगे उनकी पूरी जिम्मेदारी मिस्र सरकार पर ही होगी। काहिरा रेडियो ने उसी शाम को यह घोषणा कर दी कि मिस्र ने ब्रिटेन के विरोध-पत्र को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया है। ऐसा उसने इस आधार पर किया कि स्वेज नहर कम्पनी का राष्ट्रीयकरण करने का कार्य मिस्र की प्रभु-सत्ता के निर्बंध अधिकारों के अन्तर्गत आता है। यह पूरी तरह मिस्र के कानून के क्षेत्र का विषय है ''इतना ही नहीं राष्ट्रीयकरण के कानून का कोई भी ऐसा प्रभाव नहीं पड़ा है जिससे स्वेज नहर में जहाजों के आवागमन में किसी भी प्रकार का व्यवधान उपस्थित हो।

वायदा किया और मिस्र की ७३० मिलीयन डालर (३६५ करोड रुपये) की लागत की उपेक्षा करते हुए नियन्त्रण लागू किये । १६ जुलाई १६५६ को अमेरिका ने घोषणा की कि वर्तमान परिस्थितियो में योजना में शामिल होना उसके लिये सम्भव नही । न्यूयार्क टाइम्स में एक सूचना प्रकाशित हुई जिसमें कहा गया था कि पाकिस्तान, ईराक और तुर्की ने मिस्र के आसवान बाँध के लिये अमेरिकी ऋण का विरोध किया है क्योकि यदि ऐसा हुआ तो उन्हे प्राप्त होने वाला ऋण कम हो जायेगा । अन्तर्राष्ट्रीय बैंक तथा ब्रिटेन ने भी तत्काल अमेरिका की तरह वक्तव्य जारी किये । राष्ट्रपति नासर ने बैंक पर आरोप लगाया कि वह मिस्र पर शर्तें लागू करने में पश्चिमी राष्ट्रो का साथ दे रहा है और इस तरह वह मिस्र की आजादी और अखण्डता को क्षति पहुँचा रहा है । जून १६५६ में सोवियत विदेशमत्री शेपीलोव न काहिरा के दौरे में कहा कि सोवियत सघ मिस्र को बिना किसी शर्त के लम्बी अवधि का ऋण दे सकता है । इसी बीच बैंक, ब्रिटेन और अमेरिका ने यह अडगा खडा कर दिया कि आसवान बाध का निर्माण उसी हालत में शुरू हो सकता है जब सूडान उसके लिये स्वीकृति दे दे । मिस्र नील नदी से सूडान से बारह गुना अधिक जल उपयोग करता है यद्यपि सूडान और मिस्र की जनसख्या का अनुपात १ २ है । इसलिये विशेषज्ञो की राय के अनुसार नील नदी के जल के वितरण के सम्बन्ध में इथोपिया उगाडा, बेल्जियम कागो और सूडान में समझौता आवश्यक समझा गया । पश्चिमी राष्ट्रो में ऐसी चर्चा फैली कि आसवान बाध योजना के लिये मिस्र ने शुरू में पर्याप्त साधनो की व्यवस्था का जो उल्लेख किया था वह अब अनिश्चित जान पडता है । यह घोषणा, उस समय हुई जिस समय कि ब्रियोनी में श्री नेहरू, टीटो और नासर में वार्ता चल रही थी । कर्नल नासर ने उक्त पश्चिमी राष्ट्रो की ओर सकेत करते हुए कहा 'तुम्हारी घृणा तुम्हारे लिये कब्र बनेगी, अब तुम हम पर शासन नहीं कर सकते क्योकि हम अब अपना रास्ता समझ चुके है ।'

राष्ट्रीयकरण कानून (२६ जुलाई १६५६)

२६ जुलाई १६५६ को सिकन्दरिया में राष्ट्रपति नासर ने मिस्रियो की एक विशाल सभा में भाषण देते हुए कहा, "स्वेज नहर के मामले में हम शीघ्र ही अपने खोये हुए अधिकारो को प्राप्त करने के लिये कदम उठायेंगे ।" उन्होने अपने भाषण में आगे कहा, "मै यहां पर यह घोषणा करता हूँ कि भविष्य में मिस्र स्वेज नहर कम्पनी के वार्षिक ३६,०००,००० पौंड (लगभग ५० करोड रुपये) के मुनाफे का हकदार होगा । हम अब अपने पैरो पर खडे होने की कोशिश करेंगे और जगखोरो तथा साम्राज्यवादियो के दुश्मनो की बातो में नहीं आयेंगे ।"

राष्ट्रीयकरण कानून में ६ अनुच्छेद हैं। मिस्र नहर कम्पनी एक मिस्री ज्वाइंट स्टाक कम्पनी बन गई और इसके कोष और पूंजी मिस्र सरकार के अधिकार में आ गई। कम्पनी भंग कर दी गई लेकिन हिस्सेदारों (शेयर होल्डरों) को उस समय के शेयरों के भाव के अनुसार मुआवजा देने का वायदा किया गया। इस नयी कम्पनी को वाणिज्य मंत्रालय के अधीन कर दिया गया। कम्पनी की मिस्र में तथा मिस्र से बाहर की सारी सम्पत्ति को जब्त कर लिया गया। अनुच्छेद ४ में कहा गया है कि पुरानी कम्पनी के कर्मचारियों को इस्तीफा देने का अधिकार नहीं। इस प्रकार मिस्र ने स्वेज नहर के मुनाफे से वार्षिक १ करोड़ डालर (लगभग ५० करोड़ रुपये) लेकर आसवान बांध योजना को पूरा करने का निश्चय किया। नहर के मुनाफे में मिस्र को ३० लाख डालर (डेढ़ करोड़ रुपये) और ब्रिटेन को ७ करोड़ डालर (३५ करोड़ रुपये) मिलते थे। जिस समय कर्नल नासर उपरोक्त घोषणा कर रहे थे उस समय काहिरा स्थित कम्पनी के प्रधान कार्यालयों तथा पोर्ट सईद, इस्माइलिया और स्वेज बन्दरगाह पर मिस्री सेना व पुलिस अधिकार जमा रही थी।

स्वेज नहर के राष्ट्रीयकरण के प्रति राष्ट्रों की प्रतिक्रिया

मिस्र ने स्वेज नहर कम्पनी का राष्ट्रीयकरण निर्धारित अवधि से १२ वर्ष पहले ही कर लिया। मिस्र सरकार के स्वेज नहर कम्पनी के राष्ट्रीयकरण के एक तरफा फैसले से ब्रिटिश तथा फ्रांसीसी सरकारों में खलबली मच गई। ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर एन्थनी ईडन ने कामन्स सभा में घोषित किया कि अमेरिका, फ्रांस तथा दूसरे राष्ट्रमण्डलीय देशों से तत्सम्बन्धी विचार-विमर्श फौरन प्रारम्भ कर दिया गया है। उन्होंने यह भी कहा कि स्वेज नहर के सम्बन्ध में मिस्र द्वारा की गई स्वेच्छा-चारितापूर्ण कार्यवाही से जो स्थिति उत्पन्न हो गई है, उसमें ब्रिटेन सावधानी तथा दृढ़ता से पग उठाएगा। २७ जुलाई, १९५६ को ब्रिटेन ने मिस्र के पास एक अधिकृत विरोध-पत्र भेजा, जिसमें कहा गया था कि मिस्र के इस कार्य ने अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के एक जल-मार्ग पर जहाजरानी की स्वतन्त्रता के लिये गम्भीर खतरा उत्पन्न कर दिया है।···तथा इसके जो भी परिणाम होंगे उनकी पूरी जिम्मेदारी मिस्र सरकार पर ही होगी। काहिरा रेडियो ने उसी शाम को यह घोषणा कर दी कि मिस्र ने ब्रिटेन के विरोध-पत्र को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया है। ऐसा उसने इस आधार पर किया कि स्वेज नहर कम्पनी का राष्ट्रीयकरण करने का कार्य मिस्र की प्रभुसत्ता के निर्बाध अधिकारों के अन्तर्गत आता है। यह पूरी तरह मिस्र के कानून के क्षेत्र का विषय है···इतना ही नहीं राष्ट्रीयकरण के कानून का कोई भी ऐसा प्रभाव नहीं पड़ा है जिससे स्वेज नहर में जहाजों के आवागमन में किसी भी प्रकार का व्यवधान उपस्थित हो।

२८ जुलाई, १९५६ को ब्रिटेन के राष्ट्रीय खजाने की ओर से दो निर्देश दिये गये। पहले के अनुसार, बिना सरकारी खजाने की सम्मति के इगलिस्तान में स्वेज नहर-कम्पनी का जो सोना या नकद प्रतिभूतिया थी उनका हस्तातरण नही हो सकता था। दूसरा निर्देश इससे भी दूरगामी प्रभाव वाला था। इस निर्देश के अनुसार इग्लैड में मिस्र के खाते में जो स्टलिंग जमा थे, बिना सरकारी खजाने की सहायता से न तो उसमें से कुछ निकाला जा सकता था और न उसमें कुछ जमा किया जा सकता था। यही व्यवस्था व्यक्तिगत खातो की रकमो के बारे मे अपनाई गई। अर्थात् मिस्र का समस्त स्टलिंग इग्लैड ने जाम कर दिया। दो दिन पश्चात् एन्थनी ईडन ने घोषित किया कि ब्रिटेन यह कदापि नही होने देगा कि स्वेज नहर पर किसी एक शक्ति का नियत्रण हो, जो इसका लाभ विशुद्ध अपनी राष्ट्रीय नीति के उद्देश्य के लिए उठाये। मिस्र के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्धो को लगाने के पश्चात्, ब्रिटेन ने जितनी भी युद्ध-सामग्री मिस्र को निर्यात होती थी, उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा अपनी सैन्य टुकडियो को साइप्रस भेज दिया।

स्वेज नहर कम्पनी पर मिस्र के अधिकार जमा लेने की फ्रास के प्रधान मत्री मोले तथा विदेश-मत्री पीनो ने तीव्र भर्त्सना की। ब्रिटेन ने इस सम्बन्ध मे जो रुख अपनाया था उससे सहमत होते हुए मोले ने राष्ट्रपति नासर को एक उदीयमान तानाशाह बतलाया, 'जिसके तौर-तरीके ठीक वैसे ही है जैसे तौर-तरीको का प्रयोग हिटलर किया करता था।" उन्होने यह भी कहा कि फ्रास ने भी यह निर्णय कर लिया है कि इस मिस्री तानाशाह को ईट का जवाब पत्थर से दिया जायेगा। यह कार्यवाही पश्चिमी मित्र राष्ट्रो की सयुक्त कार्यवाही के रूप में होगी। राष्ट्रपति नासर पर यह आरोप लगाया गया कि स्वेज नहर में इजराइली जहाजो के आवागमन पर प्रतिबध लगाकर मिस्र ने अन्तर्राष्ट्रीय समझौते को तोडा है तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानून का उल्लघन किया है। फ्रास ने भी उन्ही आर्थिक कार्यवाहियो तथा सैनिक तैयारियो की घोषणा की जिन्हे ब्रिटेन ने अपनाया था।

मिस्र सरकार तथा स्वेज नहर कम्पनी की जितनी भी सम्पत्ति अमेरिका में थी उस सब को अमेरिकी सरकार ने ३१ जुलाई १९५६ को तब तक के लिए जब्त कर लिया जब तक कि यह निर्णय न हो जाय कि उस सम्पत्ति का वास्तविक अधिकारी कौन है। अमेरिकी राष्ट्रपति ने यह विचार प्रगट किया कि स्वेज नहर अमेरिकी अर्थ-व्यवस्था तथा भावी कल्याण के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड तथा टर्की ने भी ऐसे ही विचार प्रकट किये। उसी दिन नासर ने एक वक्तव्य निकाला। उसमे यह दुहराया गया कि "स्वेज नहर कम्पनी हमेशा मिस्री

कम्पनी रही है तथा अन्य मिस्री कम्पनियो की ही तरह इसका भी राष्ट्रीयकरण किया जा सकता है। हम हमेशा की ही तरह अपने तमाम अन्तर्राष्ट्रीय कर्तव्यो का सम्मान करने को तैयार हैं तथा १८८८ के व्यवस्थान (Convention) और १९५४ के आग्ल-मिस्री समझौते का भी हम उसी प्रकार सम्मान करते है। स्वेज नहर में जहाजो के आवा-गमन की स्वतत्रता पर न तो किसी बात का प्रभाव पडेगा, ना ही किसी भी सीमा तक या किसी भी तरह उसमें रुकावट पडेगी।"

२ अगस्त, १९५६ को ब्रिटेन, फ्रास तथा अमेरीका के विदेश मत्रिया (सेलविन लायड, पिनो तथा डलेस) का स्वेज-सकट पर पारस्परिक विचार-विमर्श हुआ। इस विचार-विमर्श के अन्त में यह घोषणा की गई कि १६ अगस्त १९५६ को २४ राष्ट्रो का एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन लदन में हो, जिसमें स्वेज नहर के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सस्था की स्थापना पर विचार हो। यह सस्था मिस्र के हितो को दृष्टिगत रखते हुए तमाम देशो के लिए स्वेज नहर में अपने-अपने जहाज लाने-लेजाने की स्वतत्रता तथा सुरक्षा को सुनिश्चित कराये। रूस ने इस सम्बन्ध में राय बनाई कि एक प्रभु-सत्ता सम्पन्न राष्ट्र होने के नाते मिस्र को अपनी स्वेज नहर के राष्ट्रीयकरण का पूर्ण अधिकार है। अत. इस मामले में किसी प्रकार की चिन्ता तथा घबराहट की कोई बात नही है।

प्रथम लदन सम्मेलन (१६ अगस्त से २३ अगस्त १९५६ तक)

मिस्र सरकार ने लदन मे होने वाले स्वेज सम्मेलन में शामिल होने के निमत्रण को ठुकरा दिया। राष्ट्रपति नासर ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि केवल २४ राष्ट्रो को ही सम्मेलन में क्यो निमत्रित किया गया, जबकि १९५५ में ४५ राष्ट्रो ने स्वेज नहर का उपयोग किया। साथ-ही-साथ उन्होने कहा कि सम्मेलन को कोई भी अधिकार नही है कि वह मिस्र की अनुपस्थिति में मिस्र की तथा मिस्र के किसी भी भाग की प्रभु-सत्ता के सम्बन्ध मे कोई विचार करे।

ब्रिटिश प्रधान मत्री सर एन्थनी ईडन ने ८ अगस्त के अपने प्रसिद्ध आकाश-वाणी-भाषण में कहा कि 'ब्रिटेन के लिए स्वेज नहर उसी तरह रही है जिस तरह शरीर के लिए प्रमुख धमनी नाडी (जिनके द्वारा समस्त शरीर में रक्त प्रवाहित होता है)। कर्नल नासर ने स्वेज नहर को अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनी को बिना किसी पूर्व सलाह मश-विरे के अपने हाथ में ले लिया है हमारा मिस्र ने किसी प्रकार का झगडा नही और ना ही अरबो से। हमारा तो वास्तविक झगडा कर्नल नासर से है। उसने हमारे देश के विरुद्ध विषैले प्रचार के लिए अभियान किया है। उसने यह भली प्रकार दिखा दिया है कि वह वास्तव में ऐसा आदमी नही है जिस पर यह विश्वास

किया जा सके कि वह किसी भी समझौते को निभायेगा। कर्नल नासर को अपने इस कार्य में हम सब के ऊपर सफलता प्राप्त हो गई तो जिन वस्तुओ पर हमारा जीवन निर्भर है, उनकी पूर्ति के लिए एक ही व्यक्ति की दया पर निर्भर रहना पड़ेगा। हम इसे कदापि स्वीकार नही कर सकते। तानाशाहो के साथ व्यवहार का यह परिणाम होता है कि अगर उन्हे सहन करते जाँय तो बाद में बहुत कष्ट उठाना पड़ता है क्योकि ज्यो-ज्यो उनकी अधिकार लिप्सा तृप्त होती रहती है त्यो त्यो वह और भी प्रचड रूप धारण करती जाती है। हम इस पर कभी भी सहमत नही हो सकते कि लूट के ऐसे कार्य को, जो कई राष्ट्रो के जीवन-यापना के लिए खतरा हो, सफल होने दिया जाय। स्वेज नहर का सचालन एक देश के नही अपितु समस्त राष्ट्रो के हित में होना चाहिए।"

जिन २४ राष्ट्रो को लदन-सम्मेलन में निमन्त्रित किया गया था उनमें से मिस्र तथा ग्रीस इन दो राष्ट्रो ने सम्मेलन में सम्मलित होने से मना कर दिया जिसका श्रीगणेश १६ अगस्त को हुआ था। इसमें अधिकाश देशो के विदेशी-मत्री ही शामिल हुए।

प्रतिनिधियो के विचारार्थ तीन निश्चित योजनाए प्रस्तुत की गई। ये योजनाएँ क्रमश डलेस-योजना, शेपीलोव-योजना तथा मेनन-योजना के नाम से जानी जाती हैं।

अमेरिकी विदेश मत्री ने निम्नांकित सुझाव रखे जिनका समर्थन ब्रिटेन तथा फ्रांस की ओर से भी हुआ। ये सुझाव है—

(१) नहर का सचालन एक अन्तर्राष्ट्रीय मडल द्वारा होना चाहिए, जिसकी स्थापना सयुक्त राष्ट्र सघ के अन्तर्गत एक समझौते द्वारा हो। मिस्र भी उसका सदस्य हो।

(२) मिस्र के इन अधिकारो को मान्यता देनी चाहिए कि उसे न्यायानुकूल लाभ स्वेज नहर के सचालन से मिल सके।

(३) स्वेज नहर कम्पनी को उचित मुआवजे के देने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(४) मतभेद की स्थिति में मामलो का फैसला पच-फैसले द्वारा होना चाहिए।

(५) १८८८ के व्यवस्थान (Convention) में निहित सिद्धान्तो के अनुसार नहर का सचालन बतौर एक स्वतत्र तथा सुरक्षित अन्तर्राष्ट्रीय जल-मार्ग की तरह होना चाहिए।

(६) किसी भी हाल में, नहर सचालन पर किसी भी देश की राजनीति का प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।

रूसी विदेश-मंत्री श्री शेपीलोव ने स्वेज नहर विवाद के शान्तिपूर्ण हल के लिए निम्नांकित सिद्धांतों का प्रतिपादन किया :—

(१) मिस्र के अखंडित प्रभु सत्ता-सम्पन्न अधिकारों को मान्य ठहराया जाय। साथ ही जिन राष्ट्रों का नहर द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता है उनके हितों का भी ध्यान रखना चाहिए।

(२) सब देशों के लिए समान शर्तों पर ही नहर हमेशा स्वतंत्र तथा खुली रहनी चाहिए।

(३) मिस्र को अपने उन दायित्वों को ग्रहण करना चाहिए जिनके अनुसार नहर में निर्बाध जहाजरानी के लिए यथेष्ट सुविधाएँ बनी रहें।

(४) नहर में जहाज ले जाने के शुल्क को मिस्र के साथ बातचीत से निर्धारित कर लेना चाहिए।

(५) १८८८ के व्यवस्थान (Convention) से सम्बन्धित पक्षों को नहर की किसी प्रकार की हानि नहीं करनी चाहिए।

(६) नहर में किसी भी प्रकार का अवरोध अथवा व्यवधान उपस्थित नहीं किया जाना चाहिए।

(७) अन्तर्राष्ट्रीय सहकारिता द्वारा नहर के विकास के प्रश्न पर मिस्र से विचार-विनिमय कर लेना चाहिए।

शेपीलोव ने इस ओर भी ध्यान आकर्षित किया कि १९५५ में कम्पनी की आय ३५००० मिलियन फ्रैंक की थी जिसमें कि व्यय १८००० मिलियन फ्रैंक से अधिक नहीं था। १०,००० मिलियन फ्रैंक के लाभ में से मिस्र को मात्र १००० मिलियन फ्रैंक्स ही मिले। यह स्वाभाविक ही था कि मिस्र यथेष्ट निर्णय पर पहुँचा तथा उसने कम्पनी का राष्ट्रीयकरण कर लिया। श्री वी० के० कृष्ण मेनन अपने इस प्रयास में सफल हुए कि उन्होंने शेपीलोव को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वह अपनी योजना को हटा लें। यह इस लिए सम्भव हो सका कि श्री मेनन द्वारा सम्मेलन के समय प्रस्तुत योजना पहले की दोनों योजनाओं के बीच का एक सुनहरा मध्यम मार्ग माना गया। मेनन-योजना के आवश्यक पांच मुद्दे निम्न प्रकार हैं :—

(१) १८८८ के कुस्तुन्तुनिया-व्यवस्थान (Convention) में संशोधन किया जाय, विशेषकर नहर को चालू बनाए रखने के लिए उचित तथा न्यायानुकूल यातायात शुल्क तथा दूसरे शुल्कों के विषय में।

(२) १८८८ के व्यवस्थान पर जिन राष्ट्रों ने हस्ताक्षर कर रखे हैं उनका तथा नहर के प्रयोक्ता राष्ट्रों का एक सयुक्त सम्मेलन उपर्युक्त उद्देश्य के लिए बुलाया जाय।

(३) बिना किसी पक्षपात के मिस्र की मिलकियत पर विचार किया जाय। साथ ही-साथ अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोक्ताओ के हित के लिए नहर सचालन के कार्य पर 'स्वेज नहर के लिए बने किसी निगम' के साथ विचार किया जाय।

(४) प्रयोक्ताओ के हित के लिए एक सलाहकार मडल की स्थापना की जाय। इसमें भौगोलिक आधार पर प्रतिनिधित्व दिया जाय। इस सस्था के मुख्य कार्य हो—सलाह देना, विचार विनिमय करना तथा सम्बन्ध-निर्धारण करना।

(५) मिस्र को चाहिए कि वह 'स्वेज-नहर के लिए बने मिस्री निगम' का वार्षिक प्रतिवेदन सयुक्त राष्ट्र सघ के समक्ष प्रस्तुत करता रहे।

२३ अगस्त १९५६ को सम्मेलन समाप्त हुआ जब १७ देशो* ने—स्पेन को छोड कर—बहुमत वाली योजना, जो पाच राष्ट्रो की योजना के नाम से जानी जाती है, का समर्थन किया। यह डेलस-योजना थी, जिसमें पाकिस्तान, ईरान, ईथोपिया, तथा तुर्की द्वारा सशोधन कर दिया गया था। परिणाम-स्वरूप मेनन-योजना, जिसका समर्थन रूस, हिन्देशिया तथा लका ने किया था, ठुकरा दी गई। अन्त में, सम्मेलन ने आस्ट्रेलिया के प्रधान मत्री डा० मेंजीज के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मडल को काहिरा भेजने का निर्णय किया जो अपने साथ सम्मेलन की कार्यवाही का सम्पूर्ण ब्योरा ले जाय। इसमे नहर के अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की योजना सम्मिलित थी।

मेजीज-शिष्टमडल (३-९ सितम्बर १९५६)

आस्ट्रेलिया, अमेरिका, इथोपिया, ईरान तथा स्वीडन इन पाँच राष्ट्रो की स्वेज-नहर-समिति के नेता, आस्ट्रेलिया के प्रधानमन्त्री श्री रावर्ट मेन्जीज ने मिस्र के राष्ट्रपति नासर से ३ सितम्बर से चर्चा प्रारम्भ की। इसके छ दिन बाद श्री मेंजीज को लिखे अपने एक पत्र में राष्ट्रपति नासर ने कहा कि "नहर के अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण की १८ राष्ट्रो की योजना से अधिक मिस्र के लोगो को उत्तेजित करने वाली किसी भी और बात की कल्पना नही की जा सकती।" वे यह भली प्रकार समझ गए कि "इस योजना का एक मात्र उद्देश्य यही है कि स्वेज नहर को मिस्र के हाथो से छीनकर किसी अन्य के हाथो में सौंप दिया जाय। इस प्रकार का कार्य आत्म-पराभव के साथ ही साथ इस तरह का भी है जिसमे पारस्परिक अलगाव, गलतफहमी तथा अनवरत सघर्ष पैदा हो।"

*नार्वे, स्वीडन, डेन्मार्क, पुर्तगाल, पाकिस्तान, ईरान, तुर्की, इथोपिया, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, फ्रास, न्यूजीलैण्ड, जापान, हालैण्ड, इटली, पश्चिम जर्मनी तथा सयुक्त राज्य अमेरिका।

पांच राष्ट्रो की स्वेज-समिति ने अपने १६ पृष्ठो के प्रतिवेदन में घोषित किया कि "मिस्र इस सम्बन्ध में अटल रूप से कृत सकल्प है कि वह मिस्र की स्वय की सरकार के अतिरिक्त किसी भी अन्य शक्ति का नियन्त्रण या व्यवस्था नहर के सचालन या विकास में सहन नही करेगा।"

प्रतिवेदन में कहा गया कि इसका परिणाम यह हुआ की जल मार्ग के अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण के लिए १८ राष्ट्रो के प्रस्तावो को मिस्र के राष्ट्रपति नासर ने पूर्णरूप से ठुकरा दिया।

द्वितीय लन्दन सम्मेलन (सितम्बर १६-२१, १९५६)

१६ सितम्बर को १८ राष्ट्रो की एक बैठक दूसरी बार लन्दन में इस उद्देश्य से हुई कि इस में स्वेज-नहर-प्रयोक्ता-सघ (SCUA) के निर्माण के विषय में चर्चा की जाय। इससे नौ दिन पूर्व मिस्र नें १८८८ के व्यवस्थान (Convention) से सम्बन्धित राष्ट्रो का सम्मेलन बुलाया। यह सम्मेलन उसने इसलिए आयोजित किया कि उस सम्मेलन के समक्ष ही नहर में जहाजरानी की स्वतन्त्रता की गारन्टी कर दे। लेकिन यह प्रस्तावित सम्मेलन कभी भी नही हुआ, हालांकि इसका समर्थन अरब-राष्ट्रो, रूसी-गुट, भारत, हिन्देशिया, यूगोस्लाविया तथा पाकिस्तान ने किया। डलेस ने स्वेज-नहर-प्रयोक्ता सघ (SCUA) के लिए एक विधान प्रस्तुत किया जो १८ राष्ट्रो में से केवल १५ राष्ट्रो ने ही स्वीकार किया। स्वेज-नहर-प्रयोक्ता सघ की स्थापना निम्नांकित सिद्धांतो के अनुसार होने को थी—

(१) इसके सदस्य वे ही राष्ट्र होंगे, जिन्होंने द्वितीय लदन-सम्मेलन में भाग लिया हो। ऐसा राष्ट्र भी इसका सदस्य हो सकता है जो इसके निर्धारित उद्देश्यो को माने।

(२) स्वेज नहर प्रयोक्ता सघ (SCUA) को चाहिए कि वह १८८८ के व्यवस्थान (Convention) के अन्तर्गत मिस्र के तथा स्वेज-नहर-प्रयोक्ताओ के अधिकारो को ध्यान में रखते हुए समस्या के समाधान के लिए उपाय सुलभ करे। उसे चाहिए कि वह इस बात का प्रयत्न करे कि किसी भी सदस्य राष्ट्र के जहाज स्वेज नहर में से सुरक्षित, शीघ्रता से, तथा कम-खर्च से आ जा सकें।

(३) अन्तिम निर्णय के होने तक विद्यमान अधिकारो के प्रति बिना प्रतिग्रह (Prejudice) के इस सघ को चाहिए कि जो शुल्क किसी भी स्वेज-नहर-प्रयोक्ता से इसे प्राप्त हो उसे प्राप्त करके वितरित करदे।

(४) सदस्यो को एक परिषद में आपसी परामर्श करना चाहिए। इस परिषद में हर सदस्य को प्रतिनिधित्व दिया जायगा। इसे एक कार्यपालिका की स्थापना और साथ ही एक प्रशासक की नियुक्ति करनी चाहिए जो परिषद के निर्देशो के अतर्गत आवश्यक व्यवस्थायें करे। साठ दिन की पूर्व-सूचना पर सदस्यता समाप्त की जा सकती है।

प्रयोक्ता-सघ के निर्माण की कल्पना के मूल में दो विचार प्रधान थे—(अ) ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय कि मिस्र-सरकार स्वेज-सचालन के कार्य को विधिवत् सम्पन्न करने में असमर्थ हो जाय तो वे अपने-अपने जहाज स्वेज नहर में से भेजें, (आ) अगर काहिरा सरकार प्रयोक्ताओ के जहाजो के आवागमन को रोक दे तो सब, मिस्र को दण्ड देने के बतौर नहर का बहिष्कार करे।

पन्द्रह सदस्यो की प्रारम्भिक सदस्यता के साथ स्वेज-नहर-प्रयोक्ता-सघ (SCUA) का उद्घाटन लन्दन में १ अक्तूबर १९५६ को किया गया। इथोपिया, जापान तथा पाकिस्तान उसमें सम्मिलित नही हुए। तीन दिन पश्चात् सात सदस्यो की एक कार्यपालिका का निर्माण हुआ। कार्यपालिका के सदस्यो का चुनाव परिषद् ने एक वर्ष के लिए किया। इस कार्यपालिका का मुख्य कर्तव्य यह निर्धारित किया गया कि वह सघ के उद्देश्यो को समझने के लिए प्रशासक का यथेष्ट मार्गदर्शन करे। परिषद्, जिसके सदस्य सभी प्रयोक्ता-देशो के प्रतिनिधि थे, की बैठक वर्ष में दो बार हो, जिसमें बजट स्वीकार किया जाय तथा कार्यपालिका द्वारा उठाये गए कदमो पर स्वीकृति की मोहर लगाई जाय।

तीन माह के लिए हर सदस्य निधि में बराबर चन्दा दे, जिसका अनुमान लगभग कुल ५०,००० पौड तक कूता जाता है। १९ अक्तूबर को न्यूयार्क में डेन्मार्क के ४० वर्षीय राजदूत श्री डविड बार्टेल्स को बतौर प्रशासक के नियुक्त किया गया। इस प्रकार सगठन-सम्बन्धी, कार्य-सम्बन्धी तथा वित्त सम्बन्धी जिन भी व्यवस्थाओ की आवश्यकता स्वेज-नहर प्रयोक्ता सघ को सचालित करने के लिए थी वे सब व्यवस्थाएँ पूर्ण हो गईं।

सयुक्त राष्ट्रसघ मे स्वेज नहर का मसला

२६ सितम्बर को ब्रिटेन और फ्रांस ने सुरक्षा परिषद् से प्रार्थना की कि वह उस स्थिति का निरीक्षण करे, जो मिस्र द्वारा स्वेज-नहर की उस अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था प्रणाली को समाप्त करने की एकतरफा कार्यवाही से उत्पन्न होगई जिसकी सपुष्टि १८८८ के व्यवस्थान (Covention) द्वारा की गई थी।" अगले दिन मिस्र ने ही भी अपनी याचिका परिषद् प्रस्तुत कर दी—जिसमें सुरक्षा परिषद् से प्रार्थना की गई कि वह कुछ शक्तियो द्वारा—विशेषतया फ्रांस तथा इगलैंड द्वारा—मिस्र के

विरुद्ध की जाने वाली कार्यवाही को रोके, जो अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के लिए गम्भीर खतरा है। यद्यपि ब्रिटेन के श्री पियर्सन डिक्सन ने मिस्र की अपील की भर्त्सना यह कह कर की कि यह एक 'निर्लज्जता पूर्ण कलंक है' तथापि सात के विरुद्ध शून्य मत से मिस्र की इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया गया। विरोधी दृष्टिकोणों पर लम्बे वाद-विवाद के पश्चात् सुरक्षा-परिषद् १३ अक्टूबर १९५६ को मिस्र से इस बात को मनवाने में सफल हुई कि वह छः मुद्दों वाले एक समझौता प्रस्ताव को स्वीकार कर ले। इस प्रस्ताव में निम्नलिखित आकांक्षाओं का उल्लेख था —

(१) बिना किसी भेदभाव के, चाहे वह राजनीतिक हो अथवा प्राविधिक, नहर में से जहाजों का आना-जाना निर्बाध खुला रहना चाहिए।

(२) मिस्र की प्रभुसत्ता का सम्मान करना चाहिए।

(३) नहर का संचालन किसी भी देश की राजनीति से अलग रहना चाहिए।

(४) शुल्क निर्धारण करने के तरीके का निर्णय मिस्र तथा प्रयोक्ताओं के पारस्परिक समझौते से होना चाहिए।

(५) शुल्क से प्राप्त रकम के अच्छे-खासे भाग का नहर के विकास-कार्य में विनियोग किया जाना चाहिए।

(६) स्वेज-नहर कम्पनी तथा मिस्र-सरकार के बीच अनिर्णीत मामलों पर उठे विवादों का समाधान पंच फैसले द्वारा होना चाहिए। इस फैसले में अनुकूल शर्तों तथा जो रकम जमा पाई जाय उसकी अदायगी के उचित नियमों का समावेश किया जाना चाहिए।

इस प्रकार शांतिपूर्ण बातचीत के लिए ठोस आधार क्या रहे इस पर पारस्परिक समझौता हो गया। इसी बीच भारत ने अपनी सात मुद्दों वाली योजना प्रस्तुत की जिसमें इन व्यवस्थाओं को स्थान दिया गया—हिस्सेदारों को मुआवजा, मिस्र के अधीनस्थ स्वेज-नहर की अधिकृत संस्था की प्रयोक्ता संघ के साथ सहकारिता, सर्व-सम्मत-मार्ग-शुल्क तथा अन्य व्यय, प्रयोक्ताओं में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं, संचालन के लिए तथा नहर के लिए बनी अधिकृत संस्था और प्रयोक्ताओं के कर्तव्यों के लिए विस्तृत नहर-संहिता तथा उच्च विशेषज्ञों की नियुक्ति।

मिस्र पर इजराइल का आक्रमण

अरब-राष्ट्रों तथा इजराइल के बीच बढ़ते हुए तनाव तथा राष्ट्रपति नासर द्वारा स्वेज नहर पर अधिकार जमा लेने का परिणाम यह हुआ कि २९ अक्तूबर १९५६ को मिस्र के सिनाई द्वीप पर इजराइल ने अकस्मात् आक्रमण कर दिया। इसके ग्यारह दिन पूर्व इजराइल के प्रधान मंत्री डेविड बेन गुरियों ने इजराइली संसद (नेस्सेट) में बताया कि "इजराइल को जिस सबसे बड़े और गम्भीर खतरे का मुकाबला करना है, वह है मिस्र के निरंकुश तानाशाह के आक्रमण का, जिसका

लक्ष्य है समस्त अरब-राष्ट्रों पर अपना आधिपत्य स्थापित करके इजराइल को समाप्त करना।" काहिरा में मिस्र के युद्ध-मन्त्री मेजर जनरल अब्दल हकीम अमर ने उत्तर में कहा कि, "अगर किसी भी अरब-भूमि पर कोई भी आक्रमण होगा अथवा अधिकार जमाया जायगा, तो मिस्र की सशस्त्र सेनाएं फौरन रणक्षेत्र में जायगी।"

यह ध्यान में रखना चाहिए कि इजराइल के आक्रमण का लक्ष्य था उन फेडीन (मिस्री युद्ध-मोर्चों) अड्डों को नष्ट भ्रष्ट करना, जिनसे इजराइल की सीमा में प्राय आक्रमण होते रहे थे। मिस्र के कथनानुसार मिस्र पर इजराइल के आक्रमणों की सख्या क्रमश इस प्रकार है—१९४९ में १६, १९५० में ४४ १९५१ में ८७, १९५२ में १५८, १९५३ में १७४, १९५४ में २५९ तथा १९५५ में २७६। १९५६ में इजराइल ने कुख्यात निर्दयतापूर्ण आक्रमण किया, जिसने विश्व-जन-मत को विक्षुब्ध कर दिया।

आक्रमण से एक दिन पूर्व इजराइल ने घोषित किया कि हमें निम्नलिखित कारणों से अपनी सेनाओं का जमाव करना अनिवार्य हो गया है

(१) इजराइल के विरुद्ध मिस्र की फेडीन कार्यवाहियों का पुनारम्भ।

(२) मात्र चार दिन पूर्व मिस्र के नेतृत्व में इजराइल के विरुद्ध मिस्र-जोर्डन-सीरियाई सैन्य गठबन्धन का निर्माण।

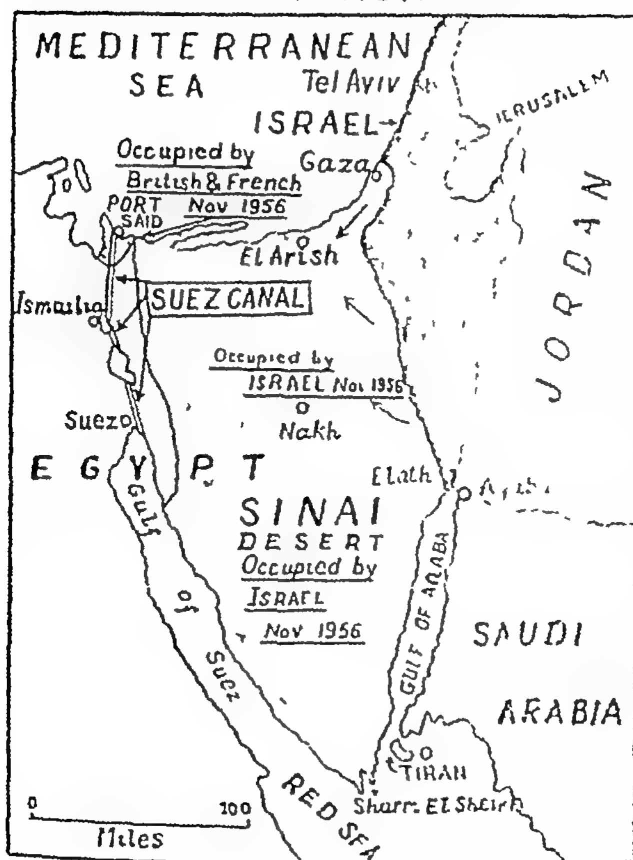
(३) मिस्र, जोर्डन तथा सीरिया के शासकों की यह घोषणा कि उनका सकल्प ही इजराइल को समाप्त करने का है।

(४) जोर्डन की सीमाओं पर ईराकी फौजों का जमाव। इन सबके ही साथ मिस्र द्वारा इजराइली जहाजों के स्वेज नहर में से आने-जाने पर नाकेबदी। अरब-सघ द्वारा आर्थिक नाकेबदी तथा मिस्र द्वारा रूसी शस्त्रास्त्रों की खरीदारी आदि कुछ ऐसी और कार्यवाहिया हुईं, जिन्होंने मध्यपूर्व में शक्ति-सतुलन को अव्यवस्थित कर दिया।

फ्रांस के कुछ महत्वपूर्ण समाचार पत्रों ने समाचार प्रकाशित किया कि २६ अक्तूबर को इजराइली प्रधान मन्त्री बेन गुरियो फ्रांस के प्रधान मन्त्री मोले से दो घण्टे की गुप्त वार्ता के लिए चपचाप पेरिस गये। बातचीत के अन्त में उन्होंने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये—"व्यावहारिक दृष्टि से जिसका अर्थ था फ्रास तथा इजराइल के बीच गुप्त-सन्धि। इसी समझौते के आधार पर फ्रास की हवाई तथा जल सेनाओं ने इजराइली आक्रमण में भाग लिया।" दो फ्रासीसी पत्रकार श्री सर्जे तथा मेर्रे ब्रोम्बर्जर ने अपनी पुस्तक 'मिस्र पर आक्रमण के रहस्य' में कहा है कि "ब्रिटेन तथा फ्रास को अग्रिम जानकारी थी कि इजराइल २९ अक्तूबर को मिस्र पर आक्रमण करेगा। जब वास्तविक इजराइली आक्रमण हुआ उससे बहुत पहले ही गुप्त सैनिक कार्यवाही की, जिसे 'मस्केटियर' कहते हैं, सयुक्त योजना बना ली गई थी।"

एक दिन पूरा होने से पहले ही इजराइली सेनाओं ने गाजा पट्टी पर तथा सिनाई द्वीप पर आधिपत्य जमा लिया तथा स्वेज नहर क्षेत्र में १८ मील अन्दर तक पहुँच गई। २ नवम्बर तक मिस्र के ३०,००० सैनिक सिनाई में या तो खेत रहे या उन्हें बन्दी बना लिया गया। इसी बीच ब्रिटेन तथा फ्रांस ने मिस्र पर आक्रमण कर दिया।

INVASION OF EGYPT (1956)
AND EVACUATION (1957)



मिस्र पर आंग्ल-फ्रांसीसी आक्रमण

अक्तूबर १९५६ में मिस्र तथा ब्रिटेन के बीच तनाव अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। मिस्र ने यह शिकायत की कि स्वेज-संकट आंग्ल-फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों द्वारा कृत्रिम रूप से उत्पन्न किया हुआ है, जो सैनिक तथा सामरिक उद्देश्य के लिए नहर-क्षेत्र पर अपना नियंत्रण स्थापित करने का निश्चय कर चुके हैं। अपने कथन के समर्थन में उन्होंने निम्नांकित उदाहरण प्रस्तुत किये —

(१) सैन्य कार्यवाही की धमकी से भरे वक्तव्य।

(२) फ्रास तथा ब्रिटेन की सशस्त्र सेनाओ का साइप्रस में जमाव।

(३) फ्राम तथा ब्रिटेन द्वारा स्वेज नहर में कार्य करने वाले जहाज-सचालको तथा कर्मचारियो को अचानक कार्य छोड देने के लिए उकसाना।

(४) मिस्र के विरुद्ध उठाये गये शत्रुतापूर्ण आर्थिक प्रतिबन्ध।

दूसरी ओर ब्रिटेन के विचार से यह स्थिति राजनीतिक, व्यापारिक, सैनिक तथा सम्मान की दृष्टि से अत्यत गम्भीर थी। ईडन के शब्दो में "१९४९ से अरब-इजराइली सबध शान्तिपूर्ण नही रहे। यह सीमा पर आक्रमणो, सीमा-प्रदेश तथा शत्रुतापूर्ण कार्यवाहियो की लम्बी कहानी हे, जिसकी समाप्ति मिस्र-सरकार की इस घोषणा पर होती हे कि उसने इजराइल को नष्ट करने का निश्चय किया है।" १९५० से फ्रांस तथा अमेरिका के साथ ब्रिटेन ने जो सन्तुलन कायम रखा था वह पांच वर्ष बाद रूस द्वारा मिस्र को कम से कम १५०,०००,०००, पौण्ड के मूल्य के शस्त्रास्त्र देने के कारण अव्यवस्थित हो गया। १५०,०००,००० पौड की यह राशि उस राशि से दुगुनी है, जो १९५६ मे सम्पूर्ण ब्रिटिश सेना के लिए बजट में स्वीकृत की गई थी।

रूसी शस्त्रास्त्रो के मिस्र में प्रवेश से स्वेज-नहर में जहाजरानी की स्वतन्त्रता तथा सुरक्षा का प्रश्न, सुदूर-पूर्व मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हित तथा पेट्रोल और, ब्रिटेन के आयात-माल की कीमतें बढने की सम्भावना आदि प्रश्न आ खडे हुए। यह अनुमान लगाया गया है कि १९५५ के पूरे वर्ष मे जितने पेट्रोल का ब्रिटेन में उपयोग हुआ है उसका ८५%स्वेज-नहर के रास्ते से ब्रिटेन मे आयात हुआ था। राष्ट्रपति नासर तथा तत्कालीन ब्रिटिश प्रधान मन्त्री ईडन में व्यक्तिगत शत्रुता भी दीखती है, जिसका प्रकटीकरण ईडन के ८ अगस्त, १९५६ के उस रेडियो-भाषण से होता है, जिसका कुछ अंश पहले उद्धृत किया जा चुका है। अरब-समाचार-अधिकरण के ब्रिटिश व्यवस्थापक जेम्स स्विनबर्न की गिरफ्तारी तथा उस पर चले मुकदमे ने तथा स्वेज-नहर के राष्ट्रीयकरण के तीन दिन के अन्दर ही मिस्र विरोधी जासूसी कार्यवाही के अभियोग में दो ब्रिटिश राजनयिकों को मिस्र से बाहर निकाल देने के मिस्र-सरकार के वाद ने स्थिति को और भी गम्भीर बना दिया।

अक्टूबर ३० को ब्रिटेन तथा फ्रांस की सरकारो ने मिस्र तथा इजराइल दोनों को बारह घण्टे की चेतावनी दी कि वे युद्ध बन्द कर दें तथा स्वेज-नहर से १० मील दूर पर अपनी फौजें हटा लें। मिस्र ने यह प्रार्थना की गई कि वह आंग्ल-फ्रांसीसी सेनाओं को पोर्ट सईद, इस्माइलिया तथा स्वेज-क्षेत्र में ठहर जाने दे, जिससे दोनो दलों को पृथक् कर दिया जाय तथा स्वेज-नहर में जहाजरानी की स्वतन्त्रता को

सुनिश्चित किया जाय। इजराइल ने चेतावनी को स्वीकार कर लिया पर मिस्र ने उसे ठुकरा दिया। परिणाम-स्वरूप ब्रिटेन तथा फ्रास के जहाजो ने अपने साइप्रस के अड्डो से मिस्र के विरुद्ध आक्रमणात्मक कार्यवाही प्रारम्भ कर दी। ब्रिटेन ने अपने इस कदम को पुलिस कार्यवाही की सज्ञा दी तथा युद्ध शीघ्र समाप्त हो जाने की आशा प्रकट की। एक सप्ताह के अन्दर अन्दर सिकन्दरिया, फौद तथा सईद की बन्दरगाहो और इस्माइलिया पर अधिकार जमा लिया गया।

सयुक्त राष्ट्र-सघ की कार्यवाही

ब्रिटेन तथा फ्रास ने मिस्र पर यह आक्रमण अमेरिका की गैर-जानकारी में किया था। इसका पता निश्चित रूप से अब बील द्वारा लिखित डलेस जीवनी से लगा। आंग्ल-फ्रासीसी शक्तियो ने अनुभव किया कि अमेरिका स्वेज-नहर समस्या पर हमारा साथ नही देगा क्योकि उसके हित दूसरी तरह के है। अमेरिकी प्रार्थना पर, जिसमे ब्रिटेन पर धीरज के अभाव का आरोप लगाया गया था, ३० अक्टूबर को सुरक्षा परिषद् की एक बैठक बुलाई गई। यह बैठक उस अमेरिकी प्रस्ताव पर आवश्यक विचार के लिए हुई, जिसमें इजराइल की निन्दा की गई थी तथा मांग की गई थी कि इजराइल शीघ्र ही अपनी सेनाएँ युद्ध-विराम रेखा के पीछे हटा ले। ब्रिटेन द्वारा यह प्रार्थना करने पर भी कि विवाद को स्थगित कर दिया जाय, अमेरिकी प्रतिनिधि शीघ्र मतदान पर अटा रहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटेन तथा फ्रांस ने अमेरिकी प्रस्ताव पर निषेधाधिकार का प्रयोग किया। एक नवम्बर को महासभा के आपातकालीन सत्र में २ के विरुद्ध ६२ मतो से अमेरिकी प्रस्ताव पारित कर दिया गया। ब्रिटेन तथा फ्रांस ने ही विरोध में मत दिया। यह वही प्रस्ताव था जिस पर सुरक्षा-परिषद् मे ब्रिटेन तथा फ्रांस ने निषेधाधिकार का प्रयोग किया था। इस प्रस्ताव म इस आवश्यकता पर बल दिया गया था कि इस क्षेत्र में जो-जो शक्तियाँ शत्रुतापूर्ण सैनिक कार्यवाहियो मे जुटी हुई है, वे सब शीघ्र ही युद्ध-विराम करें तथा अपनी सेनाएँ युद्ध-विराम रेखा से पीछे हटाने को सहमत हो जाय (२ नवम्बर, १९५६)। ब्रिटेन तथा फ्रांस ने घोषणा की कि ज्योही निम्नांकित तीन शर्ते स्वीकार कर ली जायेंगी वे सैनिक कार्यवाही को जहाँ की तहाँ रोक देंगे :

(१) मिस्र तथा इजराइल दोनो शाति-स्थापना के लिए सयुक्तराष्ट्र-सघीय सेनाओ का रखा जाना स्वीकार करे।

(२) जब तक अरब-इजराइली शांति-समझौता न हो जाय तथा स्वेज नहर के सबध में सतोषजनक समझौते न हो सके तब तक सयुक्तराष्ट्र-सघीय सेनाये बनी रहनी चाहिएँ।

(२) जबतक सयुक्त राष्ट्र सेनाओ का निर्माण न हो उस बीच दोनो पक्षो—मिस्र तथा इजराइल—को इस पर सहमति प्रकट करनी चाहिए कि उन दोनो पक्षो के बीच मे विद्यमान ब्रिटेन तथा फ्रास की सीमित सेनाओ को बनाए रखा जाय।

६ नवम्बर को सुरक्षा-परिषद् ने रूस के उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया, जिसमें अमेरिकी तथा रूसी सेनाओ को यह अधिकार देने को कहा गया था कि यदि ब्रिटेन, फ्रास तथा इजराइल १२ घटो के भीतर-भीतर युद्ध-विराम स्वीकार न करें तब ऐसी स्थिति में वे (अमेरिका तथा रूस की सयुक्त सेनाए) मिस्र में प्रवेश कर जाए।

मध्य-पूर्व मे रूस की हस्तक्षेप की धमकी

६ नवम्बर को रूस ने ब्रिटेन तथा फ्रास को चेतावनी दी कि 'रूस का यह पूर्ण निश्चय है कि वह आक्रमण को कुचल दे तथा सयुक्त राष्ट्र-सघ के दूसरे सदस्यो के सहयोग से मध्य पूर्व में शांति स्थापित करे।" रूस के प्रधान-मन्त्री बुलगानिन ने ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री ईडन को अपने एक पत्र में उनके (ब्रिटेन तथा फ्रांस के) 'बे-बात मनमानी' की निंदा की। "स्वेज नहर में से जहाजो के आवागमन की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उपायो के प्रश्न में ब्रिटेन तथा फ्रास चौधरी नही बन सकते। साथ-ही-साथ यह बात भी भली भांति विदित है कि स्वेज नहर में जहाजो के आने जाने की स्वतन्त्रता को मिस्र ने पूर्ण तरह से अक्षुण्ण रखा है। स्वेज नहर की समस्या तो आंग्ल-फ्रांसीसी आक्रमण का बहाना मात्र थी। इसके दूरगामी उद्देश्य तो अन्य ही है—जैसे मध्य-पूर्व के राष्ट्रो की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को समाप्त करना, तथा औपनिवेशिक गुलामी को पुन स्थापित करना, उस औपनिवेशिक गुलामी को जिसे इन राष्ट्रो की जनता ने ठुकरा दिया है। • इस तथ्य में किसी भी प्रकार का औचित्य नही है कि ब्रिटेन तथा फ्रास जैसे दो शक्तिशाली राष्ट्र—जो सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य हैं—एक ऐसे देश पर आक्रमण करे जिसके पास आत्म-रक्षा के पर्याप्त साधन भी न हो। उस समय ब्रिटेन की क्या हालत हो अगर उससे अधिक शक्तिशाली राष्ट्र समस्त आधुनिक विनाशक शस्त्रास्त्रो के साथ उस पर आक्रमण कर बैठें और उन राष्ट्रो को ब्रिटेन के तटो पर हवाई और जल सेनाए भेजने की कोई आवश्यकता नही वरन वे तो और दूसरे युद्ध-साधन भी काम में ला सकते हैं, उदाहरण के लिए राकेट वाले शस्त्रास्त्र। यदि राकेट वाले शस्त्रास्त्रो का प्रयोग ब्रिटेन या फ्रास के विरुद्ध किया जाय तो आप लोग इसे जगली अमानुषिक कार्यवाही के नाम से बदनाम करेंगे। लेकिन प्रतिरक्षा की दृष्टि से लगभग निस्सहाय मिस्र पर जो अमानुषिक आक्रमण हुआ है उससे यह किस अर्थ में भिन्न होगा मिस्र में होने वाला युद्ध दूसरे देशो में भी फैल सकता है तथा एक तृतीय महायुद्ध का रूप ले सकता है।" इसी तरह का पत्र फ्रास के प्रधान मन्त्री मोले तथा इजराइल के प्रधान मन्त्री बेन गुरियन को प्रेषित

किया गया, जिसमें यह चेतावनी दी गई थी कि या तो आक्रमणात्मक कार्यवाहियो को रोक दो अथवा रूसी हस्तक्षेप का सामना करने को तैयार हो जाओ।

७ नवम्बर को ठीक अर्द्धरात्रि में ब्रिटेन ने अपनी सेनाओ को युद्ध बन्द करने की आज्ञा दे दी, बशर्ते कि उन पर आक्रमण न हो। फ्रास ने भी ब्रिटेन के ही कार्य का अनुसरण किया। बुलगानिन के पत्र के उत्तर मे ईडन ने आधारहीन आरोपो का खण्डन किया और साथ ही कहा, "समय की गम्भीरता इतनी है कि मैं अनुभव करता हूँ कि आपको तर्क पर आधारित विचारो द्वारा ही प्रत्युत्तर देना चाहिये···"

इस तरह नौ दिन बाद युद्ध समाप्त हो गया। मिस्रियो को भयकर हानि उठानी पडी, विशेषकर पोर्ट सईद पर। लेकिन मिस्र ने ४६ जहाज, नावें, पुल, क्रेने तथा इसी प्रकार की युद्ध-पोतो से सम्बन्धित सामग्री को स्वेज नहर में स्वय डुबाकर नहर का मार्ग अवरुद्ध कर दिया: यह सब ऐसा ही हुआ जैसे किसी आपरेशन के ठीक बीच में आपरेशन करने वाला सर्जन एक पास खडे व्यक्ति की सलाह पर यह समझ कर अपने औजारो को एक तरफ रखकर आपरेशन रोक दे कि आपरेशन करना एक भूल थी। जिन कारणो ने आग्ल-फ्रासीसी शक्तियों को युद्ध-बन्दी के लिए विवश कर दिया उनमें से कुछ कारण ये भी थे—(१) रूस द्वारा हस्तक्षेप की सम्भावना, (२) अतलातिक क्षेत्र में ब्रिटेन के सबसे घनिष्ठ मित्र अमेरिका तथा राष्ट्रमडलीय मित्र-देशो की निरतर आलोचना, (३) गाजा-पट्टी पर अधिकार जमा-लेने में इजराइल की सफलता तथा स्वय ब्रिटेन मे जनमत का दबाव, जिसकी माग ही यह थी 'ईडन को अवश्य इस्तीफा देना चाहिये।'

सयुक्त राष्ट्रीय आपातकालीन सेना (U N E F.)

न्यूयार्क में ५ और ७ नवम्बर को सयुक्त राष्ट्र सघ की महासभा ने एक सयुक्त राष्ट्र आरक्षी सेना को सगठित करने के पक्ष में मत दिया, जो युद्ध विराम का निरीक्षण करे। कही यह विवाद (स्वेज-विवाद) भी शीत-युद्ध के दायरे में न चला जाय, इसलिए महासभा ने सुरक्षा-परिषद् के पाचो स्थायी सदस्य-राष्ट्रो को सयुक्त राष्ट्र आरक्षी सेना मे अपने अपने सैनिक भेजने से रोक दिया। सयुक्त राष्ट्र सघ द्वारा की गई युद्ध-विराम की अपील को मानने की घोषणा मिस्र तथा इजराइल दोनो के प्रतिनिधियो ने की।

आठ दिन पश्चात् १५ नवम्बर को सयुक्त राष्ट्र आपातकालीन सेना का पहला दल, जिसमें नार्वे तथा डेनमार्क की टुकडिया शामिल थी, पोर्ट सईद पर पहुँच गया और ब्रिटिश सेना वहा से चली गई। इतिहास में अन्तर्राष्ट्रीय आरक्षी दल का अपनी तरह का यह पहला ही सैन्य-दल था, जिसमे १३ राष्ट्रो के ६००० सैनिक शामिल थे। मिस्र ने सयुक्त राष्ट्र सेनाओ के प्रवेश की अनुमति दो शर्तों पर दी. (१) सयुक्त

राष्ट्र सेना को केवल मात्र आंग्ल-फ्रांसीसी सेनाओं के हट जाने तक ही स्वेज-क्षेत्र में रहना होगा, उसके बाद उन सेनाओं को मिस्र-इजराइली सीमा पर चला जाना चाहिये, (२) इन सेनाओं का स्वागत तभी तक होगा जब तक मिस्र यह समझेगा कि इन सेनाओं को मिस्र में रहना चाहिए।

१३ नवम्बर को लेबनान की राजधानी बेरुत में नौ राष्ट्रों के अरब-संघ (मिस्र, ईराक, जोर्डन, लेबनान, लीबिया, साऊदी अरब, सूडान, सीरिया तथा यमन) की दो दिवसीय गुप्त बैठक हुई। संघ ने अपना यह निश्चित मन्तव्य प्रकट किया कि अगर ब्रिटेन, फ्रांस तथा इजराइल 'बिना शर्त' अपनी-अपनी सेनाएं मिस्र से न हटायें तो सब राष्ट्र आत्म-हित की दृष्टि से तथा कानूनी प्रतिरक्षा की दृष्टि से यथेष्ट कार्यवाही करेंगे। इस सम्मेलन ने राष्ट्रपति नासर की इसके लिए भूरि-भूरि प्रशंसा की कि उन्होंने "अरब राष्ट्रवाद की शानदार तरीके से रक्षा की तथा अरब जनता के गौरव को अक्षुण्ण रखा।" संयुक्तराष्ट्र संघ-सेना के कमांडर जनरल बर्न्स की संगठन कुशलता तथा ब्रिटेन तथा फ्रांस की ओर से मिले ठीक-ठीक सहयोग के कारण ब्रिटेन तथा फ्रांस की अंतिम सैन्य टुकड़ियों ने २२ दिसम्बर, १९५६ को मिस्र की भूमि को छोड़ दिया। इसी बीच संयुक्त राष्ट्रसंघ ने स्वेज नहर को शीघ्र साफ करवाने के दुष्कर तथा नाजुक काम को हाथ में लिया। इस कार्य ने पांच महीने का समय लिया।

इजराइल का पलायन

जैसा कि हम देख चुके हैं कि इजराइली सेनाओं ने बात की बात में सिनाई द्वीप पर अधिकार जमा लिया और इसके थोड़े ही दिन पश्चात् उन्होंने गाजा पट्टी, शार्म-एल-शेख तथा अकाबा की खाड़ी को भी अपने अधिकार में ले लिया। इजराइल जिसने मिस्र पर आक्रमण इसलिए किया था कि वह मिस्र के आक्रमणों से अपनी रक्षा करने के लिए अच्छी स्थिति में आ जाय, अपनी सेनाओं को हटाने के लिए इस शर्त पर तैयार हुआ कि संयुक्तराष्ट्र संघ यह आश्वासन दे दे कि मिस्र उस पर पुनः हमला नहीं करेगा। इजराइल ने चाहा कि गाजा पट्टी—जो ५ मील चौड़ी तथा २५ मील लम्बी है—पर उसका ही अधिकार बना रहे, सिनाई द्वीप किसी के अधिकार में न रहे तथा मिस्र स्वेज-नहर से अपनी नाकेबंदी को हटाले। अमेरिका द्वारा आक्रमण की भर्त्सना, आततायियों के विरुद्ध रूस की धमकियों तथा महासभा के मतों ने इजराइल को अपनी सेनाएं शीघ्र हटाने को बाध्य किया। १९ जनवरी को महासभा में अफ्रो-एशियाई प्रस्ताव ७४ के विरुद्ध २ (फ्रांस तथा इजराइल) मतों से पारित हो गया। इसके परिणाम स्वरूप इजराइल को अपनी सेनाएं पूर्ण रूपेण हटा लेने की आज्ञा दी गई। तीन दिन पश्चात् गाजा पट्टी को छोड़कर शेष सब क्षेत्र में से इजराइली सेनाएं हट गईं। २ फरवरी को दो अमेरिकी प्रस्तावों द्वारा इजराइल

से कहा गया कि वह विना विलंब के अपनी सेनाए गाजा-पट्टी तथा शार्म-एल-शेख से हटा ले तथा उसके स्थान पर संयुक्तराष्ट्रीय सेनाए आ जाय। इजराइल ने तब भी अपनी सेनाए हटाने से इन्कार कर दिया। इसके बाद संयुक्त-राष्ट्र संघ तथा अमेरिका की ओर से उस पर निरंतर दवाव पडते रहे। इधर अरव-एशिया राष्ट्रो ने अनुमोदित प्रस्ताव के लिए प्रयत्न करने प्रारम्भ कर दिए। अमेरिकी राष्ट्रपति के पास इसके सिवाय और कोई चारा ही नही रहा कि वह शीघ्र सेनाए हटाने के लिए इजराइल पर दवाव डालें। ८ मार्च को इजराइली सेनाओ ने गाजा तथा अकावा को पूरी तरह से खाली कर दिया तथा वह क्षेत्र संयुक्त राष्ट्र आपातकालीन सेनाओ के निरीक्षण में १३२ दिनो के इजराइली कब्जे के पश्चात् आ गया।

इजराइली सरकार ने घोषणा की कि उसने अपनी सेनाओ को कुछ विशेष 'अपेक्षाओ' तथा 'स्वीकृतियो' के अन्तर्गत हटाया है। वे है: (१) जब तक मिस्र तथा इजराइल में शांति समझौता न हो जाय तब तक उस गाजा पट्टी पर संयुक्त राष्ट्रीय सेनाओ (मिस्र का नही) का सैनिक तथा नागरिक अधिकार रहे, जो आक्रमण से पूर्व इजराइल के विरुद्ध मिस्र के गोरीला आक्रमणो के लिए एक अड्डा था, (२) अमेरिका, अन्य प्रमुख समुद्रीय शक्तियो तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ को चाहिए कि वे "स्वेज नहर तथा अकावा की खाडी में से इजराइली जहाजो के आने जाने तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जहाजरानी के लिए निर्वाध तथा सुरक्षित मार्ग बनाए रखने की व्यवस्था करें", (३) अगर मिस्र को गाजा पट्टी पर अधिकार कर लेने दिया गया तथा अकावा नाकेवन्दी को पुन थोप देने दिया गया तो इजराइल "संयुक्त राष्ट्रसंघ के अधिपत्र की धारा ५१ के अन्तर्गत अपने अधिकारो तथा स्वत्वो की रक्षा के हेतु कार्यवाही करेगा।"

मार्च १९५७ के मध्य में मिस्र ने गाजा पट्टी को अपने नियंत्रण में ले लिया। इसमे पूर्व गाजा पट्टी के ३०० अरव पत्थराव करते तथा मिस्री शासन की माग करते हुए संयुक्त राष्ट्रीय मुख्य कार्यालय की ओर अग्रसर हुए। संयुक्त राष्ट्र संघ कार्यालय के अभिरक्षको ने चेतावनी के लिए गोलिया चलाई जिसमें एक अरव १० मार्च को बुरी तरह घायल हो गया। राष्ट्रपति नासर ने शीघ्र ही घोषित किया कि क्योंकि संयुक्त राष्ट्र संघीय सेनाओं ने नागरिको पर गोलिया चलाई है। अतएव मिस्र गाजा पट्टी पर अपनी जिम्मेदारियो को फौरन ग्रहण करेगा। नासर ने अपने एक जरनल हसन अब्दल लतीफ को गाजा पट्टी का गवर्नर नियुक्त किया जो १४ मार्च को गाजा पहुंचा। इसके साथ ५० आरक्षी सेना के सिपाही, १० सैनिक अफसर तथा १२ नागरिक प्रशासक थे। संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव हैमर शोल्ड मार्च २१ को हवाई जहाज से राष्ट्रपति नासर से मिलने के लिए काहिरा गए। काहिरा वार्ता में उन्होने

जानना चाहा कि क्या मिस्र इजराइल के विरुद्ध नाकेबन्दी को हटा लेगा। राष्ट्रपति नासर ने माग की कि सयुक्त राष्ट्र सघ आपातकालीन सेनाए जिस प्रकार मिस्र में हैं उसी प्रकार इजराइल में भी रहे। महासचिव ने घोषणा की कि युद्ध-बन्दी रेखा को पार न करने देने के लिए मिस्री सेनाए सयुक्त राष्ट्र सघीय सेनाओ की सहायता करेंगी। अप्रैल के अन्त तक अरब उपद्रवो के १९ मामलो की सूचना इजराइल ने सुरक्षा परिषद् में दर्ज कराई जब कि मिस्र ने भी इजराइल पर आक्रमण तथा युद्ध भड़काने का आरोप लगाया। दोनो में तनाव उत्तरोत्तर बढ रहा है।

नहर सचालन के लिए मिस्री योजना

१० अप्रैल को स्वेज नहर की सफाई का कार्य समाप्त हो गया तथा यातायात फिर से आरम्भ हो गया। २४ अप्रैल १९५७ को ६ सिद्धान्तो के आधार पर (जिनको पहले ही १३ अक्तूबर १९५६ को सुरक्षा परिषद् ने मान्य ठहराया था) स्वेज नहर पर तथा उसके सचालन पर मिस्र ने अपनी घोषणा प्रकाशित की —

(१) **व्यवस्थान का लागू करना**—मिस्र ने १८८८ के कुस्तुन्तुनिया व्यवस्थान के प्रति लिखित तथा व्यावहारिक दोनो दृष्टियो से सम्मान रखने का अपना दृढ सकल्प घोषित किया।

(२) सयुक्त राष्ट्र सघ अधिपत्र की मिस्र द्वारा फिर से परिपुष्टि।

(३) **नहर मे जहाजरानी की स्वतन्त्रता, यातायात शुल्क तथा पच निर्णय**—यातायात शुल्क की अदायगी २८ अप्रैल १९३६ को मिस्र तथा स्वेज नहर कम्पनी के बीच हुए समझौते के अनुसार होनी चाहिए।

१२ महीनों के अन्दर यातायात-शुल्क १ प्रतिशत से अधिक नही बढेगा। आधुनिक जहाजरानी की आवश्यकताओ के अनुरूप स्वेज-नहर का विकास किया जायगा।

(४) **नहर का प्रशासन**—स्वेज-नहर का सचालन तथा व्यवस्था स्वाधिकार-सम्पन्न स्वेज-नहर अधिकृत सस्था द्वारा होगी जिसका निर्माण जुलाई २६, १९५६ को मिस्र सरकार ने किया था।

(५) **वित्तीय व्यवस्थाएँ**—यातायात शुल्क की अदायगी पहले ही स्वेज-नहर अधिकृत सस्था को कर दी जायगी। इस यातायात शुल्क से प्राप्त रकम मे से ५% रकम मिस्र की सरकार रायल्टी मे देनी होगी। नहर अधिकृत सस्था को चाहिए कि वह एक सुरक्षित कोष की स्थापना करे, जो नहर-पूंजी तथा सुधारकोष कहलाए। इस कोष मे यातायात-शुल्क से प्राप्त रकम का २५% रखा जाय।

(६) नहर-नियम संहिता—नहर-सचालन आदि को परिचालित करने के नियम नहर-संहिता के रूप में हैं, जो नहर-विधि है।

(७) भेदभाव तथा शिकायतें.—स्वेज अधिकृत सस्था का अधिकारी ऐसी कोई भी सुविधा किसी एक जहाज या जहाजी कम्पनी को नही देगा, जिसे वह दूसरो को नही देता। भेदभाव तथा नहर-संहिता के उल्लघन करने की स्थिति में जो भी शिकायत होगी वह पच निर्णय के लिए बने न्यायाधिकरण को फैसले के लिए सौंप दी जायगी। इस न्यायाधिकरण में तीन सदस्य होंगे, एक शिकायती पक्ष का होगा, दूसरा नहर अधिकृत सस्था द्वारा नामजद किया जायगा तथा तीसरा वह व्यक्ति होगा, जिसका चुनाव अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का अध्यक्ष करेगा। इन पच निर्णय के लिए बने न्यायाधिकरण के निर्णय सब पक्षो को मान्य होंगे।

(८) क्षति पूर्ति तथा दावे—स्वेज नहर मेरीटाइम (समुद्रीय) कम्पनी के राष्ट्रीयकरण से सम्बन्धित दलों तथा क्षतिपूर्ति का प्रश्न विद्यमान अन्तर्राष्ट्रीय विधियों के अनुसार पच-फैसले के लिए सौंप दिया जायगा।

(९) पारस्परिक विवाद तथा मत-भिन्नता—१८८८ के व्यवस्थान के सम्बन्ध में अथवा घोषणा के सम्बन्ध से जो भी पारस्परिक मतभेद एव विवाद होंगे उन्हे अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को सौंप दिया जायगा।

इस घोषणा को एक 'अन्तर्राष्ट्रीय पुर्जा' के नाम से पुकारा गया जिसे सयुक्त-राष्ट्र सघ सचिवालय में भी दर्ज करना था। पूरे ६ महीने पश्चात् सामान्य जहाज-रानी के लिए स्वेज नहर को खोलने की घोषणा मिस्र सरकार ने अधिकृत रूप से की।

२६ मार्च को ब्रिटिश प्रधान मन्त्री हरॉल्ड मैकमिलन तथा अमेरिकी राष्ट्र-पति आइजनहावर के बीच बारमूडा में हुई बातचीत के परिणामस्वरूप ब्रिटेन तथा अमेरिका के जहाजों ने राष्ट्रपति नासर की शर्तों पर ही स्वेज नहर का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। मई १९५७ को प्रयोक्ता सघ (SCUA) ने भी अपनी लदन बैठक में मिस्र की शर्तों पर ही स्वेज नहर में से यातायात चालू करना स्वीकार कर लिया। मन्त्रिमण्डल की बैठक के बाद ब्रिटिश सरकार ने निर्णय किया कि यातायात शुल्क स्टर्लिंग में ही चुकाया जाय क्योंकि नहर का निरन्तर बहिष्कार महगा पड़ेगा। ब्रिटिश सरकार अब भी सयुक्त राष्ट्रसघ से यह गारन्टी लेना चाहती है कि मिस्री तानाशाह को, जिसने अपनी एक पक्षीय नई योजना की घोषणा की है, अपने राज-नीतिक उद्देश्यों के लिए इन नियमों को भविष्य में परिवर्तित नहीं करने दिया जायेगा।

अक्टूबर में ब्रिटिश-हस्तक्षेप के बाद पहली बार २४ मई १९५७ को युद्ध के परिणामस्वरूप १०० मिलियन पौंड की हानि के मिस्री दावो पर चर्चा करने के लिए, ब्रिटेन तथा मिस्र में सीधी वार्ता हुई।

स्वेज-नहर विवाद के परिणाम

स्वेज नहर विवाद बीसवी सदी की महत्वपूर्ण घटनाओ में से है। इसके परिणाम अत्यन्त दूरगामी रहे हैं।

पहला इसका परिणाम यह हुआ है कि नहर का मार्ग अवरुद्ध हो गया तथा यूरोप में तेल पहुँचाने के लिए नलो का जो जाल बिछा था, उसके बडे पैमाने पर छिन्न-भिन्न हो जाने से यूरोप में नलो द्वारा पहुँचने वाले तेल की मात्रा ११८ मिलियन टन से घट कर १६ मिलियन टन वार्षिक पर आ गई।

दूसरा इससे अरब राष्ट्रो में विशेषकर मिस्र में इगलैड तथा फ्रास के सम्मान को पर्याप्त धक्का लगा। "हमने सयुक्त राष्ट्रसघ को स्थिति की वास्तविकताओ का सामना करने को प्रवृत्त कर दिया है। हमने ऐन मौके पर युद्ध रोकने के लिए हस्तक्षेप किया है नही तो रूसी सगठन के अन्तर्गत मिस्र की हवाई सेना समस्त मध्यपूर्व को पदाक्रात कर डालती।" ईडन का यह दावा रोकर आँसू पोछने के अतिरिक्त और कुछ नही जैसा कि हमने पूर्व पृष्ठो में से समझा है। ब्रिटेन के इस कार्य से ब्रिटेन तथा अमेरिका के पारस्परिक सम्बन्धो को गहरा धक्का लगा। ९ जनवरी १९५७ को जनमत के भारी विरोध ने ब्रिटिश प्रधानमन्त्री ईडन को गद्दी छोडने को विवश कर दिया और इस प्रकार ब्रिटिश अनुदार दल में नेतृत्व परिवर्तन हो गया। वामपक्षी आलोचको (बेवान तथा जान स्ट्रावी) तथा कई ख्यातनामा कानून-विशेषज्ञों ने प्रभुसत्ता सम्पन्न मिस्र के साथ ईडन द्वारा किये गए व्यवहार की जनता के समक्ष कटु आलोचना की। 'सन्डे ईवनिंग पोस्ट' के सम्पादक श्री डेमारी वेस ने यहाँ तक कह डाला कि "१९५३ में ही चर्चिल ने राष्ट्रपति नासर को उखाड फेंकने की योजना बनाई थी (२० अप्रैल १९५७)"। १९५६ के आक्रमणात्मक अभियान का उद्देश्य यही था कि मिस्र के वर्तमान नेतृत्व को बदल दिया जाय, जिससे मिस्र को पश्चिम के साथ गठबन्धन के लिए तथा स्वेज-नहर पर पश्चिमी नियन्त्रण का अवसर मिल सके। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आक्रमण से पूर्व के अन्तिम सप्ताह में जब पारस्परिक वार्ता द्वारा समस्या-समाधान की सम्भावनाएँ थीं उस समय ब्रिटेन तथा फ्रास की सरकारो ने बातचीत के मार्ग को जरा भी सरल बनाने का प्रयास नही किया, इसके विपरीत गुप्त रूप से युद्ध के रास्ते को पकड लिया। ब्रिटिश ससद में उत्तेजना के दृश्य दिखाई पडने थे तथा सत्तारूढ दल की खुली भर्त्सना की गई।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में तथा साथ ही राष्ट्रीय क्षेत्र में भी जो कीमत ब्रिटेन को चुकानी पडी, निस्सन्देह बहुत बड़ी है क्योकि अन्ततोगत्वा उसे मिस्र की ही शर्तो को स्वीकार करना पडा तथा नहर पर अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण को थोपने में असफल रहा।

तीसरा: इसका परिणाम यह भी हुआ कि राष्ट्रमण्डल में गभीर विक्षोभ उत्पन्न हो गया। युद्ध से पूर्व रस्मी तौर पर राष्ट्रमण्डल के सदस्यो से परामर्श न करने से पाकिस्तान तथा भारत ने इसे विश्वास भग समझा। केवल आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड ने ब्रिटिश कार्यवाही का समर्थन किया, दक्षिण अफ्रीका तटस्थ रहा तथा कनाडा में अधिकृत राय ब्रिटेन की कार्यवाही के प्रति आलोचनात्मक थी। वास्तव में ब्रिटेन की इस कार्यवाही ने अस्वस्थ परम्परा की नीव डाली तथा राष्ट्रमण्डल को भग होने की अन्तिम स्थिति में पहुँचा दिया।

चौथा: स्वेज-विवाद का एक परिणाम यह भी हुआ कि एशिया तथा अफ्रीका के देशो तथा सयुक्त राष्ट्रसंघ में एशियाई-अफ्रीकी गुट के राष्ट्रो में गहरा सहयोग उत्पन्न हो गया। आज यह दल विश्व-राजनीति में अपना विशेष महत्त्व रखता है तथा अफ्रीका और एशिया में ब्रिटेन की शक्ति तथा उसके प्रभाव के लिए यह विशेष झझट रखता है।

पाँचवा: इसने अरब राष्ट्रो को यह अवसर प्रदान किया कि वे मिस्र के नेतृत्व में एकत्र हो जाय, उस मिस्र के नेतृत्व में जो अरब राष्ट्रो के एक गौरवपूर्ण नेता के रूप में सामने आया है। साऊदी अरब तथा सीरिया ने राजनैतिक सम्बन्ध विच्छेद कर लिये तथा अपने देशो में से तेल के प्रवाह को रोक दिया। जोर्डन ने ब्रिटेन को पूर्व सूचना दे दी कि उसे जोर्डन में हवाई अड्डो की सुविधा प्राप्त नही हो सकेगी। इसके साथ ही आग्ल-जोर्डन-सन्धि रद्द कर दी गई। दूसरे अरब राष्ट्रो जैसे ईराक, यमन, सूडान तथा फारस की खाडी के शेखडम्स की जनता ने विभिन्न तरीको से विरोध प्रदर्शित किया।

छठा. द्वितीय महायुद्ध के १० वर्ष बाद रूस मध्यपूर्व-क्षेत्र के शुभचिंतक के रूप में सामने आया। रूस ने मिस्र को युद्धास्त्र दिये तथा आग्ल फासीसी आक्रमण जारी रहने पर हस्तक्षेप की धमकी दे दी। केवल मात्र इन्ही दो बातो से रूस ने अरब राष्ट्रो और मिस्रियो की सहानुभूति नही जीत ली, अपितु युद्ध की समाप्ति पर गेहूँ की सहायता ऐसी स्थिति में देकर, जब अमेरिका ने इसके लिए इन्कार कर दिया हो, रूस ने अरब-राष्ट्रो को अपना घनिष्ठ मित्र बना लिया। इस प्रकार मध्यपूर्व का द्वार रूस के लिए इतना खुल गया कि जितना पहले कभी नही खुला था और इसकी जिम्मेदारी पूरी तरह आग्ल-फ्रांसीसी सैनिक कार्यवाही पर है। अमेरिका तथा फ्रांस

और इग्लैंड के बीच स्वेज-संकट पर प्रकट हुए पर्याप्त मतभेद का रूस ने लाभ उठाया ।

सातवां . आंग्ल-फ्रांसीसी सेनाओं के पलायन से संयुक्त राष्ट्र संघ को एक सुअवसर मिल गया, जिससे कि उसके इतिहास में प्रथम बार आरक्षी-सेना (Police Force) का निर्माण किया गया। ब्रिटेन के कुछ लेखकों का यह दावा है कि उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाही के लिए मार्ग प्रशस्त किया तथा संयुक्त राष्ट्र संघ को अधिकार तथा शक्ति प्रदान की । संयुक्त राष्ट्र-संघीय आपातकालीन सेना के निर्माण का श्रेय कनाडा के राजनीतिज्ञ को तथा अमेरिका के सक्रिय समर्थन को जाता है, जिन्होंने गुप्त रूप से ब्रिटेन तथा फ्रांस को धमकी तक दी कि अगर वे इसके लिए इन्कार करेंगे तो उन पर आर्थिक प्रतिबन्धों का प्रयोग किया जायगा ।

आठवां अमेरिका, जो एक तरफ तो आंग्ल-फ्रांसीसी मित्रता में फसा था तथा दूसरी ओर जिसकी नीति उपनिवेशवाद-विरोधी थी, मध्यपूर्व में रूसी हस्तक्षेप को रोकने में इसलिए सफल हो गया कि वह नाटो (NATO) के सदस्य-राष्ट्रों पर दवाव डालता रहा । अगर अमेरिका न होता तो बिना प्रभावपूर्ण गारंटियों को प्राप्त किए इजराइल कभी भी गाजा-पट्टी तथा अकाबा की खाडी को इतनी शीघ्रता से खाली नहीं करता । इसके साथ ही अमेरिका को आइजन हावर-योजना (मध्यपूर्व के लिए) को घोषित करने का एक शानदार सुअवसर मिल गया । इस योजना के सम्बन्ध में हम अगले पृष्ठों में विचार करेंगे ।

नवां . सिनाई द्वीप, गाजा पट्टी, शार्म-एल-शेख तथा अकाबा की खाडी पर एक ही झपाटे में अधिकार करके इजराइल ने यह प्रदर्शित कर दिया कि अरब-राष्ट्रों के मुकाबले उसका सैनिक संगठन ऊँचे दर्जे का है । यह ठीक है कि इनमें से किसी पर भी वह स्थायी रूप से अधिकार न जमा सका तो भी, जो युद्धास्त्र रूस ने मिस्र को दिये थे, उन्हें बहुत बडी संख्या में इजराइल ने छीन लिया । इस बात की भी पूरी संभावना है कि उसके जहाजों को स्वतन्त्र रूप से स्वेज-नहर में से आने-जाने का अधिकार प्राप्त हो जायगा जो १९४८ से मिस्र द्वारा रोक दिया गया था ।

दसवां . इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आंग्ल-फ्रांसीसी-इजराइली संयुक्त आक्रमण ने मिस्र की आर्थिक योजनाओं पर बुरा असर डाला है । २५० मिलियन पौंड के रूसी युद्धास्त्र लगभग सब नष्ट हो गये । ब्रिटेन तथा फ्रांस उन विकास योजनाओं से हट आये, जिनमें वे हिस्सा ले रहे थे । अकेले ब्रिटेन ने १०० मिलियन पौंड मिस्र के स्टर्लिंग खाते में से रोक लिये हैं । इतना ही नहीं, पोर्ट सईद, पोर्ट फाउद, इस्माइलिया, पोर्ट स्वेज, अलकन्तारा तथा सिकन्दरिया

आदि मिस्री शहरो को हवाई आक्रमणो से पर्याप्त हानि पहुँची है। मिस्र पर आक्रमण करने के आंग्ल-फ्रासीसी-इजराइल तिगड्डे के षड्यंत्र का मिस्र ने भडाफोड कर दिया।

८

१ जनवरी १९५७ को मिस्र ने १९५४ की आंग्ल-मिस्री-सधि को रद्द करके ब्रिटिश तथा फ्रासीसी बैंको का राष्ट्रीयकरण कर लिया। स्वेज-सकट के परिणाम-स्वरूप अरब-राष्ट्रीयता के नेता तथा प्रवक्ता के रूप मे राष्ट्रपति नासर की प्रतिष्ठा तथा उच्चता में चार चाद लग गये है। नासर के अनुसार स्वेज-सकट से चार महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते है :—

"पहला, जो मिस्र को ही नही समस्त विश्व को निकालना चाहिये, वह है कि इजराइल उपनिवेशवाद के विकास के लिये एक अड्डा है तथा अपनी कुचेष्टाओ को पूर्ण करने के लिये वह उपनिवेशवादियो के हाथ की कठपुतली मात्र है। अपनी योजनाओ के लिये उपनिवेशवादी शक्तिया हमेशा इजराइल से शिखडी का काम लेगी। दूसरा निष्कर्ष यह है कि हरेक अरब राष्ट्र ने यह अनुभव कर लिया है कि उपनिवेशवाद तथा स्वाधीनता में कभी भी सह-अस्तित्व नही हो सकता। तीसरा निष्कर्ष यह है कि हरेक यह अनुभव करता है कि सैन्य शक्ति के रूप में उपनिवेशवाद का खतरा धीरे-धीरे कम हो रहा है। विश्व उसे फिर से सैनिक शक्ति प्राप्त नही करने देगा। एक निष्कर्ष यह भी निकाला जा सकता है कि उपनिवेशवादी शक्तिया अपने उद्देश्यो को पूरा करने के लिए षड्यत्रो तथा आतरिक कलह का सहारा लेंगी। साथ ही अरब राष्ट्रो ने यह अनुभव कर लिया है कि ब्रिटेन तथा फ्रास का मध्यपूर्व में रहने का क्या अर्थ है तथा उनके इस क्षेत्र में कौन-कौन मददगार है। यह कल्पना कि अरबो के अस्तित्व के लिये ही ब्रिटेन के सहयोग तथा सरक्षण की आवश्यकता है अब धूमिल हो गई है। जहा तक स्वेज समस्या के समाधान का प्रश्न है हम अतर्राष्ट्रीय सहयोग के पक्षपाती है तथा हम किसी भी प्रकार के आधिपत्य के विरोधी है चाहे फिर वह अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासन के रूप में ही क्यो न हो। अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासन तथा नियत्रण उपनिवेशवाद का अभिनव रूप सामूहिक-उपनिवेशवाद है।"

५ मध्यपूर्व मे बडे राष्ट्रो की प्रतिद्वन्दिता

ह्यू रविज का कथन है "मध्यपूर्व की जो विशृखलित स्थिति है, उसके कारण है—प्रथम महायुद्ध के पश्चात् मध्यपूर्व का राजनीतिक टुकडो में विभाजन, द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति मे ब्रिटेन की शक्ति का विघटन होते जाना, अरब इजराइल तनाव तथा सब अरब राष्ट्रो को एक सूत्र में करने में अरब सघ की असफलता।" रूस तथा अमेरिका ने इस क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व और नेतृत्व जमाने के लिए जो तीव्र प्रति-

द्वन्दिता चलाई उसने इस विभाजन को बढावा ही दिया, साथ ही उसका परिणाम यह भी निकला है कि यदा-कदा संघर्ष हो जाते हैं। यह संघर्ष चल ही रहा था कि इस क्षेत्र में आंग्ल-फ्रांसीसी स्थिति के पतन की घटना घटी तथा इसने ही 'शीत युद्ध' को पुनर्जीवित कर दिया। यह ईरान के प्रश्न तथा सीरिया-लेबनान विवाद (पृष्ठ १२५-१२६ पर देखिए) और स्वेज-समस्या में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

बडी शक्तियो की राजनीति मध्यपूर्व ऐसा क्षेत्र है, जहाँ बडी शक्तियो मे सत्ता तथा प्रभाव के लिए होड लगी है। रूस की दिलचस्पी इसमें है कि अमेरिका, ब्रिटेन तथा अन्य शत्रुओ को, जो मध्यपूर्व में सैनिक अड्डे बनाना चाहते हैं, वहा से खदेड दिया जाय तथा किसी भी बडी शक्ति के स्थान पर रूसी प्रभाव को जमा दिया जाय। रूसी तो मध्य-पूर्व के तेल पर निर्भर नही है, अत उनकी सीधी दिलचस्पी अरबो को इसके लिए प्रोत्साहित करने में है कि वे पश्चिमी शक्तियो को तेल के लिए मना कर दे। रूस को इसका बडा लाभ है कि बडी शक्तियो में से यही इस क्षेत्र के सबसे समीप है। इसीलिए पश्चिमी साम्राज्यवादियो तथा इजराइल के विरुद्ध जो इस क्षेत्र पर अपने नियंत्रण को थोपना चाहते हैं, रूस तटस्थ राष्ट्रो के सहयोग के लिए प्रयत्न करता है। जब पश्चिमी शक्तियो ने अरबो को युद्धास्त्र न देने का कोरा जवाब दे दिया, तो रूस आगे आया और उसने अरबो को हथियार भेजकर उनकी सहानुभूति प्राप्त करली। जब मिस्र पर आंग्ल-फ्रांसीसी आक्रमण हुआ तो रूस ने मिस्र को स्वयं-सेवक अर्पित किये, जिसका अमेरिका ने विरोध किया। मध्य-पूर्व प्रतिरक्षा-संगठन (MEDO) की असफलता, सूडान तथा स्वेज-नहर के अड्डे से ब्रिटेन का पलायन, बगदाद-संधि के विरुद्ध ब्रिटेन-विरोधी प्रचार, जोर्डन में ब्रिटिश प्रभाव का क्षय, आंग्ल ईरानी तेल विवाद और ब्रिटेन, फ्रास तथा इजराइल के मिस्र पर किए गए संयुक्त आक्रमण की असफलता ने रूस को अरब राष्ट्रो—जनता तथा शासक दोनो—के हित-प्रयोजन को संघर्ष द्वारा आगे बढाने का सुअवसर प्रदान किया।

अमेरिका के मध्यपूर्व में तीन बडे हित हैं (१) तेल प्राप्त करना, (२) सैनिक अड्डो को उपलब्ध करना, (३) साम्यवाद के विस्तार को अवरुद्ध करना तथा स्वेज-नहर पर, जो एशिया तथा अफ्रीका को मिलाने वाला महत्वपूर्ण जलमार्ग है, रूस के अधिकार को निषिद्ध करना। अमेरिका फ्रांस तथा ब्रिटेन से भी गठबंधन बनाए रखना चाहता है एवं सैनिक तथा आर्थिक कारणो से अरब राष्ट्रो से भी मित्रता के सम्बन्ध रखने का इच्छुक है। वर्तमान में विश्व भर के तेल का तीन चौथाई भाग मध्य-पूर्व क्षेत्र में है, तथा रूसी प्रभुत्व को रोकने के लिए राष्ट्रपति आइजनहावर ने मध्यपूर्व पर हुई कांग्रेस के लिए अपने विशेष संदेश में एक नई नीति का सूत्रपात किया जो इस समय आइजनहावर-सिद्धान्त के नाम से जानी जाती है।

लायड की पंचसूत्री योजना

२७ नवम्वर १९५६ को ब्रिटेन के विदेश मन्त्री सेलविन लायड ने पचसूत्रीय योजना की रूप रेखा प्रस्तुत की, जिसका उद्देश्य था मध्य-पूर्व के बारे में समान नीति अपना कर आँग्ल-अमेरिकी गठबन्धन को पुन घनिष्ट बनाना। वे सूत्र ये हैं

(१) इजराइल तथा मिस्र के बीच भविष्य में युद्ध की कार्यवाहियो को रोकना तथा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सयुक्त राष्ट्र सघीय सेना को पूरा समर्थन।

(२) १८८८ के व्यवस्थान के अन्तर्गत तथा उन छ. सिद्धान्तो के अनुसार, जिन्हे गत अक्टूबर में सुरक्षा परिषद् ने सर्वसम्मति से अगीकार कर लिया था, अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार प्राप्त कर के, स्वेज नहर के लिए एक स्थायी प्रणाली की स्थापना।

(३) इजराइल तथा अरब राष्ट्रो के बीच एक स्थायी समाधान की प्राप्ति, जिसमें उन अरब विस्थापितो की समस्याओ का भी उचित समाधान शामिल हो, जो गत आठ वर्षो की घटनाओ के अभागे शिकार हुए हैं।

(४) बगदाद-सधि को सुदृढ करना। अमेरिका अर्थव्यवस्था समिति का सदस्य तो पहले ही है, क्या उसकी सहायता की आवश्यकता यहीं तक है!

(५) इस क्षेत्र की आर्थिक समस्याओ को विचारपूर्वक तथा दूरदर्शिता से हल करना, जिससे की सम्पूर्ण क्षेत्र में रहन-सहन का स्तर धीरे-धीरे ऊपर उठता जाय।

इन सूत्रो को लागू करने के बारे में बारमूडा में २२ मार्च से २६ मार्च १९५७ तक राष्ट्रपति आइजन हावर तथा ब्रिटिश प्रधान मन्त्री हरोल्ड मैकमिलन में आपसी विचार-विनिमय हुआ। इस बातचीत में यह तय पाया गया कि अमेरिका बगदाद-सधि की सैनिक समिति में सक्रिय भाग लेगा तथा वह मध्यपूर्व के राष्ट्रो एव पश्चिमी शक्तियो के बीच की गलतफहमियो को कम करने का प्रयत्न करेगा। दोनो ने घोषणा की कि उनका दृढ उद्देश्य है कि मध्यपूर्व मे उचित तथा स्थायी शान्ति और उस क्षेत्र की जनता की न्यायपूर्ण प्रेरणाओ को प्राप्त करने में सहयोग देना।

आइजन हावर-सिद्धान्त

५ जनवरी, १९५७ को राष्ट्रपति आइजन हावर ने अमेरिकी काग्रेस के समक्ष मध्य-पूर्व में शाति के लिए अपनी नवीनतम योजना प्रस्तुत की। उन्होंने घोषणा की : "अपने लम्बे तथा महत्वपूर्ण इतिहास में मध्यपूर्व एकाएक एक नई तथा समस्यापूर्ण स्थिति में पहुँच गया है। ...इस क्षेत्र में प्राय. उथल-पुथल हुई है...साथ ही इसी सिलसिले में इजराइल द्वारा गत अक्तूबर में मिस्र पर हुए बड़े आक्रमण ने इजराइल

तथा उसके पड़ोसी अरब राष्ट्रों के मूलभूत मतभेदों को और भी बढ़ा दिया है' 'यह उथल-पुथल तीव्र कर दी गई है और अंतर्राष्ट्रीय साम्यवाद ने उसे अपने लाभ के लिए और भी तोड़-मरोड़ दिया है। रूसी शासक लम्बे समय से मध्यपूर्व को अपने प्रभुत्व में लाने के प्रयास में लगे हैं।" इस तरह उनके विचार में तीन सरल तथा निर्विवाद तथ्य हैं

(१) आज अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद के लिए मध्यपूर्व इतना बहुमूल्य है जितना कि पहले कभी नही था।

(२) रूसी शासक यह प्रदर्शित करते रहे हैं कि वे अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये किसी भी तरीके को अपनाने में नही चूकेंगे।

(३) मध्यपूर्व के स्वतन्त्र राष्ट्रों को अधिक शक्तिशाली बनने की आवश्यकता है जिससे वे अपनी स्वाधीनता को अक्षुण्ण बनाये रख सकें।

राष्ट्रपति ने कांग्रेस के समक्ष निम्नांकित सुझाव रखे

(१) अमेरिका को इस बात का अधिकार दे दिया जाय कि वह मध्यपूर्व क्षेत्र में किसी राष्ट्र या राष्ट्र-समूह से आर्थिक सामर्थ्य के विकास में सहयोग कर सके, जिससे कि राष्ट्रीय स्वाधीनता को बनाये रखा जाय।

(२) किसी राष्ट्र या राष्ट्र-समूह के साथ जो सैनिक सहयोग तथा सहायता के इच्छुक हों, ऐसे सहयोग तथा सहायता के लिए कार्यपालिका को अधिकार दे दिया जाय।

(३) इस सहायता तथा सहयोग कार्य में अमेरिका के सशस्त्र सैनिकों की भर्ती करने का अधिकार सम्मिलित किया जाय जो उन राष्ट्रों की राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा क्षेत्रीय एकता की सुरक्षा तथा बचाव करे, जिन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद द्वारा नियन्त्रित किसी राष्ट्र की ओर से सशस्त्र आक्रमण के विरुद्ध ऐसी सहायता चाही हो।

(४) १९५८-५९ के प्रत्येक वित्तीय वर्ष के बीच, मध्यपूर्व के राष्ट्रों को सुदृढ करने के लिए अमेरिकी आर्थिक सहायता के बतौर, राष्ट्रपति को सौ करोड़ रुपये खर्च करने का अधिकार दिया जाय। यह सहायता 'पारस्परिक सुरक्षा अधिनियम (१९५४)' के अन्तर्गत प्राप्त निधि के अतिरिक्त होगी।

निष्कर्ष रूप में राष्ट्रपति ने कहा "इन प्रस्तावित कानूनी व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य है साम्यवादी आक्रमण की सम्भावना का मुकाबला करना, चाहे वह आक्रमण प्रत्यक्ष हो अथवा परोक्ष। आवश्यकता इस बात की है कि शक्ति के अभाव

को-बाह्य सैनिक सहायता से नही, अपितु उस क्षेत्र के स्वतन्त्र राष्ट्रो की सुरक्षा तथा बढे हुए उत्साह द्वारा पूरा किया जाय।"

राष्ट्रपति के इन सुझावो पर काग्रेस के दोनो सदनो ने विचार किया। सीनेट ने तो यह घोषणा भी कर दी कि अमेरिका राष्ट्रपति के निर्णय के अनुसार ही कार्यवाही करने को तत्पर है। इस परिवर्तन से, जिसे राष्ट्रपति ने भी स्वीकार कर लिया, उनके ऊपर बडी जिम्मेदारी आ पडी है। लिबरल डेमोक्रेट्स ने शासन द्वारा अरबो को इस प्रकार रिझाने पर असतोष प्रकट किया। अनुदार-दली सदस्यो ने खर्च के पहलू का विरोध किया तथा दोनो दलो ने शिकायत की कि इस सिद्धात में मध्य-पूर्व की दो महत्वपूर्ण समस्याओ—इजराइल तथा स्वेज नहर—को हल करने का प्रयास नही है। अन्त में राष्ट्रपति के दबाव से तथा सिद्धात का उद्देश्य साम्यवाद विरोधी होने से विरोध शान्त हो गया। राष्ट्रपति आइजन हावर के हस्ताक्षरो के पश्चात् ९ मार्च १९५७ को इस प्रस्ताव ने अधिनियम का रूप धारण कर लिया। प्रस्ताव में यह उल्लिखित है कि इस निधि का एक हिस्सा बतौर ऋण के दिया जायेगा। इस अधिनियम के अन्तर्गत सैनिक सहायता की व्यवस्था इस शर्त पर रखी गई है कि इसका प्रयोग आक्रमणात्मक उद्देश्य से नही होगा तथा बिना अमेरिकी काग्रेस की स्वीकृति के इसे किसी तीसरे राष्ट्र को हस्तातरित नही किया जा सकेगा। विदेश मत्री डलेस की परिभाषा के अनुसार मध्य-पूर्व क्षेत्र की सीमाए इस प्रकार है—पश्चिम मे लीबिया, पूर्व में पाकिस्तान, उत्तर में तुर्की तथा दक्षिण मे अरब द्वीप जिसमें इथोपिया तथा सूडान भी शामिल है।

आइजन हावर-सिद्धात की प्रतिक्रिया

रूस के प्रमुख पत्र 'प्रवदा' ने घोषणा की कि इस सिद्धात का इरादा है "नग्न शक्ति के प्रयोग से अरब जनता के राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन का गला घोटना और साथ ही साथ उनको आर्थिक सहायता का प्रलोभन देना जिनके साथ बाद में हमेशा की तरह वाशिगटन के ऋणदाता राजनीतिक सुविधाओ की माग करेंगे।"

मिस्र, सीरिया, साऊदी अरब तथा जार्डन का जिन्होने पश्चिमी-विरोधी तटस्थ नीति का अनुकरण किया, उच्च-स्तरीय सम्मेलन काहिरा में १९ जनवरी, १९५७ को हुआ।

इस सम्मेलन ने साऊदी अरब के शाह को यह अधिकार दे दिया कि वह अपनी प्रस्तावित अमेरिका यात्रा के दौरान में राष्ट्रपति आइजन हावर को यह बता दें कि अरब-राष्ट्र मध्य-पूर्व में शक्ति रिक्तता के सिद्धांत को नही स्वीकार करते तथा वे

शेपीलोव की छ सूत्री शाति योजना

आइजन हावर-सिद्धात की घोपणा के बाद एक पखवारे के अन्दर-अन्दर ही रूसी प्रधानमन्त्री मार्शल बुल्गानिन ने अमेरिकी योजना की आलोचना की। उन्होने कहा "आइजन हावर योजना निकट मध्य-पूर्व में आर्थिक तथा राजनीतिक विस्तार की योजना है, जिसका आधार सशस्त्र सेना है। इस योजना से उपनिवेशवाद अपने नये रूप में प्रकट हुआ है। वे अरब राष्ट्रो की आर्थिक मजबूरियो का फायदा उठाना चाहते हैं। इन देशो की जनता देखेगी कि इस तथा-कथित सहायता से उन्हे क्या लाभ होगा।" मध्य-पूर्व क्षेत्र में शान्ति तथा सुरक्षा के गम्भीर खतरे से भरी हुई इस योजना को साम्राज्य-विस्तार का षड्यन्त्र कहा गया है।

आइजन हावर योजना के विकल्प स्वरूप १२ फरवरी १९५७ को रूसी विदेश मन्त्री श्री शेपीलोव ने मध्य-पूर्व के लिए अपनी छ सूत्री शांति योजना की घोपणा की। अमेरिका, फ्रास तथा ब्रिटेन को दी गई प्रज्ञप्तियो में निम्नांकित बातो पर जोर दिया गया —

(१) विवादास्पद प्रश्नो को केवल शान्ति-पूर्ण उपायो तथा आपसी बातचीत द्वारा हल करके निकट तथा मध्य-पूर्व में शान्ति को बनाये रखना।

(२) मध्य-पूर्व के देशों के अन्तर्राष्ट्रीय मामलो में हस्तक्षेप न करना तथा उनकी प्रभुसत्ता और स्वाधीनता के प्रति सम्मान रखना।

(३) बडी शक्तियो के साथ बने सैन्य गठबन्धनो में इन राष्ट्रो को शामिल करने के प्रयास का परित्याग।

(४) मध्य-पूर्व के देशो की सीमाओ मे विदेशी अड्डो तथा सैन्य टुकडियो का हटाया जाना।

(५) इन देशो को युद्धास्त्र भेजने का पारस्परिक परित्याग तथा बहिष्कार।

(६) बिना राजनीतिक, सैनिक अथवा दूसरी प्रकार की उन शर्तो को, जो इन देशो की प्रभु-सत्ता तथा सम्मान से मेल नहीं खाती, इस क्षेत्र के देशो के आर्थिक विकास के लिए सहयोग।

यह घोषणा हर उस राष्ट्र के लिए खुली थी, जो मध्य-पूर्व मे शान्ति के लिए सहयोग देने का इच्छुक हो। अमेरिका, ब्रिटेन तथा फ्रास इन पश्चिमी राष्ट्रो ने रूसी योजना को ठुकरा दिया, क्योंकि इसे आइजन हावर-सिद्धान्त को बदनाम करने के लिए राजनीतिक हथकण्डा समझा गया। यह स्मरणीय है कि रूसी योजना का उद्देश्य है बडे राष्ट्रो मे दौड का त्याग, उन बडे राष्ट्रो के बीच जो अभी तक मध्य-

पूर्व में प्रभाव तथा शक्ति की दृष्टि से एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी हैं। इसके विपरीत आइजन हावर सिद्धांत का उद्देश्य है मध्यपूर्व में अप्रत्यक्ष साम्यवाद के विस्तार को रोकना तथा मध्यपूर्व के देशों की स्वाधीनता तथा एकता को आर्थिक तथा सैन्य सहायता देकर अक्षुण्ण रखना यदि वे देश ऐसा चाहें।

जोर्डन में संकट

१९५३ में हुसैन जोर्डन का शाह बना। उस समय वह १८ वर्ष की अवस्था का बालक ही था। इसकी शिक्षा-दीक्षा इंगलैण्ड में हैरो तथा सैंडहर्स्ट में हुई। इसके कार-दौड़ तथा हवाई-दौड़ जैसे खर्चीले शौक थे। पहले तो हुसैन ने राजकीय मामलों की उपेक्षा की किन्तु एक-डेढ़ साल में ही बालक शाह मिस्र तथा ब्रिटेन के बीच खेंच-तान का विषय हो गया क्योंकि दोनों ही उसके देश में प्रभाव जमाना चाहते थे। ब्रिटेन ही जोर्डन को आस्तित्व में लाया था और इसको एक बड़ी सेना तथा १२ मिलियन पौंड की वार्षिक सहायता देता था। अतः वह चाहता था कि शाह हुसैन पश्चिम-पक्षपाती मुस्लिम गुट में शामिल हो जाय, जिसमें ईराक भी शामिल है। राष्ट्रपति नासर चाहते थे कि हुसैन पश्चिम-विरोधी गुट में शामिल हो जाय, जिसमें सीरिया, मिस्र तथा साऊदी अरब शामिल हैं।

कुछ तो अरब राष्ट्र के दबाव से तथा कुछ अपनी गद्दी को बनाये रखने की इच्छा के दबाव से शाह हुसैन ने फिलस्तीनियों की बात मान ली क्योंकि जोर्डन में बहुसंख्यक ये ही हैं। सेनाध्यक्ष जनरल ग्लब पाशा के साथ सभी ब्रिटिश अफसरों को हटा दिया गया। नासर-पक्षपाती लोगों को सेना में ऊँचे स्थानों पर नियुक्त किया गया। जब इजराइल ने जोर्डन पर आक्रमण किया उस समय अक्तूबर १९५६ को उसकी रक्षा करने के लिए सीरिया तथा साऊदी अरब की सेनाएँ जोर्डन में घुस गईं।

अक्तूबर १९५६ में जोर्डन के संसदीय निर्वाचन हुए। फिलस्तीनियों के वाम-पक्षी दल ने ४० में से २५ स्थान प्राप्त किये। शाह हुसैन ने सुलेमान नबुल्सी को प्रधान-मन्त्री नियुक्त किया। नबुल्सी सरकार ने अप्रैल १९५६ में ब्रिटेन के साथ की गई १९४८ की सन्धि को समाप्त करके निर्वाचन में की गई अपनी प्रतिज्ञा को पूरा किया तथा दूसरे अरब-राष्ट्रों से वित्तीय सहायता मांगी। शाह हुसैन ने अपने प्रधान-मंत्री से साम्यवादी गतिविधियों को रोकने को कहा, जिसके लिए उसने इन्कार कर दिया। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, काहिरा सम्मेलन (फरवरी १९५७) में [illegible] ने जोर्डन को आर्थिक [illegible] के लिए राजी कर लिया।

१० अप्रैल १९५७ को यह संकेत मिला कि नबुल्सी सरकार एक तो रूस से

और भी घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है तथा दूसरे वह जोर्डन की नागरिक सेवाओ में से उन कर्मचारियो की सफाई करना चाहती है जो अत्यधिक शाह-भक्त हैं। एक सेनानायक अली आबू नवर के नेतृत्व में फिलस्तीनियो के पश्चिम विरोधी क्रान्तिकारियो ने गुप्त रूप से हुसैन विरोधी विद्रोह का सगठन प्रारम्भ कर दिया। दो दिन पश्चात् यह विद्रोह कुचल दिया गया तथा नवर सीरिया भाग निकला। नब्रुलसी मन्त्रि-मण्डल को त्याग पत्र देना पडा। शाह हुसैन ने एक मिला-जुला मन्त्रि-मडल नियुक्त किया जिसका नेता बना हुसैन फहाकरी खालिदी। इस मन्त्रिमडल में विदेश-मन्त्री नबुलसी को ही रखा गया। जोर्डन की सेना का प्रधान सेनाध्यक्ष जनरल अली हयारी को नियुक्त किया गया, जो नवर का स्कूल का सहपाठी था। २० अप्रैल १९५७ को जनरल हयारी एक बहाने से सीरिया भाग गया तथा वहाँ से त्याग-पत्र देकर राजनीतिक शरण की माँग की। हयारी ने शाह हुसैन पर यह आरोप लगाया कि "वह विदेशी सैनिक अफसरो के सहयोग से जोर्डन की स्वाधीनता के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहा है।" हुसैन ने शीघ्र ही कट्टर बिदोइन * जनरल मज्जाली को हयारी के स्थान पर नियुक्त कर दिया। गलियो में उपद्रवो के बाद २५ अप्रैल १९५७ को खालिदी-सरकार ने त्याग पत्र दे दिया। नबुलसी को फौरन गिरफ्तार कर लिया गया। छ महीने के लिए ससद को समाप्त कर दिया गया तथा सैनिक कानून घोषित कर दिया गया। प्रेस पर निगरानी का प्रतिबन्ध लगा दिया गया, जल्सो तथा सभाओ को बन्द कर दिया गया तथा सैकडो शाह-विरोधी लोगो को गिरफ्तार कर लिया गया। एक नया शाह-भक्त मन्त्रिमडल प्रधान मन्त्री इब्राहीम हशम के नेतृत्व में बना। सुलीमान तुकान को प्रतिरक्षा मन्त्री तथा जोर्डन का सैनिक गवर्नर नियुक्त किया गया। कडा कर्फ्यू लगा दिया गया तथा तमाम राजनीतिक सगठनो को समाप्त कर दिया गया। जोर्डन के पश्चिमी किनारे पर रहने वाले फिलस्तीनी अरबो के नेताओ को उनके घरो में ही नजर बन्द कर दिया गया। अपने आकाशवाणी भाषण में हुसैन ने वामपक्षी दलो के नेताओ तथा सैनिक षड्यन्त्रकारियो की यह कह कर भर्त्सना की कि उन्होने अपने आप को परकीय षड्यन्त्रकारियो के हाथो बेच दिया है।

इसी बीच अमेरिका ने शाह हुसैन को गद्दी पर बनाए रखने के लिए सब प्रकार के उपाय कर लिए। अमेरिकी विदेश-सचिव डलेस ने कहा, 'हमारी इच्छा हर प्रकार से शाह हुसैन के हाथ मजबूत करने की है।" छठा अमेरिकी बेडा बेरूत में इस लिए ठहरा कि जोर्डन के अन्दरूनी मामलो में बडे राष्ट्रो के हस्तक्षेप को रोका

* जोर्डन में ६ लाख फिलस्तीनी अरब है, जो पश्चिमी किनारे पर रहते है तथा ४ लाख बिदोइन है, जो जोर्डन नदी के पूर्वी किनारे पर रहते है।

जाय। अमेरिकी राष्ट्रपति ने घोषणा की कि जोर्डन की स्वाधीनता तथा एकता परमावश्यक है तथा जोर्टन की मुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए सैनिक उपाय किए गये है। २६ अप्रैल को वाशिगटन से जोर्डन को १० मिलियन डालर (५ करोड रुपये) की आर्थिक सहायता देने की घोषणा की गई तथा दो दिन पश्चात् ही छठा वेड़ा वापिस बुला लिया गया।

इस प्रकार अमेरिका अधिकाशत आइक-योजना के जरिये ही मध्यपूर्व में अपना राजनीतिक कार्य कर रहा है, जिस योजना के अन्तर्गत मध्यपूर्व के देशों को साम्यवादी आक्रमण से वचाव तथा आर्थिक सहायता देना है। आइक-योजना का प्रमुख रूप जोर्डन की घटनाओ के समय आया जवकि शाह हुसैन ने अमेरिकी सहायता को स्वीकार करने की आकाक्षा प्रदर्शित की तथा पश्चिमी किनारे पर रहने वाले सीरिया तथा मिस्र द्वारा समर्थित फिलस्तीनी अरबो ने इसका विरोध किया। सकट के विपमतम हो जाने की स्थिति में आइजन हावर ने योजना का सैनिक पहलू काम मे लिया तथा शाह हुसैन की सहायता के नाम पर छठा वेडा पूर्वी भूमध्यसागर को भेज दिया गया। आइक-योजना को स्वीकार कर के भी शाह पश्चिमी किनारे पर रहने वाले अरबों तथा मिस्र और सीरिया की भावनाओ को रोकने को तैयार नही है।

ब्रिटेन के मजदूर-दल की दृष्टि से जोर्डन में अमेरिका का यह नया कार्य 'अरव-राष्ट्रो में जवर्दस्ती हस्तक्षेप का अभियान' मालूम होता है। उन्होंने इसकी भर्त्सना उसी प्रकार की जिस प्रकार मिस्र पर आंग्ल-फ्रासीसी आक्रमण की की थी। अन्यूरिन वेवान के शब्दो में "अमेरिका हर स्तर पर मध्य-पूर्व में अपने आपको शत्रु के रूप में प्रकट कर रहा है। यह वही कार्य कर रहा जो ब्रिटेन तथा फ्रास ने किये थे तथा जिनका परिणाम भीषण निकला।" 'ट्रीव्यून' ने आइक-योजना को मध्यपूर्व की शान्ति को खतरा वताया है। यह तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि आइक-योजना से मध्यपूर्व की समस्याओ का हल नही होता है, जैसे कि अरव-इजराइल सम्वन्ध, अरव विस्थापितो का भविष्य तथा स्वेज नहर का भविष्य। जोर्डन-सकट ने राष्ट्रीय अरव गुट के वीच झगडा-वखेडा तथा मतभेद उत्पन्न कर दिया, जिसमें एक पक्ष मिश्र तथा सीरिया का है और दूसरा है साऊदी अरव तथा जोर्डन का।

व्याख्यान ९

सन् १९१९ से पूर्वी एशिया के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

विषय प्रवेश —एशिया विश्व का केवल सबसे बडा महादेश ही नही बल्कि विश्व की आधी से अधिक आबादी का यह निवास-स्थान है। इस परिच्छेद में हम पूर्वी एशिया के हाल के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो का अध्ययन करेंगे। जैसा कि 'पूर्वी एशिया' शब्द से विदित है इसके अन्तर्गत चीन, जापान, फिलीपीन के द्वीप समूह, बर्मा, हिन्द-चीन, मलाया, श्याम और हिन्देशिया के द्वीप समूह आते हैं। इस अध्याय में हम न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, भारत, तिब्बत और सिक्याग पर प्रकाश नही डालेंगे क्योकि उनके हाल की स्थिति का अध्ययन हम ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के एक अङ्ग के रूप में तथा भारत और चीन की विदेश नीतियो के अन्तर्गत करेंगे। मगोलिया, मचूरिया, कोरिया और फारमोसा पर भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रकाश डाला जायेगा।

चीन पूर्वी एशिया का सबसे बडा घनी आबादी वाला तथा महत्वपूर्ण देश है। १९१२ में २६८ वर्षों से चला आ रहा मचू वश का शासन समाप्त करने के बाद वहा गणतन्त्र की स्थापना हुई। तत्पश्चात् दो दलो ने जिसमें से एक ने उत्तर में पेकिंग से और दूसरे दल ने दक्षिण में कैंटन से चीन को एक गणतन्त्र सरकार के मातहत पुन सगठित करने का प्रयास किया। १९४९ तक कोई भी दल समस्त चीन में शाति व व्यवस्था कायम करने में सफल नही हुआ हालाकि १९२८ से १९४९ तक चीन की राजनीति पर च्याग काई शेक के नेतृत्व में कोमिताग राष्ट्रवादियो का प्रभाव रहा।

१९१३ में तिब्बत ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की और १९५० तक उसे कायम रखा अर्थात् उस समय तक जब तक चीन के कम्युनिस्टो ने दलाई लामा की भूमि पर पुन अधिकार प्राप्त नही कर लिया। सन् १९१७ की रूसी क्रांति ने जापान को एशिया के देशों में अपनी स्थिति सुदृढ बनाने में सहायता दी। इसके परिणाम स्वरूप उसकी सत्ता कोरिया में ही सीमित न रहकर मचूरिया, साइबेरिया और मगोलिया आदि देशों में भी फैल गई। १९३१-३३ के सकट के परिणामस्वरूप मचूरिया पर जापान की कठपुतली सरकार सत्तारूढ हो गई। इसी बीच रूस ने सिक्याग और बाहरी मगोलिया पर चीन की प्रभुसत्ता को स्वीकार करते हुए दोनों देशों में अपना आर्थिक प्रभाव मजबूती से कायम रखा। १९४५ में बाहरी मगोलिया

स्वतत्र हो गया लेकिन सोवियत सघ से इसका निकट सम्बन्ध कायम रहा। दूसरे विश्व-युद्ध के परिणामस्वरूप मचूरिया पर से जापान का शासन समाप्त हो गया। वैधानिक तौर पर इस समय मचूरिया, भीतरी मगोलिया और सिक्याग पर चीन का अधिकार है।

कदाचित १९ वीं शताब्दी में जापान का उत्थान एशिया की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है जो बादशाह मेजी के नेतृत्व में ३८ वर्षों तक (१८६७-१९०५) के शासन के दौरान में विश्व का एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया। १८९५ में जापान ने चीन को युद्ध में हराकर फारमोसा और पेसकाडोर्स को अपने आधीन कर लिया। १९०२ में जापान ने ब्रिटेन के साथ सन्धि कर ली। १९०५ में जापान ने रूस को हराकर पोर्ट्स माउथ सन्धि (५ सितम्बर १९०५) के अनुसार दक्षिणी सखालिन, पोर्ट आर्थर की भूमि और लियोटग प्रायद्वीप को तथा दक्षिण मचूरिया की रेलो तथा खानो को जो पहले रूस के अधिकार में थी अपने कब्जे में कर लिया। १९१० में जापान ने कोरिया को अपने राज्य में शामिल कर लिया और चार वर्षो के पश्चात् जर्मनी से किआओशो (शातुग) को भी अपने अधिकार में ले लिया। इसके अतिरिक्त अपनी १९१५ की '२१ मागो वाली तालिका' में चीन ने अपना सरक्षण कायम करने की माग की। १९१८ में जापान किआओशो (शातुग), मचूरिया, भीतरी मगोलिया, उत्तरी सखालिन और पूर्वी साइबेरिया आदि सभी देशो पर अपना प्रभुत्व कायम कर चुका था।

जहाँ तक दक्षिण पूर्वी एशियाई देशो का सम्बन्ध है फिलीपीन १९४६ तक (१८९८ से) एक अमेरिकी उपनिवेश बना रहा। इसी प्रकार १९४८ तक हिन्देशिया पर डच का और १९५४ तक हिन्दचीन पर फ्रास का अधिकार कायम रहा। बर्मा और मलाया क्रमश १९४८ और अगस्त १९५७ तक ब्रिटिश साम्राज्य के अग बने रहे। हागकाग पर अभी भी ब्रिटिश साम्राज्य का प्रभुत्व कायम है। केवल स्याम (थाईलैंड) ही अब तक स्वतन्त्र रह सका है। मकाओ और तिमूर पुर्तगाल के अधीन है।

पेरिस शाति सम्मेलन १९१९ मे सुदूर-पूर्वी समस्याए

१९१९ के पेरिस शाति अधिवेशन में जापान का स्थान विश्व की पांच महान् शक्तियो में एक था तथा इसका प्रतिनिधित्व मार्किवस सैनोजी, वाइकाउट चिंडा और बैरन मेकिनो ने किया था। परन्तु चीन उस समय गृह-युद्ध में फसा था और इसका प्रतिनिधित्व उत्तरी चीन (पेकिंग सरकार) की ओर से एल्फ्रेड एम० के० जे० और दक्षिणी चीन (कैंटन सरकार) की ओर से वी० के० विलिंगटन ने किया था।

इस तथ्य ने कि कोई-सा चीनी प्रतिनिधि मण्डल सयुक्त देश का समुचित प्रतिनिधित्व नही करता अधिवेशन में उनकी स्थिति को निर्बल कर दिया।

शाति अधिवेशन में चीन ने अपनी कुछ मागें पेश भी की थी जिनमें किम्राशो (शातुग) को जर्मन अधिकार से मुक्त कर चीन को वापस किया जाय, तटकर स्वतन्त्रता हो, अतिरिक्त भूमि सम्बन्धी कानून का उन्मूलन, विदेशी प्रभाव को समाप्त करने तथा विदेशी सैनिको को हटाने की मागें शामिल थी। दूसरी तरफ जापान की भी तीन मागें थी (१) प्रशान्त क्षेत्र में विषुवत रेखा के उत्तरी ओर के भूतपूर्व जर्मन अधिकृत द्वीपो का समर्पण, (२) किम्राशो (शातुग) पर जैसे जर्मनी का प्रभुत्व था उसी प्रकार इसके (जापान) अधिकार का भी स्पष्टीकरण जिसकी स्वीकृति १६१५ की सधि में चीन दे चुका था और फ्रास, रूस तथा ब्रिटेन ने भी १६१७ की गुप्त सन्धि में स्वीकार किया था, (३) राष्ट्र सघ के प्रतिश्रव में जातीय समानता को शामिल किया जाय।

चीन और जापान के प्रतिनिधियो में किम्राशो (शातुग) के प्रश्न को लेकर काफी सघर्ष चला। अमेरिका को १६१७ की गुप्त सधि के सम्बन्ध में निश्चित जानकारी न होने के कारण प्रेसिडेट विलसन ने चीन के अधिकार का समर्थन किया। जापान की प्रशात क्षेत्र के द्वीपो की माग, प्रेसिडेंट विलसन के एक देश के हिस्से को दूसरे देश में न मिलाने वाले सिद्धान्त के विपरीत थी। प्रेसिडेट विलसन और आस्ट्रेलिया के प्रधानमत्री श्री ह्यूज के 'विशेषाधिकार' प्रयोग के कारण जापान की जातीय समानता की माग रद्द कर दी गई। इसका परिणाम यह हुआ कि इटली वालो ने जैसे फ्यूम के प्रश्न को लेकर अधिवेशन छोडा था उसी प्रकार जापान ने भी अधिवेशन छोडने की धमकी दी। तत्पश्चात् प्रेसिडेट विलसन ने अन्य देशो की भाति जो युद्धकाल में हुए समझौते के कारण जापान के पक्ष में थे, समझौता कर लिया।

शान्ति के नियमो के अनुसार जापान को शातुग प्रात तथा किम्राशो-वे पर वे ही अधिकार प्राप्त हुए जो पहले जर्मनी के थे। शातुग प्रात के सम्बन्ध में अपने आर्थिक अधिकारो तथा हितो को सुरक्षित रखते हुए जापान ने इसको भविष्य में चीन को वापस लौटाने की एक मौखिक प्रतिज्ञा भी की। इस प्रकार बौक्सर-सधि के नियमो के अनुसार जर्मनी के दायित्व से चीन को छुटकारा मिल गया तथा तेनसिन और हान्को के सम्बन्ध में उसे जर्मनी से कुछ सुविधायें भी मिली। चीन को बौक्सर-उपद्रव के समय चले गये ज्योतिष-विद्या सम्बन्धी यत्र मिल गए। वर्साय सन्धि में सुदूर पूर्व सम्बन्धी व्यवस्थायें इसी प्रकार थी। मित्र राष्ट्रो ने 'ग' श्रेणी की आदिष्ट प्रणाली के रूप में प्रशान्त द्वीपो अर्थात् मार्शल्स, मेरियानास और केरोलियन्स पर शासन का अधिकार जापान के हाथो में सौप दिया जो पहले जर्मनी के अधिकार में था।

चीन के प्रतिनिधि ने सन्धि की शर्तों का विरोध किया और उस पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। इतना ही नही चीन में जापानी वस्तुओं का पूर्णरूपेण बहिष्कार किया गया तथा विद्यार्थियों ने भी जगह-जगह जलूस निकाल कर अपना विरोध प्रकट किया। चीन के इन विरोधो के कारण जापानी व्यवसाय को बडा धक्का लगा। परिणाम-स्वरूप जापान ने शातुंग प्रांत को चीन को लौटाने के सबन्ध में उससे पुन वार्ता की इच्छा प्रकट की जो वाशिंगटन अधिवेशन में सम्पन्न हुई। इसके पश्चात् चीन सां जर्मे के सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर राष्ट्रसंघ का सदस्य हो गया तथा जर्मनी के साथ एक अन्य सधि में शामिल होकर उससे अतिरिक्त भूमि सम्बन्धी कानून को रद्द कराने में सफल हुआ (मई २०, १९२१)।

जातीय समानता की मान्यता प्राप्त करने में सम्मेलन के असफल हो जाने से जापान असतुष्ट हो गया और राष्ट्रसंघ के प्रति उसे संदेह होने लगा।

वाशिंगटन सम्मेलन १९२२

पृष्ठभूमि :—१९१९-२१ के बीच अमेरिका और जापान का परस्पर सबध इतना बिगड गया कि सुदूर पूर्व में जापान अमेरिका का दुश्मन बन गया। यह उसने और स्पष्ट हो गया जब कि अगस्त १९१९ में पूर्वी साइबेरिया पर कब्जा करने के लिए जापानी और अमेरिकी सेनाओं में होड लग गई। इसके अतिरिक्त अमेरिका में जापानियों के बसने पर नियंत्रणों तथा चीन में अमेरिका की 'खुला द्वार' नीति ने दोनो देशों में और भी तनाव पैदा कर दिया।

वास्तव में निम्नलिखित तीन कारणों से वाशिंगटन सम्मेलन बुलाना पडा। प्रथम, १९०२ की आंग्ल जापानी सधि को पुन लागू करने सम्बन्धी वार्ता अमेरिका के लिए बडी चिन्ता की बात थी यद्यपि ब्रिटेन ने दिसम्बर १९२० में यह स्वीकार किया कि अमेरिका और जापान में युद्ध की स्थिति में उक्त सधि वैध नहीं होगी। दूसरे, कैरोलिनियन में याप द्वीप की भावी स्थिति का प्रश्न जो हाल में जर्मनी के हाथ से छिन कर जापान के हाथ में एक आदिष्ट क्षेत्र के रूप में आ गया था। यह द्वीप इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें होकर एक समुद्री तार फिलीपीन और हिन्देशिया को जोडता है। पेरिस शांति-सम्मेलन में प्रेसिडेंट विलसन ने याप द्वीप के अन्तर्राष्ट्रीय-करण के लिए प्रयास किया लेकिन असफल रहे। तीसरे १९१९ के बाद अमेरिका, ब्रिटेन और जापान में त्रिपक्षीय नौसैनिक दौड न केवल सुदूरपूर्व की शान्ति के लिए एक खतरा बन गई बल्कि इसने इन देशों के बजट पर भारी दबाव पैदा हो गया।

जून १९२१ में अमेरिकी कांग्रेस ने सेनेटर बोरा का वह प्रस्ताव भारी बहुमत से स्वीकार कर लिया जिसमें प्रेसिडेण्ट से कहा गया था कि वह सम्बन्धित देशों का एक

सम्मेलन बुलायें जिसमें पारस्परिक समझौता द्वारा नौ-सैनिक व्यय में कमी करने पर विचार किया जाय। ११ अगस्त १९२१ को प्रेसिडेंट हार्डिंग ने सम्बन्धित राष्ट्रो के पास औपचारिक निमन्त्रण भेजा लेकिन साथ ही उन्होने सम्मेलन की विचारार्थ सूची में शस्त्रीकरण सीमित करने के विषय के साथ ही सुदूरपूर्व तथा प्रशान्त प्रश्नो को भी शामिल कर दिया। यह सम्मेलन २१ नवम्बर १९२१ से ६ फरवरी १९२२ तक वाशिंगटन में हुआ। इसमें ९ देशों—अमेरिका, ब्रिटेन, जापान, फ्रास, इटली, चीन, बेल्जियम, पुर्तगाल और नीदरलैंड—ने भाग लिया। अमेरिकी सरकार द्वारा अमान्य रूसी अधिकारियो से व्यवहार रखने से इन्कार कर देने के कारण रूस को सम्मेलन में नही बुलाया गया।

सम्मेलन—सम्मेलन का कार्य दो समितियो के जरिये हुआ एक समिति वह थी जिसमें प्रथम पांच प्रमुख देशो के प्रतिनिधि शामिल थे और जिसका सम्बन्ध शस्त्रीकरण के मामलो से था, दूसरी समिति में उक्त सभी ९ देश थे और इसका सम्बन्ध प्रशान्त तथा सुदूरपूर्वी मामलो से था। सम्मेलन के उद्‌घाटन के दिन अमेरिकी विदेश-मंत्री ह्यूज ने अध्यक्ष पद से घोषणा की कि बिना गम्भीर त्याग के नौ-सैनिक होड बन्द नही की जा सकती। साथ ही ऐसी भी आशा नही करनी चाहिए कि इन देशो में से केवल एक ही इस ओर कदम उठाये। अल्फ्रेड जे० के नेतृत्व में उत्तरी चीन के एक प्रतिनिधि मण्डल ने सम्मेलन में १० आम सिद्धांत रखे जिनमें प्रादेशिक एकता, राजनैतिक तथा प्रशासनिक स्वतन्त्रता, तटकर स्वतन्त्रता, १९१५ की २१ माँगो पर आधारित चीन-जापानी सन्धियो को भग करना तथा शातुग की पुन वापसी आदि बाते थीं। लेकिन अमेरिकी चार-सूत्री प्रस्ताव के पक्ष में चीनी प्रस्ताव अस्वीकार कर दिये गये। बैरन कातो के नेतृत्व में जापानी प्रतिनिधि मण्डल १९०२ की आग्ल-जापानी सधि को भग करने, नौ-सैनिक शक्ति घटाने तथा चीन में बिना शर्त सब के लिये 'खुला द्वार' तथा समान अवसर देने के सिद्धान्त को सक्रिय ढग से लागू करने को राजी हो गया। यद्यपि कातो ने यह बात बहुत समझ की कही कि "आज चीन की आन्तरिक मामलो में जितनी कठिनाइया है वे विदेशो के साथ सम्बन्ध में उत्पन्न कठिनाइयों से कम नही है।" ब्रिटिश शिष्टमण्डल के नेता लार्ड बालफर और विदेश मन्त्री ह्यूज ने जापानी तथा चीनी प्रतिनिधि-मण्डलो में वार्ता कराने के लिए अपनी सद्‌भावनाओ का प्रयोग करने का प्रस्ताव रखा। इसके परिणाम स्वरूप दो मास तक विचार-विमर्श के बाद किआओ को लौटाने के सम्बन्ध में चीन और जापान में सधि हुई।

सम्मेलन के परिणाम—सम्मेलन के प्रत्यक्ष परिणामो में ६ सधिया, चार राष्ट्रो की प्रशान्त सधि सम्बन्धी घोषणा तथा १२ प्रस्ताव थे।

अप्रत्यक्ष परिणाम में दो सन्धियां थी जो सम्मेलन से बाहर उन्ही दिनो की गई। इन दो सन्धियो में एक चीन और जापान में शातुंग के सम्बन्ध में ४ फरवरी १९२२ को हुई और दूसरी सन्धि ११ फरवरी १९२२ को याप द्वीप के सम्बन्ध में अमेरिका और जापान में हुई। सम्मेलन में हुई ६ सन्धियां ये थी (१) अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रास, इटली और जापान में नौ-सेना के शस्त्रीकरण सीमित करने सम्बन्धी सन्धि, (२) लडाई में पनडुब्बी जहाजो तथा जहरीली गैसो के प्रयोग के सम्बन्ध में उक्त देशो में सन्धि, (३) अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रास और जापान में उनके प्रशान्त स्थित उपनिवेश द्वीपो सम्बन्धी चार राष्ट्रो की प्रशान्त सन्धि, (४) इन्ही चार राष्ट्रो में प्रशान्त सन्धि से सम्बन्धित एक पूरक सन्धि (५) चीन सम्बन्धी मामलो मे अपनाये जाने वाले सिद्धान्तो तथा नीति सम्बन्धी ९ राष्ट्रो की सन्धि और (६) चीन सम्बन्धी ९ राष्ट्रो की तटकर सन्धि। केवल चार राष्ट्रो की प्रशान्त सन्धि को छोडकर बाकी सन्धियो पर ६ फरवरी १९२२ को हस्ताक्षर हुए।

चार राष्ट्रो की प्रशान्त सधि

यह सन्धि १३ दिसम्बर १९२१ को ब्रिटेन, फ्रास, जापान और अमेरिका में हुई। उसमें चार अनुच्छेद थे। सन्धि के हस्ताक्षरकर्त्ताओ ने वायदा किया कि जहा तक प्रशान्त सागर स्थित उनके उपनिवेश द्वीपो का सम्बन्ध है वे एक दूसरे के अधिकारो का आदर करेगे। यदि किसी प्रशान्त प्रश्न पर कोई ऐसा विवाद उठा जिसका प्रभाव उनके अधिकारो पर भी पड सकता हो तो उसके निबटारे के लिये एक संयुक्त सम्मेलन आमंत्रित किया जायेगा। किसी अन्य राष्ट्र की आक्रमणकारी कार्यवाही से उनके अधिकारो को खतरा पैदा होने की स्थिति में सब मिलकर विचार करेगे। सन्धि की अवधि १० वर्ष निश्चित की गई और १२ मास के नोटिस पर उसे समाप्त किया जा सकता था। आग्ल-जापानी सन्धि जो १९११ में हुई थी समाप्त कर दी गई।

चार राष्ट्रो की सन्धि सम्बन्धी घोषणा मे प्रशान्त स्थित आदिष्ट क्षेत्र याप द्वीप के सम्बन्ध में अमेरिका का अधिकार सुरक्षित रखने की व्यवस्था की गई लेकिन चार राष्ट्रो की सन्धि में, बाहर से आकर बसने तथा तटकर प्रश्नो को अलग रखा गया।

पांच राष्ट्रो की नौ-सधि
(Five Power Naval Treaty)

फरवरी १९२२ में अमेरिका, ब्रिटेन, जापान, फ्रास और इटली ने एक पांच राष्ट्रो की सन्धि पर हस्ताक्षर किये। सन्धि के अनुसार इन पाच राष्ट्रो में बडे जहाजो की संख्या क्रमशः ५ . ५ : ३ १·६७ १·६७ के अनुपात से निर्धारित की गई। मोटे तौर पर सन्धि के अनुसार हस्ताक्षरकर्त्ताओ के भारी जहाजो की संख्या में

४० प्रतिशत कमी कर दी गई, आगामी १० वर्षो में कोई नया भारी जहाज न बनाने का निश्चय किया गया। २० वर्ष से पहले किसी भी जहाज की जगह नया जहाज न लाया जाय, १० वर्ष के अवकाश के बाद जो जो जहाज बनाये जांय वे ३५ हजार टन तक के होने चाहियें और उनमें १६ इंची तोपें लगी होनी चाहियें तथा विमान-वाहक जहाज २७ हजार टन के होने चाहिये। अमेरिका, ब्रिटेन और जापान ने तय किया कि जहां तक उनके प्रशान्त क्षेत्र में किलेबन्दियों का सम्बन्ध है हवाई, अलास्का, पनामा नहर, सिंगापुर, कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड को छोडकर बाकी क्षेत्रों में वे यथापूर्व स्थिति कायम रखेंगे। थल सेनाओं के शस्त्रीकरण के विषय में कोई समझौता नहीं हो सका। सन्धि की अवधि ३१ दिसम्बर १९३६ तक निर्धारित की गई। जो हस्ताक्षरकर्ता सन्धि से सम्बन्ध विच्छेद करना चाहे उसे दो वर्ष का नोटिस देना होगा।

वाशिंगटन सम्मेलन १९२२ द्वारा स्वीकृत जहाजों का वजन

	अमेरिका	ब्रिटेन	जापान	फ्रांस	इटली
बड़े जहाज	५२५,०००	५२५,०००	३१५,०००	१७५,०००	१७५,०००
विमान वाहक जहाज	१३५,०००	१३५,०००	८१,०००	६०,०००	६०,०००

पनडुब्बियों तथा हानिकारक गैसों के प्रयोग के सम्बन्ध में पांच राष्ट्रों की सन्धि के हस्ताक्षरकर्ताओं ने यह स्वीकार किया कि वे युद्ध में पनडुब्बियों का व्यापारिक जहाजों के विध्वंसक के रूप में तथा जहरीली गैसों का प्रयोग नहीं करेंगे।

नौ राष्ट्रों की 'खुला द्वार' सन्धि

इस सन्धि पर ६ फरवरी १९२२ को सभी ९ राष्ट्रों ने हस्ताक्षर किये। सन्धि में संयुक्त रूप से उक्त राष्ट्रों ने प्रतिज्ञा की कि (१) वे चीन की प्रभुसत्ता, स्वतन्त्रता, प्रादेशिक तथा प्रशासनिक एकता का सम्मान करेंगे, (२) चीन में समान व्यापारिक सुविधाओं के सिद्धान्त को कायम रखेंगे तथा उसे प्रोत्साहित करेंगे, (३) ऐसी कोई कार्यवाही नहीं करना अथवा ऐसी कार्यवाही का समर्थन नहीं करना जिससे किसी का विशेष हित सिद्ध होता हो तथा पारस्परिक सुविधाओं की व्यवस्था, (४) चीनी रेलों में सुविधाओं तथा तटकर के मामले में किसी प्रकार के अनुचित भेद-भाव को समाप्त कर दिया जायगा (५) युद्धकाल में एक तटस्थ राष्ट्र के रूप में चीन के अधिकारों का आदर होगा लेकिन उसी हालत में जब चीन का युद्ध से कोई सम्बन्ध नहीं होगा, (६) सन्धि की शर्तों को लागू करने के सम्बन्ध में हस्ताक्षरकर्ताओं में स्पष्ट तौर पर पत्र-व्यवहार होगा।

६ राष्ट्रों की तटकर संधि

इस संधि के अनुसार (१) संशोधन आयोग की व्यवस्था की गई जो विदेशी व्यापार की धनराशि का पांच प्रतिशत मुनाफा चीन को दिलाने की व्यवस्था करेगा, (२) ५ प्रतिशत तक एक आम अतिरिक्त कर लागू करने के निमित्त आंतरिक यातायात चुंगियों को शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने पर विचार के लिये विशेष सम्मेलन का आयोजन करना, (३) चीन की थल तथा समुद्री सीमाओं पर चुंगी दरों में एक-रूपता कायम करना; (४) चुंगियों में सामयिक संशोधन, (५) चुंगी के मामले में संधि के हस्ताक्षरकर्ता देशों के साथ समान व्यवहार तथा सुविधायें देना। संधि में तटकर सम्बन्धी स्वतन्त्रता का कोई उल्लेख नहीं किया गया।

चीन-जापानी संधि

४ फरवरी १६२२ को हुई इस संधि के अनुसार जापान ने पट्टे पर प्राप्त हुए शांतुग प्रदेश को चीन को लौटाना स्वीकार कर लिया लेकिन इसके साथ ही यह तय हुआ कि सिंगताओ स्थित एक जापानी दूतावास, जापानी स्कूलों और मंदिरों को नहीं लौटाया जायेगा। सिंगताओ-सिनान रेलवे को उसकी कीमत अदा करने के बाद चीन को लौटा दिया जायेगा। कीमत का निर्धारण दोनों राज्यों का एक संयुक्त आयोग करेगा। शांतुग से तमाम जापानी सेनायें वापस बुला ली जायेंगी और सिंगताओ स्थित चुंगी घर चीनी समुद्री चुंगी घर के ही आन्तरिक-भाग के रूप में काम करने लगेगा। चीन ने उचित मुआवजा देकर जापान द्वारा विकसित खानों, तारों, वायरलेस स्टेशनों और नमक उद्योग पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया। इस प्रकार १६२३ तक शांतुग प्रश्न चीन सरकार की इच्छा के अनुसार हल हो गया।

अमेरिकी-जापानी संधि

जापानी आदिष्ट क्षेत्र के मध्य में स्थित याप द्वीप के सम्बन्ध में ११ फरवरी १६२२ को अमेरिका और जापान में एक संधि पर हस्ताक्षर हुए। संधि के अनुसार अमेरिका को याप द्वीप में प्रवेश की सारी सुविधाएं प्राप्त हुई। उसे याप द्वीप को गुआम से जोड़ने के लिए समुद्री तार तथा रेडियो स्टेशन स्थापित करने की सुविधा प्राप्त हुई। इस तरह भूतपूर्व जर्मन द्वीप में अमेरिकी हितों की गारंटी हो गई और इस प्रकार प्रशान्त क्षेत्र में दोनों सरकारों के बीच झगड़े का एक महत्वपूर्ण कारण शान्तिपूर्ण ढंग से समाप्त हो गया।

सम्मेलन द्वारा स्वीकृत १२ प्रस्तावों में ४ प्रस्ताव विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। संधि में दोनों राष्ट्रों ने घोषणा की कि वे चीन में विदेशियों के जीवन तथा

सम्पत्ति की सुरक्षा का पूरा आश्वासन मिल जाने पर वहाँ से अपनी सशस्त्र सेनायें वापस बुला लेंगे। एक अन्य प्रस्ताव द्वारा यह निश्चय हुआ कि इस शर्त पर कि चीन में समुचित डाक सर्विस की व्यवस्था की जायेगी, विदेशी डाकखानों को बन्द कर दिया जायेगा। चीन में न्यायिक सुधारों के लिये अतिरिक्त भूमि सम्बन्धी कानून व्यवस्था की जाँच के निमित्त एक कमीशन की स्थापना का निश्चय किया गया। १९२५ में कमीशन ने उक्त व्यवस्था को शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने की सिफारिश की। इसके अतिरिक्त विदेशी रेडियो स्टेशनों पर चीन का नियन्त्रण कायम हो गया।

वाशिंगटन सम्मेलन का मूल्यांकन

१९२१-२२ के वाशिंगटन सम्मेलन की सफलताओं का यदि विस्तार से अध्ययन किया जाय तो मालूम होगा कि यह सम्मेलन अत्यन्त महत्वपूर्ण था। कार के अनुसार "यह सम्मेलन बड़ा सफल रहा क्योंकि इससे प्रशान्त क्षेत्र में युद्ध पूर्व जैसा संतुलन कायम हो गया।" मैकनायर और लैश के शब्दों में "चार राष्ट्रों की प्रशान्त संधि तथा पाँच राष्ट्रों की नौ-सन्धि के अतिरिक्त शस्त्रीकरण में खर्चा काफी कम कर देने से तथा आंग्ल-जापानी संधि भंग हो जाने के परिणामस्वरूप अमेरिका, जापान और ब्रिटेन में युद्ध की सम्भावना अनिश्चित काल के लिये समाप्त हो गई।" ९ राष्ट्रों की संधि पर हस्ताक्षर करने के बाद चीन 'खुला द्वार' संधि का प्रथम बार सदस्य बना। डा० विलोगबी के अनुसार "चीन को वाशिंगटन सम्मेलन से यह आश्वासन प्राप्त हुआ कि सम्मेलन से सम्बन्धित राष्ट्र चीन की स्वतंत्र कार्यवाहियों में किसी प्रकार की रुकावटें पैदा करने के लिये उसकी वर्तमान हालतों का लाभ नहीं उठायेंगे।" जैसा कि विनाके ने कहा है कि "चीन को इस सम्मेलन से लाभ ही हुआ क्योंकि जो कुछ वह पहले खो चुका था उससे अधिक उसने और कुछ नहीं खोया।"

आर्थिक सुअवसर की समानता की नीति का उल्लेख किया गया तथा प्रथम बार जापानी सद्भावनाओं सहित इसकी वैधानिक परिभाषा प्रस्तुत की गई। चीन को एक और अवसर दिया गया, जिससे वह अपनी आंतरिक स्थिति सुधार ले तथा एक आधुनिक प्रभु-सत्ता-सम्पन्न राज्य की हैसियत से विश्व-राजनीति में अपना भाग अदा करे। अमरीका तथा ब्रिटेन दोनों ने अपने मूल हितों की रक्षा पूरी सावधानी से की।

धीरे-धीरे ही उनकी पहले से चली आ रही कमजोरियाँ प्रकट हुयी। ९ राष्ट्र-संधि पूरी तरह सदस्य राष्ट्रों की सद्भावनाओं तथा आत्म-अनुशासन पर आधारित थी, सशस्त्र शक्ति के प्रयोग की "खुला द्वार" संधि में कोई व्यवस्था नहीं थी। वर्ग्स ने इसकी टिप्पणी इन शब्दों में की "इसमें किसी प्रकार की नाकेबन्दी नहीं थी, यह सामूहिक सुरक्षा संधि न होकर आत्म-निषेध की घोषणा थी। इसमें किसी को किसी

कार्य के लिए बधन नही था। इसका आधार पूर्णरूपेण सद्भावना पर ही था।" इसमें ऐसा कोई तन्त्र नहीं था, जिसके जोर से इसकी शर्तें लागू हो सकें।

पच-राष्ट्रीय-नौ-सधि में जगी-जहाजो, विध्वन्सको तथा पनडुब्बियो पर किसी प्रकार की सीमाए नही बाधी गई। अपनी प्रशान्तसागरीय घेराबदियो के सम्बन्ध में यथा-स्थित (Status Quo) बनाये रखने के लिए जापान की प्रतिज्ञा का आधार भी सद्भावना का ही आधार था। क्लाइड के कथनानुसार, "बडे जहाजो मे नौ-अवकाश तथा प्रशान्त महासागर और मध्यपूर्व में भविष्य में उठने वाले विवादो के सलाह मशविरे के सिद्धान्त के लिए वे शक्तिया सीमित सुविधाए देने को तैयार थी।"

वाशिगटन-सम्मेलन जापान की एक राजनयिक पराजय थी, क्योंकि आग्ल-अमेरिकी दबाव से विवश होकर उसे निम्न नौ-अनुपात स्वीकार करना पडा तथा किआशो चीन को यथा-पूर्व देना पडा। आग्ल अमेरिकी शक्तियो द्वारा जापान पर आक्रमण न करने की गारण्टी दी गई तथा सम्मेलन थल-आयुधो पर सीमाए बाधने का कोई भी समझौता करने में असफल रहा, जिसके कारण जापान का एशिया महाद्वीप में आधिपत्य सभव हो गया। वाशिगटन में किए गए निर्णय में जापान की जो प्रतिष्ठा-हानि हुई थी, उससे वह बहुत विक्षुब्ध हुआ और उस अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करने लगा जब वह इसके कार्य को समाप्त कर सके।

यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि इस सम्मेलन की अभूतपूर्व सफलता इसी में रही कि उसने सुदूर पूर्व (पूर्व एशिया) में लगभग १० वर्ष तक शांति रखी। ए० डब्ल्यू० ग्रिस्वोल्ड के अनुसार "सुदूर-पूर्व में यथाकृत विरासत मे प्राप्त विरोधी तत्वों के बावजूद भी इन सधियो ने उस हद तक शाति बनाए रखी जिस हद तक किसी भी लिखित पुर्जे द्वारा सम्भव हो सकती है।" एक जापानी प्रतिनिधि ने टिप्पणी करते हुए कहा कि यद्यपि भविष्य के प्रति इन शक्तियो को विश्वास और शुभ-आशा दिखाई देती थी, तो भी चोरी से अवकाश-प्राप्त लुटेरो की तरह वे शक्तियां लूट के माल पर से अपना शिकजा ढीला करना नही चाहती थी। यद्यपि जापान तथा ब्रिटेन के सम्बन्ध टूट गए तो भी जापान अपनी एकाकी स्थिति में से भी अपने यूरोपीय मित्रराष्ट्रो—जर्मनी तथा इटली—के साथ एक बड़ी शक्ति के रूप में प्रकट हुआ।

विश्व-राजनीति मे जापान

१६२२ से १६३१ तक जापान सावधानी तथा अनिश्चितता के साथ अपनी कूटनीति खेलता रहा। बारेन शिदेहरा के प्रधान-मन्त्रित्व मे जापान ने चीन के प्रति नम्रता की नीति अपनाई। बारेन ने जापान का नेतृत्व १६२४-२७ तथा १६२६ से ३१ तक किया। १६२८ में जब नेतृत्व बारेन जनरल टाका के हाथ में आया तो

के प्राकृतिक जगलात तथा चरागाहें जापान के उद्योग के लिए कच्चे माल की पूर्ति कर सकती थी। प्रत्येक दिन ३०००० टन कोयला, इस्पात तथा शेल आयल (Shale Oil) आदि खनिज पदार्थों के आगार जापान को वह शक्ति दे सकते थे, जिसकी जापान में पूर्ण कमी थी। इसकी कृषि-योग्य भूमि से जापान की खाद्य-पूर्ति की कमी पूरी होती। इतना ही नही जापान ने दो अरब येन (जापानी सिक्का) मचूरिया मे दक्षिण मचूरिया-रेलवे, कारखानो, रासायनिक खाद यत्रो, बन्दरगाहो तथा समस्त शहरो के निर्माण में लगाया। अकेली धैरेन की बन्दरगाह से ही कुल विश्व के सोया-बीन का ६० प्रतिशत भाग निर्यात किया जाता था। जीवन दायिनी-नीति की दृष्टि से जापानियो ने मचूरिया को रूस तथा चीन से प्रतिरक्षा के लिए प्रथम रोक के रूप में, जापानी उद्योगो द्वारा उत्पादित माल की विक्री के लिए सम्भावित बाजार के रूप में, कच्चे माल के साधन के रूप में तथा प्रमुख एशियाई भूमि में प्रवेश द्वारा के रूप में माना। १९३० में प्रधानमन्त्री हमागुची की हत्या के पश्चात् जापानी मन्त्रिमण्डल पर थल-सेना तथा नौ-सेना का नियन्त्रण हो गया, जिससे मचूरिया पर आक्रमण सम्भव हो गया।

तीसरे, सख्या की दृष्टि से जापानियो तथा चीनियो का अन्तर क्रमश बढ रहा था। तीन करोड की कुल जनसख्या में से केवल २५०,००० जापानी, ८००,००० कोरियाई, १००,००० रूसी तथा शेष चीनी थे। गृहयुद्धो तथा बार-बार पडने वाले दुर्भिक्षो के कारण चीनी मचूरिया में बसने लगे। चीनी कृपको ने उन जमीनो पर दखल जमा लिया, जिस पर जापान अधिकार प्राप्त करने को प्रेरित था। अत जापान ने अनुभव किया कि चीनियो की लगातार बढती हुई जनसख्या को देखते हुए उसे अपना अधिकार वहाँ बनाये रखना कठिन ही है।

चौथे, चीनी राष्ट्रवाद की पुनरहिलोर ने मचूरिया में खोए हुए अपने स्वत्वो को पुन प्राप्त करने के आन्दोलन का सूत्रपात किया। चाग-त्सोलिन को जापानी समर्थन मिलने तथा १९२८ में शातुग में स्थानान्तरित जापानी सेनाओ द्वारा, चीन को सगठित करने के लिए चांग-काई-शेक की बढती हुई सेना के मार्ग को अवरुद्ध कर देने के कारण जापान-विरोधी भावनाए पुन उभर आई। चीन लगातार कहता रहा कि मचूरिया चीन का अविभाज्य अग है तथा जापान ने, जब चीन दुर्बल था, उसका फायदा उठा कर शक्ति की धमकी से चीन द्वारा कुछ सुविधाए प्राप्त कर ली थी। चीन में राष्ट्रवाद की हिलोर ने उन सन्धियो के प्रति विरोध प्रकट किया, जिनपर दबाव से जबरन हस्ताक्षर करा दिये गए थे।

चीन को यह विश्वास था कि मचूरिया में जापान की विशिष्ट स्थिति को समाप्त किए बिना पूर्ण राष्ट्रीय एकता स्थापित नहीं हो सकती।

पाचवे, दक्षिण मचूरिया-रेलवे क्षेत्र में १५००० रेलवे-अभिरक्षको का होना भी सघर्ष का एक कारण था। चीनियो ने रेलवे क्षेत्र पर 'प्रशासन के पूर्ण तथा विशेष अधिकार' के जापानी दावे का विरोध किया। चीनियो ने रेलवे-अभिरक्षको तथा विदेशी पुलिस की मचूरिया में रहने की न्यायोचितता को अमान्य कर दिया, जापान के खनिज निकालने के अधिकार को रद्द कर दिया, जापानी नागरिको को पट्टे के मजूरी के अधिकार से वचित कर दिया, उनके यात्रा तथा आवास-सम्बन्धी अधिकारो को सीमित कर दिया, कर देने से इन्कार कर दिया तथा जो कोरियाई जापानी प्रजा थे, उन पर विशेष कर लगा दिया।

छठे, १९०५ की जापान-चीन-सधि के विपरीत चीनियो ने जापान को शाखा लाइनो के निर्माण के लिए छूट देने से इन्कार कर दिया, विशेषतः उन लाइनो के लिए जो कि कोरिया-सीमा तक बनाई जानी थी और रेलवे-निर्माण के लिए जापान से ऋण लेने से इन्कार कर दिया। १९२५ में चीनियो ने दक्षिण मचूरिया रेलवे के समानान्तर लाइने बिछानी प्रारम्भ कर दी। इन लाइनो के बिछाने में चीनी पूजी लगी थी तथा १९३१ तक लगभग १ हजार किलोमीटर की रेलवे बनकर तैयार हो गई, जो सीधे दक्षिण मचूरिया-रेलवे के साथ प्रतियोगिता करती थी। जापान द्वारा नियत्रित धैरेन बदरगाह से प्रतियोगिता लेने के लिए चीन ने इको तथा हुलुटो बदरगाहे निर्मित की, जिनने जापानियो को और भी खिजा दिया। चीन द्वारा उठाये गये इन कदमो को जापानियो ने मचूरिया मे जापान के 'सधि-अधिकारो' को रद्द करने के लिए चीन की 'क्रातिकारी राजनयिकता' बताया।

इस प्रकार मचूरिया में जापान तथा चीन के मध्य तनाव बढता गया। इधर १९३१ में जापान में सैनिक दल के शासनारूढ होने के परिणाम स्वरूप लगातार यह माँग होने लगी कि अधर में लटके तमाम प्रश्नो का समाधान, अगर आवश्यक हो तो, शक्ति द्वारा किया जाय। जापान की साम्राज्यवादी योजनाए प्रसिद्ध 'टाका-योजना' में प्रकट हुई। यह एक योजना का मसविदा था, जिसे प्रधानमत्री टाका ने १९२७ में जापान के उच्च सैनिक तथा नागरिक अधिकारियो के मचूरिया तथा मगोलिया में सम्मेलन के पश्चात्, तैयार किया था। योजना के इस प्रारूप में कहा गया था कि जापान के राष्ट्रीय अस्तित्व के लिए यह आवश्यक है कि वह मचूरिया, मगोलिया तथा चीन पर ही विजय प्राप्त न करे, अपितु समस्त पूर्व-एशिया तथा दक्षिण सामुद्रिक देशो पर भी अधिकार जमा ले।

चीन-जापान विवाद के तात्कालिक कारण ये थे—(१) वानपियोशा-घटना, (२) कप्तान नकामुरा का मामला, (३) चीन मे गृहयुद्ध, (४) यूरोप में राजनीतिक तथा आर्थिक सकटो की गृखला, (५) मुकदेन-घटना।

१६३१ की वसत ऋतु में मचूरिया के एक छोटे-से गाव वानपियोशा के पास जमीन के टुकडो पर चीनियो तथा कोरियाइयो, जो जापानी सरक्षण में थे, के बीच विवाद उठ खडे हुए। परिणाम स्वरूप कोरिया में झगडे प्रारम्भ हो गये तथा चीन में जापान-विरोधी वहिष्कारो को पुनर्जीवन प्राप्त हुआ। इसी बीच जापानी सेना का कप्तान नकामुरा, कृषि-विशेषज्ञ के वेश में यात्रा करता हुआ, गिरफ्तार कर लिया गया तथा २७ जून १६३१ को उत्तर मचूरिया में ताओनान के निकट उसकी हत्या कर दी गई। चीनियो का दावा था कि वह वेहोशी की दवाइया और सैनिक नक्शे लिये जा रहा था तथा चीनियो से वच भागने के सघर्ष में मारा गया। जापान ने क्षमा-याचना, क्षतिपूर्ति तथा हत्यारे को दण्ड की माग की। छान-वीन के पश्चात् चीन ने औपचारिक रूप से १८ सितम्वर, १६३१ को हत्या के लिए जिम्मेदारी को स्वीकार कर लिया। इस समय चीन जनरल येन-सी-शान और फँग-यू-सियाग की उत्तर की सगठित सेना तथा चांग-काई-शेक और नानकिंग-सरकार के वीच होने वाले गृह-युद्ध में फसा था।

मचूरिया के सैनिक प्रशासक मार्शल चाग सुएह-लियाग के व्यक्तिगत प्रभाव में कमी हो जाने ने जापानी सेनानायको को शक्ति का सहारा लेने को प्रोत्साहित किया। १६३१ में यूरोप राजनीतिक तथा आर्थिक सकटो के दौर में से गुजर रहा था। विश्व की आर्थिक गिरावट के कारण यूरोपीय देशो की वित्तीय स्थिति खस्ता हो गई थी। १८ सितम्वर, १६३१ को इगलैंड स्वर्ण-मानक (Gold Standard) से हीन हो गया था। रूस के सव वित्तीय साधन प्रथम पचवर्षीय योजना में केन्द्रित थे। अमेरिकी सरकार ने हूवर-ऋण-अदायगी-विलम्व-आदेश (Moratorium) को एक वर्ष की मजूरी दे दी।

लेकिन मचूरिया-सकट का तात्कालिक कारण था, मुकदेन-घटना। १८ सितवर, १६३१ को रात्रि के १० वजे मुकदेन से कुछ मील दूर एक छोटे वम-विस्फोट ने दक्षिण मचूरिया रेलवे को नष्ट कर दिया। कुछ लेखको के अनुसार नष्ट प्राय रेलवे की लम्वाई ३१ इच मानी गई। जापानियो का कथन यह था कि एक चीनी सैनिक ने रेल-मार्ग को उडाया तथा जापानी रक्षको द्वारा उसे ऐसा करते हुए पकड लिया गया। रक्षको ने चीनी फौजो पर गोलियां चलाईं, जिन्होने 'अपमानजनक तथा भडकाने वाला ढग' अपनाया था। चीनियो का दावा था कि जापान ने विस्फोट का आयोजन स्वय किया जिससे उसे मचूरिया पर विजय प्राप्त करने का वहाना मिल जाय। उनका कहना था कि दक्षिण-एक्सप्रेस क्षतिग्रस्त रास्ते से ठीक-ठीक गुजर गई तथा मुकदेन भी ठीक समय पर ही पहुँच गई। विना किसी राजनयिक चेतावनी के तथा विना किसी पूर्व युद्ध-घोषणा के जापानी सैनिको ने चाग-सुएह-लियांग को मुकदेन से वाहर खदेड दिया।

मचूरिया पर जापानी आक्रमण

इस घटना के कुछ ही घटो के भीतर-भीतर जापानियो ने चार-दिवारी मे घिरे मुकदेन शहर तथा सामरिक-महत्व की दृष्टि से दक्षिण मचूरिया के प्रमुख शहरो पर अधिकार कर लिया। बिना किसी प्रतिरोध के चीनी सैनिक तितर बितर होकर चीन की बडी दीवार के दक्षिण में चले गये। युवक मार्शल ने नगर के बाहर चिनचाउ में ही एक सरकार की स्थापना कर दी। जन-धन की रक्षा के बहाने जापान ने चाग-चुन, किरिन तथा त्सीत्सीहर पर १६ नवम्बर को आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस प्रकार ३ जनवरी, १६३२ को जापान ने चिनचाउ पर अधिकार जमा कर अपने नियत्रण को मुकदेन के उत्तर में ३०० मील तक बढा लिया। वास्तव में जेहोल के सिवाय सम्पूर्ण मचूरिया पर जापानी अधिकार हो गया। कानून तथा व्यवस्था को बनाये रखने के लिये जापान ने कठपुतली स्थानीय सरकारे बना दी।

राष्ट्रसघ का रुख

इस समय लीग-परिषद् का जनेवा में सम्मेलन हो रहा था जिसमें चीन तथा जापान दोनों के ही प्रतिनिधि उपस्थित थे। प्रतिश्रव के अनुबध ११ के अन्तर्गत चीन ने राष्ट्रसघ से अपील की। ३० दिसम्बर, १६३१ को परिषद् ने एक प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित करके यथासभव जितना शीघ्र हो सके, जापानियो से मचूरिया खाली करने को कहा। जापानी नियत्रण के निरन्तर विस्तार से चिन्तित होकर परिषद् ने एक अन्य प्रस्ताव २४ अक्तूबर को अगीकार किया, जिस पर जापान के अलावा सबकी सहमति थी। उस प्रस्ताव द्वारा जापान से कहा गया कि वह तत्काल अपनी सेनायें मचूरिया से रेलवे क्षेत्र तक हटाना प्रारम्भ कर दे तथा चीन से सीधी बातचीत प्रारम्भ कर दे। जापान ने इस प्रस्ताव को समर्थन देना इसलिए अस्वीकार कर दिया क्योंकि इसमें ऐसी किन्ही भी शर्तों का उल्लेख नही था, जो जापान की दृष्टि से उसके राष्ट्रवासियों की जान-माल की रक्षा के लिए कारगर हो सकें। १० दिसम्बर को परिषद् ने एक अन्य प्रस्ताव अगीकार किया जिसमें जापान की इस प्रार्थना को स्वीकार किया गया कि एक जाच आयोग घटना-स्थल पर जाच के लिये नियुक्त किया जाय। एक महीने पश्चात्, २४ जनवरी १६३२ को एक आयोग की नियुक्ति हुई जिसके अध्यक्ष थे लार्ड लिटन (ब्रिटेन)। अन्य सदस्य इस प्रकार थे—काउन्ट मारेस कोटी (इटली)। जनरल हेनरी क्लाउडेल (फ्रान्स), मेजर जनरल फ्रैंक आर० मैकाय (अमेरिका) तथा डा० हेनरिच शेनी (जर्मनी)।

शंघाई-युद्ध

मचूरिया पर जापानी आक्रमण का तात्कालिक प्रभाव यह हुआ कि चीन भर में जापान-विरोधी भावनाए तीव्र हो गई। जापानी माल के आम बहिष्कार ने जापानी माल के चीन में आयात को ६४% प्रतिशत तक घटा दिया। शघाई स्थित

की पांच बडी बन्दरगाहो में से एक है और चीन में तो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जनवरी, १९३२ को शघाई की एक भीड ने पाच जापानी बौद्ध भिक्षुको पर आक्रमण कर दिया। उनमें से एक की मृत्यु हो गई तथा इस घटना ने बढ कर छोटे-से सैनिक अभियान का रूप ले लिया। फरवरी में जापान ने अपना समुद्री बेडा शंघाई भेजा। इसके कमाडर ने मेयर वू से अपराधियो को दण्ड देने तथा जापानी माल के बहिष्कार को रोकने की माग की। जापानी सेनाए अपनी माँग जोर-जबर्दस्ती से मनवाने के लिए तट पर उतर आई तथा उन्होने चापेइ पर चीन की १९ वी सेना पर आक्रमण कर दिया। पाच सप्ताह के वीरतापूर्ण प्रतिरोध के बाद चीनी सेनाए पीछे हट गई। भारी हानि उठाने के पश्चात् जापान ने ५ मई, १९३८ को युद्ध-विराम सधि की तथा अपनी सेनाए शघाई से हटा ली। जैक्सन के कथनानुसार, "शघाई-युद्ध में जापानियो ने जन-धन की हानि से भी अधिक जो एक वस्तु खोदी वह थी चीन में रुचि रखने वाली हरेक बडी शक्ति की सहानुभूति।" जापान ने शघाई में अन्तर्राष्ट्रीय आबध (Settlement) को २५००० सैनिको, ४० युद्धपोतो तथा २०० हवाई जहाजो के साथ सैनिक अभियान का अड्डा बना लिया। ऐसा करने में उसने आबधविधि तथा ब्रिटिश-वाणिज्य-दूत को दिये गये वायदो का उल्लघन किया। पश्चिमी शक्तियो ने इस कार्य के लिए जापान को कभी भी क्षमा नही किया।

स्टिम्सन-सिद्धान्त

यद्यपि अमेरिका सघ का सदस्य नही था, तो भी चीन-जापान सघर्ष का अमेरिका से प्रत्यक्ष सम्बन्ध था, क्योकि वह नौ-राष्ट्रो की सन्धि तथा पेरिस-सधि का एक हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्र था। एक अमेरिकी पर्यवेक्षक प्रेन्टिस जिलबर्ट ने पेरिस सन्धि को लागू करने के सम्बन्ध में हुई सघ-परिषद् की चर्चा में भाग लिया। अमेरिका के तत्कालीन विदेशमत्री हेनरी स्टिम्सन ने घोषणा की कि अमेरिका किसी भी यथार्थत (de facto) स्थिति की वैधानिकता को मान्यता नही दे सकता, ना ही वह किसी ऐसी सन्धि या समझौते को मान्यता दे सकता है, जिससे चीन की एकता तथा प्रभुसत्ता एव 'खुला द्वार' नीति पर आघात लगे। ना ही उसके लिये ऐसी नीति मान्य होगी जिसके पालन में प्रतिश्रव तथा २७ अगस्त १९२८ की पेरिस-सन्धि जिसके कि चीन, जापान तथा अमेरिका तीनो सदस्य है, उपेक्षा हो। ब्रिटेन के विदेश कार्यालय ने अमेरिका की अमान्यता की नीति को अनावश्यक समझा। तो भी, मार्च १९३२ को राष्ट्र-सघ की महासभा ने एक प्रस्ताव अगीकार करके स्टिम्सन की अमान्यता की नीति का सदस्य-राष्ट्रो द्वारा पालन करने पर जोर दिया।

मचूको का निर्माण

इसी बीच एक और महत्वपूर्ण घटना घटी। यह थी मचूरिया के राष्ट्रवादियो द्वारा १८ फरवरी, १९३२ को एक नए स्वतन्त्र राज्य मचूको की स्थापना की घोषणा।

इस नए राज्य में चीन के तीन पूर्वी प्रदेश तथा जेहोल का प्रदेश शामिल किया गया, जिस पर १६३३ के प्रारम्भ में जापानी सेनाओं ने अधिकार कर लिया था। एक प्रमुख कार्यपालक के अधीन, जो रिजेंट कहलाया, मचूको को एक स्वतंत्र गणराज्य अधिकृत रूप से घोषित कर दिया गया। ४ मार्च को चीन के अपदस्थ सम्राट, जिन्हे १६१२ के पश्चात् हेनरी-पू-यी के नाम से जाना जाता था, ने रिजेंसी को स्वीकार कर लिया। पाच दिन पश्चात् एक सविधान को लागू करके रिजेंट को सम्पूर्ण कार्यपालक अधिकार दे दिये गये, जिसके पास पूर्ण निषेधाधिकार भी थे। इस सरकार की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि सब महत्वपूर्ण विभागो में जापानी अधिकारी थे। १५ सितम्बर, १६३२ को जापान ने इस नये राज्य को मान्यता प्रदान कर दी। यह कदम उसने राष्ट्र सघ को जाच आयोग के प्रतिवेदन पर विचार करने का अवसर मिलने से पहले ही उठा लिया।

मचूरिया के मामले मे राष्ट्रसघ की कार्यवाही

१४ जनवरी, १६३२ को लिटन-जाच आयोग की नियुक्ति हुई। यह जाच-आयोग इतिहास मे पहला आयोग था, जो सुदूरपूर्व के मामलो के सम्बन्ध में जाच करने वाला हो और जिसमें सब सदस्य पश्चिमी राष्ट्रो की गोरी जाति के हों। मचूरिया के मामले मे छ माह के गम्भीर अध्ययन के पश्चात् ४ सितम्बर, १६३५ को लिटन-आयोग ने अपना प्रतिवेदन पूर्ण किया। १३६ पृष्ठ के प्रतिवेदन में आयोग ने यह निष्कर्ष निकाला कि मुकदेन-घटना के पश्चात् विस्तृत रूप में हुई सैनिक कार्यवाहियो को 'आत्म-प्रतिरक्षा के लिये कानूनी उपाय' नही माना जा सकता। उस मचूको-सरकार को आम चीनी समर्थन प्राप्त नही है "जो अपने घरेलू तथा विदेशी अधिकारो के लिये जापानी सेनाओं पर निर्भर करती है।" इस समस्या के समाधान के लिए आयोग ने दो हल पेश किये उनमें से एक में एक चीन-जापान-सम्मेलन पर बल दिया गया, जो मचूरिया में जापान के विशिष्ट हितो को मान्यता दे। यह मान्यता स्वायत्त-शासन-सम्पन्न हो पर इस पर प्रभुसत्ता चीन की ही रहे। एक जापानी पत्र ने इस प्रतिवेदन पर टिप्पणी करते हुए लिखा, "यह प्रतिवेदन कानूनी तथा साहित्यिक कृति है, जो राष्ट्र-सघ के अजायब घर के पुस्तकालय को शोभित करता रहेगा, पर जिसका अन्तर्राष्ट्रीय आलेख के रूप में कोई व्यावहारिक मूल्य नहीं है।'

६ दिसम्बर, १६३२ को राष्ट्र-सघ की विशिष्ट महासभा ने लिटन-आयोग का प्रतिवेदन उन्नीस राष्ट्रो की एक विशिष्ट समिति के हाथ में दे दिया, जिससे प्रार्थना की गई कि वह समाधान-योजना बनाये। समिति ऐसी कोई भी योजना नहीं बना सकी जो चीन तथा जापान दोनो को मान्य हो। तो भी उसने एक प्रतिवेदन तैयार

कर लिया, जिसे २४ फरवरी, १९३३ को राष्ट्र सघ की महासभा ने ४२ मतो से स्वीकार कर लिया। जापान ने विरोध में मत दिया। इस प्रतिवेदन द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया कि जापान ने बिना किसी युद्ध-घोषणा के चीन के एक बड़े क्षेत्र पर अधिकार जमा लिया। उसने ये रायें दी—(१) रेल-क्षेत्र से जापानी सेनाओ का प्रत्यागमन, (२) चीन की प्रभुसत्ता के अन्तर्गत मचूरिया का स्वशासन, (३) जापान-चीन-समझौते के लिये राष्ट्र-सघ समिति की सहायता से वार्ता, (४) राष्ट्रसघ के सदस्यो द्वारा मचूको राज्य को अमान्यता। एक पृथक् प्रस्ताव द्वारा एक परामर्शदात्री समिति की नियुक्ति की गई जिसमें अमेरिका तथा रूस को मिला कर २१ राष्ट्र थे। यह समिति उसके कार्य में सहयोग करने के लिये बनाई गई थी। क्योकि दोनो पक्षों में से किसी ने भी औपचारिक युद्ध-घोषणा नही की इसलिये प्रतिबन्धो तथा सैनिक शक्ति का प्रश्न ही नही उठा। जापानी प्रतिनिधि मत्सुको ने घोषणा की कि "जापान-चीन सम्बन्धो के मामले में राष्ट्र सघ को सहयोग देने के जापानी सरकार के प्रयत्न अब सीमा पार कर गये है।" २७ मार्च, १९३३ को जापान ने दो वर्षो की आवश्यक पूर्व-सूचना के समय की समाप्ति के पश्चात् राष्ट्र सघ से अपनी सदस्यता समाप्त करने की औपचारिक सूचना दे दी।

जेहोल-विजय, तथा पेकिंग और तीनसिन के मुख्य द्वारो तक जापानी सेनाओ के बढ़ जाने के पश्चात्, दो महीने बाद ३१ मई, १९३३ को जापान-चीन ने तग्कू पर एक युद्ध-विराम-समझौते पर हस्ताक्षर किए, जिसके अनुसार मचूरिया तथा चीन के बीच असैनिक क्षेत्र स्थापित कर दिया गया। कहा जा सकता है कि तग्कू युद्ध-विराम सधि द्वारा जापानी आक्रमण का वह दौर तो समाप्त हो गया, जो 'मचूरिया घटना' के नाम से जाना जाता है।

परिशिष्ट १

संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर

संयुक्त राष्ट्रों के हम लोगों ने यह पक्का निश्चय किया है

कि हम आनेवाली पीढ़ियों को उस युद्ध की विभीषिकाओं से बचाएंगे जिसने हमारे जीवन काल में ही दो बार मनुष्य मात्र पर अकथनीय दुःख ढाए हैं, और

कि हम मानवता के मूल-अधिकारों में, मानव की गरिमा और महत्व में, और छोटे बड़े सभी राष्ट्रों के नर नारियों के समान अधिकार में फिर आस्था बनाएंगे और

कि हम ऐसे हालात पैदा करेंगे जिनमें न्याय और उन दायित्वों का सम्मान बना रहे जो कि सन्धियों और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के दूसरे स्रोतों से हम पर आ पड़ते हैं, और

कि हम अधिक व्यापक स्वतन्त्रता के द्वारा अपने जीवन का स्तर ऊँचा करेंगे और समाज को प्रगतिशील बनाएंगे।

इन उद्देश्यों के लिये

हम सहनशील बनेंगे और अच्छे पड़ोसियों की तरह साथ मिलकर शांति से रहेंगे, और

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिए अपनी शक्तियों का संगठन करेंगे, और

उन नियमों को मानेंगे और ऐसे साधनों से काम लेंगे, जिनसे इस बात का विश्वास हो जाय कि अपने सामान्य हितों की रक्षा के अलावा हथियारबन्द सेनाओं का प्रयोग नहीं किया जायगा, और

सभी लोगों के सामाजिक और आर्थिक उत्थान को बढ़ावा देने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय साधनों का प्रयोग करेंगे।

इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए हमने मिलकर प्रयत्न करने का निश्चय किया है।

इसीलिये हमारी सरकारें अपने प्रतिनिधियों के रूप में सानफ्रान्सिस्को नगर में इकट्ठी हुई हैं। इन प्रतिनिधियों ने अपने अधिकारपत्र दिखाए हैं जिनको कि ठीक और उचित रूप में पाया गया है, और इन्होंने संयुक्त राष्ट्रों के इस चार्टर को मान लिया है और इसकी रूह से वे अब एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना करते हैं जिसका नाम 'संयुक्तराष्ट्र-संघ' होगा।

अध्याय एक

प्रयोजन और सिद्धान्त

अनुच्छेद १

सयुक्तराष्ट्र-सघ के प्रयोजन ये हैं —

१ अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनी रहे, और इसके लिए

सामूहिक और प्रभावपूर्ण प्रयत्नो से शांति के खतरो को रोका और मिटाया जा सके, और अग्रघर्पण की और दूसरी शांति भग करने वाली चेष्टाओ को दबाया जा सके, और न्याय और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के सिद्धांतो के आधार पर शांतिपूर्ण साधनो से उन अन्तर्राष्ट्रीय झगडो और समस्याओ को सुलझाया या निबटाया जाय, जिनसे शांति भग होने की आशका हो।

२ सब राष्ट्रो के बीच मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बढाए जाए जिनका आधार सब लोगो के समान अधिकार और स्वाधीनता के सिद्धान्त पर हो।

३ विश्व की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या मानवतावादी समस्याओ को हल करने में अतर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त किया जाय। जाति, भापा, लिंग या धर्म का भेद किये बिना सबके लिए मानव अधिकारो और मौलिक स्वतन्त्रताओ के सम्मान को बढाया जाय और उसे प्रोत्साहन दिया जाय, और

४ सयुक्तराष्ट्र-सघ को एक ऐसा केन्द्र बनाया जाय जहां इन सामान्य उद्देश्यो की पूर्ति के लिए अलग-अलग राष्ट्र जो काम करें, उनमें सामजस्य लाया जा सके।

अनुच्छेद २

पहले अनुच्छेद के प्रयोजनो को पूरा करने के लिए सघ और उसके सदस्य जो भी काम करेंगे, उनमें वे इन सिद्धांतो का ध्यान रक्खेगे कि —

१ इस सघ का आधार सब सदस्यो की बराबर प्रभुता का सिद्धान्त है।

२ सभी सदस्य अपने उन सब दायित्वो को ईमानदारी के साथ निभाएगे, जिन्हें उन्होंने वर्तमान चार्टर के अनुसार अपने ऊपर लिया हो, ताकि सबको इस बात का विश्वास हो जाय कि सदस्य होने के जो भी अधिकार और लाभ हैं, वे उनको मिलेंगे।

३ सभी सदस्य अपने अतर्राष्ट्रीय झगडो को शांतिपूर्ण साधनो से इस प्रकार तय करेंगे कि विश्व की सुरक्षा, शांति और न्याय खतरे में न पडे।

४ सभी सदस्य अपने अन्तर्राष्ट्रीय झगडो मे किसी राज्य की अखण्डता, राजनीतिक स्वाधीनता के विरुद्ध न तो धमकी देंगे और न बल का प्रयोग करेंगे और कोई भी ऐसा काम न करेंगे जो सयुक्त राष्ट्रो के प्रयोजनो से मेल न खाता हो।

५. सभी सदस्य सयुक्तराष्ट्र सघ को ऐसी हर कार्यवाही में सब तरह की मदद देंगे जो वर्तमान चार्टर के अनुसार हो, और किसी भी राज्य की मदद न करेंगे जिसके विरुद्ध सयुक्त राष्ट्र-सघ अमल कराने या रोक थाम की कोई कार्यवाही कर रहा हो।

६ यह सघ इस बात का विश्वास दिलाएगा कि जो राज्य सयुक्तराष्ट्र सघ के सदस्य नही हैं, वे भी अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाये रखने के लिए जहाँ तक आवश्यक हो, इन्ही सिद्धांतो का पालन करेंगे।

७. वर्तमान चार्टर में जो कुछ कहा गया है उससे सयुक्तराष्ट्र सघ किसी भी राज्य के उन मामलो में दखल देने का अधिकारी न होगा जो निश्चित रूप से उस राज्य के घरेलू क्षेत्र के भीतर आते हो। न किसी सदस्य के लिए यह आवश्यक होगा कि ऐसे मामलो को वर्तमान चार्टर के अधीन निबटाने के लिए रक्खे। लेकिन सातवें अध्याय मे अमल कराने के लिए जो कार्यवाहियां बताई गई हैं, उनके लागू किए जाने पर इस सिद्धान्त का कोई असर न पडेगा।

अध्याय दो

सदस्यता

अनुच्छेद ३

सयुक्तराष्ट्र-सघ के आदि सदस्य वही राज्य होंगे जो वर्तमान चार्टर पर हस्ताक्षर करें और अनुच्छेद ११० के अनुसार सत्यांकन करे, जो सान-फ्रांसिस्को में अन्तर्राष्ट्रीय-सघ के विषय में संयुक्तराष्ट्रो की सभा में शामिल हुए हो, या जो सयुक्तराष्ट्र-सघ के १ जनवरी १९४२ के सम्मिलित घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर कर चुके हो।

अनुच्छेद ४

१. सयुक्तराष्ट्र-सघ की सदस्यता उन सभी शांति चाहने वाले राष्ट्रों के लिए खुली है, जो वर्तमान चार्टर में दिए हुए दायित्वो को मानें और जिनमे सघ की राय में इन दायित्वो को पूरा करने की इच्छा और योग्यता दोनो हो।

२. किसी राष्ट्र को सयुक्तराष्ट्र-सघ के सदस्यो मे तभी शामिल किया जाएगा, जब सुरक्षा परिषद् उसकी सिफारिश करेगी और जनरल असेम्बली उस सिफारिश पर अपना निर्णय देगी।

अनुच्छेद ५

अगर सयुक्तराष्ट्र-सघ के किसी सदस्य के विरुद्ध सुरक्षा परिषद् ने रोकथाम की या अमल कराने की कोई कार्यवाही की हो तो सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर

जनरल असेम्बली उस राज्य को सदस्यता के अधिकारो और विशेषाधिकारो के प्रयोग से रोक सकती है। सुरक्षा परिषद् इन अधिकारो और विशेषाधिकारो के प्रयोग पर से रोक हटा भी सकती है।

अनुच्छेद ६

सयुक्तराष्ट्र-सघ का कोई सदस्य अगर वर्तमान चार्टर के सिद्धान्तो का बार-बार उल्लघन करता है तो उसे जनरल असेम्बली सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर सघ से निकाल सकती है।

अध्याय तीन

अग

अनुच्छेद ७

१. सयुक्तराष्ट्र-सघ के ये प्रमुख अग बनाए जाते हैं:—

(क) जनरल असेम्बली।

(ख) सुरक्षा परिषद्।

(ग) आर्थिक और सामाजिक परिषद्।

(घ) न्याय परिषद्।

(ङ) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय।

(च) सचिवालय।

२ वर्तमान चार्टर के अनुसार अन्य सहायक अग भी आवश्यकता होने पर स्थापित किए जा सकते हैं।

अनुच्छेद ८

सयुक्तराष्ट्र-सघ अपने प्रमुख या सहायक अगो में बराबरी की दशा में किसी भी हैसियत से काम करने के लिए किसी भी नर-नारी की पात्रता पर कोई पाबन्दी नहीं लगाएगा।

अध्याय चार

जनरल असेम्बली

रचना

अनुच्छेद ९

१ जनरल असेम्बली में सयुक्तराष्ट्र-सघ के सभी सदस्य रहेगे।

२ जनरल असेम्बली में किसी भी सदस्य देश के पाच से अधिक प्रतिनिधि नहीं रहेंगे।

काम और शक्तियाँ

अनुच्छेद १०

जनरल असेम्बली किसी भी ऐसे प्रश्न या मामले पर विचार कर सकती है जो वर्तमान चार्टर के क्षेत्र में हो या जिसका सम्बन्ध संयुक्तराष्ट्र-संघ के उन अंगों में से किसी की भी शक्तियों या कार्यों में हो, जो वर्तमान चार्टर की रू से बनाए जायं, और अनुच्छेद १२ के उपबन्ध को छोड़कर, जनरल असेम्बली किसी भी ऐसे प्रश्न या मामले पर अपना सिफारिशें संयुक्तराष्ट्र-संघ के सदस्यों को या सुरक्षा परिषद् को या दोनों को भेज सकती है।

अनुच्छेद ११

१. जनरल असेम्बली अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने में सहयोग के साधारण सिद्धान्तों पर विचार कर सकती है, इनमें निःशस्त्रीकरण और शस्त्र-नियंत्रण के सिद्धान्त भी शामिल होंगे, और इनके साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने के लिये सहयोग के जो भी सिद्धान्त संभव हो सकते हैं, जनरल असेम्बली इनके सम्बन्ध में सदस्यों को या सुरक्षा परिषद् को या दोनों को अपनी सिफारिशें दे सकती है।

२. जनरल असेम्बली अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने के किन्हीं ऐसे प्रश्नों पर विचार कर सकती है जिसे संयुक्त राष्ट्रसंघ का कोई सदस्य, या सुरक्षा परिषद् या कोई ऐसा राज्य जो अनुच्छेद ३५ के पैरा २ के अनुसार संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य न हो, पेश करे और जनरल असेम्बली अनुच्छेद १२ में दिए हुए उपबन्ध को छोड़कर ऐसे किसी प्रश्न के बारे में उस राष्ट्र या उन राष्ट्रों को जिन्होंने यह प्रश्न उठाया हो या सुरक्षा परिषद् को या दोनों को अपनी सिफारिशें दे सकती है। यदि कोई ऐसा प्रश्न हो जिस पर कार्यवाही करनी आवश्यक हो, तो जनरल असेम्बली बहस के पहले या बहस के बाद उसको सुरक्षा परिषद् में भेज देगी।

३. जनरल असेम्बली सुरक्षा परिषद् का ध्यान उन परिस्थितियों की ओर दिला सकती है जिनसे अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को खतरा पैदा हो सकता है।

४ इस अनुच्छेद में जनरल असेम्बली को जो शक्तियां दी गई हैं उनसे अनुच्छेद १० का विषय विस्तार सीमित नहीं होगा।

अनुच्छेद १२

१ वर्तमान चार्टर से सुरक्षा परिषद् को जो काम सौंपे गए हैं उनके अनुसार जब वह किसी झगड़े या परिस्थिति पर विचार कर रही हो तो उस झगड़े या परिस्थिति के सम्बन्ध में जनरल असेम्बली कोई सिफारिश नहीं करेगी, जब तक सुरक्षा परिषद् उससे ऐसा करने को न कहे।

२ सुरक्षा परिषद् का प्रधान सचिव सुरक्षा परिषद् की आज्ञा से जनरल असेम्वली को उसके हर अधिवेशन पर अन्तर्राष्ट्रीय शाति और सुरक्षा बनाए रखने के सम्बन्ध में उन मामलो की सूचना देगा, जिन पर सुरक्षा परिषद् कार्यवाही कर रही हो। और अगर जनरल असेम्वली का अधिवेशन न हो रहा हो तो उन मामलो पर सुरक्षा परिषद् की कार्यवाही समाप्त होने के वाद तुरन्त ही जनरल असेम्बली को या सयुक्तराष्ट्र सघ के सदस्यो को इस वात की सूचना देगा।

अनुच्छेद १३

१ जनरल असेम्वली नीचे लिखी वातो के अध्ययन की व्यवस्था करेगी और उन पर अपनी सिफारिशें देगी :—

(क) राजनीतिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग वढाने और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के क्रमिक विकास और उसके सहिताकरण को प्रोत्साहन देना।

(ख) आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक, शिक्षा और स्वास्थ्य सम्बन्धी क्षेत्रो में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग वढाना और जाति, लिंग, भाषा, या धर्म का भेद किए विना सवको मानव अधिकार और मूल स्वतन्त्रता दिलाने में सहायता देना।

२. ऊपर पैरा (ख) में जिन मामलो की चर्चा की गई है उनके वारे में जनरल असेम्वली की जो और जिम्मेदारियाँ, काम और शक्तियाँ हैं उनको नवें और दसवें अध्यायो में दिया गया है।

अनुच्छेद १४

अगर किसी भी कारण से कोई ऐसी परिस्थिति पैदा हो जाए, जिससे जनरल असेम्वली की राय में राष्ट्रो के साधारण हितो या राष्ट्रो के वीच मित्रतापूर्ण सबधो को ठेस पहुँचती है, तो वारहवें अनुच्छेद के उपवन्धो के अधीन रहते हुए, जनरल असेम्वली उस परिस्थिति को शांति से सुलझाने के लिए सिफारिश कर सकती है।

अनुच्छेद १५

१ जनरल असेम्वली सुरक्षा परिषद् से उसकी वार्षिक और विशेष रिपोर्टें मगाएगी और उन पर विचार करेगी। इन रिपोर्टों में सुरक्षा परिषद् की उन सारी कार्यवाहियो का लेखा जोखा रहेगा, जो सुरक्षा परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के वनाए रखने के लिए कर चुकी है या करने वाली है।

२ जनरल असेम्वली सयुक्त राष्ट्रसघ के अन्य अगो से भी उनकी अपनी अपनी रिपोर्टें मगाएगी और उन पर विचार करेगी।

अनुच्छेद १६

जनरल असेम्वली अन्तर्राष्ट्रीय न्याय-पद्धति के वारे में वह सव काम करेगी, जो वारहवें, और तेरहवें अध्यायो में उसे सौंपे गए हैं। इनमें ऐसे इलाको के लिए

न्याय-समझौतो का अनुमोदन भी शामिल होगा, जिनको युद्ध की दृष्टि से कोई महत्व नही दिया जाता।

अनुच्छेद १७

१. जनरल असेम्बली सघ के बजट पर विचार करेगी और उसका अनुमोदन करेगी।

२ सघ का खर्च सभी सदस्य उठायेंगे और सदस्यो के बीच उनका अनुपात जनरल असेम्बली तय करेगी।

३. जनरल असेम्बली वित्त और बजट सम्बन्धी उन सभी समझौतो पर विचार करेगी, और उन पर अपना अनुमोदन देगी, जो अनुच्छेद ५७ में बताई विशेष एजेन्सियो के साथ हुए हो, और ऐसी एजेंसियो को अपनी सिफारिशे देने के लिये उनके अभिशासन सम्बन्धी बजटो की जाँच करेगी।

अनुच्छेद १८

१ जनरल असेम्बली में हर सदस्य का एक वोट होगा।

२. महत्वपूर्ण प्रश्नो पर जनरल असेम्बली के निर्णय उस समय मौजूद और वोट देने वाले सदस्यो के दो तिहाई के बहुमत से किए जाएँगे। इन प्रश्नो मे नीचे लिखी बाते शामिल होगी :—

(क) अतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने के विषय में सिफारिशें,
(ख) सुरक्षा परिषद् के लिए अस्थायी सदस्यो का चुनाव,
(ग) आर्थिक और सामाजिक परिषद् के सदस्यो का चुनाव,
(घ) अनुच्छेद ८६ के पैरा १ (ग) के अनुसार न्याय परिषद् के सदस्यो का चुनाव।
(च) सयुक्तराष्ट्र सघ में नए सदस्यो की भरती।
(छ) सदस्यता के अधिकारो और विशेषाधिकारो का छीनना,
(ज) सदस्यो का निकालना,
(झ) न्याय पद्धति के काम सम्बन्धी प्रश्न,
(ट) बजट के प्रश्न।

३. दूसरे प्रश्नो का निर्णय उस समय मौजूद और वोट देने वाले सदस्यो के बहुमत से किया जाएगा। इन प्रश्नो में उन प्रश्नो की अतिरिक्त श्रेणियो का तय करना भी शामिल होगा जिनका निर्णय दो तिहाई बहुमत से किया जाना है।

अनुच्छेद १६

अगर संयुक्तराष्ट्र सघ के किसी सदस्य ने चदा नही चुकाया है और देनदारी उसके पिछले पूरे दो सालो के चदे के योग के बराबर या उससे ज्यादा हो, तो वह

क्रिया विधि

अनुच्छेद २८

१ सुरक्षा परिषद् का सगठन इस प्रकार होगा कि वह लगातार काम कर सके। इसलिए सघ स्थान मे सुरक्षा परिषद के हर सदस्य का प्रतिनिधान हर समय रहेगा।

२. सुरक्षा परिषद् की बैठकें समय समय पर हुआ करेंगी। इसमें यदि कोई सदस्य राष्ट्र चाहे तो उसका प्रतिनिधान उसकी सरकार का कोई सदस्य या विशेष रूप मे नामजद कोई दूसरा प्रतिनिधि कर सकता है।

३ सुरक्षा परिषद् सघ-स्थान के अलावा किसी दूसरी ऐसी जगह, जहाँ वह काम मे आसानी समझे, अपनी बैठकें कर सकती है।

अनुच्छेद २९

सुरक्षा परिषद् अपने कार्यों के लिए आवश्यक समझे तो सहायक अगो की स्थापना कर सकती है।

अनुच्छेद ३०

सुरक्षा परिषद् अपनी क्रियाविधि के नियम आप बनाएगी। अपना अध्यक्ष चुनने की विधि भी वह स्वय तय करेगी।

अनुच्छेद ३१

सयुक्तराष्ट्रसघ का कोई भी सदस्य, चाहे वह सुरक्षा परिषद् का सदस्य न भी हो, सुरक्षा परिषद् के सामने आये हुए किसी भी मामले की बहस में भाग ले सकता है, बशर्ते कि सुरक्षा परिषद् यह समझे कि उस मामले से उस सदस्य के हितो पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ता है। मगर ऐसे सदस्य को वोट देने का अधिकार नही होगा।

अनुच्छेद ३२

जब कोई झगड़ा सुरक्षा परिषद् में पेश हो तो सयुक्त राष्ट्र सघ का वह सदस्य जो सुरक्षा परिषद् का सदस्य नही है, अथवा वह राज्य जो सयुक्त राष्ट्र सघ का सदस्य न हो, यदि वह विवादी पक्ष है तो बहस में भाग लेने के लिए बुला लिया जायगा, पर उसे वोट देने का अधिकार नही होगा। सुरक्षा परिषद् अपनी बहसो में ऐसे राष्ट्र के भाग लेने के लिये, जो सयुक्त राष्ट्रों का सदस्य नही है, ऐसे नियम बनाएगी जिन्हे वह न्याय्य समझे।

अध्याय छः

झगडों का शांतिपूर्ण निपटारा

अनुच्छेद ३३

१. अगर किसी झगडे से विश्व की शांति और सुरक्षा को खतरा हो तो दोनो विवादी पक्ष उस झगडे को सबसे पहले बात-चीत, पूछ-ताछ, बीच-बिचाव, मेल, विवाचन, न्याय सम्मत समझौतो, प्रादेशिक संस्थाओ या व्यवस्थाओ द्वारा या अपनी पसद के दूसरे शांतिपूर्ण साधनो से सुलझाने की कोशिश करेंगे।

२. सुरक्षा परिषद् जब आवश्यक समझे, विवादी पक्षो को अपने झगडे ऐसे साधनो से निपटाने की माग करेगी।

अनुच्छेद ३४

सुरक्षा परिषद् किसी ऐसे झगडे या स्थिति की जांच पडताल कर सकती है जो अन्तर्राष्ट्रीय सघर्ष का रूप ले सकता हो, या जिससे कोई दूसरा झगडा उठ सकता हो, वह इस बात का भी निश्चय करेगी कि यह झगडा या स्थिति यदि जारी रहे तो विश्व की शांति और सुरक्षा को कोई खतरा पैदा हो सकता है या नहीं।

अनुच्छेद ३५

१ अगर कोई झगडा या स्थिति ऐसी है, जैसी अनुच्छेद ४३ में बताई गई है तो सयुक्त राष्ट्र सघ का कोई सदस्य उसकी ओर जनरल असेम्बली अथवा सुरक्षा परिषद् का ध्यान खीच सकता है।

२ कोई भी राष्ट्र जो किसी झगडे में एक फरीक है और जो संयुक्त राष्ट्र-सघ का सदस्य नहीं है, उस झगडे को सुरक्षा परिषद् अथवा जनरल असेम्बली के सामने ला सकता है; बशर्ते कि झगड के शांतिपूर्ण समझौते के लिए जितने भी दायित्व वर्तमान चार्टर में दिये गए हैं, उनको वह पहले ही स्वीकार कर ले।

३ इस अनुच्छेद के अधीन जिन किन्हीं मामलो की ओर जनरल असेम्बली का ध्यान दिलाया जाए, उन पर उसकी कार्यवाइया अनुच्छेद ११ और १२ के उप-बन्धो के अधीन की जाएगी।

अनुच्छेद ३६

१. यदि कोई ऐसा झगडा जिसका उल्लेख अनुच्छेद ३४ में किया गया है, या उसी प्रकार की कोई स्थिति पैदा हो जाए तो सुरक्षा परिषद् किसी भी समय उसके लिए उचित कार्यवाही या सुलझाने के उपायो की सिफारिश कर सकती है।

२. सुरक्षा परिषद् उन कार्यवाहियो का भी ध्यान रखेगी जो फरीको ने झगडो को सुलझाने के लिए तब तक की हो।

दी हुई जिम्मेदारियो को पूरा करने के लिए हथियारबद सेनाएँ मागने से पहले, अगर वह सदस्य चाहे तो उसको सुरक्षा परिषद् में उसकी हथियारबद्ध सेनाओ के प्रयोग करने के बारे में बातचीत में भाग लेने के लिए बुलाएगी।

अनुच्छेद ४५

अमल कराने की सामूहिक अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाही के लिए, सदस्य अपनी अपनी राष्ट्रीय वायुसेना के दल जल्दी से जल्दी मुहय्या करेंगे, जिससे सयुक्तराष्ट्र सघ तुरन्त सैनिक कार्यवाही कर सके। सुरक्षा परिषद्, सैनिक अमला समिति की मदद से इन सैन्य दलो की सख्या और तैयारी की मात्रा तय करेगी और सामूहिक कार्यवाही के लिए योजनाएँ बनाएगी। इन बातो का निर्णय अनुच्छेद ४३ में दिए हुए समझौते या समझौतो की सीमाओं के भीतर ही होगा।

अनुच्छेद ४६

सुरक्षा परिषद् सैनिक अमला समिति की सहायता से हथियारबद सेनाओ को काम में लाने की योजनायें तैयार करेगी।

अनुच्छेद ४७

१ सुरक्षा परिषद् को नीचे लिखे प्रश्नो पर सलाह देने और सहायता करने के लिए एक सैनिक अमला समिति बनाई जाएगी :—

(1) अन्तर्राष्ट्रीय शाति और सुरक्षा परिषद् की सैनिक आवश्यकतायें, (11) उनके अधीन सेनाओ का प्रयोग और उनकी कमान, (111) शस्त्रो का नियत्रण और (1v) सभावित नि शस्त्रीकरण।

२ सैनिक अमला समिति में सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यो के अमला अध्यक्ष या उनके प्रतिनिधि रहेंगे। अगर सयुक्तराष्ट्र सघ का कोई सदस्य समिति का स्थायी प्रतिनिधि न हो और समिति के दायित्वो को अच्छी तरह पूरा करने में उस सदस्य का भाग लेना आवश्यक हो तो समिति उसको अपने साथ काम करने के लिए बुला लेगी।

३ सुरक्षा परिषद् के उपयोग के लिए जो हथियारबद सेनाएँ दी जाएँगी, उन का युद्ध सम्बन्धी निर्देशन सैनिक अमला समिति के हाथ में रहेगा और यह समिति सुरक्षा परिषद् के अधीन रहेगी। इन हथियारबद सेनाओ के कमान सम्बन्धी प्रश्न बाद में तय किए जायेंगे।

४ सैनिक अमला समिति उपयुक्त प्रादेशिक सस्थाओ से सलाह लेने के लिए प्रादेशिक उप-समितियाँ भी बना सकती है। सैनिक अमला समिति को यह अधिकार सुरक्षा परिषद् से मिलेगा।

अनुच्छेद ४८

१. अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए सुरक्षा परिषद् के निर्णयों पर जो कार्यवाही होगी, उस को सुरक्षा परिषद् के निर्णय के अनुसार संयुक्त-राष्ट्र संघ के सब सदस्यों को या उन में से कुछ एक को करना होगा।

२ सुरक्षा परिषद् के इन निर्णयों पर संयुक्तराष्ट्र संघ के सदस्य स्वयं अमल करेंगे और अपनी कार्यवाही द्वारा उन सब अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से भी कराएँगे, जिनके वह स्वयं सदस्य हों।

अनुच्छेद ४९

सुरक्षा परिषद् जो भी कार्यवाही तय करेगी उसको पूरा करने में संयुक्त राष्ट्रों के सब सदस्य सामूहिक रूप से एक दूसरे को सहयोग देंगे।

अनुच्छेद ५०

जब सुरक्षा परिषद् किसी राष्ट्र के विरुद्ध रोक थाम की या अमल कराने की कार्यवाही कर रही हो, उस समय उस कार्यवाही को पूरा करने में हो सकता है कि किसी दूसरे राष्ट्र के सामने कुछ विशेष आर्थिक समस्यायें उठ खड़ी हों। ऐसी सूरत में चाहे वह राष्ट्र संयुक्तराष्ट्र संघ का सदस्य हो या नहीं, उनको उन समस्याओं के हल करने के लिए सुरक्षा परिषद् से सलाह लेने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद ५१

अगर संयुक्तराष्ट्र संघ के किसी सदस्य पर कोई सशस्त्र आक्रमण होता है तो वह व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से आत्म रक्षा करने का अधिकारी है, वर्तमान चार्टर के अनुसार उस पर उस समय तक कोई रोक न होगी जब तक सुरक्षा परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के लिये आप कोई कार्यवाही न करे। आत्मरक्षा के लिए सदस्य जो भी कार्यवाही करेंगे, उनकी सूचना तुरन्त ही सुरक्षा परिषद् को देंगे। पर इस चार्टर के अनुसार इनमे सुरक्षा परिषद् के अधिकारों और दायित्वों पर कोई प्रभाव न पड़ेगा। वह अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने या फिर से स्थापित करने के लिए जब कभी, जो कार्यवाही चाहे कर सकती है।

अध्याय आठ

प्रादेशिक प्रबन्ध

अनुच्छेद ५२

१. अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा सम्बन्धी मामलों को तय करने वाली प्रादेशिक कार्यवाही के लिए जितने भी उपयुक्त प्रबन्ध और साधन इस समय हैं, उनके बने रहने में वर्तमान चार्टर के अनुसार कोई बाधा नहीं पड़ेगी। शर्त यह है

कि वे प्रबन्ध या सस्थाएँ और उनके काम सयुक्तराष्ट्र सघ के प्रयोजनो और सिद्धान्तो से मेल खाते हो ।

२ अगर सयुक्तराष्ट्र सघ के सदस्य ऐसी सस्थाओ के सदस्य हो या उन्होने ऐसे प्रबन्ध किए हो तो वे स्थानीय झगडों को सुरक्षा परिषद् के सामने आने से पहले इन्ही प्रादेशिक सस्थाओ या प्रबन्धो के जरिए शातिपूर्ण ढग से सुलझाने की कोशिश करेंगे ।

३ अगर राष्ट्र अपनी इच्छा प्रकट करे या सुरक्षा परिषद् की ओर से कोई सकेत मिले तो स्थानीय झगडे इन्ही प्रादेशिक सस्थाओ या प्रबन्धो के द्वारा सुलझाए जायेंगे । सुरक्षा परिषद् इस प्रकार के रुझान को बढावा देगी ।

४ इस अनुच्छेद से अनुच्छेद ३४ और ३५ के लागू होने पर कोई असर नही पडेगा ।

अनुच्छेद ५३

१ जहाँ उचित होगा, सुरक्षा परिषद् अपने अधिकार में इन प्रादेशिक संस्थाओ या प्रबन्धो से अपनी अमल कराने की कार्यवाही में काम लेगी, लेकिन इन प्रादेशिक सस्थाओ या प्रबन्धो के अधीन अमल कराने की कोई कार्यवाही तब तक नहीं की जाएगी जब तक सुरक्षा परिषद् ऐसा करने का अधिकार न दे दे । परन्तु यदि इस अनुच्छेद के पैरा २ में बताए किसी शत्रु-राष्ट्र के खिलाफ अनुच्छेद १०७ के अनुसार कार्यवाहिया की जा रही हो, तो इस प्रकार अधिकार पाने की आवश्यकता तब तक नही होगी, जब तक उस मामले से सम्बन्ध रखने वाली सरकारो की प्रार्थना पर सयुक्तराष्ट्र सघ को उस राष्ट्र को आगे अग्रघर्षण करने से रोकने की जिम्मेदारी न दे दी जाए ।

• इस अनुच्छेद के पहले पैरा में जो 'शत्रु राष्ट्र' शब्द प्रयुक्त हुआ है वह उस राष्ट्र के लिए लागू होता है, जो दूसरे महायुद्ध में इस चार्टर पर हस्ताक्षर करने वाले किसी राष्ट्र का शत्रु रहा हो ।

अनुच्छेद ५४

इन प्रादेशिक सस्थाओ और प्रबन्धो के द्वारा अतर्राष्ट्रीय शाति और सुरक्षा बनाए रखने की जो भी कार्यवाही होगी, उनकी सूचना सुरक्षा परिषद् को हर समय दी जाएगी ।

अध्याय नौ

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक और सामाजिक सहयोग

अनुच्छेद ५५

कौमो के समानाधिकार और स्वाधीनता के आधार पर राष्ट्रो के बीच शाति

ग्रौर मित्रता के सम्बन्ध स्थापित करने के लिये, जनहित ग्रौर स्थिरता की जो स्थितियाँ ग्रावश्यक है, इनको पैदा करने के लिये, सयुक्त राष्ट्र संघ नीचे लिखी बातो को बढावा देगा :—

(क) रहन-सहन का स्तर ऊचा करना, सबको काम दिलाना, ग्रार्थिक ग्रौर सामाजिक उन्नति ग्रौर विकास के लिये ग्रनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करना ।

(ख) ग्रन्तर्राष्ट्रीय ग्रार्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य ग्रौर तत्सम्बन्धी समस्याग्रो का सुलझाना ग्रौर सस्कृति तथा शिक्षा के क्षेत्र में ग्रन्तर्राष्ट्रीय सहयोग ।

(ग) जाति, लिंग, भाषा ग्रौर धर्म का भेद किये बिना सबके लिये मानव ग्रधिकारो ग्रौर मूल स्वतत्रता के प्रति सर्वत्र सम्मान, ग्रौर उनका पालन ।

ग्रनुच्छेद ५६

सब सदस्य प्रतिज्ञा करते हैं कि ग्रनुच्छेद ५५ के प्रयोजनो को पूरा करने के लिये, वे सघ के सहयोग से, मिलकर ग्रथवा ग्रलग-ग्रलग कार्यवाही करेंगे ।

ग्रनुच्छेद ५७

१. विशेष कार्य करने वाली वे ग्रनेक सस्थाएँ ग्रन्तर्राजकीय समझौतों के ग्राधार पर बनाई जावेंगी ग्रौर, ग्रार्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक, शिक्षा, स्वास्थ्य ग्रौर तत्सम्बन्धी क्षेत्रो में उनकी बहुत बडी ग्रतर्राष्ट्रीय जिम्मेदारियाँ होंगी, इन जिम्मेदारियो की परिभाषा इन सस्थाग्रो के ग्राधार-भूत प्रपत्रो मे की जायगी, सयुक्त राष्ट्रसघ ने उनका सम्बन्ध ग्रनुच्छेद ६३ के उपबन्धो के ग्रनुसार स्थापित करना होगा ।

२ जिन सस्थाग्रो का सम्बन्ध इस प्रकार संयुक्तराष्ट्र सघ ने स्थापित हो गया है, उनको, ग्रागे चलकर विशेष कार्य करने वाली सस्थाएँ कहा जायगा ।

ग्रनुच्छेद ५८

विशेषकार्य करने वाली सस्थाग्रो की नीतियो ग्रौर कार्यवाहियो में तालमेल स्थापित करने के लिये संयुक्तराष्ट्र सघ सिफारिशें करेगा ।

ग्रनुच्छेद ५९

ग्रनुच्छेद ५५ में दिये हुये प्रयोजनो के लिए आवश्यकता होने पर यदि उचित

होगा तो सयुक्तराष्ट्र सघ नई विशेष कार्य करने वाली सस्थाओ की बातचीत राष्ट्रो के बीच चलायेगा ।

अनुच्छेद ६०

इस अध्याय में दिये सयुक्तराष्ट्र सघ के कार्य पूरे करने की जिम्मेदारी जनरल असेम्बली पर होगी । लेकिन जनरल असेम्बली के अधिकार के आधीन यह जिम्मेदारी आर्थिक और सामाजिक परिषद् के ऊपर होगी । उसको इस मतलब के लिये दसवें अध्याय मे दी हुई शक्तियाँ मिलेंगी ।

अध्याय दस

आर्थिक और सामाजिक परिषद

अनुच्छेद ६१

१. आर्थिक और सामाजिक परिषद् में जनरल असेम्बली द्वारा चुने हुए सयुक्तराष्ट्र सघ के अठारह सदस्य रहेंगे ।

२. पैरा ३ के उपबन्धो के अधीन आर्थिक और सामाजिक परिषद् के ६ सदस्य हर साल तीन साल के लिये चुने जायेंगे । सेवा मुक्त सदस्य तुरन्त ही फिर चुनाव के लिये खडा हो सकेगा ।

३ पहले चुनाव में आर्थिक और सामाजिक परिषद् के अठारह सदस्य चुने जायेंगे । जनरल असेम्बली के प्रवन्ध के अनुसार इस तरह चुने हुए ६ सदस्यो की पदावधि एक साल और, दूसरे छ सदस्यो की दो साल होगी ।

४. आर्थिक और सामाजिक परिषद् के हर सदस्य राष्ट्र का एक प्रतिनिधि रहेगा ।

कार्य और शक्तियाँ

अनुच्छेद ६२

१ आर्थिक और सामाजिक परिषद अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शिक्षा, स्वास्थ्य और तत्सम्बन्धी मामलो का अध्ययन कर सकती है, और उन पर अपनी रिपोर्ट दे सकती है, या इस प्रकार के अध्ययन का प्रवन्ध कर सकती है, और वह ऐसे मामलो के बारे में जनरल असेम्बली, सयुक्तराष्ट्र सघ के सदस्यो और विशेष कार्य करने वाली सस्थाओ को सिफारिशें कर सकती है ।

२ वह सबके लिये मानव अधिकारो तथा मूल स्वतन्त्रताओ के प्रति आस्था बढाने अथवा उनके पालन कराने के लिये सिफारिशें कर सकती है ।

३. वह अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर आने वाले मामलों के विषय में जनरल असेम्बली में पेश करने के लिये अभिसमयों का मसौदा तैयार कर सकती है।

४. वह, संयुक्त राष्ट्रसंघ के बनाये नियमों के अनुसार अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर आने वाले मामलों पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन करा सकती है।

अनुच्छेद ६३

१. आर्थिक और सामाजिक परिषद् अनुच्छेद ५७ में बताई गई किसी संस्था के साथ समझौते कर सकती है। साथ ही वह उन शर्तों को भी तय कर सकती है, जिनके आधार पर उसका संयुक्त राष्ट्रसंघ से सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा। इन समझौतों पर जनरल असेम्बली का अनुमोदन आवश्यक होगा।

२. वह विशेष कार्य करने वाली संस्थाओं से सलाह करके या उन्हें अपनी सिफारिशें देकर, या जनरल असेम्बली और संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों को अपनी सिफारिशें दे कर, इन संस्थाओं की कार्यवाहियों में तालमेल रख सकती है।

अनुच्छेद ६४

१. वह विशेष कार्य करने वाली संस्थाओं से बाकायदा रिपोर्टें लेने के लिये उचित कदम उठा सकती है। वह संयुक्तराष्ट्र संघ के सदस्यों और विशेष कार्य करने वाली संस्थाओं के साथ ऐसा प्रबन्ध भी कर सकती है कि वह उनसे अपनी सिफारिशों और अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर आने वाले मामलों पर जनरल असेम्बली की सिफारिशों के बारे में अमली कार्यवाहियों की रिपोर्टें ले सके।

२. इन रिपोर्टों पर उसके जो विचार होंगे, वह उनको जनरल असेम्बली तक पहुँचा सकती है।

अनुच्छेद ६५

वह आर्थिक और सामाजिक परिषद् सुरक्षा परिषद् को सूचनाएँ देगी और उसकी प्रार्थना पर उसको सहायता भी देगी।

अनुच्छेद ६६

१. जनरल असेम्बली की सिफारिशों पर अमल करने के लिये आर्थिक और सामाजिक परिषद वही कार्य करेगी, जो उसके अधिकार क्षेत्र में आते हों।

२. वह जनरल असेम्बली के अनुमोदन पर, संयुक्तराष्ट्र संघ के सदस्यों की और विशेष कार्य करने वाली संस्थाओं की प्रार्थना पर जो सेवा दरकार हो, कर सकती है।

३. वह दूसरे ऐसे काम भी करेगी जो वर्तमान चार्टर में कही और दिये गये हों या जिन्हें जनरल असेम्बली ने इसे सौंपा हो।

वोट देना

अनुच्छेद ६७

१. आर्थिक और सामाजिक परिषद् के हर सदस्य का एक वोट होगा।

२. आर्थिक और सामाजिक परिषद् में निर्णय मौजूद और वोट देने वाले सदस्यो के बहुमत से किये जायेंगे।

क्रियाविधि

अनुच्छेद ६८

आर्थिक और सामाजिक परिषद् आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रो में मानव अधिकारो को बढावा देने के लिये कमीशन बनायेगी, साथ ही अपने कार्यो की पूर्ति के लिये भी अन्य आवश्यक कमीशनो की स्थापना करेगी।

अनुच्छेद ६९

आर्थिक और सामाजिक परिषद जब किसी मामले पर विचार कर रही हो, और उस मामले का सयुक्तराष्ट्र सघ के किसी सदस्य से विशेष सम्बन्ध हो तो वह उस सदस्य को विचार विमर्श में भाग लेने के लिये बुला सकती है। पर वह सदस्य वोट नही दे सकेगा।

अनुच्छेद ७०

आर्थिक और सामाजिक परिषद् चाहे तो यह प्रबन्ध कर सकती है कि विशेष कार्य करने वाली सस्थाओ के प्रतिनिधि बिना वोट दिए उसके विचार विमर्श मे और उसके बनाये कमीशनो के विचार-विमर्श में भाग ले सकें, और उनके अपने प्रतिनिधि विशेष कार्य करने वाली सस्थाओ के विचार विमर्श में भाग ले सकें।

अनुच्छेद ७१

आर्थिक और सामाजिक परिषद चाहे तो अपने अधिकार के भीतर आने वाले मामलो मे सम्बद्ध गैर सरकारी सगठनो से सलाह लेने का उचित प्रबन्ध कर सकती है। ये प्रबन्ध अन्तर्राष्ट्रीय सगठनो के साथ और जहाँ ठीक हो, उस मामले मे सम्बन्ध रखने वाले सयुक्तराष्ट्र सघ के सदस्य राष्ट्रो से सलाह करने के बाद राष्ट्रीय सगठनो के साथ किए जा सकते हैं।

अनुच्छेद ७२

आर्थिक और सामाजिक परिषद् अपनी क्रियाविधि के नियम स्वय बनाएगी। अपना अध्यक्ष चुनने की विधि भी वह स्वय तय करेगी।

२. आर्थिक और सामाजिक परिषद् की सभाएँ जब आवश्यक हो उसके अपने

नियमो के अनुसार होगी, इन नियमो के अन्तर्गत यह उपबन्ध भी होगा कि जब कभी उसके सदस्यो का बहुमत प्रार्थना करे तो उसकी सभा बुलाई जाए।

अध्याय ग्यारह

परतत्र इलाको के बारे मे घोषणा

अनुच्छेद ७३

संयुक्तराष्ट्र संघ के वे सदस्य जिन पर उन इलाको के अभिशासन की जिम्मेदारिया हैं या होगी, जहां लोगो ने पूर्ण रूप से स्वतंत्रता नही पाई है, यह स्वीकार करते हैं कि उन इलाको के निवासियों के हितो की रक्षा सबसे पहले होनी चाहिए, और वे एक पुण्य न्यास के रूप में अपना यह दायित्व मानते हैं कि वर्तमान चार्टर से स्थापित अंतर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा-प्रणाली के अधीन, अधिक से अधिक, इन देशो के निवासियो की भलाई करनी है और इसके लिए उन्हे —

(क) इन इलाको के लोगो की संस्कृति का पूरा ध्यान रखते हुए, उन की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और शिक्षा की उन्नति, उनके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार और उन्हे अत्याचारो से बचाने का पूरा प्रबन्ध करना होगा।

(ख) हर इलाके और उनके लोगो की अपनी-अपनी परिस्थितियो के और उनके विकास की अवस्था के अनुसार, उन में स्वशासन को बढावा देने का, उनकी राजनीतिक आकांक्षाओ मे उचित ध्यान रखने का, और उनकी आजाद राजनीतिक संस्थाओ के अधिकाधिक विकास मे सहायता देने का पूरा प्रबन्ध करना होगा।

(ग) अंतर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बढानी होगी।

(घ) इस अनुच्छेद में बताए सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक प्रयोजनो की पूर्ति के लिए, विकास के रचनात्मक कार्यो को बढावा देना होगा, शोध कार्यों को प्रोत्साहन देना होगा, और एक दूसरे के साथ, और जब और जहां ठीक हो, विशेष कार्य करने वाली अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओ के साथ, सहयोग स्थापित करना होगा।

(ङ) सुरक्षा और संविधानी बातो की सीमाओ को ध्यान में रखते हुए, प्रधान सचिव को उन इलाको की आर्थिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी परिस्थितियो के अलग-अलग आंकडे और दूसरी तकनीकी सूचनाएं देनी होगी, जिनके लिए वे जिम्मेदार हैं, सिवाय उन इलाको के जिन पर दसवें और ग्यारहवे अध्यायो के उपबन्ध लागू होते है।

अनुच्छेद ७४

संयुक्तराष्ट्र संघ के सदस्य इस बात पर भी राजी हैं कि जिन इलाको पर इस अध्याय के उपबन्ध लागू होते हैं, उनके बारे में, सामाजिक, आर्थिक और वाणिज्य

जाएगा और उस अधिकारी राष्ट्र का नाम दिया जाएगा, जो न्यास इलाके का अभिशासन चलाएगा। ऐसे अधिकारी राष्ट्र को आगे चल कर अभिशासक अधिकारी कहा जायगा, जो एक या कई राष्ट्र या स्वय सयुक्तराष्ट्र सघ भी हो सकता है।

अनुच्छेद ८२

किसी न्यास समझौते में युद्ध की दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्र या क्षेत्रो का नाम दिया जा सकता है, और हो सकता है कि इस क्षेत्र में न्यास इलाके का कुछ भाग या समस्त भाग आ जाए। पर इससे अनुच्छेद ४३ के अधीन किए गए विशेष समझौते या समझौतो का अहित न हो सकेगा।

अनुच्छेद ८३

१. युद्ध की दृष्टि मे महत्वपूर्ण क्षेत्रो के सम्बन्ध में सयुक्तराष्ट्र सघ के जितने भी कार्य होगे वे सब सुरक्षा-परिषद पूरे करेगी। इनमें न्यास समझौते की शर्तों और उनमें अदल-बदल और सशोधन या अनुमोदन भी शामिल होगा।

२ अनुच्छेद ७६ के जो मूल उद्देश्य बताए गए हैं वे युद्ध के लिए महत्वपूर्ण हर इलाके के लोगो पर लागू होंगे।

३ न्यास पद्धति के अधीन युद्ध की दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्रो के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी मामलो के विषय में सयुक्तराष्ट्र संघ के जो कार्य हो, उनको सुरक्षा-परिषद ही करेगी। इस काम में वह न्यास समझौतो के उपबन्धो के अधीन और सुरक्षा का ध्यान रखते हुए न्यास परिषद् की सहायता ले सकेगी।

अनुच्छेद ८४

अभिशासक राष्ट्र का काम होगा कि वह इस बात का पक्का प्रबन्ध करे कि न्यास इलाका अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने में अपना योग देगा। इस काम के लिए अभिशासक राष्ट्र ने सुरक्षा-परिषद के अधीन इस सम्बन्ध में जो दायित्व ले रखे हो, उनको पूरा करने के लिए, और स्थानीय रक्षा और न्यास इलाके में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए वह न्यास इलाके से स्वयसेवक-दल और दूसरी सुविधाए और सहायता ले सकता है।

अनुच्छेद ८५

१ न्यास समझौतो की शर्तों, और उनमें अदल-बदल और सशोधन के अनुमोदन समेत, युद्ध के लिए गैरजरूरी इलाको के न्यास समझौतो के जितने भी काम सयुक्तराष्ट्र सघ के जिम्मे हैं, उनको जनरल असेम्बली पूरा करेगी।

२. जनरल असेम्बली के अधिकार में काम करते हुए न्यास-परिषद उन कामों को पूरा करने में जनरल असेम्बली की सहायता करेगी।

अध्याय तेरह

न्यास परिषद

रचना

अनुच्छेद ८६

(१) न्यास परिषद में संयुक्तराष्ट्र संघ के नीचे लिखे सदस्य होंगे :

(क) वे सदस्य जो न्यास इलाकों का अभिशासन कर रहे हैं,

(ख) वे सदस्य जिनके नाम अनुच्छेद २३ में दिए हैं और जो न्यास इलाकों का अभिशासन कर रहे हैं, और

(ग) जनरल असेम्बली द्वारा तीन साल की अवधि के लिए चुने हुए दूसरे सदस्य, जिनकी गिनती उतनी ही होगी जिससे इस बात का विश्वास हो जाय, कि संयुक्तराष्ट्र संघ के जो सदस्य न्यास इलाकों का अभिशासन करते हैं और जो सदस्य नहीं करते, न्यास परिषद् के सदस्यों में उनकी संख्या बराबर रहे।

२. न्यास परिषद् का हर सदस्य विशेष रूप से एक विशेष योग्यता वाले व्यक्ति का नाम उसमें अपना प्रतिनिधान करने के लिए देगा।

कार्य और शक्तियां

अनुच्छेद ८७

जनरल असेम्बली, और उनके अधिकार में न्यास परिषद, अपने कार्य करने में :

(क) अभिशासक राष्ट्र की दी हुई रिपोर्ट पर विचार कर सकती है,

(ख) फरियादें स्वीकार करके अभिशासक राष्ट्र के साथ परामर्श करते हुए उनकी जांच कर सकती है,

(ग) अभिशासक राष्ट्र के साथ जैसे तय हुआ हो, समय-समय पर न्यास इलाकों में दौरे का प्रबन्ध कर सकती है,

(घ) न्यास समझौतों के अनुरूप, ये कार्यवाहियां अथवा दूसरी कार्यवाहियां कर सकती है।

अनुच्छेद ८८

न्यास-परिषद न्यास इलाके के निवासियो के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी विकास पर एक प्रश्नावली तैयार करेगी, और हर न्यास इलाके का अभिशासक राष्ट्र, जनरल असेम्बली के अधिकारक्षेत्र की सीमा के भीतर ही इस प्रश्नावली के आधार पर जनरल असेम्बली को वार्षिक रिपोर्ट देगा।

वोट देना

अनुच्छेद ८९

१. न्यास परिषद् के हर सदस्य का एक वोट होगा।

२ न्यास परिषद् में निर्णय—मौजूद और वोट देने वाले सदस्यो के बहुमत से किए जाएगे।

क्रियाविधि

अनुच्छेद ९०

१ न्यास परिषद् अपनी क्रियाविधि के नियम स्वय बनाएगी। अपना अध्यक्ष चुनने की विधि भी वह स्वय तय करेगी।

२ न्यास परिषद् की सभाएँ उसके नियमो के अनुसार हुआ करेंगी। इन नियमो में इस बात का भी प्रबन्ध होगा कि सदस्यो के बहुमत की प्रार्थना पर इसकी बैठकें बुलाई जा सकें।

अनुच्छेद ९१

न्यास परिषद् जहां भी उचित होगा, आर्थिक और सामाजिक परिषद् और विशेष कार्य करने वाली संस्थाओ से, उन मामलो पर सहायता ले सकेगी, जिनसे उनका अपना-अपना सम्बन्ध हो।

अध्याय चौदह

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय

अनुच्छेद ९२

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय सयुक्तराष्ट्र सघ का प्रमुख न्याय अग होगा। यह साथ लगी संविधि के अनुसार कार्य करेगा, जिसका आधार स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की संविधि होगी। और यह वर्तमान चार्टर का एक अभिन्न अग होगा।

अनुच्छेद ९३

१ सयुक्तराष्ट्र सघ के सब सदस्य अपने सदस्य होने के नाते से ही अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की संविधि को मानने वाले समझे जाएँगे।

२. कोई राज्य सयुक्तराष्ट्र सघ का सदस्य न होने पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की सविधि का हामी उन शर्तों पर बन सकता है, जो सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर जनरल असेम्बली तय करे।

अनुच्छेद ९४

१. सयुक्त राष्ट्रसघ का प्रत्येक सदस्य प्रतिज्ञा करता है कि वह किसी मामले मे फरीक होने पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के फैसलो को मानेगा।

२. अदालत के फैसले के अनुसार किसी फरीक के जो दायित्व हो जाते हैं, अगर वह उनको पूरा नही करता तो दूसरा फरीक सुरक्षा परिषद् का आश्रय ले सकता है। सुरक्षा परिषद् जैसा भी ठीक समझे उस फैसले पर अमल कराने के लिए चाहे सिफारिशे कर सकती है, चाहे दूसरी कोई कार्यवाही कर सकती है।

अनुच्छेद ९५

जो समझौते पहले हो चुके हैं या आगे चलकर होने वाले हैं, उनकी बिना पर सयुक्तराष्ट्र सघ के सदस्य अपने मतभेदो को सुलझाने के लिए उन्हे दूसरे अधिकरणो को दे सकते हैं। वर्तमान चार्टर के अनुसार इस पर कोई रोक न होगी।

अनुच्छेद ९६

१. किसी भी कानूनी सवाल पर सुरक्षा परिषद् या जनरल असेम्बली अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से सलाह के रूप मे राय देने की प्रार्थना कर सकते हैं।

२. अगर जनरल असेम्बली अधिकार दे दे तो सयुक्तराष्ट्र सघ के अन्य अग और विशेष कार्य करने वाली सस्थायें भी अपने कार्यक्षेत्र सम्बन्धी कानूनी सवालो पर न्यायालय से सलाह के रूप मे राय देने की प्रार्थना कर सकते हैं।

अध्याय पन्द्रह

सचिवालय

अनुच्छेद ९७

सचिवालय मे प्रधान सचिव और सघ की आवश्यकतानुसार कर्मचारी वर्ग रहेगा। प्रधान सचिव की नियुक्ति सुरक्षापरिषद् की सिफारिश पर जनरल असेम्बली करेगी। वही सघ का प्रमुख अभिशासक अधिकारी होगा।

अनुच्छेद ९८

प्रधान सचिव, इसी हैसियत से जनरल असेम्बली मे, सुरक्षा परिषद् मे, आर्थिक और सामाजिक परिषद् मे, और न्याय परिषद् की सभी बैठकों मे काम

करेगा। इसके अलावा वह उन कामो को भी पूरा करेगा जो ये अग उसे सौंप दें। प्रधान सचिव सघ के काम के विषय में जनरल असेम्बली को वार्षिक रिपोर्ट भी देगा।

अनुच्छेद ९९

अगर प्रधान सचिव यह समझे कि किसी मामले से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को खतरा पैदा होता है, तो सुरक्षापरिषद् का ध्यान उस मामले की ओर खीच सकता है।

अनुच्छेद १००

१ अपने कर्तव्यो की पूर्ति में प्रधान सचिव और कर्मचारी वर्ग किसी राज्य मे या सघ के बाहर किसी दूसरे अधिकारी से सलाह न मागेंगे और न पाएगे। वे अन्तर्राष्ट्रीय अधिकारी हैं, और केवल सघ के प्रति उत्तरदायी है। वे कोई भी ऐसा काम न करेगे जिससे उनकी इस हैसियत पर हरफ आए।

२. सयुक्तराष्ट्र-सघ का हर सदस्य प्रतिज्ञा करता है कि वह प्रधान सचिव और उसके कर्मचारियो के दायित्वो के पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप को मानेगा और उन दायित्वो के निर्वाह में किसी प्रकार का प्रभाव डालने की कोशिश नही करेगा।

अनुच्छेद १०१

कर्मचारियो की नियुक्ति प्रधान सचिव जनरल असेम्बली द्वारा बनाए नियमो के अनुसार करेगा।

२ आर्थिक और सामाजिक परिषद् और न्यास परिषद् को स्थायी रूप में यथोचित कर्मचारी दिये जायेंगे, और सयुक्तराष्ट्रो के अन्य अगो को भी आवश्यकतानुसार कर्मचारी दिए जाएगे। ये कर्मचारी सचिवालय के एक भाग होगे।

३ कर्मचारियो के भरती करने और उनकी नौकरियो की शर्तों को निर्धारित करने में सबसे अधिक ध्यान इस बात पर दिया जायगा कि दक्षता, क्षमता और ईमानदारी के ऊँचे से ऊँचे स्तर कायम हो सकें। साथ यह भी देखा जायगा कि भरती अधिक से अधिक विस्तृत भौगोलिक आधार पर हो।

अध्याय सोलह

विविध व्यवस्थाए

अनुच्छेद १०२

१ वर्तमान चार्टर के लागू होने के बाद सयुक्तराष्ट्र-सघ का कोई सदस्य

अगर कोई संधि या अन्तर्राष्ट्रीय समझौता करता है, तो उसको सचिवालय जल्दी से जल्दी अपने यहां रजिस्टर करके प्रकाशित करेगा।

२. अगर कोई सधि या समझौता इस अनुच्छेद के पैरा १ के अनुसार रजिस्टर नही हुआ है, तो कोई भी फरीक सयुक्तराष्ट्र सघ के किसी अङ्ग के आगे उस सन्धि या समझौते का उल्लेख नही कर सकेगा।

अनुच्छेद १०३

अगर सयुक्तराष्ट्र-सघ के किसी सदस्य के वर्तमान चार्टर के दायित्व किसी दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के दायित्वो के विरुद्ध पडते हो, तो उस स्थिति में वर्तमान चार्टर के ही दायित्वो को माना जायगा।

अनुच्छेद १०४

सघ को अपने हर सदस्य के देश मे अपने कार्यो और प्रयोजनो की पूर्ति के लिए आवश्यक कानूनी अधिकार प्राप्त होगे।

अनुच्छेद १०५

१. सघ को अपने हर सदस्य के देश मे अपने प्रयोजनो की पूर्ति के लिए आवश्यक विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां प्राप्त होगी।

२. उसी प्रकार सयुक्तराष्ट्र-सघ के सदस्यो के प्रतिनिधियो और सघ के अधिकारियो को सघ के कामो को स्वतन्त्ररूप से पूरा करने के लिए आवश्यक विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां प्राप्त होगी।

३. इस अनुच्छेद के पैरा १ और २ के लागू होने की सारी तफसीलो को तय करने के लिए जनरल असेम्बली सिफारिशे कर सकती है या सयुक्तराष्ट्र-सघ के सदस्यो के सामने इसके लिए अभिसमयो का प्रस्ताव रख सकती है।

अध्याय सत्रह

अन्तर्कालीन सुरक्षा व्यवस्थाएं

अनुच्छेद १०६

अनुच्छेद ४३ में जिन विशेष प्रबन्धो का उल्लेख किया गया है और जिनके द्वारा सुरक्षापरिषद् की राय मे वह अपने दायित्वो पर काम शुरू कर सकती है, उनके अमल मे आने तक चार और वे राष्ट्र जिन्होने ३० अक्तूबर, १९४३ को मास्को मे चतुर्राष्ट्र घोषणा पर हस्ताक्षर किए थे, उस घोषणा के पैरा ५ के उपबन्धो के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए, सयुक्तराष्ट्र-सघ की ओर से जो सयुक्त कार्यवाही आवश्यक हो, उसके बारे मे एक-दूसरे से, और मौका पडने पर सयुक्तराष्ट्र-सघ के दूसरे सदस्यो से भी सलाह कर सकते है।

अनुच्छेद १०७

दूसरे महायुद्ध मे अगर कोई राष्ट्र किसी हस्ताक्षरकारी सदस्य का शत्रु रहा हो और, जिन सरकारो के ऊपर इसके खिलाफ कार्यवाही करने की जिम्मेदारी सौंपी गई हो, अगर उन्होने उसके खिलाफ कोई कार्यवाही की हो या करने के अधिकारी हो, तो वर्तमान चार्टर के अनुसार उस कार्यवाही को किसी प्रकार न रोका जा सकेगा और न रद्द ही किया जा सकेगा ।

अध्याय अट्ठारह

सशोधन

अनुच्छेद १०८

वर्तमान चार्टर मे जो भी सशोधन होगे वे सयुक्त राष्ट्र-सघ के सव सदस्यो पर तभी लागू हो सकेंगे जव उनको जनरल असेम्वली दो-तिहाई के वहुमत से मान ले, और सुरक्षा-परिषद् के सभी स्थायी सदस्यो सहित सयुक्तराष्ट्र-सघ के सदस्य अपनी-अपनी वैधानिक प्रक्रियाओ के अनुसार दो-तिहाई के वहुमत से उनका सत्याकन कर दें ।

अनुच्छेद १०९

१ जव कभी वर्तमान चार्टर के पुनरवलोकन की वात हो तो उसके लिए सयुक्तराष्ट्र-सघ के सदस्यो का एक सामान्य सम्मेलन किया जा सकता है जिसकी तारीख, समय और स्थान जनरल असेम्वली दो-तिहाई वहुमत से और सुरक्षा परिषद् अपने किन्ही सात सदस्यो के वोट से तय करेगी । उस सम्मेलन में सयुक्तराष्ट्र सघ के हर सदस्य का एक वोट रहेगा ।

२ अगर सम्मेलन में वर्तमान चार्टर का कोई परिवर्तन दो-तिहाई के वहुमत से मान लिया जाता है तो वह तभी लागू हो सकेगा, जव सुरक्षा परिषद् के सभी स्थायी सदस्यो सहित सयुक्तराष्ट्र सघ के सदस्य अपनी-अपनी वैधानिक प्रक्रियाओ के अनुसार दो-तिहाई के वहुमत से उसका सत्याकन कर दे ।

३ चार्टर के अमल में आने के वाद जनरल असेम्वली के दसवें वार्षिक अधिवेशन के पहले अगर ऐसा सम्मेलन नहीं होता तो ऐसा सम्मेलन करने का प्रस्ताव जनरल असेम्वली के उसी अधिवेशन के एजेन्डा पर रक्खा जायगा, और अगर जनरल असेम्वली में वहुमत से और सुरक्षा परिषद् में किन्ही सात सदस्यो की वोट से यह फैसला कर लिया जाता है तो ऐसा सम्मेलन किया जायेगा ।

अध्याय उन्नीस

सत्याकन और हस्ताक्षर

अनुच्छेद ११०

१ हस्ताक्षरकारी राष्ट्र अपनी-अपनी वैधानिक प्रक्रियाओं द्वारा वर्तमान चार्टर का सत्याकन करेंगे।

२. सत्याकन पत्र संयुक्तराष्ट्र अमेरिका की सरकार के पास जमा किए जायेंगे और वह हर हस्ताक्षरकारी राष्ट्र को, और प्रधान सचिव की नियुक्ति पर उस को भी, प्रत्येक सत्याकन-पत्र के जमा किये जाने की सूचना देगी।

३. जब चीन गणराज्य, फ्रांस, सोवियत रूस, ग्रेटब्रिटेन, और उत्तरी आयरलैंड का संयुक्तराज्य, अमेरिका के संयुक्तराज्य और बाकी हस्ताक्षरकारियों में से अधिकांश अपने सत्याकन-पत्र जमा कर देंगे तभी वर्तमान चार्टर अमल में आयेगा। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका की सरकार सत्याकन पत्रों की प्राप्ति का एक आदि-लेख बनाएगी और उसकी नकलें सब हस्ताक्षरकारी राष्ट्रों को भेजेगी।

४. जो हस्ताक्षरकारी राष्ट्र वर्तमान चार्टर के अमल में आने के बाद उसका सत्याकन करेंगे, वे अपना सत्याकन पत्र जमा करने की तारीख से ही संयुक्तराष्ट्र संघ के आदि सदस्य हो जाएँगे।

अनुच्छेद १११

वर्तमान चार्टर के चीनी, फ्रांसीसी, रूसी, अंग्रेजी और स्पैनिश पाठ समान रूप से अधिकारी हैं, और ये संयुक्तराष्ट्र अमेरिका की सरकार के राजकीय पुरालेख संग्रहालय में जमा रहेंगे। अमेरिका सरकार उसकी प्रमाणित नकलें हस्ताक्षरकारी राष्ट्रों की सरकारों के पास भेज देगी।

अब वर्तमान चार्टर पर संयुक्त राष्ट्रों की सरकारों के प्रतिनिधियों ने पूरा श्रद्धा के साथ हस्ताक्षर किए हैं।

यह चार्टर छब्बीस जून उन्नीस सौ पैंतालीस को सान फ्रांसिस्को नगर में तैयार हुआ।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की संविधि

अनुच्छेद १

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय संयुक्तराष्ट्र-संघ के प्रमुख न्यायालय के रूप में उसके

चार्टर के द्वारा स्थापित हुआ है। वह वर्तमान सविधि के उपबन्धो के अनुसार बनाया जायगा और काम करेगा।

अध्याय एक

न्यायालय का सगठन

अनुच्छेद २

न्यायालय में स्वतन्त्र जजो का एक दल रहेगा। वे जज, चाहे वे किसी कौम के भी हो, ऐसे लोगो मे से चुने जाएँगे जिनका नैतिक स्तर वहुत ऊचा हो, जिनमें वे योग्यताएँ हो जिनसे वे अपने-अपने देशो में ऊँचे से ऊँचे न्यायपदो पर नियुक्त किए जा सकते हो, या जो अन्तर्राष्ट्रीय कानून के माने हुए न्यायसलाहकार हो।

अनुच्छेद ३

१ न्यायालय के पन्द्रह सदस्य होंगे। एक ही राष्ट्र के दो सदस्य नही हो सकेंगे।

२ न्यायालय की सदस्यता के लिए यदि कोई व्यक्ति ऐसा हो जो एक से अधिक राष्ट्रो का राष्ट्रिक माना जा सकता है, तो वह उसी राष्ट्र का माना जाएगा जहाँ वह आम तौर पर अपने राजनीतिक और नागरिक अधिकारो का प्रयोग करता हो।

अनुच्छेद ४

१ न्यायालय के सदस्यो को जनरल असेम्बली और सुरक्षा परिषद् उन लोगो की सूची में से चुनेगी, जिनको नीचे दी हुई वातो के अनुसार स्थायी विवाचन अदालत के राष्ट्रीय दलो ने नामजद किया हो।

२ सयुक्तराष्ट्र सघ के जिन सदस्यो के प्रतिनिधि स्थायी विवाचन अदालत में न हो, उनके उम्मीदवारो को वे राष्ट्रीय दल नामजद करेंगे जिनकी नियुक्ति उनकी सरकार ने इसी मतलब के लिए की हो। इस नियुक्ति की शर्ते वही रहेगी जो अतर्राष्ट्रीय झगडो को शाति से सुलझाने के लिए हेग अभिसमय १९०७ के अनुच्छेद ४४ में, स्थायी विवाचन अदालत के सदस्यो के लिए रखी गई हैं।

३ जो राष्ट्र सयुक्तराष्ट्र सघ का सदस्य न हो, पर वर्तमान सविधि को मानता हो वह कोई विशेष समझौता न होने की सूरत में न्यायालय के सदस्यो के चुनाव में उन शर्तों पर भाग ले सकता है, जो सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर जनरल असेम्बली तय कर दे।

अनुच्छेद ५

१ चुनाव के दिन से कम तीन महीने पहले सयुक्तराष्ट्र सघ का प्रधान सचिव स्थायी विवाचन अदालत के उन सदस्यो से आगे, जो वर्तमान सविधि को मानते हो और

राष्ट्रीय दलो के उन सदस्यो के आगे, जो अनुच्छेद २ के पैरा ४ के अधीन नियुक्त किए गए हो, एक लिखित प्रार्थना पत्र रखेगा। उस प्रार्थना पत्र में प्रधान सचिव राष्ट्रीय दलो से, एक निश्चित समय के भीतर ऐसे लोगो को नामजद करने की प्रार्थना करेगा जो न्यायालय के एक सदस्य के कर्तव्य निभा सकते हो।

२ कोई दल चार से अधिक व्यक्तियो को नामजद नही कर सकेगा, उनमे भी दो से अधिक उसकी अपनी कौम के न होगे। किसी भी सूरत में जितनी जगहे खाली हैं उनके दुगुने से अधिक उम्मीदवार एक दल नामजद नही कर सकेगा।

अनुच्छेद ६

इन व्यक्तियो को नामजद करने के पहले हर राष्ट्रीय दल से सिफारिश की जाएगी कि वह अपने देश में उच्चतम न्यायालय, कानूनी अधिकरणो, कानूनी संस्थाओ और कानून के अध्ययन में लगी हुई अन्तर्राष्ट्रीय एकाडमियो के राष्ट्रीय विभागो से परामर्श करले।

अनुच्छेद ७

१. प्रधान सचिव इस तरह नामजद लोगो के नामो की अक्षरक्रम मे एक सूची बनाएगा। केवल यही व्यक्ति चुनाव के लिए खडे हो सकेंगे, सिवाय जब अनुच्छेद १२ के पैरा २ के अधीन कुछ और उपबन्ध किया जाय।

२. प्रधान सचिव इस सूची को जनरल असेम्बली और सुरक्षा परिषद् दोनो को भेजेगा।

अनुच्छेद ८

जनरल असेम्बली और सुरक्षा परिषद् न्यायालय के सदस्यो के चुनाव अलग-अलग और स्वतन्त्र रूप से करेगी।

अनुच्छेद ९

चुनाव में निर्वाचको को केवल यही ध्यान मे नही रखना है कि उम्मीदवारो में व्यक्तिगत रूप से आवश्यक विशेषताएं हैं कि नहीं, उनको यह भी देखना होगा कि सामूहिक रूप से उस निकाय में, मानव सभ्यता के प्रधान रूपो और विश्व की प्रमुख कानूनी पद्धतियो का प्रतिनिधान होता है या नहीं।

अनुच्छेद १०

१. चुनाव में वही उम्मीदवार सफल माने जाएंगे जिनको जनरल असेम्बली और सुरक्षा परिषद् में सम्पूर्ण बहुमत प्राप्त हो।

२ चाहे जजो का चुनाव हो, चाहे अनुच्छेद १२ में कहे गए सम्मेलन के सदस्यो की नियुक्ति हो, सुरक्षा परिपद् में वोट देने में स्थायी और अस्थायी सदस्यो में कोई भेद नही माना जाएगा।

३ अगर एक ही राष्ट्र के दो व्यक्तियो को जनरल असेम्बली और सुरक्षा परिपद् दोनो में सम्पूर्ण वहुमत मिल जाय तो दोनो में जो जेठा होगा उसी को चुना माना जाएगा।

अनुच्छेद ११

अगर चुनाव के लिए पहिली बैठक हो जाने के वाद एक या दो से अधिक जगहे खाली रह जाती हैं, तो दूसरी, या जरूरत हो तो तीसरी बैठक भी की जाएगी।

अनुच्छेद १२

१. अगर तीसरी बैठक के वाद भी एक या अधिक जगहे खाली रह जाती हैं, तो जनरल असेम्वली या सुरक्षा परिपद् की प्रार्थना पर किसी भी समय छ सदस्यो का एक मिला जुला सम्मेलन हो सकता है। इस सम्मेलन के तीन सदस्य जनरल असेम्वली और तीन सुरक्षा परिपद् नियुक्त करेगी। हर जगह के लिए एक नाम सपूर्ण वहुमत के आधार पर चुना जाएगा, फिर वे नाम जनरल असेम्वली और सुरक्षा परिपद् मे भेजे जायेंगे, जिन पर वे दोनो अपनी अलग-अलग स्वीकृतियाँ देंगी।

२ अगर सयुक्त सम्मेलन एक राय से किसी भी ऐसे व्यक्ति को चुन ले जो आवश्यक शर्तो को पूरा करता हो, तो उसके नाम को उस सूची में रखा जा सकता है, चाहे अनुच्छेद ७ के अनुसार उसको नामजद व्यक्तियो की सूची में शामिल न किया गया हो।

३. अगर मिला जुला सम्मेलन यह समझे कि वह चुनाव कराने में सफल न हो सकेगा, तो न्यायालय में पहले से चुने हुए सदस्य सुरक्षा परिपद् द्वारा निश्चित समय के भीतर ही उन जगहो को उन उम्मीदवारो में से चुनकर भर देंगे, जिनको जनरल असेम्वली या सुरक्षा परिपद् में वोट मिला हो।

४ अगर जजो के वोट वरावर-वरावर वट गए हो तो सवसे वडे जज का वोट निर्णायक होगा।

अनुच्छेद १३

१ न्यायालय के सदस्य ९ साल के लिए चुने जाएगे और दुवारा चुने जा सकते हैं। लेकिन शर्त यह है कि पहले चुनाव में सफल पांच जजो की पदावधि तीन साल में और दूसरे पाच जजो की पदावधि छ साल के अन्त में समाप्त हो जाए

२ पहली बार के चुनाव में जिन जजो की पदावधि ऊपर कहे गए तीन और छः साल के अरसे में समाप्त होनी होगी, उनके नाम चुनाव खतम होते ही प्रधान सचिव स्वय लाटरी निकाल कर तय करेगा।

३. खाली जगहो के भरने तक न्यायालय के सदस्य अपना कार्य करते रहेंगे। उनकी जगह दूसरे व्यक्तियो के आने पर, उन्हें उन मामलो को निपटाना पडेगा, जो उन्होंने शुरू कर दिए हो।

४ अगर न्यायालय का कोई सदस्य इस्तीफा देना चाहता है ता वह इस्तीफा न्यायालय के सभापति के नाम लिखेगा, फिर वह प्रधान सचिव के पास भेज दिया जायगा। प्रधान सचिव के पास इस प्रकार इस्तीफा भेजे जाने का नोटिस होने पर वह जगह खाली हो जाएगी।

अनुच्छेद १४

जिस ढग से पहला चुनाव होगा उसी ढग से नीचे दिए उपबन्ध के अधीन खाली जगहे भी भरी जाएगी। जगह खाली होने के एक महीने के अन्दर प्रधान सचिव अनुच्छेद ५ के अनुसार सूचनाए भेजेगा और सुरक्षा परिषद् चुनाव की तारीख तय करेगी।

अनुच्छेद १५

अगर न्यायालय के एक सदस्य के स्थान पर काम करने के लिए दूसरे सदस्य का चुनाव किया जाए तो दूसरा सदस्य अपने पूर्ववर्ती की पदावधि के शेष भाग तक उस पद पर रहेगा।

अनुच्छेद १६

१. न्यायालय का कोई सदस्य राजनीतिक या अभिशासन सम्बन्धी काम नहीं कर सकेगा और न कोई व्यवसाय ही करेगा।

२. इस विषय में किसी भी शंका को न्यायालय के फैसले से दूर किया जाएगा।

अनुच्छेद १७

१. न्यायालय का कोई सदस्य किसी भी मामले में एजेन्ट, सलाहकार या अधिवक्ता की हैसियत से भाग नहीं ले सकेगा।

२. अगर किसी मामले में किसी सदस्य ने किसी पक्ष की ओर से सलाहकार या अधिवक्ता या राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय या जांच कमीशन के सदस्य के रूप में या किसी दूसरी हैसियत से पहले भाग लिया हो तो वह उसके फैसले में भाग नहीं ले सकेगा।

३. इस विषय मे जो शका उठे उसे सुरक्षा परिषद् के फैसले से दूर किया जाएगा ।

अनुच्छेद १८

१ न्यायालय का कोई सदस्य बरखास्त नही किया जा सकता जब तक कि दूसरे सदस्य एक राय होकर यह न मान लें कि वह अब आवश्यक शर्तो को पूरा नही करता ।

२ रजिस्ट्रार इसकी नियमानुसार सूचना प्रधान सचिव को देगा ।

३ इस सूचना का अर्थ होगा वह जगह खाली हो गई है ।

अनुच्छेद १९

१. न्यायालय के सदस्य जब तक न्यायालय का काम करें, तब तक उनको राजनयिक विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां मिलेंगी ।

अनुच्छेद २०

अपना काम सभालने से पहले न्यायालय का हर सदस्य आम न्यायालय में इस बात की शपथ लेगा कि वह बिना किसी पक्षपात के और ईमानदारी से अपनी शक्तियो का प्रयोग करेगा ।

अनुच्छेद २१

१ न्यायालय अपना सभापति और उपसभापति तीन साल के लिए चुनेगा, वे दुबारा भी चुने जा सकते हैं ।

२ न्यायालय अपना रजिस्ट्रार स्वयं नियुक्त करेगा और जितने अधिकारी आवश्यक हो उनकी नियुक्ति का भी प्रबन्ध कर सकता है ।

अनुच्छेद २२

१ न्यायालय का स्थान हेग नगर में होगा । लेकिन अगर कभी न्यायालय की इच्छा हो तो वह दूसरे स्थान पर भी बैठ सकता है, और वही अपने काम कर सकता है । उन पर किसी प्रकार की रोक न होगी ।

२ सभापति और रजिस्ट्रार न्यायालय के स्थान पर ही रहेगे ।

अनुच्छेद २३

१ न्यायालय हमेशा खुला रहेगा, सिवाए उन दिनो के जब अदालती छुट्टियां हो । उन छुट्टियों की तारीखें और अवधि न्यायालय तय करेगा ।

२ न्यायालय में सदस्यो को समय-समय पर छुट्टी मिल सकती है । हेग से

हर जज के घर की दूरी का ध्यान रखते हुए, न्यायालय इन छुट्टियों की तारीख और अवधि तय करेगा।

३. न्यायालय के सदस्यों को स्थायी रूप से न्यायालय के काम के लिए तय्यार रहना होगा, सिवाय जब कि वे छुट्टी पर हों या किसी बीमारी या दूसरे बड़े कारणों से जो कि सभापति को विधिवत बता दिए गए हों, न्यायालय न आ सकें।

अनुच्छेद २४

१. अगर किसी विशेष कारण से न्यायालय का कोई सदस्य यह समझता है, कि उसे किसी विशेष मामले के फैसले में भाग नहीं लेना चाहिए, तो वह उसकी सूचना सभापति को देगा।

२. अगर सभापति यह समझे कि किसी विशेष कारण से किसी सदस्य को किसी विशेष मामले के फैसले में भाग नहीं लेना चाहिए तो वह सदस्य को वैसी सूचना दे देगा।

३. अगर किसी ऐसी बात पर न्यायालय के सदस्य और सभापति में मतभेद हो जाए तो उस मामले को न्यायालय अपने फैसले से तय करेगा।

अनुच्छेद २५

१ केवल उन अवसरों को छोड़कर जिनके लिए वर्तमान संविधि में बन्धान किया गया हो, हमेशा पूरा न्यायालय लगा करेगा।

२. न्यायालय के नियमों में यह बन्धान किया जा सकता है कि परिस्थिति के अनुसार और बारी-बारी से, एक या अधिक जजों को अदालत में बैठने से छुट्टी दे दी जाए, पर शर्त यह है कि किसी समय भी अदालत में बैठने के लिए उपलब्ध जजों की संख्या ग्यारह से कम न हो।

३. नौ जजों का कोरम होने पर न्यायालय लग सकता है।

अनुच्छेद २६

१. श्रम सम्बन्धी, और लाने लेजाने व संचार जैसे विशेष कोटि के मामलों को तय करने के लिए न्यायालय समय-समय पर एक या अधिक चेम्बर भी बना सकता है। प्रत्येक चेम्बर में तीन या तीन से अधिक, जितने न्यायालय तय करे, उतने जज रहेंगे।

२. न्यायालय किसी विशेष मामले के लिए किसी समय चेम्बर बना सकता है, लेकिन उस चेम्बर के जजों की संख्या न्यायालय तय करेगा और दोनों पक्ष उसका अनुमोदन करेंगे।

३ अगर दोनो फरीक प्रार्थना करें तो इस अनुच्छेद में जिन चेम्बरो के लिए वन्धान किया गया है वे ही उनके मामलो को सुनेंगे और उन पर अपना फैसला देंगे।

अनुच्छेद २७

अनुच्छद २६ और २६ के उपवन्धो के अनुसार वनाए चेम्बरो के निर्णय न्यायालय के निर्णय माने जाएँगे।

अनुच्छेद २८

अनुच्छेद २६ और २९ के उपवन्धो के अनुसार वनाए चेम्बर फरीको की सहमति से हेग के अलावा किसी दूसरे स्थान पर अपने काम कर सकते हैं।

अनुच्छेद २६

काम जल्दी निपटाने की दृष्टि से न्यायालय हर साल पाँच जजो का एक चेम्वर वनाएगा, जो फरीको की प्रार्थना पर सक्षिप्त क्रियाविधि से मामलो की सुनवाई और फैसला करेगा। इसके अतिरिक्त दो जज और चुने जाएँगे जो उन जजो के स्थान पर काम करेंगे जिनके लिए किसी कारण अदालत में आना असम्भव हो।

अनुच्छेद ३०

१ अपने काम करने के नियम न्यायालय स्वय वनाएगा। विशेपकर वह क्रियाविधि के नियम तय करेगा।

२ इन नियमो के अनुसार असेसर भी अदालत या उसके किसी चेम्वर में वैठ सकेंगे। पर उनको वोट देने का अधिकार न होगा।

अनुच्छेद ३१

१ जो जज फरीको की कौम के हैं, उनको इस मामले में न्यायालय के सामने वैठने का अधिकार न होगा।

२ अगर न्यायालय वेंच में एक फरीक की कौम का एक जज शामिल करले तो दूसरा फरीक भी किसी व्यक्ति को जज के रूप में वैठने के लिए चुन सकता है। प्राय ऐसा व्यक्ति उन्ही लोगो में से चुना जायगा जो अनुच्छेद ४ और ५ के उपवन्धो के अनुसार उम्मीदवार नामजद किए जा चुके हो।

३ अगर न्यायालय वेंच में फरीको की कौम का कोई जज नही शामिल करती तो भी हर फरीक इस अनुच्छेद के पैरा २ के उपवन्ध के अनुसार एक जज चुन सकता है।

४ इस अनुच्छेद के उपवन्ध, अनुच्छेद २६ और २६ के मामलो पर लागू होगे। ऐसे मामलो मे सभापति चेम्बर के सदस्यो में से एक या जरूरत हुई तो दो सदस्यो से

प्रार्थना करेगा कि वे अपने स्थान फरीकों की कौम वाले न्यायालय के सदस्यो के पक्ष में छोड दें, और यदि ऐसे जज न हो, या वे आ न सके, तो उनके स्थान पर उन जजो के पक्ष मे अपना स्थान छोड दें, जिनको फरीक विशेष रूप से चुनें।

५ यदि एक ही हित के कई फरीक हो जाएँ तो ऊपर बताए उपबन्धो के मतलब के लिए उन सब को एक ही फरीक समझा जाएगा। इस विषय में जो शंका उठे उसे न्यायालय अपने फैसले से दूर करेगा।

६. इस अनुच्छेद के पैरा २, ३ और ४ के अनुसार जो जज चुने गए हो, वे वर्तमान संविधि के अनुच्छेद २,१७ (पैरा २), २० और २४ में दी हुई शर्तों को पूरा करेंगे। वे फैसले में अपने सहयोगियो के साथ पूरी बराबरी की हैसियत से भाग लेंगे।

अनुच्छेद ३२

१. न्यायालय के हर सदस्य को सालाना वेतन मिला करेगा।

२. सभापति को एक विशेष सालाना भत्ता मिलेगा।

३ उप सभापति जिस दिन सभापति के पद पर काम करेगा उस दिन का उसे विशेष भत्ता मिलेगा।

४ अनुच्छेद ३१ के अनुसार न्यायालय के सदस्यो के अलावा जो जज चुने जाएँगे उनको भी प्रतिदिन काम करने का मुआवजा दिया जाएगा।

५. ये वेतन, भत्ते और मुआवजे जनरल असेम्बली तय करेगी और ये पदावधि के बीच घटाये नही जाएगे।

६ रजिस्ट्रार का वेतन न्यायालय के प्रस्ताव पेश करने पर जनरल असेम्बली तय नही करेगी।

७. जनरल असेम्बली वे नियम भी बनाएगी, जिनके अनुसार न्यायालय के सदस्यो और रजिस्ट्रार को सेवा-मुक्ति पेंशन दी जाएगी और न्यायालय के सदस्यो और रजिस्ट्रार को मार्ग खर्च वापस किया जायगा।

८ इन भत्तो, वेतनो और मुआवजो पर कर नही लगेगा।

अनुच्छेद ३३

न्यायालय का सारा खर्च संयुक्तराष्ट्र-संघ बरदाश्त करेगा और इसकी विधि जनरल असेम्बली तय करेगी।

अध्याय दो

न्यायालय का अधिकार क्षेत्र

अनुच्छेद ३४

१. न्यायालय के सामने जो मामले आएँ, उनके फरीक केवल राष्ट्र ही हो

३ अगर दोनो फरीक प्रार्थना करें तो इस अनुच्छेद में जिन चेम्बरो के लिए बन्धान किया गया है वे ही उनके मामलो को सुनेंगे और उन पर अपना फैसला देंगे।

अनुच्छेद २७

अनुच्छेद २६ और २९ के उपबन्धो के अनुसार बनाए चेम्बरो के निर्णय न्यायालय के निर्णय माने जाएँगे।

अनुच्छेद २८

अनुच्छेद २६ और २९ के उपबन्धो के अनुसार बनाए चेम्बर फरीको की सहमति से हेग के अलावा किसी दूसरे स्थान पर अपने काम कर सकते हैं।

अनुच्छेद २९

काम जल्दी निपटाने की दृष्टि से न्यायालय हर साल पाँच जजो का एक चेम्बर बनाएगा, जो फरीको की प्रार्थना पर सक्षिप्त क्रियाविधि से मामलो की सुनवाई और फैसला करेगा। इसके अतिरिक्त दो जज और चुने जाएँगे जो उन जजो के स्थान पर काम करेंगे जिनके लिए किसी कारण अदालत में आना असम्भव हो।

अनुच्छेद ३०

१ अपने काम करने के नियम न्यायालय स्वय बनाएगा। विशेपकर वह क्रियाविधि के नियम तय करेगा।

२ इन नियमो के अनुसार असेसर भी अदालत या उसके किसी चेम्बर में बैठ सकेंगे। पर उनको वोट देने का अधिकार न होगा।

अनुच्छेद ३१

१ जो जज फरीको की कौम के हैं, उनको इस मामले में न्यायालय के सामने बैठने का अधिकार न होगा।

२ अगर न्यायालय बेंच में एक फरीक की कौम का एक जज शामिल करले तो दूसरा फरीक भी किसी व्यक्ति को जज के रूप में बैठने के लिए चुन सकता है। प्राय ऐसा व्यक्ति उन्ही लोगो में से चुना जायगा जो अनुच्छेद ४ और ५ के उपबन्धो के अनुसार उम्मीदवार नामजद किए जा चुके हो।

३ अगर न्यायालय बेंच में फरीको की कौम का कोई जज नही शामिल करती तो भी हर फरीक इस अनुच्छेद के पैरा २ के उपबन्ध के अनुसार एक जज चुन सकता है।

४ इस अनुच्छेद के उपबन्ध, अनुच्छेद २६ और २९ के मामलो पर लागू होगे। ऐसी हालतो में सभापति चेम्बर के सदस्यों में से एक या जरूरत हुई तो दो सदस्यो से

प्रार्थना करेगा कि वे अपने स्थान फरीकों की कौम वाले न्यायालय के सदस्यों के पक्ष में छोड़ दें, और यदि ऐसे जज न हों, या वे आ न सकें, तो उनके स्थान पर उन जजों के पक्ष में अपना स्थान छोड़ दें, जिनको फरीक विशेष रूप से चुनें।

५. यदि एक ही हित के कई फरीक हो जाएँ तो ऊपर बताए उपबन्धों के मतलब के लिए उन सब को एक ही फरीक समझा जाएगा। इस विषय में जो शंका उठे उसे न्यायालय अपने फैसले से दूर करेगा।

६. इस अनुच्छेद के पैरा २, ३ और ४ के अनुसार जो जज चुने गए हों, वे वर्तमान सविधि के अनुच्छेद २,१७ (पैरा २), २० और २४ में दी हुई शर्तों को पूरा करेंगे। वे फैसले में अपने सहयोगियों के साथ पूरी बराबरी की हैसियत से भाग लेंगे।

अनुच्छेद ३२

१. न्यायालय के हर सदस्य को सालाना वेतन मिला करेगा।

२. सभापति को एक विशेष सालाना भत्ता मिलेगा।

३. उप सभापति जिस दिन सभापति के पद पर काम करेगा उस दिन का उसे विशेष भत्ता मिलेगा।

४ अनुच्छेद ३१ के अनुसार न्यायालय के सदस्यों के अलावा जो जज चुने जाएँगे उनको भी प्रतिदिन काम करने का मुआवजा दिया जाएगा।

५. ये वेतन, भत्ते और मुआवजे जनरल असेम्बली तय करेगी और ये पदावधि के बीच घटाये नहीं जाएंगे।

६ रजिस्ट्रार का वेतन न्यायालय के प्रस्ताव पेश करने पर जनरल असेम्बली तय नहीं करेगी।

७. जनरल असेम्बली वे नियम भी बनाएगी, जिनके अनुसार न्यायालय के सदस्यों और रजिस्ट्रार को सेवा-मुक्ति पेंशन दी जाएगी और न्यायालय के सदस्यों और रजिस्ट्रार को मार्ग खर्च वापस किया जायगा।

८ इन भत्तों, वेतनों और मुआवजों पर कर नहीं लगेगा।

अनुच्छेद ३३

न्यायालय का सारा खर्च संयुक्तराष्ट्र-संघ बरदाश्त करेगा और इसकी विधि जनरल असेम्बली तय करेगी।

अध्याय दो

न्यायालय का अधिकार क्षेत्र

अनुच्छेद ३४

१. न्यायालय के सामने जो मामले आएँ, उनके फरीक केवल राष्ट्र ही हो सकते हैं।

(ग) कानून के सामान्य सिद्धान्त, जिनको सभ्य राष्ट्रो ने मान लिया हो ।

(घ) अनुच्छेद ५९ के उपबन्धो के अधीन विभिन्न राष्ट्रो के अन्तर्राष्ट्रीय कानून को जानने वाले सबमे अधिक योग्य व्यक्तियो के न्याय-निर्णय और कथन, जो कानूनी नियमो के तय करने में सहायक साधन होंगे ।

२ अगर फरीक राजी हो तो न्याय और हित के आधार पर किसी मामले का फैसला करने की न्यायालय की शक्ति पर इस उपबन्ध का कोई असर न पडेगा ।

अध्याय तीन

क्रियाविधि

अनुच्छेद ३९

१ न्यायालय की सरकारी फ्रासीसी और अंग्रेजी भाषाएँ होगी । अगर फरीक कहे कि मामले की कार्यवाही फ्रासीसी में हो तो फैसला भी फ्रासीसी भाषा में दिया जाएगा और अगर फरीक कहे कि मामले की कार्यवाही अग्रेजी में हो, तो फैसला भी अंग्रेजी में दिया जाएगा ।

२ अगर भाषा के विषय में कोई समझौता न हो सके तो हर फरीक विवाद मे जो भी भाषा चाहे प्रयोग कर सकता है । न्यायालय अपना फैसला अग्रेजी और फ्रासीसी भाषाओं में देगा । ऐसी सूरत में न्यायालय यह बात भी उसी समय तय करेगा कि दोनो में से कौन सा पाठ अधिकारी माना जाय ।

३ किसी फरीक के प्रार्थना करने पर, न्यायालय उसको अंग्रेजी और फ्रासीसी के अलावा जो वह कहे, उस भाषा का प्रयोग करने का अधिकार दे सकता है ।

अनुच्छेद ४०

१. मामले न्यायालय के सामने, विशेष समझौते की सूचना से या रजिस्ट्रार के नाम के लिखे हुए प्रार्थनापत्र के द्वारा जैसी सूरत हो, लाए जायेंगे । दोनो ही सूरतो मे विवाद का विषय और फरीको के नाम का उल्लेख अवश्य किया जाएगा ।

२ उसके बाद रजिस्ट्रार प्रार्थना पत्र की सूचना तत्सम्बन्धी सब लोगो को देगा ।

३. वह प्रधान सचिव के द्वारा संयुक्तराष्ट्र-संघ के सदस्यो को और उन राष्ट्रो को भी सूचना देगा जो न्यायालय के सामने आने के अधिकारी हो ।

अनुच्छेद ४१

१. न्यायालय, परिस्थितियो के अनुसार अगर आवश्यक समझे तो उन अस्थायी कार्यवाहियो को भी बता सकता है जो दोनो फरीको के अधिकारो की रक्षा के लिए की जानी चाहिएँ ।

२ इस प्रकार की जिन कार्यवाहियो का सुझाव दिया गया हो उन सब की सूचना, अन्तिम फैसला होने तक, फरीको को और सुरक्षा-परिषद को दी जाएगी ।

अनुच्छेद ४२

१. फरीको के एजेण्ट उनका प्रतिनिधान करेंगे ।

२. वे न्यायालय के सामने सलाहकार या अधिवक्ता की सहायता ले सकते हैं ।

३ फरीको के एजेण्टो, सलाहकारो और अधिवक्ताओ को, अपने कर्तव्यो को स्वतन्त्रतापूर्वक निभाने के लिए आवश्यक विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ मिलेगी ।

अनुच्छेद ४३

१. क्रियाविधि के दो भाग होंगे, एक लिखित और दूसरा जबानी ।

२. लिखित क्रियाविधि में न्यायालय को और फरीको को, वादियाँ, प्रति-वादियाँ और जहाँ आवश्यक हो, उत्तर भेजना शामिल होगा । इनके साथ-साथ इनके समर्थन मे सारे कागजात और दस्तावेज भी शामिल होगे ।

३. यह सारा पत्र व्यवहार रजिस्ट्रार के द्वारा न्यायालय की आज्ञा के अधीन और उस समय के भीतर किया जायगा, जो न्यायालय तय कर दे ।

४. एक फरीक ने जो दस्तावेज पेश किए हो, उनमें से हर एक की प्रमाणित नकल दूसरे फरीक को भेजी जाएगी ।

५. जबानी कार्यवाहियो में न्यायालय के आगे गवाहो, विशेषज्ञो, सलाहकारो और अधिवक्ताओ की सुनवाइयां होगी ।

अनुच्छेद ४४

१. एजेण्टो, सलाहकारो और अधिवक्ताओ के अलावा अगर और लोगो को नोटिस भेजने हो तो न्यायालय, जिस देश के इलाके में नोटिस भेजने हो उसकी सरकार के पास सीधे प्रार्थना पत्र भेजेगा ।

२ घटनास्थल पर गवाही इकट्ठा करने की कार्यवाही के बारे में भी यही उपबन्ध लागू होगा ।

अनुच्छेद ५९

फरीको और उनके मामलो को छोडकर न्यायालय के फैसले की कोई बंधनकारी शक्ति न होगी।

अनुच्छेद ६०

फैसला अन्तिम होगा और उसकी कोई अपील न होगी। अगर फैसले के प्रभावक्षेत्र या उसके अर्थ के बारे मे कोई विवाद उठे, तो किसी भी फरीक की प्रार्थना पर न्यायालय उसका अर्थ निर्धारण करेगा।

अनुच्छेद ६१

१. फैसले पर फिर विचार करने का प्रार्थना पत्र केवल तभी दिया जाएगा, जब वह इस बात पर आधारित हो कि कोई ऐसा नया तथ्य मिला है जो मामले के लिए निर्णायक हो सकता था, पर जो तथ्य फैसला देने के समय तक न्यायालय और फिर विचार के लिए प्रार्थी फरीक को पता नही था। पर यह बात सदा ध्यान में रखनी होगी कि यह अज्ञानता लापरवाही के कारण तो नही थी।

२ फिर विचार की कार्यवाही का प्रारम्भ न्यायालय के एक अदालती निर्णय से किया जाएगा, जिसमे नए तथ्य के अस्तित्व का स्पष्ट रूप से अभिलेखन किया जायगा, और इस बात को माना जाएगा कि वह तथ्य ऐसा है कि जिससे मामले को फिर विचार के लिए खुल जाना चाहिए, और इसी बिना पर प्रार्थना पत्र को स्वीकार्य घोषित किया जाएगा।

३ फिर विचार की कार्यवाहियाँ प्रारम्भ करने की अनुमति देने से पहले न्यायालय अगर चाहे तो यह माँग कर सकता है कि उसके फैसले की शर्तों पर पहले अमल किया जाए।

४. नये तथ्य के पता चलने के छ महीने के भीतर ही फिर विचार का प्रार्थना पत्र दे देना चाहिए।

५ फैसला देने की तारीख से दस साल के बाद फिर विचार का कोई प्रार्थना पत्र नहीं दिया जा सकेगा।

अनुच्छेद ६२

१ अगर कोई राष्ट्र समझे कि किसी मामले के फैसले से उसके किसी कानूनी हित पर असर पडेगा तो वह उस मामले मे बीच में पडने के लिए न्यायालय को प्रार्थना पत्र दे सकता है।

२ न्यायालय को अधिकार होगा कि वह इस प्रार्थना को स्वीकार करे या न करे।

अनुच्छेद ६३

१. अगर किसी ऐसे अभिसमय के अर्थ लगाने के बारे में कोई विवाद उठे, जिसमें मामले में सम्बन्ध रखने वाले राष्ट्रों के अलावा दूसरे राष्ट्र भी फरीक हों, तो रजिस्ट्रार उन सब राष्ट्रों को इसकी सूचना देगा।

२. इस प्रकार जिस राष्ट्र को भी सूचना मिलेगी उनमें से हर एक को कार्यवाही के बीच में पड़ने का अधिकार होगा, परन्तु यदि वह उस अधिकार का प्रयोग करता है तो फैसले में जो अर्थ दिया जाए वही उस राष्ट्र को अनिवार्य रूप से मानना पड़ेगा।

अनुच्छेद ६४

जब तक न्यायालय कोई दूसरा फैसला न करे, हर फरीक को अपना-अपना खर्चा उठाना पड़ेगा।

अध्याय चार

सलाह के रूप में सम्मतियाँ

अनुच्छेद ६५

१. न्यायालय किसी ऐसी संस्था की प्रार्थना पर किसी कानूनी सवाल के बारे में सलाह के रूप में अपनी सम्मति दे सकता है, जिसको संयुक्तराष्ट्र-संघ के वर्तमान चार्टर के अनुसार या उसके द्वारा ऐसी प्रार्थना करने का अधिकार प्राप्त हो।

२. जिस प्रश्न पर सलाह के रूप में न्यायालय की सम्मति माँगी जाए, वह न्यायालय के आगे लिखित प्रार्थना के रूप में रखा जाएगा। इस प्रार्थना में सम्मति माँगे जाने वाले प्रश्न का विवरण होगा और उसके साथ वे सब दस्तावेज रहेंगे, जिनसे सवाल पर कुछ प्रकाश पड़ता हो।

अनुच्छेद ६६

१. जब कभी सलाह के रूप में सम्मति के लिए कोई प्रार्थना की जाए, तो रजिस्ट्रार तुरन्त उसकी सूचना उन सब राष्ट्रों को देगा, जिनको न्यायालय के सामने आने का अधिकार है।

२. रजिस्ट्रार प्रत्येक ऐसे राष्ट्र को, जिसे न्यायालय के सामने आने का अधिकार है, एक विशेष और सीधा संदेश भेज कर यह नोटिस देगा कि न्यायालय, सभापति द्वारा निश्चित अवधि के अन्दर लिखे विवरण लेने के लिए, या एक खुली बैठक में, जो खास तौर पर इस काम के लिए की जायगी, इस सवाल से सम्बन्ध रखने वाले जबानी बयान सुनने को तैयार है। यदि न्यायालय का उस समय बैठक न हो रही हो तो सभापति, यह समझे कि कोई अन्तर्राष्ट्रीय-संघ उस सवाल पर कुछ

बातें बता सकता है, तो रजिस्ट्रार उस संस्था को भी इसी प्रकार का नोटिस भेज सकता है।

३ अगर ऐसे किसी राष्ट्र को जो न्यायालय के सामने आने का अधिकारी है, इस अनुच्छेद के पैरा २ में दी हुई विशेष सूचना न मिली हो तो वह राष्ट्र अपनी यह इच्छा प्रकट कर सकता है कि वह कोई लिखा विवरण या जबानी बयान पेश करना चाहता है। न्यायालय उस प्रार्थना पर अपना निर्णय देगा।

४ जिन राष्ट्रों या संघों ने लिखे विवरण या जबानी बयान दिए हों, उनको यह अधिकार होगा कि वे, उस रूप में, उस हद तक और उस कालावधि के भीतर, जो न्यायालय या यदि वह न बैठा हो तो सभापति, हर मामले में तय कर दे, दूसरे राष्ट्रों और संघों के विवरणों पर अपनी टिप्पणी दें। इसलिए रजिस्ट्रार उचित समय के भीतर ऐसे सब विवरण उन राष्ट्रों और संघों को भेज देगा जो इसी प्रकार के विवरण दे चुके हों।

अनुच्छेद ६७

न्यायालय सलाह के रूप में जो भी सम्मतियाँ देगा, वह खुली अदालत में देगा। और इसका नोटिस प्रधान सचिव को, और उस मामले से निकटतम सम्बन्ध रखने वाले संयुक्तराष्ट्र-संघ के सदस्यों, दूसरे राष्ट्रों और अन्तर्राष्ट्रीय संघों के प्रतिनिधियों को पहले ही भेज दिया जाएगा।

अनुच्छेद ६८

सलाह देने के अपने काम में न्यायालय वर्तमान संविधि में दिए हुए और विवादग्रस्त मामलों पर लागू होने वाले उपबन्धों के अनुसार उस हद तक चलेगा, जिस हद तक वह समझता है कि ये उपबन्ध लागू होते हैं।

अध्याय पाँच

संशोधन

अनुच्छेद ६९

वर्तमान संविधि में संशोधन उसी क्रियाविधि के अनुसार होंगे, जो चार्टर में संशोधन के लिए संयुक्तराष्ट्र संघ के चार्टर में दी हुई है। पर ये संशोधन उन उपबन्धों के अधीन होंगे जिनको जनरल असेम्बली ने सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर माना हो और जिनका सम्बन्ध संशोधन की कार्यवाही में उन राष्ट्रों के भाग लेने से हो, जो वर्तमान संविधि को तो मानते हैं पर जो संयुक्तराष्ट्र-संघ के सदस्य नहीं हैं।

अनुच्छेद ७०

न्यायालय को यह अधिकार होगा कि वह वर्तमान संविधि में अनुच्छेद ६९ के उपबन्ध के अनुरूप प्रधान सचिव के विचारार्थ, ऐसे संशोधनों के प्रस्ताव लिखे सन्देश द्वारा भेजे, जिन्हें वह आवश्यक समझे।
